

ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद

[परिवर्द्धित एवं परिष्कृत द्वितीय संस्करण]



लेखक :

प्रभुदयाल मीतल



भूमिका लेखक :

डा० रामप्रसाद त्रिपाठी

अध्यक्ष-इतिहास विभाग, प्रयाग विश्व-विद्यालय



प्रकाशक :

अग्रबाल प्रेस, मथुरा ।

द्वितीय संस्करण
वैशाख सं० २००५ वि०

मूल्य ६)

मुद्रक, प्रकाशक :
प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, अग्रवाल भवन, मथुरा ।

બ્રજાસાહિત્ય માળા



— પ્રભુ દયાલ જીતલ





प्राथः साठे-तीन वर्ष पूर्व इस पुस्तक का प्रथम संस्करण 'ब्रजभाषा-साहित्य में नायिका-निरूपण' के नाम से प्रकाशित हुआ था । पुस्तक के विषय का विचार करते हुए मुझे इस बात की आशका थी कि हिंदी के सुप्रसिद्ध साहित्यकारों द्वारा कदाचित्त उसे सम्मान प्राप्त न हो सके, किंतु मुझे यह देव कर परम हर्ष और आत्म-सतोष हुआ कि हिंदी के अनेक प्रतिष्ठित पत्रों एवं विख्यात विद्वानों ने उसकी मुक्त कंठ से सराहना की थी । ब्रजभाषा-काव्य के रमिकों तथा उच्च हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों ने भी इस पुस्तक को प्रेम पूर्वक अपनाया, जिसके कारण इसका प्रथम संस्करण कुछ ही महीनों में समाप्त हो गया । तब से अब तक इस पुस्तक की बड़ी माँग थी, किंतु कागज-कंट्रोल की असुविधाओं के कारण अब कहीं इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो पाया है ।

प्रथम संस्करण की रचना के समय ब्रजभाषा के रीति-साहित्य का तो अध्ययन हो गया था, किंतु उसके भक्ति-साहित्य पर उस समय भली भाँति विचार करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ । इस बीच में ब्रजभाषा के भक्ति-साहित्य का विशेष रूप से अवलोकन किया गया, जिसके फल स्वरूप 'अष्टछाप-परिचय' तथा कई अन्य पुस्तकों की सामग्री एकत्रित की गयी । ब्रजभाषा के भक्ति-साहित्य का अध्ययन करने पर नायिकाभेद संबंधी अपनी पूर्व मान्यताओं में परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत हुई । एक प्रकार से तत्संबंधी दृष्टिकोण ही बदल गया, जिसके कारण प्रस्तुत संस्करण आमूल परिवर्तन, परिवर्द्धन एवं परिष्कार के उपरान्त प्रकाशित किया गया है । पुस्तक के क्रम, आकार-प्रकार और उसकी रचना-शैली में भी बहुत-कुछ परिवर्तन हुआ है । इन सब कारणों से यह एक नवीन पुस्तक सी बन गयी है, इसलिए इसके पूर्व नाम में भी किंचित परिवर्तन कर इसे वर्तमान नाम से प्रस्तुत किया गया है ।

ब्रजभाषा का भक्ति एवं शृंगार विषयक साहित्य अखिल भारतीय साहित्य के लिए महान् दैन है । इसी साहित्य के कारण भारत की समस्त भाषाओं में हिंदी का सर्वोपरि महत्त्व है । ब्रजभाषा के भक्त कवियों ने भक्ति और शृंगार में भेद नहीं माना है, इसलिए उनकी अति-शृंगारिक रचनाएँ भी पवित्र एवं निर्दोष भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित हैं । ब्रजभाषा का नायिकाभेद विषयक साहित्य

शास्त्रीय विधि से रीति-साहित्य का अग होते हुए भी रस-प्रकरण के विचार से शृंगार रस के अंतर्गत है। व्रजभाषा के शृंगार साहित्य में भक्त कवियों की अलौकिक दिव्य वाणियों के अतिरिक्त रीति-काल के कलाकारों की चमत्कार-पूर्ण सूक्तियाँ भी हैं। दोनों का अपनी-अपनी सीमाओं में महत्व है और दोनों में ही काव्य-सौन्दर्य की पराकाष्ठा है। यद्यपि दोनों की रचनाओं में काव्य-कला के समस्त गुण विद्यमान हैं, तथापि उनके लक्ष्यों में एक मौलिक अंतर है। भक्त कवियों की श्रेष्ठतम रचनाओं का लक्ष्य भी भक्ति-भावना है, काव्य-कला का प्रदर्शन करना नहीं जब कि रीति-कालीन कवियों की निकृष्टतम रचनाओं का लक्ष्य भी काव्य-कला का प्रदर्शन करना है। भक्त कवियों के नायिकाभेदोक्त, कथनों का उद्देश्य भी उनकी विशिष्ट उपामना-पद्धति के अनुसार इष्ट देव के प्रति भक्ति भाव प्रदर्शित करना है, किंतु रीति-काल के कवियों द्वारा नायिकाभेद का विविध भौति से विस्तार किये जाने पर भी उनका मुख्य लक्ष्य अपने काव्य सौन्दर्य का प्रदर्शन करना रहा है। वास्तविक बात तो यह है कि व्रजभाषा साहित्य में शास्त्रीय पद्धति के अनुसार नायिकाभेद पर स्वतंत्र विषय की भौति प्रायः विचार ही नहीं किया गया। भक्ति-कालीन कवियों ने उसे भक्ति भावना के प्रदर्शन का साधन बनाया, तो रीति-कालीन कवियों ने उसे काव्य-प्रतिभा के प्रदर्शन का साधन बनाया। भक्त कवियों ने नायिकाभेद की सभी नायिकाओं का उपयोग न कर कतिपय विशिष्ट नायिकाओं द्वारा ही अपने उद्देश्य की पूर्ति की है, किंतु रीति-कालीन कवियों ने नायिकाभेद की सभी नायिकाओं का उपयोग ही नहीं किया है। प्रत्युत उनके भेदोपभेदों के कथनों द्वारा उनका विस्तार भी किया है। इसलिए प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम खंड में भक्त कवियों के नायिकाभेद की आलोचना करते हुए भी इसके द्वितीय खंड में नायिकाओं के उदाहरणों में रीति-कालीन कवियों के छंद ही सकलित किये गये हैं। भक्त कवियों द्वारा कथित कतिपय नायिकाओं के उदाहरण सम्मिलित कर देने से प्रस्तुत पुस्तक का गौरव तो अवश्य बढ जाता, किंतु इस ब्रेमेल गड-बंधन के कारण कदाचित्त उन महात्माओं के प्रति अन्याय भी हो जाता। इसलिए मैंने भक्त कवियों के नायिकाभेदोक्त उदाहरणों के सकलन का लोभ त्याग कर रीति-कालीन कवियों के उदाहरण देना ही अधिक उपयुक्त समझा है। व्रजभाषा नायिकाभेद के मूल में धार्मिक अथवा आध्यात्मिक भावना होते हुए भी रीति-कालीन कवियों ने उसे शुद्ध शृंगारिक भाव से अपनाया है। शृंगार स्वयं इतना महान् है कि उसके प्रतिपादन के लिए किसी धार्मिक अथवा आध्यात्मिक आश्रय की अनिवार्य रूप से आवश्यकता भी नहीं है।

हिंदी साहित्यिक इतिहास के तथाकथित रीति-काल में ब्रजभाषा साहित्य का पूर्ण अभ्युदय और उसका अपूर्व शृंगार हुआ है। इस काल की रचनाओं में नायिकाभेद विषयक रचनाएँ सब से अधिक महत्वपूर्ण हैं। रीति-काल के सैकड़ों प्रतिभाशाली कवियों ने पूर्ण साधना के साथ अपने जीवन के अनेक अमूल्य वर्षों को इस विषय की रचना में लगाया है। हिंदू राजा-महाराजाओं के अतिरिक्त अनेक मुसलमान उमराव और बादशाहों ने भी इस विषय के प्रोत्साहन में गुण प्राहकता पूर्वक लाखों ही नहीं, करोड़ों रुपयों का व्यय किया है।

जिस विषय की रचना में इतनी विपुल जन-शक्ति और धन-शक्ति लगी हो, उसके महत्वपूर्ण होने में सदेह ही क्या हो सकता है ! किंतु आधुनिक काल के कतिपय विद्वान ब्रजभाषा साहित्य के नायिकाभेद का अर्थ महत्व स्वीकार करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। उनसे मेरा वित्त निवेदन है कि ब्रजभाषा कवियों के नायिकाभेद-कथन पर काव्य-सौन्दर्य और विषय-प्रतिपादन दोनों दृष्टियों से विचार करना चाहिए, तभी उसके संबंध में कोई निश्चित धारणा बनायी जा सकती है। समझ है विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से उनको इसका महत्व स्वीकार न हो, किंतु काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि में तो उनको भी इसका महत्व स्वीकार करना होगा। मेरी दृष्टि में नायिकाभेद का महत्व विशेषतया उसके काव्य-सौन्दर्य के कारण है। इस दृष्टि से इस विषय पर विचार करने में ज्ञात होगा कि नायिकाभेद पर कवियों ने जिन टकसाली मुक्तक छंदों की रचना की है, उनमें काव्य-कला के समस्त गुण विद्यमान हैं। उनके सरस कवित्व और काव्य-सौष्टव्य की समता अन्यत्र मिलना कठिन है। संस्कृत साहित्य के कवि भी इस विषय में ब्रजभाषा कवियों से पीछे रह गये हैं। वास्तव में काव्यशास्त्र का यही एक ऐसा विषय है, जिसके कथन में ब्रजभाषा के कलाकार अपने अग्रज संस्कृत कवियों को भी बहुत पीछे छोड़ गये हैं।

आधुनिक काल के जो प्रतिष्ठित आलोचक इस विषय का महत्व स्वीकार नहीं करते हैं, उनमें हिंदी साहित्य के गंभीर विचारक और चिंतनशील विद्वान श्री हजारीप्रसाद जी द्विवेदी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आदरणीय

“अत्यंत पुराने काल में नाट्यशास्त्र में जो कुछ इस विषय में कहा गया था और बाद में दशरूपक और साहित्यदर्पणादि ग्रंथों में उसी के अनुवाद के रूप में जो कुछ कहा गया था, उससे अधिक किसी ने नहीं लिखा। इस प्रकार समूचा नायिकाभेद का साहित्य नाट्यशास्त्र के सामान्य अंग पर लोकगम्य भाव्य के सिवा और कुछ नहीं है।”

—“हिंदी साहित्य की भूमिका”

द्विवेदी जी नायिकाभेद को नाट्यशास्त्र के सामान्य अंग का भाष्य मात्र मानते हुए उसका विशेष महत्व स्वीकार नहीं करते हैं। विद्वद्भर द्विवेदी जी के मतानुसार यह विषय नाट्यशास्त्र के सामान्य अंग का भाष्य ही सही, किन्तु यह भाष्य भी कितना विशद और विवेचनापूर्ण, साथ ही कितना सरल और काव्य-सौन्दर्ययुक्त हुआ है, इसकी क्या सहज ही उपेक्षा की जा सकती है ? मैं तो श्री द्विवेदी जी के मत से आदरपूर्वक असहमति प्रकट करता हुआ इसे नाट्यशास्त्र के सामान्य अंग का केवल भाष्य ही नहीं, प्रत्युत इसे नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र और कामशास्त्र जैसे तीन-तीन महत्वपूर्ण शास्त्रों का समन्वय मानता हूँ। ब्रजभाषा कवियों का नायिकाभेद नाट्यशास्त्र के चरित्र-चित्रण, काव्यशास्त्र की रस-निष्पत्ति और कामशास्त्र की केलि क्रीड़ा से अनुमाणित है, इसीलिए वह भरत-धनजय, विश्वनाथ-भानुःत्त आर वात्स्यायन की कृतियों की अपेक्षा कहीं अधिक आकर्षक और प्रभावशाली बन गया है—किन्तु मैं फिर कहता हूँ कि उसका महत्व केवल इस पर आधारित नहीं है यह तो उसकी महत्ता का गौण अंग है, मुख्य अंग तो वही काव्य-सौन्दर्य है, जिस पर वर्तमान काल के आलोचक ध्यान देने दिखलाई नहीं देने और जिसके बिना उनकी धारणा एकांगमुखी हो जाती है।

विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से भी उसका महत्व कुछ कम ज्ञात नहीं होता। इस दृष्टि से नायिकाभेद एक मनोवैज्ञानिक विवेचन कहा जा सकता है। मनो-विज्ञान जैसे गूढ़ और जटिल विषय को ब्रजभाषा कवियों ने किम प्रकार सरल और सरस पद्धति से लिखा है, यह देखने के लिए नायिकाभेद के ग्रंथों का अवलोकन करना चाहिए। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का स्वभाव कोमल और उनका मन दुर्बल होता है। अपनी सुकुमार वृत्ति के कारण जहाँ स्त्री सहज ही दौवत हो सकती है, वहाँ अपने मन की दुर्बलता के कारण वह असाधारण रूप से कठोर भी ज्ञात होती है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के मन पर तुच्छ से तुच्छ आघात का भी शीघ्र ही प्रभाव होता है और उनके मस्तिष्क में तदनुसार शीघ्र ही उत्तेजना होने लगती है, इसलिए मनोविज्ञान के अनुसार नारी-जाति के मन का अत्यंत महत्व है। ब्रजभाषा कवियों ने नारी-जाति के मानसिक विकारों का विविध रूप से विरलेषण करते हुए उनको अनेक प्रकार की नायिकाओं के रूप में व्यक्त किया है, जिसके कारण मनोविज्ञान जैसा दुर्बल विषय भी जन साधारण के लिए बोधगम्य होगया है। इस कठिन कार्य के लिए उनको अपने समस्त जीवन के अनुभव और अभ्यास का पूरा-पूरा उपयोग करना पड़ा है।

कला की दृष्टि से विषय-प्रतिपादन की पूर्णता होने हुए भी लौकिक उपयोगिता के नाते उसकी क्या स्थिति है, इस पर भी विचार करना आवश्यक है। आलोचकों की दृष्टि में वस्तुनः यही नायिकाभेद का दुर्बलतम अंग है जिस पर उनके मर्मस्पर्शों वाणों का प्रहार होता रहता है !

गृहस्थ-जीवन की यात्रा को स्त्री-पुरुष दोनों मिजकर ही पूरी करते हैं। गार्हस्थिक कर्तव्य-पूर्ति में इन दोनों का समान सहयोग आवश्यक है। दाम्पत्य संबंध की उत्तमता और अनुत्तमता पर दम्पति का सुख-दुःख आधारित है। ऐसी दशा में स्त्री को पुरुष के और पुरुष को स्त्री के स्वभाव, आचार-व्यवहार और गुण-दोषों सहित उनके सभी मनोविकारों का भी ज्ञान रखना आवश्यक है। जहाँ इस प्रकार का ज्ञान दम्पति को अधिक से अधिक होगा, वहाँ दाम्पत्य प्रेम भी पर्याप्त परिमाण में प्राप्त हो सकेगा। नायिकाभेद के ग्रंथों में इस ज्ञान-प्राप्ति में विशेष रूप से सहायता मिल सकती है।

प्रायः देखा जाता है कि रूप, गुण, जीवन और धन-संपत्ति के रहते हुए भी पति पत्नी में अनबन रहती है, जिसके कारण वे एक दूसरे के यथार्थ प्रेम और आदर को प्राप्त नहीं कर पाते। फलतः गृहस्थ में सदैव कलह और अशांति बनी रहती है। इसका मुख्य कारण यह है कि पुरुष की प्रकृति से स्त्री, और स्त्री की प्रकृति से पुरुष परिचिन नहीं होते। नायिकाभेद के ग्रंथों में स्त्री-पुरुष को अनेक चेष्टाओं का ऐसा सर्वांगपूर्ण वर्णन हुआ है, जिसको पढ़कर स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे की प्रकृति और स्वभाव से परिचित होकर पूर्ण दाम्पत्य-सुख का उपभोग कर सकते हैं। क्या यह नायिकाभेद की लौकिक उपयोगिता का प्रमाण नहीं है ?

नायिकाभेद की उपयोगिता में संदेह करने वाले सज्जन स्वकीया को तो उचित समझते हैं, किंतु वे परकीया के कथन पर आपत्ति करते हैं। नर और नारी इस मानव-जगत् की दो इकाइयाँ हैं। इन दोनों जातियों के प्राणियों में भले और बुरे सदा से रहे हैं, और सदैव रहेंगे। एक नर का दूसरे नर से, एक नारी का दूसरी नारी से तथा एक नर का दूसरी नारी से जो भी संबंध हो सकते हैं, उनकी मर्यादा निश्चित करना और तदनुसार उनकी व्यवस्था करना समाज-शास्त्रियों के लिए सदैव ही एक समस्या रही है। नायिकाभेद के ग्रंथों में इस समस्या को सरस एवं साहित्यिक ढंग से सुलझाने की चेष्टा की गयी है। समाज-शास्त्रियों की बाँधी हुई सामाजिक मर्यादा के अनुकूल चलने वाली स्त्री को नायिकाभेद में स्वकीया कहा जाता है, तथा इस मर्यादा को भंग कर समाज की व्यवस्था के विरुद्ध चलने वाली स्त्री को परकीया कहा जा

सकता है। समाज-व्यवस्था की रक्षा के लिए परकीया का आचरण निम्नसदेह अवांछनीय है, किंतु समाज के एक अंग के नाते साहित्य में उसका उल्लेख तो करना ही होगा। मैंने इस पुस्तक के प्रथम खंड के अंतर्गत 'नायिकाभेद का सिंहावलोकन' शीर्षक के परिच्छेद में इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डालते हुए यह सिद्ध किया है कि ब्रजभाषा कवियों ने समाज के एक अंग के रूप में परकीया का उल्लेख अवश्य किया है, किंतु उन्होंने इस प्रकार के आचरण को कभी प्रोत्साहित नहीं किया। उन्होंने परकीया की दयनीय एवं सकटापन्न अवस्था का दिग्दर्शन कराते हुए इस मार्ग पर चलने वालों को मार्गान्तर कर दिया है। सामान्या नायिका में परकीयत्व की चरम सीमा ही नहीं, बल्कि उसका निकृष्टतम भयावह स्वरूप है। ब्रजभाषा कवियों ने सामान्या की अर्थ-लोलुपता और स्वार्थ-वृद्धि को धिक्कारा है। उन्होंने वेश्यागामी पुरुषों को अपने धन, धर्म और यौवन को व्यर्थ नष्ट न करने का भी उपदेश दिया है। ऐसी दशा में परकीया और सामान्या के कथन में भी नायिकाभेद की लौकिक उपयोगिता में किस प्रकार कमी आती है, यह समझ में नहीं आता। यदि साहित्य लोक-जीवन का दर्पण है, तो उसमें सभी प्रकार के भले-बुरे व्यक्तियों का प्रतिबिम्ब अवश्य होगा। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के कथन वैज्ञानिक विश्लेषण और स्वस्थ विवेचन के साथ हो और उन्हें सुधार की भावना से उपस्थित किया जाय।

प्रथम संस्करण के प्राक्कथन में मैंने पुस्तक की रचना विषयक कथा बतलाते हुए लिखा था कि ब्रजभाषा साहित्य के काव्य-पौन्य का परिचय देने के लिए समय-समय पर जिन कई सहस्र छंदों का संकलन किया गया, उनको विषयानुसार लगाने पर शृंगार रस के संग्रह में नायिकाभेद विषयक छंदों की अधिकता देख कर उनको नायिकाभेद की पुस्तक के रूप में उपस्थित करना पड़ा। इस प्रकार यह एक विचित्र बात हुई कि नायिकाभेद की रचना का विचार न होते हुए भी परिस्थिति के कारण वह नायिकाभेद की पुस्तक के रूप में प्रकाशित करनी पड़ी। किंतु प्रस्तुत संस्करण की रचना के समय यह बात नहीं थी। अब की बार पुस्तक को उक्त विषय की स्वतंत्र रचना के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है, इसलिए रचना-शैली के संबंध में आवश्यक परिवर्तन अनिवार्य था। गत संस्करण में नायिकाभेद की आवश्यक बातों को एक विस्तृत भूमिका में स्पष्ट किया गया था, किंतु अब की बार उक्त भूमिका को आवश्यक परिवर्तन और परिष्कार के अनंतर प्रथम खंड के रूप में पुस्तक का ही अंग बना लिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में तीन खंड है—१. प्रवेश-खंड, २. प्रतिपादन-खंड और ३. परिशिष्ट-खंड। प्रथम प्रवेश-खंड में दस परिच्छेद हैं। आरंभिक दो परिच्छेदों में नायिकाभेद के स्वरूप-ज्ञान के लिए संक्षिप्त रूप में 'रस-निरूपण' और 'शृंगार रस-विवेचन' किया गया है। तृतीय परिच्छेद में 'ब्रजभाषा-शृंगार-साहित्य की पृष्ठ-भूमि' बतलायी गयी है। यह परिच्छेद अब की बार बिल्कुल नया है, जिससे नायिकाभेद की पृष्ठ-भूमि समझने में सुविधा होगी। चतुर्थ एवं पंचम परिच्छेदों में क्रमशः ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य एवं रीति-साहित्य का विवेचन किया गया है। षष्ठम और सप्तम परिच्छेदों में नायिकाभेद की परंपरा, उसके आधार और विकास का ऐतिहासिक विवरण दिया गया है। अष्टम परिच्छेद में 'नायिकाभेद का सिंहावलोकन' करते हुए इस विषय को स्पष्ट और सुबोध रीति से समझाया गया है। नवम परिच्छेद में नायिकाभेद का वैज्ञानिक क्रम बतलाते हुए इस विषय का प्रथम एवं मौलिक प्रयास किया गया है। यह क्रम नायिकाओं की विकसित मनोदशा के अनुसार है। दशम परिच्छेद में नायिकाभेद के काव्य-सौन्दर्य का परिचय दिया गया है। प्रस्तुत संस्करण में यह परिच्छेद भी नया जोड़ा गया है। इस प्रकार प्रवेश खंड के दस परिच्छेदों में नायिकाभेद संबंधी सभी आवश्यक बातों के विवेचन की चेष्टा की गयी है।

द्वितीय प्रतिपादन-खंड में नायिकाभेद का सर्वमान्य स्वरूप उपस्थित किया गया है। प्राचीन ढंग की पुस्तकों में नायिकाओं की परिभाषा और उनका विवेचन पद्यबद्ध होने के कारण उसे समझने में असुविधा होती है, किंतु इस खंड में नायिकाओं की परिभाषा और तत्संबंधी ज्ञातव्य बातें सरल गद्य में लिखी गयी हैं। परिभाषा की पुष्टि के लिए पाद-टिप्पणियों में प्रमुख आचार्यों के प्रमाण भी लिखे गये हैं। इसके साथ ही उस नायिका के संबंध में भिन्न-भिन्न आचार्यों के मतों का भी उल्लेख कर दिया गया है, जिसके कारण पाठक को इस एक ही पुस्तक के पढ़ने से नायिकाभेद के प्रमुख आचार्यों के मतों का ज्ञान हो सकता है। नायिकाओं के उदाहरण स्वरूप जो छंद दिये गये हैं, वे ब्रजभाषा काव्य के चुने हुए छंद हैं। नायिकाभेद की पचासो पुस्तकों से और नायिकाभेद के छंदों को कंठस्थ करने वाले बीसो सज्जनों की कृपा से, कई वर्षों में जो हजारों छंद संगृहीत हो पाये थे, उनमें से प्रायः १० कवियों के छंदे-छंटाये ७८१ टकसाली छंदों का संकलन इस पुस्तक में किया गया है। साथ ही इस बात का भी पूरा ध्यान रखा गया है कि कोई अश्लील छंद न आने पावे। ब्रजभाषा कवियों का ऐसा चुना हुआ काव्य-संग्रह अन्यत्र मिलना कठिन है।

तृतीय परिशिष्ट-खंड में तीन परिशिष्ट हैं । प्रथम परिशिष्ट में रहीम और देव की विभिन्न प्रदेशों और जातियों की नायिकाओं के साथ हरिऔधजी की आधुनिक नायिकाओं का संकलन दिया गया है । यह संकलन पाठकों को विशेष रूप से रोचक ज्ञान हो सकता है । द्वितीय परिशिष्ट में संस्कृत साहित्य के और तृतीय परिशिष्ट में ब्रजभाषा साहित्य के प्रमुख आचार्यों का नायिका-संदोक्त क्रम दिया गया है, जो इस विषय के विकास का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा । पुस्तक के अंत में प्रथम खंड की व्यक्ति-नामानुक्रमणिका एवं प्रथम-नामानुक्रमणिका तथा द्वितीय खंड की पद्य-संग्रह सहित कवि-नामानुक्रमणिका दी गई है ।

इस प्रकार अपनी अल्प बोध्यता और शक्ति के अनुसार पुस्तक को अधिकाधिक उपयोगी और पूर्ण बनाने की चेष्टा की गयी है । हिंदी साहित्य में नवीन शैली से लिखी हुई नायिकाभेद की कोई रचना न होने के कारण यह अपने विषय की प्रथम पुस्तक है । यदि इससे ब्रजभाषा के काव्य-प्रेमियों और उच्च हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों को कुछ भी लाभ हुआ, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा ।

इस पुस्तक की रचना में मुझे जिन अनेक कवियों और लेखकों के ग्रंथों का उपयोग करना पड़ा है, उनका कृतज्ञता पूर्वक हार्दिक आभार मानना मेरा परम कर्तव्य है । मैंने इस पुस्तक के साथ प्रमुख सहायक ग्रंथों की सूची देकर उनका नामोल्लेख भी कर दिया है, किंतु इनके अतिरिक्त और भी कितने ही ग्रंथों और लेखों से सहायता ली गयी है, जिनके कर्त्ताओं का नामोल्लेख करना संभव नहीं है । यदि इस पुस्तक में कोई महत्व की बात है, तो इसका श्रेय उन विभिन्न कवियों और लेखकों को ही है, क्योंकि मैंने तो उनके मत को प्रकट कर देने भर का कार्य किया है । यदि इसमें कोई त्रुटि है, तो इसका उत्तरदायित्व मुझ पर है, क्योंकि मैंने उन विद्वान कवियों और लेखकों के अभिप्राय को समझने में भूल की है ।

अतः मैं अपने परम आदरणीय विद्वद्वर डा० रामप्रसाद जी त्रिपाठी महोदय का हार्दिक आभार मानता हूँ, जिन्होंने अपने अमूल्य समय में मे कुछ समय निकाल कर इस पुस्तक का निःस्वार्थ भूमिका लिखने की कृपा की है । भूमिका-लेखक ने अपने गंभीर अध्ययन के फल स्वरूप जिन सारगर्भित विचारों को व्यक्त किया है, उनके कारण इस पुस्तक का महत्व निस्संदेह बढ़ गया है ।

अप्रवाल भवन, भथुरा
वैशाख शु० १, स० २००५ }

—प्रभुदयाल मीतल



प्रभुदयाल मीतल

जन्म सं० १९५६, ज्येष्ठ कृ० १२, मंगलवार



भूमिका



सृष्टि का सूत्र-पात होते ही जब एकता बिखरने अथवा निखरने लगी, तब सबसे प्रथम द्वित्व का प्रादुर्भाव हुआ। इन दो प्रसूतिश्रो में पारस्परिक प्रत्याकर्षण होने एवं एकत्व को पुनः प्राप्त करने की अभिलाषा के कारण प्रकृति का ही नहीं, अपितु संसार का सारा व्यापार और व्यवहार चल रहा है। इनके नाम विद्वानों ने अपनी-अपनी धारणा, कल्पना और अपने ध्येय के अनुसार भिन्न-भिन्न रख लिये। प्रधानतया उन्हें जीव और प्रकृति अथवा स्फिरिट और मैटर नाम से अभिहित किया गया। जब उक्त कल्पना को मानुषी रूपक दे दिया गया, तब वे पुरुष और स्त्री कहे जाने लगे। जीव और प्रकृति अपने प्रणेतों के क्रीड में खेलते-कूदते रहे। वे सृष्टि-काल से लेकर लगातार आकर्षण-विरक्षण अथवा संयोग-वियोग की धूप-छाँह में, सुख-दुःख की लहरों में उठते और गिरते हुए ज्ञात अथवा अज्ञात प्रेरणा द्वारा एकत्व की ओर बहते अथवा बढ़ते चले आये हैं। दार्शनिक दुर्बोध शब्दों और क्लिष्ट पदावली को छोड़ कर यदि सरल ढंग से सोचा और लिखा जाय तो यह कहा जा सकता है कि सृष्टि के दो रूप हैं—एक चेतनामय और दूसरा पार्थिव। दोनों का उद्गम एक ही है और दोनों में यह प्रबल इच्छा है कि वे एक दूसरे से मिल कर एक हो जायँ अर्थात् फिर उसी स्थिति को प्राप्त कर लें, जिसमें कि वे एकत्व की दशा में थे। उस अंतिम और लोकोत्तर एकता को प्राप्त करने के अनेक और विविध स्तर हैं। उन्हीं स्तरों में से एक है साधारण स्त्री-पुरुष का प्रेम, ससर्ग और संयोग, तथा दूसरा स्तर है पुरुष-प्रकृति की तद्वत् अनादि और अनन्त क्रीडा। दोनों स्तरों में द्वैध को भूलने और एक रसत्व अथवा अनन्यता को प्राप्त करने की उत्कट प्रेरणा और अभिलाषा विद्यमान है। इन दोनों में केवल स्तर मात्र का ही भेद है। सूक्ष्म दृष्टि से उनमें कोई तात्त्विक विभिन्नता नहीं, तथापि स्तर का भेद ही इतना भारी है जितना कि आकाश और पाताल का। आकाश का रहस्य उतना ही गंभीर, आश्चर्यजनक, कुतूहलवर्द्धक और ज्ञानवर्द्धक है, जितना कि पाताल का। जीव का रहस्य भी वैसा ही है, जैसा कि शरीर का। प्रकृति का रहस्य भी वैसा ही विमुग्धकारी है, जैसा कि पुरुष का। अपनी-अपनी विलक्षणताओं में वे दोनों शोभा और गौरव पा रहे हैं।

तत्त्ववेत्ताओं का बहुमत इसी ओर है कि वे एक ही तत्त्व के दो पार्श्व अथवा पहलू हैं, वस्तुतः वे दोनों एक ही हैं। जो इम रहस्य को समझते हैं, वे कहते हैं कि जो द्वैधात्मक व्यापार दिखाई देता है वह या तो एक आनन्दमय अनिर्वचनीय नाटक है अथवा केवल विडंबना है। पहले मत वाले अनुरागी और दूसरे मत वाले विरागी कहे जा सकते हैं।

वैदिक काल से आज तक आर्य धर्मानुयायी लोग देवता और देवी की कल्पना करते आये हैं। किंतु उसी के साथ वे यह भी मानते आये हैं कि एक ही देव सर्व भूतों में निहित है। वस्तुतः सभी रूपों एवं रूपांतरों में उसी एक की माया, उसी का चमत्कार और उसी का व्यक्तित्व व्यक्त अथवा प्रतिबिम्बित है। पुराणों में तो प्रायः स्पष्ट रूप से देवताओं की स्त्रियों का वर्णन विशद रूप से मिलता है, जैसे विष्णु की लक्ष्मी, शिव की शक्ति और इन्द्र की इन्द्राणी आदि का। आर्य विचार-धारा में द्रुपति की कल्पना और संयोग के बिना सृष्टि के अस्तित्व की पूर्णता अवभव ही प्रतीत होती है। स्त्री-पुरुष का सारी सृष्टि में आधार और आधेय का अनिवार्य संबन्ध है। बिना दोनों के संयोग के विश्व-चक्र का चलना अचिन्त्य है। व्यक्त का तो कहना ही क्या, अव्यक्त के भी अंतस्तल में उनकी विद्यमानता स्वयंसिद्ध ही मान ली गयी है। जब जगत् में उनका व्यापार उतना स्पष्ट नहीं जान पड़ता, किंतु चेतन जगत् में तो सारा खेल प्रत्यक्ष रूप से उन पर ही अवलम्बित है। उसमें वे दोनों ओत-प्रोत से हैं। नाम-रूप मय जगत् उन्हीं की सत्ता का साक्षी और प्रमाण है। वनस्पति, जीव-जंतु, पशु-पक्षी और मानव संसार में उनका ही विस्तार एवं तारतम्य है।

उपर्युक्त सिद्धांत को आधुनिक मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक गवेषणाओं से आश्चर्यजनक पुष्टि प्राप्त हुई है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा यह सिद्ध हो रहा है कि मनुष्य के जितने विचार और व्यापार हैं, उनके मूल में अहंत्व एवं लिंगत्व प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से विद्यमान हैं। कुछ तो यहाँ तक कहने लगे हैं कि लिंगत्व ही एक मात्र प्रेरक शक्ति है, जिसके प्रस्फुरण से हमारे भाव, विचार और आचार नियंत्रित होते हैं। हमारी वासनाएँ, इच्छाएँ, भावनाएँ, कल्पनाएँ आदि उसी से प्रसूत होती हैं। उसके ही प्रवाह, उपरम और प्रतिबन्ध से नाना प्रकार के आचार-विचार, आमर्श-विमर्श, कर्तव्य-कर्तव्य, धर्म, नियम और संयम के विधान बनते और बिगड़ते रहते हैं। सारांश यह कि बाल्य काल से अन काल तक मनुष्य उसी विलक्षण तत्त्व से

नियुक्त और संचालित रहता है । मनोवेगों की अपार धारा का संचार संजननात्मक तत्त्व से ही हुआ है । शरीर-विज्ञानवादी उपर्युक्त सिद्धांत को उस रूप में नहीं मानते और कहते हैं कि हमारे भाव और अनुभूतियाँ हमारी रसायनिक और मास्तिष्किक रचनाओं पर अवलंबित हैं । किंतु उनके ये साधन तो उपादान कारण हैं, न कि निमित्त कारण । स्नायु अथवा मस्तिष्क-जाल तो बिजली के तारों का मा पेचीदा समूह है, जिस पर चेतना अथवा उत्तेजना प्रवाहित होती है । किंतु चेतना अथवा उत्तेजनाओं की उत्पत्ति का मूल कारण तथा उनका आतम लक्ष्य व्यक्ति की अहंता और प्रजनन-शक्ति मान सकते हैं । उक्त दोनों मतों में वैपम्य रहते हुए भी उनमें सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है । यदि दोनों को अन्वोन्याश्रित मान लिया जाय तो इसमें औचित्य की कोई विशेष हानि नहीं प्रतीत होती । जिस प्रकार जीव को शरीर की आवश्यकता है, उसी प्रकार शरीर की सक्रियता जीव पर निर्भर है । एक दूसरे की अपेक्षा दोनों करते हैं । बिना एक के दूसरे का अस्तित्व ही नहीं रहता ।

✓ पाश्चात्य लोगों में, विशेषतः रोमन कैथोलिक संप्रदाय के अंतर्गत, कुछ ऐसे व्यक्ति और आन्दोलन हुए हैं, जो ईश्वर और जीव अथवा प्रकृति का तत्त्वतः वैसा ही संबंध मानते हैं, जैसा कि प्रायः आदर्श पति और पत्नी अथवा प्रेमी और प्रेमिका में पाया जाता है । यद्यपि साधारणतः पूर्वोक्त में मैथुन की स्थूल व्यञ्जना नहीं, तथापि मिथुनत्व के भाव से वह परिप्लुत है । इस संबंध में सेन्ट टेरीजा और जॉन आब्रहम कास की अनुभूतियाँ और धारणाएँ विचारणीय हैं । यही नहीं, उनसे पूर्व भी यूनान, रोम, मिस्र और पश्चिमी एशिया में किसी न किसी रूप में इस प्रकार के विचारों का प्रचार था । प्रोटैस्टैण्ट मत एवं आधुनिक विज्ञान के प्रचार के पश्चात् ये भावनाएँ कुछ-कुछ बदलने लगी, किंतु फिर भी उन्नीसवीं शती से पुरुष और स्त्री की प्रेम-प्रेरित अभिलाषाओं की सात्त्विक कल्पना साहित्य और कलाओं में तीव्र रूप में पायी जाती है । यद्यपि कुछ लोगों ने उसका विरोध भी किया और उसकी तथाकथित सात्त्विकता की उपहासात्मक निंदा भी की तथापि कल्पना का वह अस्तित्व बना ही रहा । बीसवीं शती के मनोविज्ञान ने तो यहाँ तक निर्णय कर दिया कि मिथुनत्व की नीति पर ही मानव समाज की सभ्यता का प्रासाद स्थित है, और रहेगा । जब टालस्टाय ने उसका विरोध किया तो उसका जीवन की घटनाओं और अनुभूतियों का विश्लेषण कर उसकी धारणाओं के मूल में भी निहित उपर्युक्त तत्त्व का प्रदर्शन करने की बहुत-कुछ

सफल चेष्टा की गयी ! पाश्चात्य देशों के स्त्री-पुरुष प्रायः प्रेमी और प्रेमिका के संबंध को वांछनीय मानते हैं । उस संबंध से उन्हें शारीरिक और मानसिक तृप्ति प्राप्त होता है । संतान-प्राप्ति का उनका जो ध्येय है उससे वे आध्यात्मिकता की कल्पना नहीं करते और न उसे युक्तिसंगत ही मानते हैं ।

उपर हम संकेत कर चुके हैं कि भारतीय आर्य विचार-धारा में जगत् अथवा संसार के समस्त व्यापार दो प्रकार के माने गये हैं— एक सूक्ष्म और दूसरे स्थूल । मोटे तौर से जो वस्तु पार्थिव है, उसे भारतीय विचारक स्थूल और जो तात्त्विक है, उसे सूक्ष्म मानते हैं । यद्यपि भौतिक अथवा लौकिक और अर्भौतिक अथवा अलौकिक का भेद वे भी करते रहे हैं, तथापि दोनों प्रकार के व्यापारों का वे व्यापक आध्यात्मिकता के ही अंतर्गत गिनते रहे हैं । मूर्तमान अथवा प्रत्यक्ष के पीछे अमूर्तमान अप्रत्यक्ष आध्यात्मिक तत्त्व का वे अस्तित्व मानते आये हैं । उनके सिद्धांत के अनुसार जड़-जगम की जितनी लीला है, वह आध्यात्मिक रूप रखती है । सारा खेन, चाहे वह किसी भी प्रमग का क्यों न हो, अतोगत्वा आत्मा या यो कहिं कि परमात्मा या विश्वात्मा की ही कला है । शिष्ट और अशिष्ट, उच्च और नीच, कर्तव्य और अकर्तव्य की कल्पनाएँ तथा परिभाषाएँ देश, काल एवं पात्र के अनुसार मानुषिक और कात्पनिक हैं । इन भेदों और विभेदों का कुछ भी महत्त्व क्यों न माना जाय, किंतु सूक्ष्म और तात्त्विक दृष्टि से देखने पर परम सत्य की कौन कहे, वे शाश्वत और सत्य भी नहीं सिद्ध हो सकते ।

अथर्ववेद का तो कहना ही क्या, यजुर्वेद में भी ऐसे मन्त्र आये हैं—
 ‘युनक्त सीराविद्युगा तनध्व कृते योनौ विपते ह वीजम् ।’ बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है— ‘सर्वे नैव रेमे’—द्वितीयमैच्छत पतिः पत्नीचाभवताम् ।’ छांदोग्य उपनिषद् में आया है—“आत्मैवेद सर्वमिति । स एव एष एव पश्यन्नेवं मन्वान एवं विज्ञानन्नात्मरतिरात्मक्रीडा आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड्भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ।’ श्रीस्वामी शंकराचार्य इसकी व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि—“देहमात्र साधना रतिः बाह्य साधना क्रीडा मिथुन द्वद्वजनिंतसुख तदपि द्वद्वरिणपेच यय विदुषः ।” इसी प्रकार श्रीस्वामीजी श्वेताश्वतर उपनिषद् की व्याख्या में कहते हैं—“क्रीडन्नपि न लिप्येत पापैर्नानाविधैरपि ।” भगवद्गीता में भी ऐसे श्लोक आये हैं—
 “ममयोनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यह ॥ सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवति याः । तासां ब्रह्म महद्यो निरहं वीजप्रदः पिता ।” पुराणों से तो अनेकानेक उद्धरण दिये जा सकते हैं । ये उद्धरण केवल भागवत और

अन्य वैष्णव पुराणों से ही नहीं, वरन् शैव और शाक्त पुराणों से भी प्राप्त हो सकते हैं ।

उपर्युक्त विवेचना केवल सैद्धांतिक एवं भारतीय आर्य धर्म के दृष्टि-कोण से की गयी है । साहित्यिक परंपरा पर भी विचार करना आवश्यक और प्रासंगिक है । यह तो सब ही जानते हैं कि साहित्य में शृंगार और करुण रस दो ही प्रधान माने गये हैं । इन दोनों में प्रायः निम्नानवे प्रति शत साहित्यिक शृंगार को ही प्रथम स्थान देते और उसे 'रसरज' कहते हैं । यही मत काव्यशास्त्र के आचार्यों का भी है । ऐसी दशा में हमारे साहित्य में, चाहे वह संस्कृत का हो अथवा देशी भाषाओं का, शृंगार रस की चर्चा का आधिक्य अनिवार्य था । इसमें आश्चर्य का क्या विषय है ? कवि चाहे दरबारी हो या अदरबारी, महाकवि हों अथवा साधारण कवि, उनका शृंगार रस में कविता करना स्वाभाविक था । उसमें उन्हें चमत्कार और अनुरजन के लिए प्रशस्त क्षेत्र मिलता था । भारतीय साहित्य में ही नहीं, फारसी, ग्रीक, लैटिन एवं आधुनिक योरोपीय भाषाओं में भी शृंगार रस की बहुत कविता हुई है । किंतु उस रस को जितना महत्व फारसी और भारतीय भाषाओं में मिला है, उतना कहीं नहीं मिला । इसका विशेष कारण यही है कि शृंगार रस ने आध्यात्मिकता की जैसी कल्पना इन साहित्यों में की गयी है, वैसी अन्यत्र नहीं हुई । यह कल्पना भारत की दार्शनिकता एवं आध्यात्मिकता से प्रचलित होने के कारण विशेष रूप से मान्य और आदृत हुई है । शैवों और शाक्तों ने तथा विशेषतः वैष्णवों ने तो उसको पूर्णतया अपना लिया । फलतः यह धारणा होने लगी कि शृंगार रस ही एक रस है, जिससे अन्य सब रसों की निष्पत्ति होती है । अतएव यदि रसों के मूल का ही सिचन और सेवन किया जाय तो काव्य विटप हरा-भरा रहेगा और अन्यान्य रसों के फूल-फल अनायास ही प्रकट हो जायेंगे । इस विचार को परिपुष्ट करने और उसे प्रचारित करने में श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके सुयोग्य शिष्यों ने विशेष भाग लिया । कालान्तर में चल्लभसंप्रदाय ने भी उसे अपनाया । फिर क्या था, कृष्णोपासकों अथवा राधाकृष्णोपासकों में उसका जोर के साथ प्रचार होने लगा ।

संयोगवश उसी काल में मुगल साम्राज्य का उदय हुआ । उसकी सहिष्णु एवं सहानुभूतिमय नीति से राधा-कृष्ण के प्रेम-मार्ग के प्रचार को प्रोत्साहन मिला । इस्लाम धर्म में साधारणतः किंतु सूफी मार्ग में विशेषतः भक्ति और प्रेम के पोषक अनेक अंश हैं । उनमें भी विश्वास, मनोवेग,

भाववेश एवं आत्म-निवेदन के भाव प्रचुर रूप से विद्यमान थे। अतः वे राधा-कृष्ण की प्रेम और भक्तिमय साधना से अनायास सहानुभूति रख सकते थे। यदि उनमें मत-भेद था तो दो बातों में। एक तो मूर्ति अथवा प्रतीक-पूजा उन्हें ग्राह्य न थी, दूसरे वे अवतारवाद को मानने में अममथ थे। किंतु मुगल सम्राटों की सहिष्णुता से ये भेद अधिक व्याघात उत्पन्न न कर सके। भावुकता, प्रेम, भक्ति तथा आंतरिक अनुभूति की प्रधानता आदि में दोनों का दृष्टिकोण बहुत कुछ मेल खाता था। फारसी साहित्य की प्रगति कुछ शक्तियों से, विशेषतः हाफिज और जामी के समय से, उसी ओर चल रही थी, जिस ओर कि कृष्णोपासकों का साहित्य प्रगतिशील हो रहा था। दोनों के मेल में ब्रज-माधुरी शीघ्रता से फैलने लगी। उसके साहित्य की सृष्टि में भक्त लोग तो लगे ही हुए थे, अब सारे साहित्य-सेवी और साहित्यनुरागी, चाहे वे हिंदू हों अथवा मुसलमान, चाहे वे फारसी में लिखते हों या ब्रजभाषा में, सभी उस ओर झुक पड़े, जिससे ब्रजभाषा-साहित्य अत्यंत समृद्ध और देशव्यापी होगया। हम अन्नम लिख चुके हैं कि ब्रज-साहित्य का विशेषताओं को जो लोग मुसलमान-काल की कल्पित चरित्रहीनता और भोग-विलासिता का प्रतिबिम्ब समझते हैं, वे भारी भ्रम और भूल में फंसे हैं। ऐसी धारणा इतिहास और संस्कृति के अध्ययन से सारहीन एवं असत्य सिद्ध होता है।

उपर्युक्त विवेचन की पृष्ठभूमि पर अब नायक और नायिका के रहस्य को समझना चाहिए। स्नेह, रति, प्रेमादि के द्वारा इष्ट के प्राप्त करने का सिद्धांत बहुव्यापक होगया था। दाम्पत्य भाव की प्रधानता वैष्णवों में तो थी ही, साथ ही अन्य मत वाले भी उसका सम्मान करते थे। जिस समय साहित्यकारों ने इस ओर अपना ध्यान दिया तो वे साहित्य के तत्कालीन शास्त्र-सम्मत गुणावगुणों की दृष्टि से उसका संस्कार करने लगे। प्रेम, दाम्पत्य अथवा मिथुन भाव से प्रेरित होकर मानसिक संसार में जो सकल्प-विकल्प और अनुभूतियाँ अथवा विकार उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं, उनका निरूपण और उनकी व्याख्या सूक्ष्म एवं स्थूल रूप से होने लगी। रस, भाव, अनुभाव, विभाव आदि का अध्ययन देश-काल और पात्र के अनुसार होने लगा। अवस्था और व्यवस्था से जो परिवर्तन होते रहते हैं, उनका मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक विश्लेषण किया जाने लगा।

मनोविज्ञान के अध्ययन करने वाले यह तो जानते ही हैं कि भावों की उत्पत्ति के विषय में दो मत प्रचलित हैं। एक तो यह कि भावों की सृष्टि मानसिक चेतना से उद्भूत होती है, जिसका प्रभाव शरीर के अंग-प्रत्यंग

पर होता है। दूसरा यह कि स्नायु-जाल और अवयवों में संचालन होने से मस्तिष्क में भावावेश हो जाता है। भाव चेतना के पर्यायवाची नहीं है; वे मस्तिष्क के एक विशेष क्षेत्र की कृति है। मानसिक अथवा स्नायविक प्रस्फुरण आलस्य और उद्दीपन के प्रभाव से होता है। अस्तु, यह तो स्पष्ट है कि चेतना, मस्तिष्क, स्नायु-जाल, अवयवादि का सबव भावावेश और रसावेश के साथ है। वे एक दूसरे में जुड़े हुए हैं। किंतु संभवतः चेतना को छोड़ कर अन्य सभी चीजों का विकास शनैः-शनैः प्रकृति, अवस्था, देश एवं काल के अनुकूल होता है। आवेशों और भावों में तदनुसार रंग-विरंग परिवर्तन होते रहते हैं। भावुक साहित्यकार के लिये भाव के सागर में मोहक तरंगों और अनुभूति-रत्न प्राप्त होते हैं। उनकी तथ्यता, सात्त्विकता, मादकता और मोहकता अत्यंत आकर्षक होती है।

उपर्युक्त विचारों को ध्यान में रख कर यदि पुरुष और प्रकृति, नर और नारी के भावों और विकारों के तन्त्र चिह्नों को शब्दों में प्रतिबिंबित करने का प्रयत्न किया जाय तो उससे साहित्य एवं विज्ञान दोनों का संवर्धन होता है। इसी का प्रयत्न ब्रजभाषा के साहित्यकारों ने किया है, जो केवल अपनी सीमित विशेषता ही नहीं रखता, वरन् भाव और भाषा की दृष्टि से व्यापक महत्व रखता है। साहित्यकार की दृष्टि में जो सत्य है, वही सुंदर और शिव है। वह तीनों को एक ही का रूप मानता है। यह कहना कि भक्त की भावना शुद्ध और पवित्र है और साहित्यकार की कलात्मक भावना अशुद्ध, अपवित्र एवं नीरस है, सर्वथा अमान्य और भ्रममूलक है। सुरदास और नंददास की कृति को पवित्र और सत्याश्रित, किंतु देव और बिहारी की रचना को अपवित्र और मिथ्या कहना पक्षपात और दृष्टि-दोष के कारण है। भावुक और विदग्ध साहित्य-सेवी ऐसे भ्रमात्मक मत में नहीं फँस सकते।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री मीतलजी ने जो सामग्री उपस्थित की है, वह विचारनै और मनन करने योग्य है। इस पुस्तक के प्रथम खंड में उनके अध्ययन का निष्कर्ष है। द्वितीय खंड में संकलित नायिकाभेद की कविताओं से उनकी सावधानी, सहानुभूति और मार्मिकता प्रकट होती है। यह संग्रह ऊँची श्रेणी का और अत्यंत मनोहर है। प्रस्तुत पुस्तक हिंदी साहित्य में अपने विषय की अनोखी है। श्री मीतलजी ने इसकी रचना द्वारा ब्रजभाषा संबंधी साहित्य के लिये बड़ी सुंदर अदांजलि दी है। आशा है भारतीय साहित्य के प्रेमी इसका पूरा आदर करेंगे।

प्रयाग विश्वविद्यालय,
६-१०-४७

—रामप्रसाद त्रिपाठी

विषय-सूची



१. प्रवेश-खंड



प्रथम पारेच्छेद

नायिकाभेद और रस-निरूपण

	पृष्ठ सं०
१. नायिकाभेद का रसशास्त्रोक्त स्थान	३
२. रस और उसका स्वरूप	४
३. रस की कल्पना	४
४ 'रस' शब्द का काव्यशास्त्रोक्त अर्थ	४
५. रस-प्रकरण की परंपरा	५
६. रस का सूक्ष्म विवेचन	५
७. 'रस' और 'भाव' का पारस्परिक संबंध	६
८. 'भाव' किसे कहते हैं ?	६
९. रस और भाव	७
१०. भाव-भेद	७
११. काव्यशास्त्रानुसार रसोपत्ति	१०
१२. रसों की संख्या	११
१३. नव रसों के अतिरिक्त अन्य रसों की आवश्यकता	११
१४. रस प्रकरण की गहनता	१२



द्वितीय पारेच्छेद

नायिकाभेद और शृंगार-विवेचन

१ शृंगार रस का महत्त्व	१३
२. शृंगार ही आदि रस है	१४
३. 'शृंगार' शब्द का अर्थ	१४
४. शृंगार रस का स्थायी भाव	१४
५. शृंगार रस के विभाव	१५
६. शृंगार रस के अनुभाव	१५
७. शृंगार रस के संचारी भाव	१६

	पृष्ठ सं०
८. शृंगार रस का पूर्ण परिचय	१७
९. शृंगार रस के भेद	१७
१०. शृंगार रस का परिपाक	१८
११. शृंगार रसरस है	१९
१२. शृंगार रस की व्यापकता	२१

★

तृतीय परिच्छेद

ब्रजभाषा-शृंगार-साहित्य की पृष्ठभूमि

१. शृंगार साहित्य के उभय रूप	२३
२. राम-कृष्ण की भक्ति-भावना	२३
३. राधा-कृष्णोपासना का विकास	२५
४. राधा-कृष्ण की ऐतिहासिक परंपरा	२६
५. आभीर और राधा-कृष्ण	२८
६. राधा-कृष्ण की भक्ति-भावना	२८
७. भक्ति-मार्ग और वैष्णव आचार्य	२९
८. श्री निंबार्काचार्य	३०
९. बंगीय भक्ति	३१
१०. भक्तिपूर्ण शृंगार साहित्य और जयदेव	३२
११. प्रांतीय भाषाओं का शृंगार-भक्तिपूर्ण साहित्य	३३
१२. चंडीदास और विद्यापति	३३
१३. श्री चैतन्य महाप्रभु	३५
१४. भक्ति रहित शृंगार-साहित्य की परंपरा	३६
१५. गाथा-सत्तसई	३७
१७. संस्कृत का शृंगार-साहित्य	३८

चतुर्थ परिच्छेद

ब्रजभाषा का शृंगार-साहित्य

१. हिंदी के शृंगार-साहित्य का आरंभिक रूप	४१
२. वैष्णव धर्माचार्य और शृंगार-साहित्य	४३
३. ब्रजभाषा-शृंगार-साहित्य और श्री बल्लभाचार्य	४४
४. सूरदास और सूरसागर	४४
५. सूरदास का शृंगार वर्णन	४६

	पृष्ठ सं०
६. बल्लभ संप्रदाय और राधा ..	४८
७ अष्टछाप ..	४९
८ विभिन्न संप्रदायों का शृंगार-भक्तिपूर्ण साहित्य ..	४९
९. कृष्ण-भक्ति की लहर ..	५१
१०. भक्ति रहित शृंगार वर्णन ..	५३
११. रीति-काल का शृंगार साहित्य ..	५२
१२. रीति-काल का प्रभाव ..	५५
१३. शृंगारिक कवियों का प्रेम-भाव ..	५६
१४. दिव्य शृंगार के लौकिक शृंगार में परिवर्तन का कारण ..	५६
१५. शृंगारिक काव्य का चरित्र पर प्रभाव ..	५९
१६. क्या इस प्रकार के कवि निंदा के पात्र हैं ? ..	५९
१७. ब्रजभाषा शृंगार साहित्य का सर्वश्रेष्ठ काल ..	६०

★

पंचम परिच्छेद

ब्रजभाषा का रीति-साहित्य

१. रीति-साहित्य की परिभाषा ..	६१
२. ब्रजभाषा शृंगार-साहित्य की दो धाराएँ ..	६१
३. रीति-साहित्य का आधार ..	६२
४. संस्कृत-काव्यशास्त्र का विकास ..	६२
५. ब्रजभाषा रीति-साहित्य का आदर्श ..	६६
६. ब्रजभाषा रीति-साहित्य का आरंभ ..	६७
७. ब्रजभाषा-काव्यशास्त्र के प्रवर्तक केशवदास ..	७१
८. केशवदास के अनंतर ..	७१
✓ ९. रीतिकालीन आचार्यों का परिवर्तित दृष्टिकोण ..	७२
१०. रीतिकालीन कवि और आचार्य ...	७३
११. रीतिकालीन कवियों का रचना-प्रणाली और उनका लक्ष्य ..	७६
१२. रीति-साहित्य के कवि और आचार्य ..	७७
१३. रीतिकालीन कवियों की कविता के विषय ..	७८
१४. रीति-काल में अलंकारों का प्रभाव ...	७९
१५. नख-शिख वर्णन ..	८०
१६. पटु ऋतु वर्णन ...	८०
१७. नायिकाभेद-कथन ..	८१

पष्ठम परिच्छेद

नायिकाभेद की परंपरा और उसका आधार

पृष्ठ सं०

१. नायिकाभेद का महत्व और आधार	८३
२. नायिकाभेद का उद्गम-स्थान	८३
३. संस्कृत साहित्य में नायिकाभेद	८५
४. साहित्यदर्पण और रसमंजरी के नायिकाभेद की तुलना	८७
५. भानुदत्त और विश्वनाथ का काल-निर्णय	८८

★

गप्तम परिच्छेद

ब्रजभाषा-नायिकाभेद का विकास

१. ब्रजभाषा-नायिकाभेद का आरम्भ	९१
२. भक्त कवि और नायिकाभेद	९३
३. कृपाराम कृत 'हिततरंगिनी'	९८
४. सूरदास और 'साहित्यलहरी'	१००
५. नन्ददास और 'रसमंजरी'	१०४
६. रहीम और 'बरवा नायिकाभेद'	१०६
७. केशवदास और 'रसिकप्रिया'	१०६
८. रीतिकालीन परिवर्तित दृष्टिकोण का प्रभाव	११२
९. चिंतामणि कृत 'कविकुलकल्पतरु'	११२
१०. रस-रीति का प्रमुख अंग नायिकाभेद	११३
११. नायिकाभेद का सर्वमान्य आचार्य मतिराम	११४
१२. देव द्वारा नायिकाभेद का विस्तार	११५
१३. रीति-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ काल और नायिकाभेद के प्रमुख कवि	१२०
१४. सोमनाथ और 'रसपीयूषनिधि'	१२१
१५. रसलील और 'रसप्रबोध'	१२१
१६. दास और 'शृंगारनिर्णय'	१२५
१७. रीति-काल के अंतिम वर्ष	१२७
१८. नायिकाभेद के कतिपय प्रमुख कवि	१२८
१९. आधुनिक गद्य ग्रंथों में नायिकाभेद	१३३
२०. नायिकाओं की संख्या-वृद्धि का आग्रह	१३४.

अष्टम परिच्छेद

नायिकाभेद का सिंहावलोकन

	पृष्ठ सं०
१. कामशास्त्र और तंत्रों का प्रभाव	१३७
२. स्त्री-जीवन की विविध झोंकियाँ	१३८
३. नायिका की परिभाषा और उसका वर्गीकरण	१३९
४. स्वकीया नायिका	१३९
५. मुग्धा नायिका	१४१
६. मध्या नायिका	१४१
७. प्रौढा नायिका	१४२
८. धीरादिभेद और ज्येष्ठा-कनिष्ठा	१४२
९. धीरादि और खंडिता में अंतर	१४३
१०. स्वकीया का उच्चादर्श और गौरव	१४२
११. परकीया नायिका	१४५
१२. साहित्य में परकीयापन का प्राचीन आदर्श	१४६
१३. ब्रजभाषा साहित्य का अलौकिक और लौकिक परकीया प्रेम	१४७
१४. परकीयापन से शिक्षा	१४८
१५. परकीया के भेद	१५०
१६. सामान्या नायिका	१५१
१७. साहित्य में सामान्या	१५३
१८. रसलीन द्वारा सामान्या का विस्तार	१५४
१९. दशा-अनुसार नायिकाएँ	१५५
२०. गर्विता नायिका	१५६
२१. अन्यसंभोगदुःखिता	१५६
२२. मानवती नायिका	१५६
२३. अवस्था-अनुसार नायिकाएँ	१५७
२४. गुणा-अनुसार नायिकाएँ	१५७
२५. उत्तमा नायिका	१५७
२६. मध्यमा नायिका	१५७
२७. अधमा नायिका	१५८
२८. ब्रजभाषा नायिकाभेद के आचार्य और कवि	१५८

नवम परिच्छेद

नाटिकाभेद का वैज्ञानिक क्रम

एष्ट म०

१. नायिकाओं के नाम और उनकी संख्या	१५६
२. निश्चित क्रम का अभाव	१६०
३. रसलीन का क्रम	१६१
४. दास का क्रम	१६२
५. बिहारीलाल भट्ट का क्रम	१६३
६. नायिकाओं का क्रम वक्ष कथन	१६४
७. इम क्रम का विवेचन	१६५
८. अन्य नायिकाओं का क्रम	१६६

दशम परिच्छेद

व्रजभाषा-नायिकाभेद का काव्य-मोन्दर्य

१. नायिकाभेद के काव्य-कोशल की परीक्षा	१७३
२. नायिका का नख-शिख	१७६
३. स्वकीया नायिका	१७७
४. मुग्धा का कक्खिपूर्ण कथन	१७८
५. मध्या	१८०
६. प्रौढा	१८३
७. धीरदिभेद	१८३
८. परकीया	१८५
९. गर्विता	१८८
१०. अन्यसंभोगदुःखिता	१९०
११. स्वधीनपतिका	१९१
१२. वासकसज्जा	१९२
१३. उत्कण्ठिता	१९५
१४. अभिपारिका	१९५
१५. विप्रलब्धा	१९६
१६. खडिता	१९७
१७. कलहान्तरिता	१९८
१८. गच्छन्पतिका	१९८
१९. प्रेषितपतिका	२००
२०. आगतपतिका	२०५

२. प्रतिपादन-खंड

प्रथम परिच्छेद

नायिका और उसका वर्गीकरण

पृष्ठ सं०

१. नायिका	२०६
२. नायिकाओं का वर्गीकरण	२१८

★

द्वितीय परिच्छेद

जाति-अनुसार नायिकाएँ

१. पद्मिनी	२१६
२. चित्रिनी	२२०
३. शशिनी	२२१
४. हस्तिनी	२२२

★

तृतीय परिच्छेद

धर्मानुसार नायिकाएँ

१. स्वकीया नायिका	२२४
२. स्वकीया नायिका के भेद	२२७
३. मुग्धा नायिका	२२८
४. मुग्धा नायिका के भेद	२३३
५. अज्ञात यौवना	२३४
६. ज्ञात यौवना	२३७
७. ज्ञात यौवना के भेद	२३६
८. नवोद्गा	२३६
९. विश्रब्ध नवोद्गा	२४०
१०. मध्या नायिका	२४१
११. प्रौढा नायिका	२४४
१२. प्रौढा के भेद	२४६
१३. रतिप्रीता	२४६
१४. आनन्द समोहिता	२४७
१५. मध्या-प्रौढा के धीरादि भेद	२४८

१६. मध्या धीरा	२४६
१७. मध्या अधीरा	२४२
१८. मध्या धीराधीरा	२४४
१९. प्रौढा धीरा	२४५
२०. प्रौढा अधीरा		.		२४७
२१. प्रौढा धीराधीरा	२४८
२२. स्वकीया के अन्य भेद	२४९
२३. ज्येष्ठा-कनिष्ठा	२५०
२४. परकीया नायिका	२५१
२५. परकीया नायिका के भेद		२५२
२६. अनूढा	२७०
२७. ऊढा	२७१
२८. मुदिता	२७१
२९. विदग्धा	२७६
३०. वचन विदग्धा		२७६
३१. क्रिया विदग्धा	२७६
३२. अनुशयना	२८१
३३. प्रथम अनुशयना	२८१
३४. द्वितीय अनुशयना				२८३
३५. तृतीय अनुशयना	२८४
३६. गुप्ता	२८५
३७. भूत गुप्ता	२८५
३८. भविष्यत् गुप्ता	२८६
३९. वर्तमान	२८७
४०. लक्षिता	२८८
४१. कुलटा	२९०
४२. सामान्या नायिका		२९१

★

चतुर्थ परिच्छेद

दशानुसार नायिकाएँ

१. गर्विता नायिका	२९३
२. प्रेमगर्विता	२९४

			पृष्ठ स०
३. रूपगर्विता	२६१
४. अन्यसंभोगदुःखिता	२६८
५. मानवती	३००

★

पंचम परिच्छेद

अवस्थानुसार नायिकाएँ

१. स्वाधीनपत्निका	३०५
२. वासकसज्जा	३१०
३. उत्कण्ठिता	३१४
४. अभिसारिका	३१८
५. विप्रलब्धा	३२३
६. खडिता	३३१
७. कलहांतरिता	३३५
८. प्रवस्त्रप्रेयसी	३३८
९. प्रोषितपत्निका	३४३
१०. आगतपत्निका	३४८

★

षष्ठम परिच्छेद

गुणानुसार नायिकाएँ

१. उत्तमा नायिका	३५३
२. मध्या नायिका	३५५
३. अधमा नायिका		३५६

★

३. परिशिष्ट-खंड

★

परिशिष्ट (१)

१. अनेक जातियों की नायिकाएँ (रहीम)		...	३६३
२. विविध जातीय नायिकाएँ (देव)	३८०
३. अनेक प्रदेशों की नायिकाएँ (देव)	३८६
४. आधुनिक नायिकाएँ (हरिऔध)	३८३

परिशिष्ट (२)

संस्कृत साहित्य में नायिकाभेद का क्रम

		पृष्ठ सं०
१. भरतमुनि ('नाट्यशास्त्र' के अनुसार)	...	३६५
२. धनंजय ('दशरूपक' के अनुसार)	३६६
३. विश्वनाथ ('साहित्यदर्पण' के अनुसार)	३६७
४. भानुदत्त ('रसमञ्जरी' के अनुसार)	३६८

★

परिशिष्ट (३)

व्रजभाषा साहित्य में नायिकाभेद का क्रम

१. कृपाराम ('हिततरंगिनी' के अनुसार)	...	३६६
२. केशवदास ('रसिकप्रिया' के अनुसार)	४०१
३. चिंतामणि ('कविकुलकल्पतरु' के अनुसार)		४०२
४. मतिराम ('रसराम' के अनुसार)	४०३
५. देव ('रसविलास' के अनुसार)	४०४
६. रसलीन ('रसप्रबोध' के अनुसार)	...	४०६
७. दास ('शृंगारनिर्णय' के अनुसार)	४०८
८. पद्माकर ('जगद्विनोद' के अनुसार)	४१०
९. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ('रसकलस' के अनुसार)		४११

★

अनुक्रमणिका

१. व्यक्ति-नामानुक्रमणिका	४१३
२. ग्रंथ-नामानुक्रमणिका	४१७
३. कवि-नामानुक्रमणिका	४२०

सहायक ग्रंथों की सूची



सं०	ग्रंथ	रचयिता
१.	नाट्यशास्त्र	भरतमुनि
२.	दशरूपक	धनजय
३.	साहित्यदर्पण	विश्वनाथ
४.	रसमञ्जरी	भानुदत्त
५.	हिततरंगिनी	कृपाराम
६.	साहित्यलहरी	सूरदास
७.	रसमंजरी	नन्ददास
८.	रूपमंजरी	"
९.	बरवा नायिकाभेद	रहीम
१०.	नगरशोभा	"
११.	रसिकप्रिया	केशवदास
१२.	कविप्रिया	"
१३.	कविकुलकल्पतरु	चिंतामणि
१४.	सुन्दरशृंगार	सुन्दरदास
१५.	बिहारी सतसई	बिहारीलाल
१६.	भाषाभूषण	जसवंतसिंह
१७.	रसराज	मतिराम
१८.	मतिराम सतसई	"
१९.	भाव-विलास	देव
२०.	भवानी-विलास	"
२१.	रस-विलास	"
२२.	सुखसागरतरंग	"
२३.	रसपीयूषनिधि	सोमनाथ
२४.	रसप्रबोध	रसलीन
२५.	काव्यनिर्णय	दास
२६.	शृंगारनिर्णय	"
२७.	जगद्विनोद	पद्माकर
२८.	नवरस तरंग	बेनी प्रवीन
२९.	व्यंग्यार्थ कौमुदी	प्रतापसाह
३०.	व्यंग्यार्थ चंद्रिका	गुलाब
३१.	रसरंग	ग्वाल
३२.	शृंगार छतिका	द्विजदेव

म०	ग्रंथ	रचयिता
३३.	महेश्वर विलास लक्ष्मिराम
३४.	शृंगार दर्पण नंदराम
३५.	रसिक विनोद चंद्रशेखर
३६.	साहित्य सागर बिहारीलाल भट्ट
३७.	रस कलस .	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
३८.	काव्य प्रभाकर .	.. जगन्नाथ प्रसाद 'मान'
३९.	सुंदरी तिलक हरिश्चंद्र भार्गव
४०.	शृंगार सुभाकर मन्नालाल त्रिवेदी 'विज'
४१.	अष्टछाप-परिचय .	.. प्रभुदयाल मीतल
४२.	सूरसौरभ (भाग १, २)	.. सुंशाराम शर्मा
४३.	सूर साहित्य की भूमिका	.. रामरतन भटनागर, वाचस्पतिपाठ
४४.	नंददास . एक अध्ययन रामरतन भटनागर
४५.	रहीम रत्नावली	.. मयाशंकर थापक
४६.	रसखान और उनका काव्य	.. चंद्रशेखर पांडे
४७.	सतमई संजीवन भाष्य (भाग १, २)	.. पद्मसिंह शर्मा
४८.	सेनापति कृत कवित्त रत्नाकर	.. उमाशंकर शुक्ल
४९.	मतिराम ग्रंथावली कृष्णबिहाग मिश्र
५०.	घनानंद .	.. शंभुप्रसाद बहुगुना
५१.	पद्माकर पंचामृत	.. विश्वनाथप्रसाद मिश्र
५२.	ठाकुर शतक .	.. काशीप्रसाद
५३.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	.. बलदेव उपाध्याय
५४.	संस्कृत साहित्य का इतिहास (भाग १, २)	.. कन्हैयालाल पोद्दार
५५.	काव्य कल्पद्रुम (रसमंजरी) .	.. "
५६.	हिंदी काव्य में नवरस बाबूराम वित्थरिया
५७.	नवरस गुलाबराय
५८.	रस रत्नाकर हरिश्चंद्र शर्मा
५९.	हिंदी साहित्य की भूमिका हजारीप्रसाद द्विवेदी
६०.	मिश्रबंधु विनोद (भाग १, २, ३)	.. मिश्रबन्धु
६१.	हिंदी साहित्य श्यामसुंदरदास
६२.	हिंदी साहित्य का इतिहास रामचंद्र शुक्ल
६३.	हिंदी भाषा का इतिहास वीरेन्द्र वर्मा
६४.	हिंदी भाषा और साहित्य का विकास अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
६५.	ब्र०सा० मंडल के सभापति का भाषण रामप्रसाद त्रिपाठी
६६.	हिंदी साहित्य सम्मेलन की लेखमालाएँ, सम्मेलन पत्रिका, ब्रजभारती तथा अन्य सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ ।	

प्रथम

प्रवेश-खंड



“नायिकाभेद की रचनाओं में स्त्री-पुरुषों के अनेक स्वकीय विचारों एवं भावों का बड़ा सुंदर चित्रण है। उनमें ऐसे जीते-जागते चित्र हैं कि हृदयों पर अद्भुत प्रभाव डालते हैं। स्त्री-पुरुष की प्रकृतियों एवं व्यवहारों में वर्गीकरण कमे परिवर्तन होते हैं। किस अवस्था में उनके कैसे विचार होते हैं उनके विचारों का परस्पर एक दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ता है, स्त्री-पुरुष के संबंधों में कैसे कटुता कैसे मधुरता आती है, जीवन-यात्रा के मार्ग में कैसे-कैसे रोड़े हैं प्रेम-पथ कितना कंटकाकीर्ण और दुर्गम है, समाज के स्त्री पुरुषों की रहन-सहन प्रणाली मान्यारण क्या है, वह कैसे विचित्रतामय है उसके चक्र में पड़ कर जीवन-यात्रा में क्या-क्या परिवर्तन हो जाते हैं स्त्री पुरुषों में क्या क्या चालबाजियाँ होती हैं, आपस में वे एक-दूसरे के साथ कैसे-कैसे कुटिलताएँ करते हैं, वियोग-अवस्था में उनका क्या दशा होती है, और सुख के दिन उनके कमे सुंदर और आनंदमय होते हैं—इन सब बातों का व्यापक वर्णन आपको नायिकाभेद के ग्रंथों में मिलेगा।”

—“रस-कलस” पृ० १३०



“नायिकाभेद क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर यही हो सकता है कि प्रकृति, अवस्था और स्थिति के अनुसार स्त्रियों का वर्णन ही नायिकाभेद कहा जाता है। प्रेम की किस अवस्था में, किन स्त्रियों की कैसी दशा हो जाती है, विरह में वे क्या सोचती हैं, मिलन उनकी मानसिक अवस्था पर क्या प्रभाव डालता है, नायक के आने की प्रसन्नता या प्रतीक्षा में उनके मन पर कैसा असर पड़ता है, प्रेम की प्रतिकूलता में किस तरह व्याकुल हो जाती है, काम-वासना के जाग्रत होने पर उनके साथ लज्जा और संकोच का किस प्रकार द्वंद्व होता है। ऐसी अवस्था में धीरता और सहनशीलता किस प्रकार सहायक होती है, सपत्नी के प्रति ईर्ष्या भाव उठने पर मन की क्या दशा हो जाती है, प्रेम-प्राप्ति के लिए मानसिक भावों का किस तरह विकास होता रहता है, इत्यादि बातों का अति सूक्ष्म वर्णन नायिकाभेद में विशेष रूप से किया जाता है।”

—“रस-रत्नाकर” पृ० ७७

नायिकाभेद और रस-निरूपण



नायिकाभेद का रसशास्त्रोक्त स्थान—

भारतवर्ष में काव्य, नाटक आदि कवि-कृतियाँ अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित हैं। काव्य और नाटक के प्रधान पुरुष-पात्र को नायक और प्रधान स्त्री-पात्र को नायिका कहते हैं। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने जब इन कवि-कृतियों की शास्त्रीय मर्यादा निश्चित की, तब नायक-नायिकाओं का भी काव्यशास्त्रोक्त स्थान नियत किया गया। उन आचार्यों ने नायक-नायिका को काव्यशास्त्र के रस-प्रकरण में शृंगार रस के आलम्बन विभाव के अन्तर्गत रखा है।

काव्य और नाटक में पात्रों के आचार-व्यवहार, रहन सहन, कथोपकथन एवं चरित्र-चित्रण संबंधी कोई अयुक्त अथवा बे ठिकाने की बात न कह दी जाय, इसलिए पात्रों के वर्गीकरण की आवश्यकता हुई। इस वर्गीकरण को काव्यशास्त्र में नायकभेद अथवा नायिकाभेद कहा गया है। पुरुष-स्वभाव की अपेक्षा स्त्री-स्वभाव कहीं अधिक विचित्र और दुर्बोध होता है, इसलिए आचार्यों ने नायकभेद की अपेक्षा नायिकाभेद को अधिक विस्तार पूर्वक लिखा है। संस्कृत साहित्य के रस-शास्त्रियों ने शृंगार रस के एक उपांग के रूप में नायिकाभेद का संक्षिप्त विवेचन किया है, किंतु ब्रजभाषा-कवियों ने इसे स्वतंत्र विषय मान कर इसका इतना अधिक विस्तार किया है कि ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद स्वयं एक शास्त्र बन गया है।

ब्रजभाषा-साहित्य में नायिकाभेद स्वतंत्र विषय के रूप में चाहे कितना ही विस्तार पूर्वक लिखा गया है, किंतु मूलतः वह शृंगार रस का एक अंग ही है, अतः नायिकाभेद का यथार्थ परिचय प्राप्त करने के लिए शृंगार रस का ज्ञान होना आवश्यक है। शृंगार रस स्वयं रस-प्रकरण का एक अंग है, अतः उसके विषय में लिखने के पूर्व रसभेद का भी थोड़ा-बहुत विवेचन करना अनिवार्य है।

रस और उसका स्वरूप—

रस शब्द 'रस्' धातु से बना है, जिसका अभिप्राय 'स्वाद लेना' है। स्वाद आनन्ददायक वस्तु में ही आता है। नाटक के देखने में दर्शक को तथा काव्य के पढ़ने और सुनने में क्रमशः पाठक और श्रोता को जिस आनन्द की प्राप्ति होती है, उसे 'रस' कहते हैं। रस का स्वरूप अर्थात्किक है, इसलिए वह अनिर्वचनीय है, किंतु सहृदय जनो द्वारा उसका आस्वादन या अनुभव किया जा सकता है।

रस की कल्पना—

भारतवर्ष में नाट्यकला का प्रचार महत्सो वर्ष पूर्व से चला आता है। रंग मंच पर अभिनेताओं के कलापूर्ण अभिनय को देख कर दर्शकों के चित्त में जिन आनन्ददायक भावों की अनुभूति होती थी, उन्हीं का मार्मिक विश्लेषण रस की कल्पना का कारण ज्ञात होता है। महामुनि भरत के मतानुसार महामना 'द्रुहिण' इस विषय के सर्व प्रथम आविष्कारक हैं†।

'रस' के मर्म को संसार में सर्व प्रथम भारतवर्ष के ऋषि-मुनियों ने ही समझा था। उन्होंने रस और उससे संबंधित नाट्यकला, काव्य एवं संगीत का विवेचन करते हुए अनेक सूत्रों का निर्माण किया था। उन्हीं सूत्रों के आधार पर बाद में महामुनि भरत ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ "नाट्यशास्त्र" की रचना की थी। भरत ने जो बातें नाट्यकला और नाटक के संबंध में लिखी हैं, उनमें से अधिकांश बातें 'काव्य' के लिए भी उपयुक्त समझी गईं और कालांतर में 'दृश्य काव्य' के रूप में नाटक को भी काव्य का एक अंग ही बना लिया गया।

'रस' शब्द का काव्यशास्त्रोक्त अर्थ—

काव्यशास्त्र के आचार्यों ने काव्य की परिभाषा करते हुए 'रसात्मक शब्द-समूह को काव्य*' माना है। यद्यपि यह परिभाषा सर्व सम्मति से स्वीकृत नहीं हुई है, तथापि काव्य में 'रस' का महत्वपूर्ण स्थान है, यह स्वीकार

† 'एते ह्यष्टौ रसाः प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना' —"नाट्यशास्त्र"

* १. "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" —विश्वनाथ

२. "बत कहाउ रस में जु है, कवित कहावै सोइ।" —सोमनाथ

करने में किसी को आपत्ति नहीं है। इस प्रकार “काव्य के उस आस्वाद को ‘रस’ कहते हैं, जिसके अनुभव से चित्त पर काव्य-रचना के यथार्थ भाव का पूर्ण प्रभाव पड़े।” आचार्य सोमनाथ कहते हैं—

सुनि कवित्त को चित्त मधि, सुधि न रहै कछु और ।

होइ मगन वहि मोद मे, सो ‘रस’ कहि सिरमौर॥

रस-प्रकरण की परंपरा—

संसार में रस-प्रकरण के सर्व प्रथम संकल्यिता और विवेचक महामुनि भरत हैं। यद्यपि उनको इसका आविष्कारक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनसे भी पूर्व ‘द्रुहिण’ आदि भारतीय ऋषि-मुनियों को इस विषय का ज्ञान था, तथापि शास्त्र के रूप में तत्संबंधी समस्त विषयों का विधिवत् वर्णन करने का श्रेय उन्हीं को प्राप्त है। इस प्रकार भरतमुनि कृत “नाट्यशास्त्र” इस विषय का प्राचीनतम ग्रंथ सिद्ध होता है। नाट्यशास्त्र आज कल जिस रूप में उपलब्ध है, वह भी विद्वानों की दृष्टि में दो सहस्र वर्ष से कम का नहीं है, किंतु भरतमुनि ने इसे कब और किस रूप में संकलित किया था, इसका निश्चय अभी तक नहीं हो सका है।

भरतमुनि के पश्चात् भगवान् व्यासदेव ने अपने ‘अग्नि-पुराण’ में इस विषय का वर्णन किया है। इन उभय मुनिवरो के पश्चात् संस्कृत साहित्य के अनेक आचार्यों ने रस-प्रकरण का बड़ा ही पांडित्यपूर्ण एवं विशद विवेचन किया है। संस्कृत ग्रंथों के आधार पर ही ब्रजभाषा साहित्य में भिन्न-भिन्न आचार्यों द्वारा ‘रस’ की आलोचना की गई है।

रस का सूक्ष्म विवेचन—

रस का जैसा मार्मिक, विशद और पांडित्यपूर्ण विवेचन संस्कृत और ब्रजभाषा के आचार्यों ने किया है, वैसा किसी अन्य भाषा के साहित्य में मिलना कठिन है। अंगरेजी, अरबी, फारसी और उर्दू आदि भाषाओं में रस का सूक्ष्म विवेचन तो क्या, उसका पर्यायवाची शब्द भी कदाचित् नहीं है। इन भाषाओं में “भाव” के पर्यायवाची शब्द मिलते हैं और उसी का थोड़ा-बहुत वर्णन किया गया है।

† संस्कृत-हिंदी-व्याकरण-शब्दरत्नाकर

§ रसपीयूषनिधि

संस्कृत और ब्रजभाषा के आचार्यों ने भाव, रस और ध्वनि का पृथक्-पृथक् वर्णन किया है। निस्संदेह सर्व प्रथम वस्तु भाव है। भाव के सूक्ष्म विवेचन के पश्चात् आचार्यों ने रस के महत्व को समझा था, अतः शताब्दियों तक काव्य-जगत् में रस का एक छत्र साम्राज्य रहा और काव्य में मुख्य पदार्थ रस समझा जाता था। जब सूक्ष्मदर्शी आचार्यों ने 'रस' का भी सूक्ष्म विवेचन किया, तो 'ध्वनि' सिद्धांत का प्रचार हुआ। ध्वनि सिद्धांत के प्रतिपादकों ने भी रस के महत्व को स्वीकार किया, किंतु उसे ध्वनि के अंतर्गत रखते हुए 'रस' को सर्वोत्तम ध्वनि माना है।

‘रस’ और ‘भाव’ का पारस्परिक संबंध—

आचार्यों ने भाव से ही रस की उत्पत्ति मानी है[‡], इसलिए रस प्रकरण में भाव-भेद का महत्वपूर्ण स्थान है।

‘भाव’ किसे कहते हैं ?

अमरकोश में मन के विकार को भाव[‡] कहा गया है, अतः भाव के साथ ‘विकार’ को समझ लेना आवश्यक है। आचार्य सोमनाथ ने ‘विकार’ का लक्षण इस प्रकार लिखा है—

चित् किं हि हेतु हि पाय जव होय और ते और ।
ताकौ नाम ‘विकार’ कहि, बरनत कवि मिरमौर[†] ॥

काव्यशास्त्र के आचार्यों ने मानसिक विकार अथवा वामना को ही भाव माना है। आचार्य चितामणि का मत है—

मन-विकार कहि भाव सो, बरन वामना रूप ।
विविध प्रथ-करता कहत, ताकौ रूप अनूप ॥

‡ भावहि तें रस होत है, समझि लेउ मन माहि ।

यातें पहिलै भाव सब, बरनत सुकवि मराहि ॥

—“रस प्रबोध”

‡ “विकारो मानसो भाव”

† रसपीयूषनिधि

* कविकुलकल्पतरु

रस और भाव—

जैसा पहले कहा जा चुका है, भाव से ही रस की उत्पत्ति होती है। 'रसपीयूषनिधि' में इसका इस प्रकार विवेचन किया गया है—

रस कौ मूल भाव पहिचानौ । ताकौ ये लक्षण उर आनौ ॥
चित्त वृत्ति ही लो ठहराय । भाव बासना-रूप बताय ॥
रस अनुकूल विकार जु होत । तामो 'भाव' कहत कवि-गोत ॥

महामुनि भरत ने रस और भाव की और भी घनिष्टता बतलाई है। उनके मत में भाव के बिना रस और रस के बिना भाव नहीं हो सकता ।

भाव—भेद—

भाव के चार भेद होते हैं—

१. स्थायी, २. विभाव, ३. अनुभाव और ४. संचारी ।

इन चारों के अतिरिक्त दो प्रकार के भाव और भी होते हैं, जिनको 'सात्विक भाव' और 'हाव' कहते हैं। कुछ आचार्यों ने भाव के उपर्युक्त चार भेदों में 'सात्विक' और 'हाव' को सम्मिलित कर उसके छः भेद कर दिए हैं, किंतु अधिकांश आचार्यों के मतानुसार भाव के चार भेद—स्थायी, विभाव, अनुभाव और संचारी—ही होते हैं। सात्विक भाव को पृथक् भाव न मान कर उसे 'अनुभाव' के ही अंतर्गत माना गया है[†]। 'हाव' का वर्णन भी शृंगार रस में 'अनुभाव' के ही अंतर्गत होता है। इस प्रकार भाव के मुख्य रूप से चार भेद ही हुए।

१. स्थायी भाव—जिस भाव विशेष की स्थिति सदा रहे, और जो विरुद्ध अथवा अविरुद्ध किसी प्रकार के भाव से कभी प्रभावित न हो, उसे 'स्थायी भाव' कहते हैं।

“ न भाव हीनोस्ति रसो न भावो रसवर्जित ”

—“नाट्यशास्त्र”

† “ सात्विक भाव जु है मु वह, अनुभावनि में जानि । ”

—“रसपीयूषनिधि ”

स्थायी भाव बीज रूप से प्रत्येक व्यक्ति के अतस्तत्त्व में सदैव वर्तमान रहते हैं, इसीलिए समस्त भावों में इनको प्रमुख माना गया है।

स्थायी भाव के १ भेद होते हैं—

१. रति, २. हास, ३. शोक, ४. क्रोध ५. उत्साह,
६. भय, ७. ग्लानि, ८. आश्चर्य, और ९. निर्वेद ।

ये ही नव स्थायी भाव नव रसों के कारण होते हैं । जैसे रति से शृंगार, हास से हास्य, शोक से करुण, क्रोध से रौद्र, उत्साह से वीर, भय से भयानक, ग्लानि से वीभत्स, आश्चर्य से अद्भुत और निर्वेद से शांत रस ।

२. विभाव—अंतरतत्त्व की प्रसुप्त भावनाओं को जो विशेष रूप में प्रवर्तित करे, उसे 'विभाव' कहते हैं ।

'विभाव' स्थायी भाव का कारण होता है और वह 'रस' की उत्पत्ति में विशेष रूप से सहायक होता है । इसके दो भेद हैं—

१. आलंबन और २. उद्दीपन ।

जिस पर स्थायी भाव अवलंबित है, उसे 'आलंबन' और जिसके द्वारा स्थायी भाव उद्दीप्त होकर आधिक्य को प्राप्त हो, उसे 'उद्दीपन' कहते हैं* ।

३. अनुभाव—जब आंतरिक भाव कर्मेन्द्रियों द्वारा बाह्य रूप से प्रकट होते हैं, तब वे 'अनुभाव' कहलाते हैं† ।

'अनुभाव' को स्थायी भाव का कार्य कहा गया है । अनुभाव अगणित होते हैं, उनको तीन कोटियों में विभाजित किया गया है—

१. कायिक, २. मानसिक और ३. सात्विक ।

* नायक सब ही भाव कौ, टारै टरै न रूप ।
तासो थाई रूप कहि, बरनत है कविभूप ॥

—“रसपीयूषनिधि”

* रस उपजै आलंब जिहि, सो 'आलंबन' होय ।
रसहि जगावै दीप ज्यो, 'उद्दीपन' कहि सोय ॥

—“भावविलास”

† जो पुनि थाई भाव को, प्रकट करै अनयास ।
ताहि कहत 'अनुभाव' है, सब कवि बुद्धि-विलास ॥

—“कविकुलकल्पतरु”

१. कायिक—शारीरिक गति सूचक क्रियाएँ कायिक अनुभाव होती हैं। चूँकि ये स्वाभाविक न होकर यत्न पूर्वक प्रदर्शित की जाती हैं, इसलिए इनको 'यत्नज' भी कहते हैं, जैसे कर-चालन आदि।

२. मानसिक—मन के उद्वेग आदि मानसिक अनुभाव कहलाते हैं, जैसे हर्ष आदि।

३. सात्विक—स्वाभाविक रूप से प्रकट होने वाले अनुभावों को 'सात्विक' कहते हैं। ये आठ प्रकार के होते हैं—

१. रतंभ, २. स्वेद, ३. रोमांच, ४. स्वरभंग
५. कप, ६. वैवर्ण्य, ७. अश्रु, ८. प्रलय (मूर्छा)

कुछ आचार्यों ने मानसिक और सात्विक दोनों को पृथक् न कर उनको एक ही 'अयत्नज' कोटि में रखा है। चूँकि ये दोनों प्रकार की चेष्टाएँ बिना किसी यत्न के स्वाभाविक रूप से होती हैं, इसलिए उनको 'अयत्नज' कहा गया है।

४. संचारी—जो भाव जल की तरंग की भाँति उठते और विलीन होते रहते हैं, उनको 'संचारी' कहते हैं।

संचारी भाव २३ होते हैं —

१. निर्वेद, २. ग्लानि, ३. शंका, ४. असूया, ५. श्रम, ६. मद, ७. छृति, ८. आलस्य ९. विषाद, १०. मति, ११. चिंता, १२. मोह, १३. स्वप्न, १४. विबोध १५. स्मृति, १६. आमर्ष, १७. गर्व, १८. उत्सुकता, १९. अवहित्य, २०. दीनता, २१. हर्ष, २२. व्रीडा, २३. उग्रता, २४. निद्रा, २५. व्याधि, २६. मरण, २७. अपस्मार, २८. आवेग २९. त्रास, ३०. उन्माद ३१. जडता, ३२. चपलता, ३३. वितर्क।

भावों का स्पष्टीकरण—मनोविकारों का होना मन का स्वाभाविक धर्म है। इन्हीं मनोविकारों को कविता में 'भाव' कहा जाता है, जिनकी संख्या चार है अर्थात् स्थायी, विभाव, अनुभाव और संचारी। मनोविकारों के कारणों को कविता में विभाव, कार्य को अनुभाव और सहकारी कारणों को संचारी भाव कहते हैं। रति, शोक, क्रोध, करुणा आदि मानसिक उद्वेग सूक्ष्म रूप से प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में सदैव विद्यमान रहते हैं। इन्हीं मानसिक उद्वेग पूर्ण भावों को कविता में स्थायी भाव या संचारी भाव कहा

गया है। स्वरूप से स्थायी और संचारी दोनों एक से ही होते हैं, किन्तु उनमें एक महत्व का अंतर यह है कि स्थायी भाव चिर काल तक मानव हृदय में स्थिर रहते हैं, किन्तु संचारी भाव एक के पश्चात् दूसरे बार-बार उत्पन्न और नष्ट होते हुए स्थायी भाव को सहायता पहुँचाने रहते हैं। चिर काल तक स्थिर रहने के कारण और विरुद्ध एवं अविरुद्ध भावों का उन पर प्रभाव न होने से वे स्थायी भाव कहलाते हैं, किन्तु अनुकूल एवं प्रतिकूल भावों से बढ़ते-घटते और उदय-अस्त होते रहने से तथा रस में संचार करने से वे संचारी अथवा व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। मानसिक भावों को 'विभाव' अर्थात् आस्वाद के योग्य बनाने वाले 'विभाव' कहलाते हैं। ये स्थायी भाव के कारण कहे जाते हैं। स्थायी भाव का अनुभव कराने वाले 'अनुभाव' कहलाते हैं, जिनको स्थायी भाव का कार्य कहा गया है। बार-बार उदय एवं अस्त होकर स्थायी भाव को सहायता पहुँचाने के कारण संचारी भावों को स्थायी भाव के सहकारी कारण कहा गया है।

काव्यशास्त्रानुसार रसोत्पत्ति —

काव्यशास्त्र के आचार्यों ने रसोत्पत्ति का कारण निम्न लिखित बतलाया है—

विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से परिपूर्ण स्थायी भाव ही रस सज्ञा को प्राप्त होता है*।

इसको और भी स्पष्ट रूप से इस प्रकार कहा जा सकता है—

“स्थायी भाव जब विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के सहित चमकृत होकर मनुष्यों के हृदय में अलौकिक और विलक्षण आनन्द का स्वरूप धारण करता है, तब वह 'रस' कहलाता है†।”

* गनि विभाव, अनुभाव और संचारीन मिलाय।

जित थाई है भाव जो, सो रस रूप गनाय ॥

—“कविकुलकल्पतरु”

† “रस-कलस”

रसों की संख्या —

काव्य में नव रस माने गये हैं—

१. शृंगार, २. हास्य, ३. वीर, ४. अद्भुत, ५. रौद्र,

६. करुण, ७. भयानक, ८. वीभत्स, और ९. शांत

भग्न मुनि के मतानुसार मूल रस चार हैं—शृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स । इन्हीं चारों रसों से शेष रसों की उत्पत्ति हुई, जैसे शृंगार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत और वीभत्स से भयानक । यही मत अग्निपुराण-कर्त्ता व्यास मुनि को भी मान्य है ।

भरतमुनि ने आठ रसों का उल्लेख किया है, इसलिए नाटक में आठ रस ही माने गये हैं । फालांतर में आचार्यों ने नवे 'शांत' रस की भी कल्पना की । इस प्रकार रसों की संख्या ९ निश्चित हुई । संसार की अनित्यता का अनुभव होने पर तथा विषयों से विरक्ति हो जाने पर निर्वेद होता है । यही 'निर्वेद' शांत रस का स्थायी भाव है । आचार्यों के मतानुसार उच्च श्रेणी का निर्वेद ही स्थायी भाव माना जा सकता है । साधारण कारणों से क्षणिक विरक्ति—जन्य निर्वेद को संचारी भाव कहा जा सकता है, स्थायी नहीं । कुछ आचार्यों ने 'शम' को शांत रस का स्थायी भाव लिखा है ।

नव रसों के अतिरिक्त अन्य रसों की आवश्यकता—

यद्यपि शताब्दियों से काव्यशास्त्र में नव रस ही माने जाते हैं, तथापि समय-समय पर कई आचार्यों ने कुछ अन्य रसों की आवश्यकता का भी अनुभव किया है । कतिपय आचार्यों ने वात्सल्य और भक्ति आदि कई अन्य रसों की भी कल्पना की है । पूर्ववर्ती आचार्यों के मतानुसार भक्ति, वात्सल्य आदि पृथक् रस नहीं, बल्कि 'भाव' है, जो 'रति' के विभिन्न रूप होने के कारण शृंगार रस के अंतर्गत है । रसों की नव संख्या तो निर्विवाद है, किंतु अन्य रसों के संबंध में सर्व सम्मत निर्णय नहीं हो सका है ।

कुछ प्राचीन रसशास्त्री भी रसों की संख्या नौ तक ही सीमित रखने के पक्ष में नहीं हैं । विश्वनाथ और भोजदेव जैसे उद्भट आचार्यों ने 'वृत्सल' को दसवाँ रस बतलाया है । वास्तव में वात्सल्य के प्रभाव और चमत्कार को देखते हुए उसे केवल भाव मात्र मानना उचित नहीं है, बल्कि उसे रस ही मानना चाहिए । इसी प्रकार 'भक्ति' को भी 'देव विषयक रति' कह कर उसे शृंगार रस के अंतर्गत मानना उचित नहीं है । भरतादि के समय भक्ति

का अलौकिक महत्व अज्ञात था, इसलिए उन्होंने उसे पृथक् रस मानने की आवश्यकता नहीं समझी, किंतु कालांतर में धार्मिक जगत् में भक्ति का इतना व्यापक महत्व बढ़ा कि कई आचार्यों ने उसे रस ही नहीं, बल्कि श्रेष्ठतम रस स्वीकार किया है। आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने अपने 'भक्ति रसायन' ग्रंथ में लिखा है कि देव विषयक रति विविध-देवताओं तक ही सीमित रखने से भाव कही जा सकती है, क्योंकि इन देवताओं की रति अलौकिक आनंद प्रदान करने में असमर्थ है, किंतु देवादिदेव परमानन्द-स्वरूप परमात्मा के संबंध में यह बात कैसे कही जा सकती है ! इसलिए भगवद्भक्ति को रस ही मानना चाहिए।

वैष्णव संप्रदायों में भक्ति का सर्वोपरि महत्व स्वीकार किया गया है, इसलिए वैष्णव रस-शास्त्रियों ने 'भक्ति' को स्वतंत्र रस मानने पर बड़ा जोर दिया है। चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित गौडीय वैष्णव संप्रदाय के ग्रंथों में भक्ति रस का विस्तार पूर्वक वर्णन है। इस संप्रदाय के सुप्रसिद्ध रसशास्त्री रूप गोस्वामी ने 'भक्तिरसामृतसिंधु' में भक्ति रस का सांगोपांग कथन किया है।

संस्कृत साहित्य के अंतिम आचार्य पंडितराज जगन्नाथ ने भक्ति के महत्व को मानते हुए भी उसे इसलिए रस नहीं माना कि इससे भरतादि पूर्वाचार्यों की बाँधी हुई मर्यादा भंग होती है। वास्तव में इसी संकोच के कारण शताब्दियों से आचार्यों द्वारा रसों की संख्या नौ से अधिक नहीं मानी गई, यद्यपि उनमें से कई इसकी नितांत आवश्यकता समझते थे। अब रस-प्रकरण के वैज्ञानिक वर्गीकरण द्वारा रसों की संख्या में वृद्धि होनी चाहिए। कम से कम भक्ति और वात्सल्य को नव रसों के अतिरिक्त स्वतंत्र रस मानने की अत्यंत आवश्यकता है।

रस-प्रकरण की गहनता —

रस-प्रकरण में उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त रस-विरोध, रस मैत्री, रस-दोष, रसाभास, रसों के देवता और उनके स्वरूप आदि का भी विस्तार पूर्वक वर्णन किया जाता है। भारतीय काव्यशास्त्र का रस-प्रकरण वस्तुतः एक गहन विषय है। उसके मर्म का यथार्थ ज्ञान रस-ग्रंथों के अवलोकन में ही हो सकता है। यहाँ पर नायिकाभेद-विवेचन के लिए जितना विषय आवश्यक समझा गया, उसी का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

नायिकाभेद और शृंगार-विवेचन



शृंगार रस का महत्व —

शृंगार रस के आलंबन विभाव में नायिकाभेद का कथन किया जाता है, अतः हमारे विषय का शृंगार रस से प्रत्यक्ष संबंध है। नायिकाभेद के व्यापक महत्व का कारण भी वस्तुतः शृंगार रस का ही महत्व है। यद्यपि रसों की संख्या ६ मानी गई है, तथापि शृंगार रस उन सबमें प्रमुख है। प्रभाव और महत्व के विचार से शृंगार का दर्जा अन्य रसों से बहुत ऊँचा है। विभिन्न कवियों ने एक स्वर से शृंगार रस की महत्ता का गुण-गान किया है।

रस-प्रकरण के प्रथम आचार्य महामुनि भरत ने शृंगार रस के महत्व को चरम सीमा पर पहुँचा दिया है। उनके मतानुसार संसार में जो कुछ पवित्र, उत्तम, उज्ज्वल और दर्शनीय है, वही शृंगार रस है*।

† नव हू रस कौ भाव बहु, तिनके भिन्न विचार ।
सबकौ 'केशवदास' कहि, नायक है सिंगार ॥

—केशव

भूलि कहत नव रस सुकवि, सकल मूल सिंगार ।
जो संपति दपतिन की, जाकौ जग विस्तार ॥
विमल सुद्ध सिंगार रस, 'देव' अकास अनंत ।
उडि-उडि खग ज्यो और रस, विवस न पावत अंत ॥

—देव

नव रस कौ पति, सरस अति, रस सिंगार पहचानि ॥

—सोमनाथ

नव रस में, सिंगार रस, सिरे कहत सब कोइ ॥

—पद्माकर

“यत्किञ्चिन्नोके गुचिन्मयमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तत्छद्मद्वारेणोपमियते ।”

—“नाट्यशास्त्र”

शृंगार रस का वर्णन इससे अधिक सुंदर शब्दों में होना असंभव है। भरतमुनि ने शृंगार की बड़ी विशद व्याख्या की है और ससार की समस्त उत्तमताओं को उसी के अंतर्गत माना है। भरत के पश्चात् व्यासदेव, भोजराज प्रभृति अनेक आचार्यों ने शृंगार रस का गुण-गान किया है।

शृंगार ही आदि रस है—

अग्निपुराण में लिखा है कि परमब्रह्म परमात्मा के 'अहंकार' से 'ममता' और ममता के रूपांतर से 'शृंगार रस' की उत्पत्ति हुई है, अतः शृंगार ही आदि रस है। अन्य रसों की सृष्टि उसके बाद की है। शृंगार ही सृष्टि-सृजन का कारणीभूत और विश्व-प्रपञ्च का आधार है, अतः उसका आदि रस होना स्वयंसिद्ध है।

'शृंगार' शब्द का अर्थ—

“शृंगार यौगिक शब्द है, जो 'शृग' और 'आर' दो शब्दों के योग से बना है, जिसका अर्थ है—‘काम वृद्धि की प्राप्ति’। चूँकि स्थायी भाव ‘रति’ विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के एकीकरण से रस संज्ञा को प्राप्त होकर कामीजनो के चित्त में काम की वृद्धि करता है, इसीलिए वह ‘शृंगार’ कहलाता है।” साहित्य-दर्पणकार के मतानुसार काम के उद्भेद (अंकुरित) होने को ‘शृग’ कहते हैं। यहाँ पर ‘काम’ और ‘कामीजन’ अपने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। उनका संकुचित अर्थ करने से ‘शृंगार’ शब्द का वास्तविक अर्थ ज्ञात नहीं हो सकता।

शृंगार रस का स्थायी भाव—

रस-प्रकरण में बतलाया जा चुका है कि समस्त भावों में ‘स्थायी भाव’ प्रमुख है। यही विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से परिपुष्ट होकर रस संज्ञा को प्राप्त होता है। शृंगार रस का स्थायी भाव ‘रति’ (प्रेम) है। प्रेम का विश्व-व्यापी प्रभाव है। मनुष्य ही नहीं, प्राणी मात्र प्रेम से प्रभावित है। प्रातःकालीन उषा को देखते ही पक्षी गण चहकने लगते हैं। खिले हुए कमलों को देख कर मधुप गुंजारने लगते हैं। बसंत के आते ही कोयल

कूकने लगती है। बादलों के घुमडते ही मोर शोर मचाने लगते हैं। वीणा की मधुर ध्वनि पर चंचल सृग और विषधर सर्प भी मोहित हो जाते हैं। यह सब उसी रति अर्थात् प्रेम का चमत्कार है, जो शृंगार रस का कारण है। ऐसे प्रभावशाली स्थायी भाव के कारण ही शृंगार रस का अनुपम महत्व है।

आचार्य सोमनाथ ने शृंगार रस के स्थायी भाव 'रति' की परिभाषा करते हुए बतलाया है कि दर्शन, श्रवण अथवा स्मरण द्वारा इष्ट-मिलन की उत्कट इच्छा को 'रति' कहते हैं*।

शृंगार रस के विभाव—

रस की उत्पत्ति में विशेष रूप से सहायक होने वाले उक्त रस के विभाव कहलाते हैं। शृंगार रस के विभावों के दो भेद होते हैं—आलंबन और उद्दीपन। इनका विवरण इस प्रकार है—

१. शृंगार रस के आलंबन विभाव नायक-नायिका हैं, जिनके अनेक भेदों का विस्तृत वर्णन ब्रजभाषा के सैकड़ों कवियों ने नायिकाभेद के ग्रंथों में किया है। शृंगार रस के इस अंग ने ब्रजभाषा साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया है; यहाँ तक कि शताब्दियों तक परमोच्च श्रेणी के कवियों की प्रतिभा इसी विषय के वर्णन में लगी रही है।

२. शृंगार रस के उद्दीपन मानुषी और दैवी दोनों प्रकार के होते हैं, यथा सखा, सखी, दूती, ऋतु, बत्त, उपबत्त, केलि-कुंज, तडाग, एकांत स्थान, पवन, चंद्र, चाँदनी, चंदन, अमर, कोकिल, गान-वाद्य आदि।

शृंगार रस के अनुभाव—

आलंबन और उद्दीपन आदि कारणों से हृदय में जागृत रति भाव को प्रकट करने वाले हाव-भाव, मुसकान, कटाक्ष, भ्रू-भंग आदि कार्य शृंगार रस के अनुभाव कहलाते हैं। ये अनुभाव अगणित होते हैं। इनको तीन भागों में विभाजित किया गया है, यथा—

१. कायिक, २. मानसिक और ३. आहार्य।

* इष्ट-मिलन की चाह जो, 'रति' समुभो सो मित।

दरसन ते, कै खवन ते, कै सुमिरन ते नित ॥

—रसपीयूषनिधि

सात्विक अनुभाव—“आत्मा में अंतर्भूत रस को प्रकाशित करने वाला अंतःकरण का धर्म विशेष ‘सत्व’ कहा जाता है। इसी सत्व गुण में उत्पन्न शरीर के स्वाभाविक अंग-विकार को सात्विक अनुभाव कहते हैं। काव्य-प्रकाश और साहित्य-दर्पण में सात्विक भावों की गणना अनुभाव के अंतर्गत ही की गई है।” ये सात्विक अनुभाव आठ होते हैं—

१. स्तंभ, २. स्वेद, ३. रोमांच, ४. स्वरभंग,
५. कंप, ६. वैवर्ण्य, ७. अश्रु आर ८. प्रलय ।

हाव—“संयोग समय में नायिकाओं में जो स्वाभाविक चेष्टाएँ अथवा भोंह-नेत्रादि के विलास-व्यापार मनोविकारों के आधार से होते हैं, वे ही ‘हाव’ कहलाते हैं।” संयोग शृंगार में हावों का वर्णन अनुभाव के ही अंतर्गत होता है—

होइ सिंगार संजोग में, दंपति के तन आउ ।
चेष्टा जे बहु भाँति की, ते गनियत दस ‘हाड’ । ॥

रसलीन ने लिखा है कि पुरुषों में ‘हाव’ कारण विशेष से ही होते हैं, किंतु स्त्रियों में ये स्वाभाविक रूप से होते हैं। हाव दस प्रकार से होते हैं—

१. लीला, २. विलास, ३. विच्छिन्न, ४. विव्बोक, ५. क्लिक्किंचित,
६. विभ्रम, ७. ललित, ८. मोटायत, ९. विहृत, १०. कुट्टमित ।

कुछ आचार्यों ने ‘हेला’ और ‘वोधन’ नामक दो अन्य हावों का उल्लेख कर हावों की कुल संख्या १२ लिखी है, किंतु अधिकांश आचार्यों के मतानुसार हावों की संख्या १० ही है।

शृंगार रस के संचारी भाव—

जल-तरंग की भाँति कभी उठते हुए और कभी विलीन होते हुए भी स्थायी भाव ‘रति’ को सहायता पहुँचाने वाले भावों को शृंगार रस के संचारी भाव कहते हैं। कुल संचारी भावों की संख्या ३३ होती है। इनमें से

‡ रस-रत्नाकर

‡ रस-कलस

† भाषाभूषण

उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा—इन चारों के प्रतिरिक्त शेष २६ संचारी भाव शृंगार रस में होते हैं। इतने अविक संचारी भाव अन्य किसी रस में नहीं होते।

शृंगार रस का पूर्ण परिचय—

शृंगार रस का स्थायी भाव रति, देवता श्रीकृष्ण, वर्ण श्याम, मिन हास्य रस और शत्रु करुण, वीभत्स, रौद्र एवं भयानक रसों को बतलाया गया है।

शृंगार रस के भेद—

शृंगार रस के दो भेद होते हैं—संयोग एवं विप्रलम्भ (विशोग)

१. संयोग शृंगार—पारस्परिक प्रेम के वशीभूत होकर जब नायक-नायिका एक दूसरे के दर्शन, मिलन, स्पर्श और आलाप आदि में मंगलन होते हैं, उस अवस्था को संयोग शृंगार कहते हैं।

संयोग शृंगार में एकांत स्थान, बन-उपबन, सखी-सदन, नदी-तालाब पर स्नान आदि के मिलन का उल्लेख होता है। संयोग शृंगार में ही दस हावों की उत्पत्ति होती है। इन 'हावों' को 'अनुभाव' के साथ लिखा जा चुका है।

२. विप्रलम्भ शृंगार—जब प्रेम की प्रबलता और प्रिय-समागम का अभाव हो, उस अवस्था को विप्रलम्भ अथवा विशोग शृंगार कहते हैं। आचार्य सोमनाथ ने विप्रलम्भ का इस प्रकार उल्लेख किया है—

प्रोतम के बिछुरनि विसै, जो रस उपजतु आय ।

• विप्रलम्भ सिंगार सो, कहत सकल कविराय† ॥

विप्रलम्भ शृंगार के चार भेद होते हैं—१. पूर्वानुराग, २. मान, ३. प्रवास और ४. करुण।

पूर्वानुराग चार प्रकार का होता है—प्रत्यक्ष-दर्शन, चित्र-दर्शन, श्रवण और स्वप्न-दर्शन।

मान तीन प्रकार का होता है—लघु, मध्यम और गुरु।

विप्रलम्भ शृंगार (पूर्वानुराग) में वियोग की निम्न लिखित दशाओं का वर्णन होता है—

१. अमिलाषा, २. चिन्ता, ३. स्मरण, ४. गुण-कथन, ५. उद्वेग,
६. प्रलाप, ७. उन्माद, ८. व्याधि, ९. जडता, १०. मरण†

शृंगार रस का परिपाक—

✓नायक-नायिका में रति अर्थात् प्रेम भाव बीज रूप से सदैव विद्यमान रहता है। साधारण अवस्था में वह प्रसुप्त रहता है, किन्तु कारण विशेष से वह जागृत, उद्दीप्त और परिपुष्ट होकर शृंगार रस संज्ञा को प्राप्त होता है। चूँकि नायक-नायिका के हृदयों में प्रसुप्त अथवा जागृत रति का स्थायी निवास है, इसीलिए 'रति' को शृंगार रस का स्थायी भाग कहा जाता है।

यह रति भाव नायक-नायिका और सखी-सखा, बन-उपबन आदि के आश्रय से स्पष्ट होकर शृंगार रस का स्वरूप ग्रहण करता है, इसलिए इनको शृंगार रस के विभाव कहते हैं। चूँकि नायिका का रति भाव नायक पर और नायक का रति भाव नायिका पर अवलम्बित है, इसलिए नायक-नायिका शृंगार रस के 'आलम्बन विभाव' कहे जाते हैं। यह रति भाव ऋतु, कुंज, बन, वाटिका, चद्र, चोदनी, सखी, सखा, दूती आदि से उद्दीप्त होता है, अतः इन सब उपादानों को शृंगार रस के 'उद्दीप्त विभाव' कहते हैं। नायक के हृदय का प्रसुप्त रति भाव नायिका के दर्शन, श्रवण अथवा स्मरण के कारण जागृत और ऋतु, बन-बाग आदि के कारण उद्दीप्त होता है, इसलिए नायक-नायिका और ऋतु आदि 'रति' के कारण होने से 'विभाव' को रस का कारण माना गया है।

नायक अथवा नायिका में रति के जागृत एवं उद्दीप्त हो जाने पर प्रिय-मिलन की उत्कट इच्छा होती है, जिसके फल स्वरूप चिन्ता, शंका, हर्ष, मोह आदि मानसिक भावों का उदय और अस्त होता रहता है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने इस प्रकार के मानसिक भावों की संख्या ३३ मानी है, जिनको 'संचारी भाव' कहा गया है। ये रस के सहकारी कारण होते हैं। शृंगार रस के संयोग और वियोगात्मक दो पक्ष होने से इस रस में सबसे अधिक

† प्रायः 'मरण' के स्थान पर मूर्च्छा का उल्लेख किया जाता है। किसी-किसी आचार्य ने मूर्च्छा को ११ वीं दशा लिखा है।

संचारी भाव होते हैं। आचार्यों ने शृंगार रस में २६ संचारी भाव माने हैं, जो 'रति' के सहकारी कारण हैं। ये संचारी भाव नायक अथवा नायिका के चित्त की अनेक विरुद्ध-विरुद्ध, प्रतिकूल-अनुकूल वृत्तियों के कारण जल की तरंगों की भाँति घटते-बढ़ते, उठते एवं विलीन होते हुए स्थायी भाव 'रति' को सहायता पहुँचाते रहते हैं।

नायक नायिका के इन घटते-बढ़ते, उठते एवं विलीन होते हुए मानसिक भावों की क्रिया जब मन से बाहर होकर कर्मेन्द्रियों द्वारा प्रकट हो जाती है, तभी निकटस्थ व्यक्तियों अथवा नायक नायिका को भी परस्पर के 'रति' भाव का अनुभव होता है, इसलिए कर्मेन्द्रियों द्वारा प्रकट हुई इन चेष्टाओं को आचार्यों ने शृंगार रस के 'अनुभाव' कहा है, जो कि रति के कार्य है। इनके द्वारा रति को पूर्ण सहायता प्राप्त होती है। शृंगार रस के अनुभाव, अंग-संचालन की विविध क्रियाएँ, कटाक्ष, भ्रू-निक्षेप आदि, अगणित हो सकते हैं। स्वेद, रोमांच आदि 'सात्विक भावों' को भी अनुभाव के अंतर्गत मानने का यही कारण है।

इस प्रकार 'रति' भाव आरंभ से ही नायक-नायिका में रहता हुआ विभाव, संचारी भाव और अनुभाव से परिपुष्ट होकर 'शृंगार रस' के पूर्ण परिपाक का कारण होता है।

शृंगार रसरज है—

काव्यशास्त्रोक्त नव रसों में शृंगार सर्वश्रेष्ठ रस है। उसके महत्व और प्रभाव के कारण आचार्यों ने उसे रसरज की प्रतिष्ठा प्रदान की है, जो कि सर्वथा उचित है। रसों का महत्व उनके स्थायी, विभाव, अनुभाव और संचारी भावों पर अवलंबित है। इस दृष्टि से अन्य रसों की अपेक्षा शृंगार का महत्व बहुत बड़ा हुआ है और यही कारण उसके 'रसरज' होने का भी है। यहाँ पर इसी विषय को कुछ और स्पष्ट रूप से बतलाया जाता है।

शृंगार रस का स्थायी भाव 'रति' अर्थात् प्रेम है। ऐसा सर्वव्यापी और प्रभावशाली 'स्थायी' किसी अन्य रस का नहीं होता है। प्रेम धिरंतन, शाश्वत और सत्य है। वह सर्वव्यापी और सर्वोपयोगी है। वह शुद्ध, पवित्र, स्वार्थ रहित और आत्मत्याग पूर्ण है। उसमें तन्मयता की चरम सीमा है। ऐसे स्थायी भाव के कारण शृंगार के रसरज होने में क्या संदेह है।

विभावों की दृष्टि से भी शृंगार सर्वश्रेष्ठ है। इस रस के आलंबन विभाव नायक-नायिका हैं, जो परस्पर इस प्रकार अनुरक्त होते हैं कि उनका द्वैत भाव ही लुप्त हो जाता है। तन्मयता की पराकाष्ठा पर पहुँच कर वे एक दूसरे के लिए प्राणों तक का उत्सर्ग कर देते हैं। इस रस का आलंबन ही स्थायी भाव की अनुभूति कर सकता है और इसके आलंबन और आश्रय में कोई वास्तविक भेद भी नहीं होता है। उद्दीपन विभाव की दृष्टि से भी कोई अन्य रस शृंगार रस की समता नहीं कर सकता। अन्य रसों के उद्दीपन तो केवल मानुषी होते हैं, किंतु इसके उद्दीपन देवी और मानुषी, प्राकृतिक और अप्राकृतिक, जड़ और जंगम सभी प्रकार के होते हैं। ये उद्दीपन सभी ऋतुओं, कालों और देशों में सदैव सुगम हैं। ऐसे सुंदर आलंबन और इतने प्रचुर उद्दीपनों के कारण भी शृंगार की रसराजता स्वयंसिद्ध है।

अनुभावों की दृष्टि से भी शृंगार रस सर्वश्रेष्ठ है। जितने अधिक अनुभाव शृंगार के होते हैं, उतने किसी अन्य रस के नहीं होते। हावों का उल्लेख केवल इसी रस में अनुभाव के अंतर्गत होता है और सात्विक भाव भी जैसे इस रस में बन पाते हैं, वैसे अन्य रसों में नहीं।

संचारी भावों के कारण तो शृंगार रस अनुपमेय है। आचार्यों ने कुल ३३ संचारी भावों का उल्लेख किया है, जिनमें से २६ शृंगार रस में हो सकते हैं। इतने अधिक संचारी और किसी रस के नहीं होते।

सभी रसों के शत्रु और मित्र रस होते हैं। आचार्यों ने शृंगार के भी शत्रु और मित्र रसों का उल्लेख किया है, किंतु इस रस की यह विशेषता है कि इसके शत्रु रसों का भी मित्रवत् कथन किया जा सकता है और अन्य रस शृंगार के अंगी रूप में लिखे जा सकते हैं। शृंगार रस के देवता स्वयं रसराज श्री कृष्ण हैं; फिर शृंगार रस के रसराज होने में सदेह ही क्या हो सकता है! वास्तविक बात तो यह है कि शृंगार के सन्मुख अन्य रसों का कोई महत्व नहीं, इसीलिए रस-संसार में शृंगार का एक कृत्र राज्या है। कई आचार्यों ने शृंगार की प्रतियोगिता में अन्य रसों को प्रस्तुत करने की चेष्टा की। उन्होंने अपनी संपूर्ण विद्या-बुद्धि से अपने प्रिय रस को सर्वश्रेष्ठ रस सिद्ध करना चाहा, किंतु उनको सफलता नहीं मिली। जब से संसार में रस-निरूपण का आरंभ हुआ है, तब से लेकर आज तक विद्वानों की दृष्टि में शृंगार रसराज है, और रहेगा।

शृंगार रस की व्यापकता—

शृंगार रस के इस महत्व के कारण ही आचार्यों ने उसका बड़ा व्यापक वर्णन किया है। शृंगार रस की व्यापकता का मुख्य कारण उसका स्थायी भाव 'रति' अर्थात् प्रेम है। विषय-वासना पूर्ण काम-प्रवृत्ति और प्रेम में आकाश-पाताल का अंतर है। "प्रेम एक देवी विभूति है। यह सम्राटक है और संयोजक भी। मनुष्य के हृदय में जो मृदुल से मृदुल भाव उठ सकते हैं, प्रेम उन सबसे बड़का है। उच्च से उच्च भाव प्रेम के पीछे-पीछे अनुधावन करते हुए पाये जाते हैं। सृष्टि की रक्षा का श्रेय प्रेम को है। धर्म का बंधन भी इसी के द्वारा परिपुष्ट है। चाहे उत्साह के बिना संसार का काम चल जाय, चाहे यह संभव हो कि संसार का कोई भी प्राणी शोक से सतप्त न हो, परन्तु प्रेम के बिना संसार-चक्र एक क्षण को भी नहीं घूम सकता है। प्रणय-सूत्र में बंधकर स्त्री-पुरुष की संसार-यात्रा सृष्टि की विजय है। स्त्री-पुरुष की प्रीति में उच्छ्वलता हो सकती है। प्रीति बिगड़ कर काम-वासना-परिणति के रूप में एक पापाचरण हो सकती है, इसलिए समाज में उसका नियंत्रण किया गया है। विवाह इस नियंत्रण का फल है। शृंगार-रस का स्थायी भाव प्रेम इसी वैवाहिक प्रेम का पोषक है।"

महाकवि देव ने पाँच प्रकार का प्रेम लिखा है, यथा—सानुराग, सौहार्द, भक्ति, वात्सल्य और कार्पण्य[†]। साधारण शृंगार को सानुराग प्रेम, कुटुम्ब-परिवार और इष्ट-मित्र विषयक प्रेम को सौहार्द, छोटे-छोटे द्वारा बड़ों के प्रेम को भक्ति और बड़ों द्वारा छोटे-छोटे के प्रेम को वात्सल्य तथा दुःख से आर्द्र होकर किये गये प्रेम को कार्पण्य कहते हैं।

साधारणतः स्त्री-पुरुष विषयक प्रेम (रति) को ही शृंगार रस समझ लिया जाता है। देव जैसे महाकवि ने भी इसी प्रकार का कथन किया है—

आपुस में तिय-पुरुष के, पूरन रति जो होय ।
ताही सो सिंगार रस, कइत मुकवि सब कोय‡ ॥

† 'मतिराम-ग्रंथावला' की भूमिका पृ० ३७

‡ सानुराग, सौहार्द अरु, भक्ति और वात्सल्य ।

प्रेम पाँच विधि कहत है, कार्पण्य वैकल्य ॥

—“प्रेमचंद्रिका”

‡ भावविलाप

नायिकाभेद का विषय अधिकतर सानुराग प्रेम अथवा कांता रति से संबंधित है। इसमें स्त्री-पुरुष के प्रेम की ही प्रधानता है। भक्तिकाल के महात्माओं ने अपनी उपासना-पद्धति के अनुसार देव विषयक रति द्वारा भी नायिकाभेद का कथन किया है, जो स्वरूप में कांता रति विषयक नायिकाभेद के समान होते हुए भी भावना की दृष्टि से लम्बे से सर्वथा भिन्न है। ब्रजभाषा साहित्य के नायिकाभेद में दोनों का पृथक् महत्व है। इस संबंध में आगामी पृष्ठों में विस्तार पूर्वक लिखा गया है।

ब्रजभाषा-शृंगार-साहित्य की पृष्ठभूमि



शृंगार-साहित्य के उभय रूप —

ब्रजभाषा साहित्य में शृंगार रस पूर्ण रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। वैष्णव धर्मातर्गत कई संप्रदायों के महात्माओं ने अपनी उपासना-पद्धति के अनुसार भक्तिपूर्ण शृंगार-रस की अलौकिक दिव्य वाणियों द्वारा और सुकवियों ने काव्यशास्त्र के अनुकूल शृंगार रस की चमत्कारपूर्ण सूक्तियों द्वारा ब्रजभाषा में जिस गौरवशाली साहित्य का निर्माण किया है, वह अपने सौष्ठव और महत्व के कारण संसार की समस्त भाषाओं के साहित्य में अनुपम है।

ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की पृष्ठ भूमि वह भक्ति-भावना है, जो अपने रूप में मध्यकालीन होते हुए भी मूलतः एक प्राचीन परंपरा का विकसित स्वरूप है। यही शृंगार-साहित्य की मूल प्रेरणा है, अतः उसके विकास पर विचार करना आवश्यक है।

राम-कृष्ण की भक्ति-भावना—

हिंदू धर्म में राम और कृष्ण दोनों महान् आत्माओं को अवतार रूप में ग्रहण किया गया है। राम-कथा का सर्व प्राचीन आधार वाल्मीकीय रामायण है और कृष्ण-कथा का महाभारत, किंतु इन दोनों ही ग्रंथों में उक्त महान् आत्माओं के अवतार होने का स्पष्ट कथन नहीं है।

रामचंद्र पर काव्य एवं नाटक के रूप में अति प्राचीन काल से ही बहुत कुछ लिखा गया है। कितने ही महा काव्य, खंड काव्य, नाटक, चंपू एवं गद्य-काव्यों में राम-कथा का उल्लेख है, किंतु उनमें राम का कथन एक महापुरुष एवं नायक के रूप में ही हुआ है। उन ग्रंथों में परवर्ती काल की भक्ति-भावना दृष्टिगोचर नहीं होती। कृष्ण-कथा का उल्लेख महाभारत और भास कृत नाटक के अतिरिक्त केवल पौराणिक साहित्य में ही मिलता है। राम की तरह कृष्ण पर प्राचीन समय में काव्य आदि नहीं रचे गये।

अवतारों के प्रति जिस भक्ति-भावना ने मध्य-काल के अनंतर अपना व्यापक प्रभाव जमाया है, उसकी नींव श्रीमद्भागवत, शांडिल्य एवं नारद के भक्तिसूत्र, आध्यात्म रामायण, रामतापनी और गोपालतापनी उपनिषद् जैसे परवर्ती काल के ग्रंथों पर आधारित है। इस प्रकार की भक्ति-भावना दसवीं शताब्दी के पश्चात् विशेष रूप से प्रचलित हुई, जब दक्षिण देशीय आचार्यों ने अपनी विचार-धारा को उत्तर की ओर भी प्रभावित किया। इस समय से पूर्व जनता की अवतारों के प्रति अधिक श्रद्धा नहीं थी।

कृष्ण-कथा का उल्लेख महाभारत और भास कृत नाटक के अतिरिक्त हरिवंश, विष्णुपुराण, भागवत, ब्रह्मपुराण, वायुपुराण जैसे पौराणिक साहित्य में हुआ है। कृष्णभक्ति का सर्वोत्तम ग्रंथ भागवत पुराण है, जिसमें श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है और गोपियों के साथ उनकी अनेक लीलाओं का शृंगार पूर्ण वर्णन हुआ है।

इस प्रकार की भावना का आधार शायद सांख्य दर्शन है, जिसमें पुरुष-प्रकृति के सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। श्रीमद्भागवत इसी भावना का विकसित रूप हो सकता है, क्योंकि उसमें भी श्रीकृष्ण के रूप में परमात्मा और गोपियों के रूप में अनेक जीवात्माओं की व्यंजना की गई है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र का आरम्भ से ही जिस प्रकार कथन किया गया है, उसमें शृंगार रस के प्रतिपादन के लिए अधिक स्थान नहीं है, किन्तु ब्रजबल्लभ श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओं में शृंगार रस का अधिक परिपाक हुआ है, इसलिए कृष्ण शास्त्र वाले कवियों की कृतियाँ ही विशेष रूप से शृंगार पूर्ण हैं। रामभक्ति का जोवन भर प्रचार करने वाले हिंदी-साहित्य के अमर महाकवि गो० तुलसीदासजी, यद्यपि मर्यादा मार्ग के उपासक थे तथापि कृष्ण-काव्य की शृंगार भक्ति से प्रभावित होकर उन्होंने भी भगवान् राम का यत्र-तत्र कुछ शृंगार लिखा है। इस प्रकार का वर्णन 'रामगीतावली' के उत्तर कांड में सरयू तट पर राम-सीता के विहार का कथन है। कृष्ण-काव्य की शैली में उनकी 'कृष्ण-गीतावली' तो प्रसिद्ध रचना है ही।

काव्य और नाटकों में चाहे राम-कथा का कृष्ण-कथा की अपेक्षा अधिक प्रचार रहा है, किन्तु उपासना के क्षेत्र में राम की अपेक्षा कृष्ण-भक्ति का प्राधान्य है। कृष्णभक्ति के अनुकरण पर रामोपासक संप्रदायों में भी इस

प्रकार की राम-भक्ति का प्रचार हुआ। मर्यादा पुरुषोत्तम-भगवान् राम की शृंगार-भक्ति तो परवर्ती काल में श्रीकृष्ण की शृंगार-भक्ति के अनुकरण पर ही प्रचलित हुई।

कई विद्वानों की यह धारणा है कि मुसलमानों द्वारा पराजित होने पर यहाँ के निवासियों में विवशता के कारण भगवान् के प्रति भक्ति-भावना उमड़ पड़ी। यह बात भक्ति-मार्ग की परंपरा और उसके क्रमशः विकास का अध्ययन करने पर यथार्थ ज्ञात नहीं होती। मध्य काल की वैष्णव भक्ति-शताब्दियों पूर्व की भक्ति-भावना का विकसित रूप है।

भारत में मुसलमान हिंदुओं के धर्म और उनकी संस्कृति को नष्ट करने आये थे, किंतु यहाँ की भक्ति-भावना का कुछ ऐसा आकर्षण हुआ कि उनमें से कितने ही रह गये और रसखान स्वयं इसके रंग में रँग गये !

हिंदी के भक्ति-साहित्य की राम और कृष्ण दो शाखाओं में कृष्ण-शाखा वाले कवियों ने शृंगार-भक्ति की अधिकतर रचनाएँ की हैं। इस प्रकार की रचनाओं में कृष्ण और राधा का एक-छत्र साम्राज्य है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने श्री कृष्ण को शृंगार रस का देवता भी माना है।

ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य में कृष्ण और राधा को किसी न किसी रूप में कविताओं का आधार माना गया है, इसलिए राधा-कृष्ण की उपासना और उनकी शृंगार-भक्ति पर कुछ अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता है।

राधा-कृष्णोपासना का विकास—

जब भारत में भिन्न-भिन्न देवताओं की उपासना आरंभ हुई, तो उनके साथ उनकी शक्तियों की भी कल्पना की गई। उन देवताओं में त्रिदेव प्रमुख थे, और त्रिदेव में भी विष्णु और शिव। विक्रम की प्रथम शती तक उत्तर भारत में विष्णु-भक्ति का प्रचार था। इसके पश्चात् उसका प्रभाव उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में बढ़ गया और उत्तर में शिव-भक्ति का प्राधान्य हो गया।

तांत्रिक साधना के प्रभाव से विक्रम की पंचवीं शती में शिव और उनकी शक्ति पार्वती में मानवीय इच्छाओं की कल्पना की गई, जिसके फल स्वरूप धर्म के साथ शृंगार का मिश्रण आरंभ हुआ। इसी समय काव्य और नाटकों में शृंगार के नायक-नायिका के रूप में भी शिव-पार्वती ग्रहण

किये गये। महाकवि कालिदास ने 'कुमार संभव' में अपने उपास्य शिव-पार्वती को नायक-नायिका मान कर निःसंकोच भाव से उनका सुला शृंगार लिखा है। इसके बाद धर्म और साहित्य दोनों के क्षेत्र में शिव-पार्वती का व्यापक प्रभुत्व हो गया। कालांतर में राज्याश्रय भी इसी के पक्ष में होने लगा।

उस समय भारत में राजपूत राजाओं की प्रमुखता थी। ये राजा लोग अधिकतर शैव और शाक्त थे और शिव तथा भवानी के प्रजक थे। मध्य और पश्चिम भारत में राजपूतों के बड़े-बड़े राज्य थे, जहाँ पर शिव और शक्ति की उपासना होती थी। बंग देश में शाक्त मत का और भी अधिक प्रचार था। वहाँ पर बौद्धों की महायान शाखा के भवनावशेष रूप में भी विविध देवियों की पूजा प्रचलित थी।

दसवीं शती के लगभग विष्णु-भक्ति का प्रवाह दक्षिण की ओर से फिर उत्तर की ओर बढ़ने लगा। वैष्णव धर्म के विभिन्न धर्माचार्यों ने दक्षिण से आकर समस्त उत्तर भारत में विष्णु-भक्ति का प्रचार कर दिया। अब की बार विष्णु राम और कृष्ण के रूप में उपस्थित किये गये।

विष्णु-भक्ति के इस पुनरुत्थान में शिव-शक्ति की उपासना के क्षेत्र में कृष्णोपासना के लिए स्थान बनने लगा। अब कृष्ण के साथ उनकी शक्ति की भी आवश्यकता हुई। पहिले यह स्थान रुक्मिणी-सत्यभामा को दिया गया, किंतु कृष्णोपासना को सरस बनाने के अभिप्राय ने बाद में कृष्ण के साथ राधा समिलित की गई। धर्म और साहित्य के क्षेत्र में तो कृष्ण पहले से ही परिचित थे, किंतु राधा की उद्भावना बाद की चीज़ है। यहाँ पर कृष्ण के साथ राधा की ऐतिहासिक परंपरा जानना आवश्यक है।

राधा-कृष्ण की ऐतिहासिक परंपरा—

पहले लिखा जा चुका है कि भगवान् श्रीकृष्ण का सर्व प्रथम परिचय महाभारत से प्राप्त होता है, किंतु वहाँ पर गोपियों अथवा राधा का कोई उल्लेख नहीं है। महाभारत के पश्चात् हरिवंश, विष्णु पुराण, ब्रह्म पुराण आदि में कृष्ण-लीलाओं का वर्णन है, किंतु उनमें भी राधा का उल्लेख नहीं है। पौराणिक साहित्य में श्रीकृष्ण की लीलाओं का सबसे अधिक वर्णन भागवत पुराण में हुआ है। भागवत में श्रीकृष्ण के साथ गोपियाँ

तो दिखलाई देती हैं, किंतु उसमें भी राधा नहीं है; यहाँ तक कि 'राधा' शब्द का भी कदाचित् भागवत में प्रयोग नहीं हुआ है। श्रीकृष्ण के साथ रास-विलास करने वाली अनेक गोपियों में राधा का होना भी संभव है, किंतु उनकी चिर लहचरी और एक मात्र प्रेमिका के रूप में राधा का स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ है। एक स्थान पर इतना संकेत अवश्य मिलता है कि श्रीकृष्ण को एक गोपी अत्यंत प्रिय थी, जिसने पूर्व जन्म में श्रीकृष्ण की आराधना की थी। राधा शब्द भी 'राध्' धातु से बना है जिसका अभिप्राय सेवा करना अथवा प्रसन्न करना होता है। इससे संभव है कि श्रीकृष्ण की आराधना करने वाली अथवा उनको विशेष रूप से प्रसन्न करने वाली इस विशिष्ट गोपी को ही आगे चल कर राधा मान लिया गया हो।

धार्मिक ग्रंथों में 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' ही ऐसा ग्रंथ है, जिसमें सर्व प्रथम राधा की साधारण चर्चा हुई है। इस पुराण की रचना दसवीं शताब्दी के लगभग मानी गई है। इसके पश्चात् 'गोपालतापनी उपनिषद्' में कृष्ण की प्रेयसी रूप से राधा का उल्लेख हुआ है। इसी काल के लगभग निंबार्काचार्य और जयदेव का समय आता है। श्री निंबार्काचार्य ने धार्मिक क्षेत्र में और गीतगोविंदकार जयदेव ने काव्य-जगत् में राधा की प्रतिष्ठा का श्रेय प्राप्त किया है।

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात हो गया कि संस्कृत के धार्मिक ग्रंथों में राधा का उल्लेख दसवीं शताब्दी से पहले नहीं मिलता, किंतु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि राधा को इससे पूर्व कोई जानता ही नहीं था। कृष्ण के साथ राधा का ऐसा अन्योन्य संबंध है कि एक के बिना दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐसा ज्ञात होता है कि ब्रज के निकटवर्ती जन-समाज में लोक-गीतों द्वारा राधा-कृष्ण का उल्लेख अति प्राचीन समय से होता आ रहा है। विक्रम सवत् के आरम्भ की प्राकृत-गाथाओं में 'राधा' का उल्लेख हुआ है, किंतु संस्कृत साहित्य में उसका प्रवेश शताब्दियों पश्चात् हुआ। प्राकृत-गाथाओं के अनुकरण पर सर्व प्रथम कृष्ण की प्रेयसी रूप से राधा का उल्लेख काव्यों में हुआ, तदनंतर उनकी शक्ति रूप से धार्मिक ग्रंथों में और फिर उपास्य रूप में। इसके पश्चात् इसकी फिर प्रतिक्रिया हुई और उपास्य क्षेत्र के सर्वोच्च शिखर से उतार कर कवियों ने लौकिक शृंगार द्वारा उनको नायक-नायिका के निम्न धरातल पर ला खड़ा किया।

आभीर और राधा-कृष्ण—

कुछ विद्वानों का मत है कि कृष्ण और राधा की कथा पहले आभीर (अहीर) जाति में प्रचलित थी। उनका कहना है कि आभीर भी इण्डो की तरह भारतवर्ष में बाहर से आये थे, किन्तु उन दोनों जातियों की प्रकृति में भारी अंतर था। इण्डो लुटेरे और क्रूर प्रकृति के थे, किन्तु आभीरों की प्रकृति सरल और वीरोचित थी। अपनी इसी प्रकृति के कारण आभीर जाति आर्यों के साथ घुल-मिल गई और आभीरों के आचार-विचार, धर्म और उनकी भाषा ने आर्यों के आचार-विचार, धर्म और उनकी भाषा को अत्यधिक प्रभावित किया। विक्रम संवत् के आरंभ में आभीर गण पश्चिमीय पंजाब से आगे बढ़ते हुए समस्त पंजाब और मथुरा के आग-पाम फैल गये। यहाँ पर उन्होंने बड़े-बड़े राज्यों की स्थापना की। कई विद्वान आभीरों को बाहर से आया हुआ न मान कर यहीं के मूल निवासी मानते हैं। वर्तमान अहीर जाति आभीरों से ही बनी हुई कही जाती है।

आभीरों के उपास्य देवता का नाम गोपाल कृष्ण और उनकी देवी का नाम राधा था। आभीर जाति बड़ी संख्या में गो-पालन भी करती थी। उन लोगों में अपने देवता के गो-पालन की तथा राधा के साथ केलि-क्रीड़ा की अनेक कथाएँ प्रचलित थी। कहते हैं कि उन आभीरों के उपास्य राधा-कृष्ण की केलि-क्रीड़ा और गो-पालन की कथाएँ आर्यों के प्राचीन वासुदेव कृष्ण से मिल कर साहित्य और धर्म में गृहीत कर ली गईं। यह मत कहाँ तक मान्य है, इस पर विद्वानों को विचार करना है। हमारा अभिप्राय केवल यह बतलाना है कि संस्कृत साहित्य में राधा की मान्यता अधिक प्राचीन नहीं है।

राधा-कृष्ण की भक्ति-भावना —

राधा-कृष्ण की भक्ति-भावना निस्संदिग्ध रूप से ब्रह्मवैवर्त पुराण की देन होने के कारण अधिक प्राचीन नहीं कही जा सकती, किन्तु सांख्य के प्रकृति-पुरुष और तंत्र-मत के शक्ति-शिव से संबंधित होने के कारण इस भावना का मूल सूत्र प्राचीन काल तक पहुँचता है। ब्रह्मवैवर्त की रचना के पूर्व स्त्री-पुरुष के रूप में प्रकृति और पुरुष अथवा जीव और ब्रह्म की भावना का प्रचार हो चुका था। श्री मद्भागवत में कृष्ण के मधुर रूप और गोपी-कृष्ण की शृंगार-लीलाओं की सरस व्याख्या हो चुकी थी। ब्रज के

लोक-वाङ्मय में राधा-कृष्ण की प्रेम-लीलाओं का शताब्दियों से गायन हो रहा था। अब धर्म और उच्च साहित्य में राधा को सम्मिलित कर देने की आवश्यकता थी। यह कार्य ब्रह्मवैवर्तकार, निंबार्काचार्य और जयदेव द्वारा सम्पन्न हो गया। फिर तो राधा-कृष्ण की मधुर लीलाओं से समस्त उत्तर भारत का वायु-मंडल गुंजायमान हो गया।

भक्ति-मार्ग और वैष्णव आचार्य —

व्रजभाषा की आरंभिक शृंगारिक कविताएँ भक्ति प्रधान है, अतः भक्ति-मार्ग का कुछ और विस्तार पूर्वक वर्णन करना आवश्यक है। श्रीमद् जगद्गुरु शंकराचार्य के अद्वैत मत से साधारण जनता की कुछ अधिक संतुष्ट नहीं हुई। अद्वैतवाद और निर्गुण ब्रह्म उच्च कोटि के ज्ञानी और बीतरागी महात्माओं को ही विशेष रूप से आकर्षित कर सकते हैं, साधारण जनता तो अपने जैसा शरीरधारी ईश्वर को ही पसंद करती है, जो उसके आर्त्तनाद को सुन कर उसका उद्धार कर सके, जो दुर्जनों के विनाश और सज्जनों के कल्याण के लिए सदैव प्रस्तुत रहे और जिसमें रूप, गुण, शील और शक्ति का पूर्ण समन्वय हो। इसी भावना ने धार्मिक क्षेत्र में ईश्वर की सगुण भक्ति का बीजारोपण किया है।

श्री रामानुजाचार्य वैष्णव धर्म में भक्ति-मार्ग के प्रवर्तक थे। उन्होंने दक्षिण में विक्रम की बारहवीं शताब्दी के आरंभ में ही श्रीमन्नारायण की सगुणोपासना का प्रचार किया था। उनसे पहिले दक्षिण देशीय मंदिरों की अडाल आदि देव-दासियों में, विक्रम की आठवीं शती से ही, भक्ति-मार्ग का आरंभिक रूप दिखलाई देता है। रामानुजाचार्य के कुछ समय पश्चात् उसी शताब्दी में श्री निंबार्काचार्य ने कृष्ण और राधा की सम्मिलित उपासना का उपदेश किया। चौदहवीं शताब्दी के लगभग श्रीमध्वाचार्य ने द्वैतवाद की स्थापना कर नववा भक्ति का प्रचार किया। उन्होंने राम एवं कृष्ण को विष्णु के अवतार मान कर कृष्ण की भक्ति पर अधिक जोर दिया। श्री रामानुजाचार्य की शिष्य-परंपरा में पंद्रहवीं शताब्दी के लगभग श्री रामानंद हुए, जिन्होंने रामभक्ति का प्रबल प्रचार किया। इसी समय के लगभग श्री चैतन्य महाप्रभु और श्री बल्लभाचार्य ने माधुर्य और वात्सल्य भाव से कृष्ण-भक्ति का प्रचार कर समस्त उत्तरी भारत को भगवान् श्री कृष्ण के प्रेम में रंग दिया। श्री रामानंद और श्री बल्लभाचार्य के उपदेशों द्वारा

हिंदी में राम और कृष्ण की भक्ति विषयक साहित्य प्रस्तुत हुआ, जिसके कारण हिंदी में एक नवीन युग निर्माण होगया ।

ब्रजभाषा के शृंगार साहित्य पर निंबार्काचार्य की भक्ति-भावना का गहरा प्रभाव पड़ा है । निंबार्क संप्रदाय के अनेक कवियों ने ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य का भी सृजन किया है, अतः निंबार्काचार्य का सक्षिप्त परिचय दिया जाता है ।

श्री निंबार्काचार्य—

धार्मिक क्षेत्र में राधा-कृष्ण की उपासना का प्रचार करने वाले श्री निंबार्काचार्य वैष्णव धर्म की एक विशिष्ट शाखा के प्रवर्तक थे । दर्शन के क्षेत्र में उनका मत 'द्वैताद्वैत' के नाम से प्रसिद्ध है । उनका निश्चित समय विवाद का विषय है । निंबार्क संप्रदाय के अनुयायी उनको विक्रम संवत् के आस-पास उत्पन्न हुआ बतलाते हैं, किंतु अधिकांश विद्वानों के मतानुसार वे विक्रम की बारहवीं शताब्दी के लगभग हुए थे ।

वैष्णव धर्म के विभिन्न संप्रदायों के प्रवर्तक दक्षिण देशीय आचार्य थे; केवल निंबार्काचार्य के विषय में यह कहा जाता है कि वे ब्रज-मंडल के अंतर्गत निंबग्राम में उत्पन्न हुए थे । अनेक विद्वान इस मत को अस्वीकार कर निंबार्काचार्य को भी दक्षिणात्य मानते हैं । उनका कहना है कि वे आधुनिक विलारी जिले के निंबापुर ग्राम में उत्पन्न हुए थे ।

निंबार्काचार्य तैलंग ब्राह्मण थे । वे कृष्ण को विष्णु का अवतार मान कर राधा-कृष्ण की सम्मिलित उपासना का प्रचार करते थे । उन्होंने कृष्णलीला की पुरातन भूमि मथुरा और वृंदावन में अपने संप्रदाय के प्रधान केन्द्र स्थापित किये । ब्रज में अपने धार्मिक केन्द्र स्थापित करने वाले शायद वे पहले वैष्णव आचार्य थे ।

निंबार्काचार्य और उनके आरम्भिक शिष्यों ने अपने समस्त ग्रंथों की रचना संस्कृत भाषा में की थी । जब श्री बल्लभाचार्य के शिष्यों द्वारा ब्रजभाषा में साहित्य प्रस्तुत होने लगा, तब निंबार्क संप्रदाय के कवियों ने भी ब्रजभाषा में रचनाएँ कीं ।

निंबार्क संप्रदाय की भक्ति-भावना के अतिरिक्त बंग देश की मथुरा भक्ति से भी ब्रज का साहित्य प्रभावित हुआ है, अतः बंगीय भक्ति के विषय में भी यहाँ पर लिखना आवश्यक है ।

बंगीय भक्ति—

प्राचीन काल से ही बंग भूमि में तांत्रिक मत और शाक्त संप्रदाय का अधिक प्रभाव रहा है। जब भारत के अन्य प्रांतों में बौद्ध धर्म का प्रभाव कम हो गया था, तब भी महायान के विकृत रूप में उसका कुछ प्रभाव बंग भूमि में शेष था। प्रेम मूलक साधना और परकीया प्रेम के प्रचारक सहजिया पंथ और बंगाल के आउल-बाउल उसी बौद्ध धर्म के ध्वंसावशेष थे। बंग देश के आउल-बाउल प्रेममार्गीय संत थे। बाउल का अर्थ है बावला अर्थात् विचित्र। ये बाउल संत मस्त साधक थे और उनमें सभी जातियों के व्यक्ति सम्मिलित थे। 'प्रेमान्तिकता' उनका पारभाषिक शब्द है, जिसका अभिप्राय है कि प्रेम का अंतिम लक्ष्य प्रेम ही है, अर्थात् प्रेम किसी इष्ट विशेष की प्राप्ति के लिए नहीं, बल्कि केवल प्रेम के लिए ही करना चाहिए।

जब भारत में वैष्णव धर्म के पुनरुत्थान का आंदोलन उठा तो उसका प्रवाह बे रोक टोक दक्षिण से उत्तर तक गया, किंतु पूर्व में उसे तांत्रिकवाद से कठिन मोर्चा लेना पड़ा। वैष्णव धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव को बंगीय भूमि रोक तो न सकी, किंतु जिस प्रकार के वातावरण में बंगीय समाज अब तक रह रहा था, उसके कारण वह वैष्णव धर्म को शुद्ध रूप में भी स्वीकार न कर सका। वहाँ पर वैष्णव और तांत्रिक मतों की सम्मिलित उपासना-पद्धति प्रचलित हुई, जिसका स्वरूप 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में दिखलाई देता है। शिव-शक्ति के अनुकरण पर कृष्ण के साथ राधा की उपासना का विधान सर्व प्रथम इसी पुराण में किया गया है। कहते हैं वैष्णव धर्म में तांत्रिक मत का समावेश करने के अभिप्राय से किसी बंगीय पंडित ने इस पुराण की रचना की थी। श्री प्राउस ने इस बात की संभावना प्रकट की है कि ब्रह्मवैवर्त पुराण की रचना चैतन्य महाप्रभु के शिष्य रूप-सनातन गोस्वामियों द्वारा हो सकती है। श्री प्राउस का यह मत तथ्यहीन ज्ञात होता है।

बंग देश की वैष्णव भक्ति का आधार यही 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' है, जिसके द्वारा तंत्र-मत के शक्तिवाद में भागवत धर्म के ईश्वरवाद का मिश्रण कर एक नवीन संप्रदाय की नींव डाली गई है, जिसके कारण मधुर भाव

की भक्ति का प्रभाव बड़ा और वह कालांतर में साहित्य और धर्म में गृहीत कर ली गई। प्रियतम अथवा प्रियतमा के रूप में अपने इष्टदेव की उपासना को माधुर्यभाव और उसके प्रति प्रेमानुभूति को मधुर रस कहने हैं। प्राणी मात्र में दाम्पत्य संबंध सबसे मधुर और निकट का संबंध है। दम्पति में प्रेम की जितनी अनन्यता होती है, उससे भी अधिक अनन्य भाव से भक्त को भगवान् की भक्ति करनी चाहिए, यही मधुर भाव की भक्ति का मूल आधार है।

भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य और जयदेव—

अभी तक शृंगार-साहित्य का भक्ति से प्रत्यक्ष संबंध नहीं था। सं० १००० वि० के लगभग धार्मिक क्षेत्र में भक्ति-भावना का प्रभाव बढ़ने लगा, जिसका परिणाम तत्कालीन साहित्य पर भी पड़ा। इसके फल-स्वरूप भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य की रचना होने लगी। संस्कृत साहित्य में इस प्रकार की रचना करने वाले कवियों में जयदेव सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

जयदेव के समय (१२ वीं शती) तक शिव-पार्वती शृंगार के नायक-नायिका थे, किंतु इस परिवर्तित दृष्टिकोण के कारण जयदेव ने कृष्ण और राधा के रूप में काव्य-जगत् को नवीन नायक-नायिका प्रदान किये। इस प्रकार उन्होंने भगवान् की भक्ति करने के लिए काव्य-रचना की विलास पूर्ण शैली का प्रचार किया। उन्होंने स्वयं कहा है—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलास कलासु कुतूहलम् ।

मधुरकोमलकांत पदावली शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम् ॥

अर्थात्—यदि विलास कला द्वारा हरि-स्मरण करना है, तो जयदेव की कोमल कांत पदावली को सुनिये।

जयदेव की इस मधुर कोमल-कांत पदावली का ऐसा आकर्षण हुआ कि भक्तों ने अपने इष्टदेव की उपासना में और कवियों ने अपने काव्य की रचना में उसका उपयोग किया है। चैतन्य महाप्रभु ने जयदेव के पदों को अपनी भक्ति-भावना का साधन बनाया, जिसके कारण वे विलास कला पूर्ण पद स्तोत्र की तरह वैष्णवों द्वारा इष्टदेव के समक्ष गाये जाने लगे। इस प्रकार शिव-पार्वती के स्थान पर राधा-कृष्ण की शृंगार-भक्ति का प्रचार होने लगा।

महाकवि जयदेव अपनी अपूर्व शृंगारमयी रचना 'गीत गोविंद' के कारण संस्कृत साहित्य में अमर हो गये हैं। उनकी मधुर कोमल-कांत पदावली रसिकों एवं भक्तों के हृदय का हार बनी हुई है। 'गीत गोविंद' संस्कृत गीति-काव्य की श्रेष्ठतम रचना है। इसमें १२ सर्ग हैं। समस्त ग्रंथ में श्री कृष्ण और राधिका की प्रेम-लीलाओं का बड़ा रसपूर्ण वर्णन हुआ है।

प्रांतीय भाषाओं का शृंगार-भक्ति पूर्ण साहित्य—

जयदेव के बाद प्रांतीय भाषाओं के उत्थान का समय आता है। भाषा-विकास की दृष्टि से ये प्रांतीय भाषाएँ प्राकृत-अपभ्रंश की शृंखला में आती हैं, किंतु साहित्य-विकास की दृष्टि से उनका संबंध संस्कृत से अधिक है। इसका कारण यह है कि जिस समय इन भाषाओं के उत्थान का आरंभ हुआ, उस समय देश में बड़े-बड़े धर्माचार्यों द्वारा वैष्णव भक्ति का प्रचार हो रहा था, जिसका प्रभाव उक्त भाषाओं के साहित्य पर भी हुआ। ये सभी धर्माचार्य संस्कृतज्ञ थे और संस्कृत के धार्मिक साहित्य द्वारा ही वे अपने मत का प्रचार करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रांतीय भाषाओं का आरंभिक साहित्य प्राकृत-अपभ्रंश की परंपरा का होतुं हुए भी उसके क्रमिक उत्थान में संस्कृत साहित्य से अधिक प्रेरणा मिली है। यही कारण है कि प्रांतीय भाषाओं में संस्कृत शब्दावली और विचार-धारा का प्राधान्य है।

इन प्रांतीय भाषाओं में बंग, मैथिली एवं ब्रजभाषा में भक्तिपूर्ण शृंगार रस की कविता करने वाले कविगण जयदेव से अत्यंत प्रभावित हैं। मैथिल कवि विद्यापति और ब्रज के कवियों की रचनाओं में जयदेव का स्पष्ट प्रभाव ज्ञात होता है।

चंडीदास और विद्यापति—

चंडीदास बंग भाषा के पहिले कवि है, जिन्होंने राधा-कृष्ण की शृंगार लीलाओं पर काव्य-रचना की है। उनका समय संभवतः विक्रम की १५ वीं शती का अंतिम भाग है। वे बंग भाषा के आदि-काल के कवियों में हैं, और अपनी काव्य-माधुरी के कारण उक्त भाषा के साहित्य में आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। उन्होंने राधा का जैसा उज्ज्वल और सजीव चित्रण

किया है, वैसा बग भाषा के अन्य प्राचीन कवियों की कविता में दृष्टिगोचर नहीं होता है।

विद्यापति मैथिल देश के सुप्रसिद्ध कवि हो गये हैं। वे सं० १४६० में विद्यमान थे। वे धार्मिक विचारों से संभवतः शैव थे, किंतु उन्होंने राधा-कृष्ण की शृंगार लीलाओं का बड़ी तन्मयता पूर्वक गायन किया है। विद्यापति ने मैथिली, संस्कृत और अपभ्रंश तीनों भाषाओं में रचनाएँ की हैं। अपभ्रंश के एक रूप 'अवहट्ट' में उनकी दो पुस्तकें 'कीर्तिलता' और 'कीर्ति पताका' हैं। उन्होंने संस्कृत और प्राकृत भाषाओं से भी अधिक 'अवहट्ट' भाषा के माधुर्य की सराहना की है, और इस माधुर्य गुण पर सुग्ध होकर ही उन्होंने उक्त भाषा में रचना भी की है। उन्होंने 'कीर्तिलता' में स्वयं लिखा है—

मकै बानी बुझ अन भावै । पाओ रस कौ मम्म न पावै ॥
देसिल बैना सब जन मिट्टा । ते तइसन जम्पौ अवहट्टा ॥

अर्थात्—संस्कृत वाणी बुद्धिमानों को भाती है, प्राकृत रस के मर्म को नहीं पा सकती, देशी बोली सब लोगों को मीठी लगती है, इसलिए मैं अवहट्ट भाषा में रचना करता हूँ।

विद्यापति का महत्व उनकी संस्कृत और अवहट्ट की रचनाओं पर नहीं है, बल्कि हिंदी भाषा के प्रांतीय रूप मैथिली में रचे हुए उनके पदों के कारण है। विद्यापति की पदावली में राधा-कृष्ण की शृंगार-लीलाओं का बड़ा मार्मिक एवं सरस वर्णन हुआ है। उनके काव्य में ब्रजभाषा के नायिकाभेद का भी आरंभिक रूप दिखलाई देता है। उन्होंने वयसधि, दूती, मान, मान-भंग, अभिसार, मिलन, विरह, नखसिख आदि नायिकाभेद और शृंगार की विभिन्न अवस्थाओं का मधुर वर्णन किया है।

हिंदी की गीति काव्य शैली और पद-साहित्य में भक्तिपूर्ण शृंगारिक रचना आरंभ करने का श्रेय विद्यापति को है। इसी शैली में ब्रज के कवियों ने बाद में अपार साहित्य प्रस्तुत किया था, जिसका प्रभाव समस्त उत्तर भारत पर पड़ा है।

विद्यापति के शृंगारिक काव्य की मूल प्रेरणा साहित्यिक है, किंतु जयदेव की रचना के कारण इस प्रकार के शृंगारिक कथन धर्म और भक्ति

मे गृहीत कर लिये गये थे। विद्यापति के सबसे बड़े प्रचारक महाप्रभु चैतन्य थे, जिन्होंने जयदेव, लीलाशुक, चंडीदास और विद्यापति—इन चारों कवियों की श्रृंगार पूर्ण रचनाओं के गायन को अपनी भक्ति-भावना का अंग बना लिया था। इन कवियों ने श्रृंगार-रस की मादकतापूर्ण कविता की है, किंतु चैतन्य संप्रदाय के भक्तगण इनका गायन करते हुए आनंद-विभोर और भक्ति-भाव में तल्लीन हो जाते हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु—

श्री चैतन्य महाप्रभु बंग देश में वैष्णव भक्ति के सबसे बड़े प्रचारक हो गये हैं। उनका जन्म सं० १५४२ के लगभग हुआ और ४८ वर्ष की आयु में ही वे परम धाम को प्राप्त हुए; किंतु इस अल्प समय में ही उनके उपदेशों के कारण बंगाल में एक प्रकार की धार्मिक क्रांति होगई। जो बग भूमि सदियों से शैव, शाक्त और तांत्रिक विचार-धारा की अनुगामिनी थी, वह चैतन्य महाप्रभु के सात्विक जीवन और भक्तिपूर्ण उपदेशों के कारण राधा-कृष्ण की भक्ति के रंग में रँग गई। उन्होंने मधुर भाव की रागानुगा भक्ति का प्रचार किया, जिसके कारण वे राधा के अवतार माने जाते हैं।

उन्होंने वैष्णव धर्म के जिस विशिष्ट संप्रदाय की नींव डाली, वह गौडीय संप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। दर्शन के क्षेत्र में इस संप्रदाय का सिद्धांत अचिंत्यभेदाभेद कहलाता है और उपासना के क्षेत्र में इस संप्रदाय द्वारा राधा-कृष्ण की रागानुगा भक्ति का प्रचार किया जाता है। इस प्रकार चैतन्य संप्रदाय दर्शन के क्षेत्र में मध्वाचार्य से और उपासना के क्षेत्र में निंबार्कचार्य से प्रभावित ज्ञात होता है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं किसी सिद्धांत ग्रंथ की रचना नहीं की, किंतु उनके शिष्य-प्रशिष्यों की रचनाओं के कारण इस संप्रदाय का विशाल धार्मिक साहित्य है, जो संस्कृत और बगभाषा में है।

चैतन्य महाप्रभु के विद्वान शिष्यों में सनातन, रूप और उनके आत्मीय जीव विशेष प्रसिद्ध हैं। सनातन गोस्वामी धुरंधर पंडित और सात्विक प्रकृति के विद्वान महात्मा थे। उन्होंने 'बृहद् भागवतामृत' 'वैष्णवतोषिणी' और 'हरिभक्तिविलास' जैसे उच्च कोटि के सांप्रदायिक ग्रंथों की रचना

की है। रूप गोस्वामी विद्वान, कवि और वैष्णव रस-शास्त्र के महान् व्याख्याता थे। उन्होंने 'लघु भागवतामृत' तथा अन्य ग्रंथों के अतिरिक्त 'उज्ज्वल नीलमणि' तथा 'भक्ति रसामृत सिंधु' जैसे विख्यात रस-ग्रंथों की रचना की है। पिछली दोनों रचनाएँ वैष्णव रस-शास्त्र की सर्वमान्य कृतियाँ हैं। जीव गोस्वामी भी उच्च श्रेणी के विद्वान् थे। उन्होंने चैतन्य संप्रदाय के सिद्धांत ग्रंथों की रचना की है। चैतन्य संप्रदाय के मतानुसार श्री मद्भागवत का भाष्य 'षट् संदर्भ' इन्हीं जीव गोस्वामी का रचा हुआ है, जो संप्रदाय का प्रमुख सिद्धांत ग्रंथ कइलाता है। ये सभी रचनाएँ संस्कृत भाषा में हैं। बाद में बंगभाषा में भी इस संप्रदाय का अपार साहित्य निर्मित हुआ है। इस संप्रदाय के कवियों ने ब्रजभाषा साहित्य में बहुत कम रचना की है, किंतु ब्रज का शृंगार साहित्य इस संप्रदाय की विचार-धारा से भी प्रभावित हुआ है।

भक्ति रहित शृंगार-साहित्य की परंपरा—

ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य में भक्तिपूर्ण रचनाओं के अतिरिक्त ऐसी कविताओं की भी प्रचुरता है, जिनमें काव्य-चमत्कार द्वारा रस-संचार किया गया है। इन कविताओं का न तो धर्म से संबंध है, और न इनमें भक्ति का आग्रह है, किंतु ये काव्यशास्त्रोक्त शृंगार रस से लबालब भरी हुई हैं। इस प्रकार की रचनाओं की परंपरा भी प्राचीन काल से चली आ रही है।

आर्यों के प्राचीन साहित्य में दो प्रकार की रचनाएँ विशेष रूप से मिलती हैं—एक आध्यात्मिकता संबंधी, दूसरी कर्मकांड संबंधी। आध्यात्मिक रचनाओं में उपनिषद्, दर्शन तथा बौद्धों और जैनों के धर्म ग्रंथ उल्लेखनीय हैं। कर्मकांड संबंधी रचनाओं में ब्राह्मण ग्रंथ, श्रौत और गृह्य सूत्र, प्राचीन स्मृतियाँ एवं पौराणिक साहित्य का नाम लिया जा सकता है। विक्रम संवत् के आस-पास एक तीसरे प्रकार की रचना-शैली का आरंभ हुआ था। उसका संबंध न तो आध्यात्मिकता से था और न कर्मकांड से, उसमें ऐहिकतापूर्ण सरस कवित्व का प्राधान्य था। वे सरस रचनाएँ धारा वाहिक रूप में न होकर स्फुट रूप से छोटे-छोटे पद्यों में अपने आप में पूर्ण होती थीं। इस प्रकार की रचनाओं को काव्यशास्त्र में मुक्तक काव्य कहा गया है।

जिस प्रकार की दो रचना-शैलियों का ऊपर उल्लेख हो चुका है, उनका उद्देश्य एक प्रकार से धार्मिक था, किन्तु इस तीसरी रचना शैली का धर्म से कोई संबंध नहीं था। इस नवीन शैली की रचनाओं का स्पष्ट उद्देश्य रस-संचार द्वारा मनोरंजन करना था। इस शैली की रचनाएँ सर्व प्रथम प्राकृत भाषा में आरंभ हुईं, और बाद में संस्कृत भाषा में भी उनका अनुकरण किया गया।

जिस समय भारतीय समाज का उच्च अर्थात् पंडित वर्ग आध्यात्मिकता एवं कर्मकांड की गंभीर रचनाओं में व्यस्त था, उस समय जन-साधारण के मनोरंजन के लिए जन-कवि मरस कवित्व पूर्ण छोटे-छोटे छंदों द्वारा ऐहिक अर्थात् लौकिक काव्य की रचना कर रहे थे। पंडित वर्ग की रचना का माध्यम संस्कृत भाषा थी, तो जन-साधारण प्राकृत भाषा में रुचि रखता था। जन साधारण की प्राकृत भाषा में ऐसे मरस कवित्वपूर्ण छोटे छंदों की इतनी बहुतायत होगई कि पंडितों एवं उच्च स्तर के व्यक्तियों का भी उनकी ओर ध्यान गया, जिससे फल स्वरूप संस्कृत भाषा में भी उसी प्रकार की रचनाएँ होने लगी।

‘गाथा-सत्तसई’ —

इस प्रकार की सरस रचनाओं का सर्व प्राचीन संग्रह प्राकृत भाषा की ‘गाथा सत्तसई’ है। इसका संकलन विक्रम के प्रथम शतक में सातवाहन वशीय राजा हाल द्वारा हुआ था। संकलन कर्ता ने लिखा है कि उस समय की प्रचलित प्रायः एक करोड़ गाथाओं में से चुनी हुई सात सौ गाथाएँ इस संग्रह में दी गई हैं। संभव है यह कथन अतिशयोक्ति पूर्ण हो, फिर भी इससे यह तो ज्ञात होता है कि उस समय प्राकृत भाषा में इस प्रकार की रचनाएँ बड़ी प्रचुरता से हो रही थी। उनका महत्व इसी से प्रकट है कि एक नरेश का ध्यान उनके संकलन करने की ओर गया, जिसने अत्यंत परिश्रम और प्रचुर धन-द्वय के उपरान्त ही इस प्रकार का संग्रह किया होगा। ‘गाथा सत्तसई’ की रचना उस भाषा में है, जिसको वैयाकरणों ने महाराष्ट्रीय प्राकृत कहा है।

‘गाथा सत्तसई’ मुक्तक गीति-काव्य की मनोहर कृति है, जो शृंगार रस से लबालब भरी हुई है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि इसकी रचना विक्रम संवत् के आरंभ में हुई थी। कुछ लोग इसे विक्रम की चौथी अथवा पाँचवीं शती की रचना मानते हैं। अधिकांश विद्वानों

की तरह विद्वद्गर पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि उसकी रचना तो प्रथम शतक में हुई थी, किंतु उसमें बहुत सी गाथाएँ बाद में सम्मिलित हो गईं, जिनके कारण वह उतनी प्राचीन कृति ज्ञात नहीं होती* ।

संस्कृत का शृंगार-साहित्य—

संस्कृत साहित्य में रस-संचार के लिए नाटक एवं काव्यों की रचनाओं का आरंभ भी प्रायः इसी समय हुआ था । भास और शूद्रक जैसे प्राचीन नाटककारों की रचनाएँ संस्कृत साहित्य में रस-सृष्टि के लिए प्रसिद्ध हैं, किंतु इस क्षेत्र में महाकवि कालिदास की रचनाएँ सबसे अधिक विख्यात हैं ।

कालिदास के बाद संस्कृत साहित्य में नाटक एवं काव्यों की विशेष रूप से रचना हुई है । भारवि, माघ, भवभूति, श्रीहर्ष आदि कवियों ने अपनी मरस रचनाओं द्वारा संस्कृत साहित्य में अपूर्व रस-सृष्टि की है । संस्कृत के काव्य और नाटकों में वीर और करुण रसों के अतिरिक्त शृंगार रस की हो प्रमुखता है । कालिदास और श्रीहर्ष की रचनाएँ शृंगार-वर्णन के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं ।

‘गाथा सत्तसई’ के अनुकरण पर संस्कृत में जो काव्य-रचना की गई, उसका सर्व प्राचीन उदाहरण अमरुक कवि की रचना में दिखलाई देता है । सभवतः इससे पूर्व की रचनाएँ भी हों, किंतु वे आजकल अप्राप्य हैं । अमरुक कवि का समय भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है, किंतु विक्रम की नवम शताब्दी से पूर्व किसी समय में उनका होना निश्चित है, क्योंकि संस्कृत के महान् काव्यशास्त्री आनंदवर्धन ने अपने ‘ध्वन्यालोक’ में अमरुक के सरस मुक्तक काव्य की बड़ी प्रशंसा की है आनंदवर्धन ने लिखा है । अमरुक का एक-एक मुक्तक छंद अन्य कवियों के प्रबंध काव्यों के समान महत्व रखता है, क्योंकि जितना भाव एक कवि किसी प्रबंध काव्य में भर सकता है, उतना अमरुक ने एक छोटे पद्य में ही भर दिया है ।

“हाल की सत्तसई (सतसई) में बहुत से प्रसिद्ध पद्य हैं, जिनके कारण वह रचना अर्वाचीन-सी लगती है । जैसे अगारवार (मंगलवार), होरा और राधिका शब्द से संबद्ध आर्याएँ । परंतु अंततः साठे चार सौ आर्याएँ काफी प्राचीन जान पड़ती हैं । उनका सन् ईसवी के पूर्व की या पर की प्रथम शताब्दी में रचित या संकलित होना असंभव नहीं है ।” —“हिंदी साहित्य की भूमिका” पृ० ११२

हाल, अमरुक और गोवर्धन तीनों की रचनाएँ शृंगार रस प्रधान है और उनमें नायिकाओं की विभिन्न दशाओं का बड़ा मनोहारी वर्णन हुआ है। ब्रजभाषा में 'बिहारी सतसई' इसी प्रकार की रचना है। बिहारी ने उन तीनों कवियों की रचनाओं का उपयोग किया है। उनके अनेक दीहों में इन कवियों के भाव आ गये हैं, यद्यपि बिहारी ने अपनी अपूर्व काव्य-प्रतिभा के कारण उन भावों में और भी अधिक चमत्कार पैदा कर दिया है। बिहारी के अतिरिक्त पद्माकर आदि कवियों ने भी उन प्राचीन कवियों की सूक्तियों में लाभ उठाया है।

इस प्रकार ब्रजभाषा के महान् शृंगार-साहित्य का निर्माण भक्तिपूर्ण और भक्तिरहित प्राचीन शृंगार साहित्य की पृष्ठभूमि पर हुआ है। संस्कृत और प्राकृत-अपभ्रंश में इस प्रकार की दो धाराएँ होती हुई भी ब्रजभाषा का शृंगार साहित्य प्रायः भक्ति प्रधान है। उसका आरंभिक रूप तो शुद्ध भक्ति अथवा शृंगार-भक्ति को लेकर ही खड़ा किया गया है, जिसके कारण हिंदी साहित्य के इतिहास का वह परिच्छेद 'भक्तिकाल' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बाद के कवियों ने भक्ति अथवा शृंगार-भक्ति की अपेक्षा शृंगार रस पर अधिक जोर दिया है, किंतु उन्होंने भी प्रकारांतर से भक्ति का सहारा पकड़ा है। शुद्ध शृंगार वादी कवियों ने भी, चाहे बहाने के लिए ही सही, भक्ति-भावना का एक दम परित्याग नहीं किया है।

ब्रजभाषा का शृंगार साहित्य इतना प्रचुर और महत्वपूर्ण है कि उसकी समता अन्यत्र मिलनी कठिन है। इस पुस्तक का विषय नायिकाभेद इसी शृंगार साहित्य का एक प्रमुख अंग है, अतः आगामी परिच्छेद में उसके संबंध में कुछ विस्तार पूर्वक वर्णन किया जावेगा।

चतुर्थ पारिच्छेद

ब्रजभाषा का शृंगार-साहित्य



हिंदी के शृंगार-साहित्य का आरंभिक रूप—

संसार की समस्त भाषाओं के साहित्य में शृंगार-रसपूर्ण रचनाओं की अधिकता है। शृंगार-वर्णन एक ऐसा अनिवार्य और आवश्यक विषय है, जिसे उच्च साहित्य और लोक-वाङ्मय दोनों में आदर पूर्वक स्थान दिया गया है। संसार की किसी भाषा के इतिहास को देख लीजिए, उसमें आदि काल से ही शृंगारिक रचनाएँ दिखलाई देंगी। इसी नियम के अनुसार हिंदी साहित्य के आरंभ की वीर-गाथाओं में वीर के साथ शृंगार रस की रचनाएँ भी यथेष्ट परिमाण में मिलती हैं। विक्रम की बारहवीं शताब्दी में हिंदी भाषा के सर्व प्रथम वास्तविक कवि चंद के 'रासो' में अन्य विषयों के साथ शृंगार-वर्णन भी बड़े सुंदर लिखे गये हैं। रासो के रचना-काल और उसकी भाषा की प्रामाणिकता के संबंध में बड़ा मत-भेद है, किंतु उसमें चंद की मूल रचनाएँ और ब्रजभाषा के आरंभिक रूप के सूत्र निस्पंदेह उपलब्ध हो सकते हैं। विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में अमीर खुसरो एक प्रसिद्ध मुसलमान विद्वान् हो गये हैं। उनका जन्म सं० १३१२ में और उनकी मृत्यु सं० १३८२ में हुई थी। खुसरो अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत और हिंदी के विद्वान् और कई भाषाओं के कवि थे। हिंदी भाषा में उन्होंने पहेली, मुकरनी और गीतों द्वारा जन-साधारण के मनोरंजन की कविता की है। पहेली और मुकरियों की भाषा ब्रज मिश्रित खड़ी बोली है, किंतु गीत और दोहाओं की भाषा प्राचीन काव्य-भाषा है, जो खुसरो के समय तक विम-विमला कर ब्रजभाषा के निकट आ चुकी थी। खुसरो की कविता में शृंगार रस और नायिकाओं की उक्तियों का भी सजीव वर्णन है*।

* खुसरो रैन सोहाग की, जागी पी के संग। तन मेरौ, मन पीउ कौ, दोऊ भये एक रंग ॥

गोरो सौवै सेज पर, मुख पर डारै केस। चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देस ॥

सखी पिथा को जो मैं न देखूँ, तौ कैसे काटूँ अंधेरी रतियाँ।

न नीद नैना, न अंग चैना, न आप आवै, न भेजै पतियाँ। —खुसरो

सं० १५६८ वि० मे रची हुई कृपाराम कवि की 'हिततरंगिनी' नामक एक रचना उपलब्ध हुई है। यह ब्रजभाषा के आरंभिक शृंगार साहित्य और नायिकाभेद की महत्वपूर्ण कृति है। इससे ज्ञात होता है कि कृपाराम के समय में शृंगार रस की रचना बड़े विस्तार पूर्वक हो रही थी, किंतु उस समय के रचे हुए ग्रंथ आजकल अप्राप्य हैं। ब्रज के लोक-वाङ्मय और गायकों के गीतों में भी उस समय के शृंगार-साहित्य का आभास मिल सकता है, किंतु दुर्भाग्य से वे भी उपलब्ध नहीं हैं। सूरदास के पूर्ववर्ती बैजू बावरा के कुछ शृंगार-गीत प्राप्त हुए हैं, जिनसे यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि इस प्रकार की रचना पहिले से ही होती आ रही थी। बैजू बावरा एक प्रसिद्ध गायक हो गये हैं, जिनकी संगीत कला की प्रसिद्धि इस देश में तानसेन से पूर्व फैली हुई थी। बैजू के गीतों में ब्रजभाषा के आरंभिक शृंगार-साहित्य की भल्लक दिखलाई देती है।

ब्रजभाषा शृंगार साहित्य के सर्व प्रथम महाकवि सूरदास माने जाते हैं। उन्होंने विनय और वात्सल्य के अतिरिक्त भक्तिपूर्ण शृंगार की भी सर्वोत्कृष्ट रचना की है। सूरदास के कवित्व की प्रौढ़ता और उनके कथन की साहित्यिक पूर्णता ही यह सिद्ध करती है कि उनसे पहिले भी इस प्रकार रचनाएँ हो रही थी, जिनका विकास सूरदास के काव्य में हुआ है। ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य का जो निखरा हुआ रूप सूरदास की रचना में दिखलाई देता है, वह एक दम नहीं बन गया था।

† बरनत कवि सिंगार रस, छंद बड़े विस्तारि ।

मैं बरन्यो दोहान बिच, यारें सुधर विचारि ॥

—“हित तरंगिनी”

† मुरली बजाय रिमाय लई मुख मोहन ते ।

गोपी रीझि रही रस-तानन सो, सुध-बुध सब बिसराई ।

धुनि सुनि मन मोहे, मगन भई देखत हरि-आनन ॥

जीब-जंतु, पसु-पञ्जी, सुर-नर-मुनि मोहे, हरे सबके प्रानन ।

‘बैजू’ बनदारी बसी अधर वरि वृंदावन-चंद बस किए, सुनत ही कानन ॥

—“बैजू बावरा”

वैष्णव धर्माचार्य और शृंगार साहित्य—

ब्रजभाषा का आरम्भिक शृंगार-साहित्य भक्ति प्रधान है, जो वैष्णव धर्म के विभिन्न आचार्यों के सिद्धांतों से प्रभावित है। वैष्णव धर्म के जिन आचार्यों ने ब्रज में अपने धार्मिक केन्द्र स्थापित किये थे, उनमें निंबार्काचार्य, चैतन्य महाप्रभु, बल्लभाचार्य, हित हरिवंश और हरिदास स्वामी प्रमुख थे। उन सभी आचार्यों के संप्रदायों द्वारा ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य का निर्माण हुआ है।

✓ श्री निंबार्काचार्य धार्मिक क्षेत्र में राधा-कृष्णोपासना के प्रवर्तक थे और ब्रज में संभवतः उन्होंने ही सर्व प्रथम अपना केन्द्र स्थापित किया था। श्री निंबार्काचार्य और उनके आरम्भिक शिष्यों की रचनाएँ संस्कृत भाषा में हैं, किंतु उनकी शिष्य-परंपरा में १६ वीं शती के अनंतर श्रीभट्ट के समय से शृंगार-साहित्य की रचना हुई है। इस संप्रदाय के महात्माओं ने जो भक्तिपूर्ण शृंगार की रचना की है, वह ब्रजभाषा साहित्य की बहुमूल्य निधि है।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने १६ वीं शताब्दी के मध्य में राधा-कृष्ण की मधुरा भक्ति का प्रचार बंग देश में आरम्भ किया। चैतन्य महाप्रभु स्वयं स्थायी रूप से ब्रज में नहीं रहे और न उनके संप्रदाय के कवियों ने ब्रजभाषा में अधिक रचनाएँ की हैं, किंतु चैतन्य महाप्रभु के प्रमुख शिष्यों ने ब्रज में स्थायी निवास बनाकर ब्रज-भूमि की अपूर्व गौरव-वृद्धि की है। इसके साथ ही इस संप्रदाय की धार्मिक विचार-धारा से भी ब्रज का शृंगार-साहित्य अत्यधिक प्रभावित हुआ है।

महाप्रभु बल्लभाचार्य ने स्वयं तो ब्रजभाषा में कोई महत्वपूर्ण रचना नहीं की, किंतु सूरदास प्रभृति उनके शिष्यों ने आरम्भ से ही ब्रजभाषा को अपने काव्य का माध्यम बनाया था। बल्लभाचार्य जी के सुयोग्य पुत्र विठ्ठलनाथ जी ने तो ब्रजभाषा काव्य को वह बल प्रदान किया, जिसके कारण वह शीघ्र ही उत्तर भारत में व्याप्त हो गया। उन्होंने 'अष्टछाप' की स्थापना द्वारा ब्रजभाषा काव्य को व्यवस्थित रूप से प्रश्रय दिया था। श्री बल्लभाचार्य और उनके संप्रदाय के कवियों का ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की उन्नति से घनिष्ठतम संबंध है, अतः उनके विषय में कुछ विस्तार पूर्वक आगे लिखा जायगा।

श्री हित हरिवंश और स्वामी हरिदास ने स्वयं ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की रचना की और अपने अनुगामियों को भी इसके लिए उत्साहित किया। यही कारण है कि उनके द्वारा स्थापित राधावल्लभोद्य संप्रदाय और टट्टी संप्रदाय के कवियों ने ब्रजभाषा के अत्यंत गौरवशाली भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य की रचना की है।

ब्रजभाषा शृंगार-साहित्य और श्री बल्लभाचार्य—

ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की उन्नति में पुष्टि संप्रदाय के प्रवर्तक महाप्रभु बल्लभाचार्य और उनके अनुयाइयों का महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। श्री बल्लभाचार्य का जन्म सं० १५३५ में हुआ था और उनका देहावसान सं० १५८७ वि० में हुआ था। श्री रामानुजाचार्य की तरह उन्होंने ने भी देश के अनेक भागों में भ्रमण कर अपने सिद्धांतों का प्रचार किया। इसके अनंतर उन्होंने अपने आराध्य श्री कृष्ण की लीला-भूमि ब्रज के अंतर्गत गोवर्धन को अपने संप्रदाय का प्रमुख स्थान नियत किया। वहाँ पर उन्होंने श्रीनाथजी का एक मंदिर बनवा कर अपने धार्मिक कृत्यों को व्यवहारिक रूप देने की व्यवस्था की।

ब्रजभाषा साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकवि सूरदास को प्रकाश में लाने का श्रेय बल्लभाचार्य जी को है और अपनी सरस कविता द्वारा बल्लभ-संप्रदाय के धार्मिक सिद्धांतों के विशद प्रचार में योग देने का श्रेय सूरदास को है। इस प्रकार इन दोनों महात्माओं के सहयोग से पुष्टि मार्ग की ही उन्नति नहीं हुई, बल्कि ब्रजभाषा के लिए जो स्थायी साहित्य प्राप्त हुआ, वह अभूत-पूर्व और अनुपम है।

गोवर्धन के अतिरिक्त ब्रज के अंतर्गत दूसरा स्थान गोकुल भी इस संप्रदाय का प्रधान केन्द्र नियत किया गया। इस प्रकार आरंभ से ही बल्लभ संप्रदाय का ब्रज से संबंध होने के कारण उसका धार्मिक साहित्य ब्रजभाषा में बनने लगा। इस संप्रदाय के आचार्यों और अनुयाइयों ने जिस गौरवपूर्ण शृंगार-साहित्य का निर्माण किया है, उसके कारण ब्रजभाषा साहित्य का अत्यंत महत्व है।

सूरदास और सूरसागर —

सूरदास जी का कविताकाल सं० १५६० वि० के पश्चात् मना जाता है। वे आगरा व मथुरा के मध्यवर्ती गजघाट नामक स्थान पर रहते थे और

विनय के पद गाकर लोगों की धार्मिक भावना को जागृत किया करते थे। उनकी शास्त्रोक्त संगीत-लहरी और आल्हादकारिणी कवित्व शक्ति का उस प्रांत में विशेष आदर था। आस-पास के लोग उनको श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, और उनमें से कितने ही उनके शिष्य हो गये थे।

एक बार श्री बल्लभाचार्य ने उस मार्ग से जाते हुए गऊघाट पर विश्राम किया। उस समय उन्होंने सूरदास से मिलने की भी इच्छा प्रकट की। सूरदास बल्लभाचार्य के दर्शनार्थ गए और अपने पदों के गायन द्वारा उनको अत्यंत प्रसन्न किया। श्री बल्लभाचार्य को अपनी धर्म-स्थापना के मार्ग को प्रशस्त करने के लिए सूरदास जैसे गुणी व्यक्ति की अत्यंत आवश्यकता थी और सूरदास भी बल्लभाचार्य जैसे गुरु की खोज में थे, अतः सं० १५६६ के लगभग वे महाप्रभु बल्लभाचार्य के शिष्य होकर पुष्टि संप्रदाय में सम्मिलित हो गए। उनके लिए गोवर्धन स्थित श्रीनाथ जी के मंदिर की कीर्तन-सेवा का भार सौंपा गया। बल्लभाचार्य जी के शिष्य होने के पूर्व सूरदास जी अत्यंत करुण भाव से विनय के पदों का गायन किया करते थे। बल्लभाचार्य जी ने सूरदास से कहा—

“जो मूर हूँकै ऐसौ काहे को विधियात है, कछु भगवत लीला वर्णन करि. .”।

इस आज्ञा के उपरांत सूरदास ने भागवत के आधार पर श्री कृष्ण-लीला के पदों का निर्माण करना आरम्भ किया। सूरसागर में जो विनय आदि के स्फुट पद हैं, वे पुष्टि संप्रदाय की दीक्षा लेने के पूर्व के हो सकते हैं और राधा-कृष्ण की लीला विषयक पद इस घटना के पश्चात् के हो सकते हैं। यह तो निश्चित है कि सूरसागर कोई कमवय रचना नहीं है, बल्कि सूरदास जी के समय-समय पर रचे हुए पदों का संग्रह मात्र है। इसके कितने छंद सूरदास जी बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व बना चुके थे, यह जानने का इस समय कोई साधन नहीं है, किंतु साधारणतया यह समझना चाहिए कि लीला विषयक अधिकांश पदों की रचना बल्लभ संप्रदाय में सम्मिलित होने के पश्चात् की है।

सूरदास का सूरसागर ब्रजभाषा साहित्य का शृंगार है। उसमें विशिष्ट साहित्यिक गुण इतने प्रचुर परिमाण में मिलते हैं कि उक्त साहित्य की प्रथम वास्तविक कृति होने पर भी उसकी साहित्यिक पूर्णता बड़े-बड़े साहित्य-

महारथियों को आश्चर्य और उलझन में डाल रही है[†]। सूरसागर में भागवत की कथा है, किंतु वह उसका अनुवाद नहीं है। भागवत के अन्य स्कंधों की कथा सन्निपत रूप में लिख कर दशम स्कंध को विस्तार पूर्वक लिखा गया है। इसमें भी लीलाओं का कथानक मात्र भागवत् से, लिया गया है, किंतु रचना-शैली सूरदास की अपनी है।

सूरसागर एक भारी ग्रंथ है, जिसमें भगवान् श्री कृष्ण की बाललीला और गोपियों के प्रति उनकी अनेक चेष्टाओं का ऐसा सर्वांगपूर्ण साहित्यिक कथन हुआ है कि यह ग्रंथ वात्सल्य, शृंगार, भक्ति और विनय की अपूर्व उक्तियों के लिए आज भी अपनी तुलना नहीं रखता। सूरदास ने जिन विषयों को लिखा है, उन पर ऐसा अधिकार पूर्ण और विस्तार के साथ लिखा है कि उनके परवर्ती कवियों के लिए उन विषयों पर लिखने के लिए मानों कुछ रहा ही नहीं ! जिन्होंने लिखा है, वे सूरदास की सूक्तियों के प्रभाव से अपने को कठिनता से बचा सके हैं। अधिकांश कवियों की तत्संबंधी अनूठी उक्तियाँ भी 'सूरदास की जूठी' ज्ञात होती हैं।

कहते हैं सूरदास न एक लाख पदों की रचना की थी ! इतना भारी काम एक कवि अपने जीवन में कर सकता है या नहीं, यह विचारणीय है। सूरसागर की अब तक की प्राप्त प्रतियों में दस सहस्र पद भी नहीं मिलते हैं, किंतु जितने अब तक उपलब्ध हुए हैं, वही सूरदास जी को ब्रजभाषा-कवियों का शिरमौर बनाने के लिए पर्याप्त है।

सूरदास का शृंगार वर्णन—

सूरदास के शृंगार वर्णन का आधार श्री बल्लभाचार्य के धार्मिक सिद्धांत और भागवत के कथानक कहे जा सकते हैं, किंतु राधा के संबंध में उन्होंने

† “ध्यान देने की सबसे पहिली बात यह है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सब से पहिली साहित्यिक कृति इन्हीं की मिलती है, जो अपनी पूर्णता के कारण आश्चर्य में डाल देती है। पहिली साहित्यिक रचना और इतनी प्रचुर, प्रगल्भ और काव्यांग-पूर्ण कि अगले कवियों की शृंगार और वात्सल्य उक्तियाँ इनकी जूठी जान पड़ती हैं, यह बात हिंदी-साहित्य का इतिहास लिखने वालों को उलझन में डालन वाली होगी। सूरसागर किसी पहले से चली आती हुई परंपरा का—चाहे वह मौखिक ही रही हो—पूर्ण विकास सा जान पड़ता है, चलने वाली परंपरा का मूल रूप नहीं।”

—श्री रामचंद्र शुक्ल

अपना मार्ग स्वयं बनाया था। श्री बल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धांतों में राधा के लिए निश्चित व्यवस्था नहीं थी और भागवत के कृष्णलीला प्रसंग में भी राधा का उल्लेख नहीं है, किंतु सूरदास ने कृष्ण के साथ राधा को जोड़कर अपने वर्णन को सरस और मार्मिक बना दिया है। इस संबंध में उनको जयदेव और विद्यापति से प्रेरणा मिली होगी। इन कवियों ने राधा-कृष्ण का वर्णन अधिकतर कवि की दृष्टि से किया है, इसलिए मर्यादा के विचार से उनका आदर्श धार्मिक क्षेत्र में नहीं लिया जा सकता था, जहाँ कि राधा-कृष्ण केवल नायिका-नायक ही नहीं हैं, बल्कि उपास्य देव हैं। विद्यापति की राधा कृष्ण की प्रेयसी है और चंडीदास की राधा में परकीया भाव का प्राधान्य है, किंतु सूरदास की राधा न प्रेयसी है और न परकीया, बल्कि कृष्ण की पत्नी है, इसलिए स्वकीया है। राधा ही क्यों, गोपियों और कुञ्जा तक में सूरदास ने स्वकीया भाव का ही आरोपण किया है, अतः उनका शृंगार-वर्णन शुद्ध, शिष्ट और मर्यादित है, इसलिए वह परकीयत्व की अमर्यादा से मुक्त है। ✓

सूरदास ने कृष्ण-लीला का वर्णन भागवत के आधार पर किया है, इसलिए उनके कृष्ण भागवत के ही कृष्ण हैं। भागवत के प्रमाणानुसार श्री कृष्ण ब्रज में भ्यारह वर्ष* की अवस्था तक रहे थे, अतः यह सिद्ध हुआ कि भगवान् कृष्ण की समस्त लीलाएँ ब्रज में उनकी बाल्यावस्था की लीलाएँ ही थीं। राधा और गोपियों के साथ उनकी अनेक चेष्टाओं को बाल-स्वभाव जनित क्रीडा-कौतुक और आमोद-प्रमोद ही समझना चाहिए। उनको वयस्क युवक-युवतियों के सदृश कामासक्ति और रसिकता के रूपक समझना अनुचित है।

सूरदास के कृष्ण भी बाल कृष्ण हैं और उनका कथानक भी भागवत के अनुकूल है, अतः उनका शृंगार वर्णन भी निर्दोष हुआ है, किंतु कुछ स्थलों पर उन्होंने ऐसे वासनापूर्ण सरस शृंगारिक वर्णन भी लिखे हैं, जो बाल-क्रीडा-कौतुक की परिधि को लाँघ जाते हैं, और जिनसे स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि सूरदास वयस्क युवक-युवतियों की शृंगारिक केलि-कथाओं को लिख रहे हैं! उस समय वे श्रीकृष्ण के वयस्क और शारीरिक विकास को भी भूल

* ततो नन्द ब्रजमितः पित्रा कसाद्धि विभ्यता ।

एकादश समास्तत्र गूढार्चि सकलोऽवसत् ॥

से जाते हैं ! पर यहाँ पर यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि भागवत अथवा सूरसागर के कृष्ण लौकिक बालक नहीं हैं। वे अलौकिक ही नहीं, बल्कि परब्रह्म की षोडश कला के अवतार हैं, जिन्होंने वात्स्यावस्था में ही ऐसे अलौकिक कृत्य किए थे, जिनको कोई लौकिक बालक कदापि नहीं कर सकता था। ऐसी दशा में वयक्रम और शारीरिक विकास का प्रश्न ही नहीं उठता।

सूरदास ने शृंगार के संयोग और वियोग (विप्रलंब) दोनों पक्षों का बड़ा ही मार्मिक और हृदयग्राही वर्णन किया है। गोकुल और वृंदावन की समस्त लीलाएँ संयोग शृंगार की हैं और श्री कृष्ण के मधुरा-गमन के पश्चात् गोपियों की विरह-दशा का वर्णन विप्रलंब शृंगार के अन्तर्गत है।

बल्लभ-संप्रदाय और राधा—

श्री बल्लभाचार्य ने वात्सल्य भक्ति द्वारा भगवान् श्री कृष्ण की मगुणोपासना का प्रचार किया था। उनके मत में व्रत-उपवास, योग-साधन और तपस्या आदि कष्ट साध्य कर्मों का विशेष महत्व नहीं था, बल्कि वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हुए प्रेम लक्षणा भक्ति द्वारा ईश्वराधना की सीधी-सच्ची विधि बतलाई गई थी। बल्लभाचार्य जी की भक्ति बाल-भाव की थी, किंतु उनके पीछे सूरदास आदि कवियों के काव्यों में और विद्वलनाथ जी के धार्मिक सिद्धांतों में राधा के समावेश के कारण इस संप्रदाय में मधुरा भक्ति का भी प्रचार हो गया। बल्लभ-संप्रदाय जिस वात्सल्य भक्ति को लेकर चला है, उसमें इस मधुर भाव की भक्ति का समावेश देख कर बहुत से विद्वान भी इसका कारण नहीं समझ पाते। असल बात यह है कि गोवर्धन में बल्लभ संप्रदाय की जड़ जर्मने से भी पहिंचे वृंदावन में श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्यों का स्थायी निवास बन चुका था। चैतन्य संप्रदाय की मधुरा भक्ति का प्रभाव ब्रज के वैष्णव संप्रदायों और उनके कवियों पर भी पड़ना स्वाभाविक था। इस संप्रदाय के आधुनिक ग्रंथों में चैतन्य संप्रदाय के प्रभाव को स्वीकार किया गया है † । †

‡ “संप्रदाय में इस प्रकार का भी वाद प्रचलित है कि प्रारंभिक अवस्था में इन (विद्वलनाथ जी) पर श्री कृष्णचैतन्य महाप्रभु के सिद्धांत की कुछ छाप पड़ी, जिसके कारण संप्रदाय में भी राधिकाजी किंवा स्वामिनी जी की उपासना का भाव प्रचलित होगया, और इसी से एतद् विषयक स्तोत्रों का भी निर्माण हुआ। ‘शृंगार रस मंडन’ नामक ग्रंथ की शैली इसी प्रकार की है। तात्पर्य यह कि इस संप्रदाय में जो कुछ भी स्वामिनी-भाव की उपासना है, वह इसी कारण है।

—“कांकरोली का इतिहास” पृष्ठ ६७

श्री बल्लभाचार्य जी के उपास्य बाल कृष्ण थे और 'नवनीतप्रिय' कहलाते थे। जब चैतन्य संप्रदाय के प्रभाव और जयदेव-विद्यापति की काव्य-परंपरा के कारण बल्लभ संप्रदाय के कवियों में मधुर भाव की भक्ति का प्रवेश हुआ, तब सूरदास आदि ने कृष्ण के साथ उनकी चिर सहचरी राधा का भी गुण-गान करना आरंभ कर दिया। फलतः गोस्वामी विट्ठलनाथ को अपने धार्मिक सिद्धांतों में राधा की प्रतिष्ठा करनी पड़ी और नवनीतप्रिय श्री कृष्ण के साथ राधाजी 'नवनीतप्रिया' हो गई। इसके बाद बल्लभ संप्रदाय की सेवा पद्धति में भी नाना प्रकार के भोग-राग, वस्त्राभूषण और रास-विलास की प्रचुर सामग्री का विधान हो गया, जिसके कारण इस संप्रदाय के कवियों की रचनाओं में भी शृंगार-भावना का प्राधान्य होने लगा।

अष्टछाप—

महाप्रभु बल्लभाचार्य के अनंतर उनके सुयोग्य पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ ने पुष्टि संप्रदाय की बड़ी उन्नति की। उनके समय तक कितने ही सुकवि इस संप्रदाय में दीक्षित होकर भगवान् श्री कृष्ण की लीला का वर्णन करने लगे। गो० विट्ठलनाथ जी ने उनमें से आठ प्रमुख कवियों की एक 'अष्टछाप' स्थापित की। अष्टछाप के आठों कवियों के नाम ये हैं—

१. सूरदास, २. कुंभनदास, ३. परमानंददास, ४. कृष्णदास
५. गोविंदस्वामी ६. नंददास ७. छीतस्वामी, ८. चतुर्भुजदास

उपर्युक्त कवियों में से प्रथम चार श्री बल्लभाचार्य जी के और अंतिम चार स्वयं श्री विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। वैसे तो उन आठों महात्माओं ने ब्रजभाषा में प्रशंसनीय भक्तिपूर्ण शृंगार साहित्य की रचना की है, किंतु उनमें सूरदास की रचना सर्वश्रेष्ठ है। उनके बाद नंददास, परमानंददास और कृष्णदास के नाम लिये जा सकते हैं। अष्टछाप के कवियों के अतिरिक्त बल्लभ संप्रदाय के अन्य कवियों ने भी ब्रजभाषा के भक्तिपूर्ण शृंगार साहित्य की रचना की है।

विभिन्न संप्रदायों का शृंगार-भक्तिपूर्ण साहित्य—

बल्लभ संप्रदाय के अतिरिक्त अन्य संप्रदायों के भक्त कवियों ने भी ब्रजभाषा के शृंगार साहित्य की रचना की है। उस समय भक्तिपूर्ण शृंगार की ऐसी अलौकिक धारा बह रही थी कि बड़े-बड़े सिद्ध महात्माओं ने भी उसमें मज्जन करने में अपना अहोभाग्य समझा। ऐसे महात्माओं में श्री हितहरिवंश

का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके द्वारा स्थापित राधावल्लभाय संप्रदाय में ब्रजेश्वरी राधिका जी का विशेष महत्व माना गया है, अतः इस संप्रदाय के कवियों ने नित्य विहार की अलौकिक लीलाओं के रूप में ब्रजभाषा के अपूर्व शृंगार-साहित्य का सृजन किया है।

श्री हितहरिवंश रवय ब्रजभाषा शृंगार-साहित्य के सर्वोत्कृष्ट कवियों में माने जाते हैं। उनकी रचित 'श्री हित-चौरासी' अपने अनुपम माधुर्य के कारण ब्रज शृंगार-साहित्य की महत्वपूर्ण रचना है। इस संप्रदाय का दार्शनिक मत 'सिद्धाद्वैत' कहलाता है। इस संप्रदाय में राधिका जी का महत्त्व श्री कृष्ण से भी अधिक माना गया है। इस संप्रदाय की मान्यता है कि अखिल विश्व की आत्मा श्रीकृष्ण है, किंतु उनकी भी आत्मा राधिका जी है। श्री हित महाप्रभु का वंश-परंपरा और उनके संप्रदाय में ब्रज-शृंगार-साहित्य के अनेक उत्कृष्ट कवि हुए हैं, जिनमें बनचंद्र, कृष्णचंद्र, राधावल्लभदास, सेवक, चाचा वृंदाबनदास एवं ध्रुवदास प्रमुख हैं।

निंबार्क संप्रदाय में ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की रचना का आरंभ श्रीभट्ट जी से हुआ है। श्रीभट्ट जी रचित 'जुगल सत' और उनके उत्तराधिकारी श्रीहरिचयास जी रचित 'महावाणी' निंबार्क संप्रदाय के सर्वमान्य धार्मिक ग्रंथ हैं और साथ ही वे ब्रजभाषा के प्राचीन शृंगार-साहित्य की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इन दोनों ग्रंथों में राधा-कृष्ण के नित्य विहार का बड़ा सरस वर्णन हुआ है। निंबार्क संप्रदाय में परशुराम जी, रूपरसिक जी, वृंदावन जी, रसिकगोविंद जी आदि भी प्रसिद्ध कवि हो गये हैं, जिन्होंने भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य की उत्तम रचनाएँ की हैं।

गायकाचार्य और भक्त-शिरोमणि स्वामी हरिदास जी ब्रज के एक प्रमुख महात्मा होगये हैं। वे निंबार्क संप्रदाय की पृथक् शाखा-टट्टी संप्रदाय के प्रवर्तक थे। स्वामी हरिदास सिद्ध महात्मा और संगीतशास्त्र के प्रकांड पंडित थे। सुप्रसिद्ध गायकाचार्य तानसेन उनको अपना गुरु मानते थे। स्वामी हरिदास ने शृंगार-भक्ति पूर्ण जो पद-रचना की है, वह भावपूर्ण और संगीतशास्त्र के अनुकूल है। उनकी शिष्य परंपरा में अनेक सुकवि हो गये हैं। विठ्ठलविपुल जी, सरसदास जी, नरहरिदास जी, रसिकविहारी जी, ललितकिशोरी जी, ललितमोहिनी जी, सहचरिशरण जी, भगवतरसिक जी, शीतलदास जी, नागरीदास जी आदि अनेक कवियों ने ब्रजभाषा के भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य की अनुपम रचना की है।

श्री चैतन्य महाप्रभु के गौड़ीय संप्रदाय में जिन कवियों ने ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की रचना की है, उनमें श्री गदाधर भट्ट, सूरदास मदनमोहन, माधुरीदास, ललितकिशोरी और ललितमाधुरी मुख्य हैं।

उपर्युक्त संप्रदायों के कवियों के अतिरिक्त अनेक ऐसे भक्त कवि हुए हैं, जिन्होंने अपनी उपासना-पद्धति के अनुसार ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की रचना की है। श्री हित महाप्रभु और स्वामी हरिदास के सहयोगी श्री न्यास जी और अनन्य प्रेमी श्री रसखान और घनानंद की शृंगार-भक्तिपूर्ण रचनाएँ ब्रजभाषा साहित्य की शृंगार हैं। हिंदी के सर्वश्रेष्ठ महाकवि और मर्यादा-मार्ग के उपासक गो० तुलसीदास जी ने भी 'रामगीतावली' और 'कृष्णगीतावली' द्वारा ब्रजभाषा में भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य का अपूर्व कथन किया है।

राजस्थान की सुप्रसिद्ध साधिका और गिरिधर गोपाल की मतवाली मीराबाई के काव्य में जो मोहक माधुर्य है, वह शृंगार-साहित्य के महत्व को और भी बढ़ा देता है। मीराबाई की अधिकांश रचना राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा में है और कुछ पद शुद्ध ब्रजभाषा में भी हैं, जिनमें भक्तिपूर्ण शृंगार रस का अपूर्व परिपाक हुआ है।

नागरीदास नाम के कई महात्मा हो गये हैं, जिन्होंने भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य की रचना की है। उनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध किशनगढ़ नरेश महाराजा यशवंत सिंह हैं। उन महाराजा की माता, बहिन और दासियों तक ने ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की रचना की है। सारा परिवार लीला-रस का प्रेमी था। उनकी दासी बनी-ठनी जी ने भी सुंदर कविता की है। श्री हठी जी ने 'राधा-सुधा-शतक' के सौ छंदों में भक्तिपूर्ण शृंगार के अपूर्व कवित्व का परिचय दिया है।

उपर्युक्त महानुभावों के अतिरिक्त जिन अनेक महात्माओं एवं सुकवियों ने भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य की रचना की है, उनका विवरण तो क्या, उनका नामोल्लेख करने के लिए भी यहाँ पर पर्याप्त स्थान नहीं है। इन भक्त कवियों के कारण भी ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य का अनुपम महाव है।

कृष्ण-भक्ति की लहर —

निर्वाकाचार्य और मध्वाचार्य आदि आचार्यों ने धार्मिक क्षेत्र में कृष्ण-भक्ति का प्रचार अपने-अपने सांप्रदायिक सिद्धांतों के अनुसार किया था और

जयदेव ने काव्य-क्षेत्र में उनके सरस शृंगार का वर्णन किया था । इस प्रकार श्री बल्लभाचार्य के समय तक भक्ति-भावना और मधुर रस की यथेष्ट उन्नति हो चुकी थी । श्री बल्लभाचार्य ने पुष्टि संप्रदाय की स्थापना द्वारा भक्तिपूर्ण शृंगार की शास्त्रोक्त व्यवस्था देकर इसका मार्ग और भी प्रशस्त कर दिया, जिसके फलस्वरूप समस्त उत्तरी भारत में शृंगार-रस पूर्ण कृष्ण-भक्ति की एक लहर सी दौड़ गई ।

इन महात्माओं के प्रचार से भिन्न-भिन्न भाषाओं के कवियों ने अपने-अपने क्षेत्रों में राधाकृष्ण की शृंगार-भक्ति पूर्ण कविताओं की रचना की । हिंदी कवियों में सर्व प्रथम मैथिल कोकिल विद्यापति ने तत्पश्चात् सूरदास आदि महात्माओं ने, बंगदेश में चंडीदास ने, गुजरात में नरसी मेहता ने और राजस्थान में मीराबाई ने एक ही स्वर से वह राग अलापा, जिसकी गूँज ने कोटि-कोटि जनता को मंत्रमुग्ध सा कर दिया । यद्यपि इन कविताओं की भाषा एक दूसरी से पृथक् थी, किंतु उनकी आत्मा एक थी, विचार-धारा एक थी और भाव भी प्रायः एक से थे ।

भक्तिरहित शृंगार वर्णन —

अब तक भक्त कवियों द्वारा रचित ब्रजभाषा के भक्तिपूर्ण शृंगार-साहित्य की चर्चा की गई है । इस प्रकार के साहित्य का निर्माण उन वैष्णव धर्माचार्यों अथवा उनके अनुगामियों द्वारा हुआ है, जिन्होंने अपनी उपासना-प्रणाली के अंग रूप से इस प्रकार की रचना की है । इन रचनाओं द्वारा न तो उनको किसी से यश-प्राप्ति की वांछा थी और न धन-प्राप्ति की । अपने अंतःकरण के परमानंद के लिए अथवा लोकोपकार के लिए इस प्रकार के अलौकिक काव्य की रचना की गई थी ।

ऐसे महात्माओं के अतिरिक्त शृंगार रस पूर्ण कविता करने वाले अन्य कवियों ने दूसरे मार्ग को ग्रहण किया । इन कवियों के काव्य में भक्ति-भावना अथवा धार्मिकता का विशेष आग्रह नहीं है । इन कवियों का लक्ष केवल कविता करना था, चाहे वह अपने अथवा दूसरों के मनोरंजन के लिए की गई हो, अथवा यश एवं धन-प्राप्ति के लिए ।

ब्रजभाषा-साहित्य में आरंभ से ही भक्ति पूर्ण शृंगार के साथ ही साथ इस प्रकार के शृंगार की भी धारा चल रही थी । सं० १५६८ वि० में रचित

‘हिततरंगिनी’ इसी प्रकार की रचना है, जिसके रचयिता कृपाराम भक्त कवियों से भी पूर्व विद्यमान थे। कृपाराम के अतिरिक्त इसी प्रकार की कविता करने वाले कवियों में मोहनलाल, मनोहर, गंगाप्रसाद, करनेश आदि कवियों की रचनाएँ खोज द्वारा प्राप्त हुई हैं।

मुगल सम्राट अकबर के दरबार में ब्रजभाषा के कितने ही कवियों को आश्रय मिला था*, जिनमें गग, बीरबल और रहीम उत्कृष्ट श्रेणी के कवि थे। अकबर स्वयं ब्रजभाषा के कवि थे। बीरबल और रहीम उनके मंत्री और गंग उनके प्रसिद्ध दरबारी कवि थे। उन सब ने ब्रजभाषा के शृंगार साहित्य की रचना की है। अकबरी दरबार और उससे प्रभावित सभी कविगण भक्ति रहित शृंगारिक कवियों की कोटि में रखे जा सकते हैं।

रीति-काल का शृंगार-साहित्य—

भक्ति रहित शृंगार रस की कविता करने वाले प्रसिद्ध कवियों में बलभद्र, शवदास, सुवारक, सुंदर, चितामणि, बिहारीलाल आदि के भी नाम गिनाये जा सकते हैं। उनमें केशवदास और बिहारीलाल तो ब्रजभाषा शृंगार साहित्य के सुदृढ़ स्तम्भ ही हैं। इस प्रकार की शृंगारिक कविता करने वाले कवियों पर ब्रजभाषा काव्य की उस रीति-धारा का प्रभाव है, जिसके कारण इतिहासकारों ने उस काल का नाम ही ‘रीति-काल’ रख दिया है।

हिंदी साहित्य के इतिहास का यह तथाकथित रीति-काल ब्रजभाषा शृंगार साहित्य के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। इस काल में ब्रजभाषा के अनेक धुरंधर कवियों ने अपनी चत्मकारपूर्ण रचना द्वारा शृंगार साहित्य की गौरव-वृद्धि की है। भक्ति रहित शृंगार की रचना करने वाले अधिकांश कवि रीति-धारा के ही कवि हैं। यद्यपि सेनापति और बिहारीलाल जैसे तत्कालीन सुप्रसिद्ध

* अकबर के दरबारी कवियों के नाम—

पाय प्रसिद्ध पुरंदर ‘ब्रह्म’, सुवारस अमृत’ अमृतबानी ।
‘शोकुल’ ‘गोप’ ‘गोपाल’ ‘गनेस’ गुनी, गुनसागर ‘गंग’ सुजानी ॥
‘जोध’ ‘जगन्न’ ‘जगे’ ‘जगदीस’, ‘जगा’ मग [‘जैन’ जगत्त है जानी ।
कोरे अकबर सो न कथी, इतने मिलिकै कविता जु बखानी ॥

महाकवियों ने रीति-ग्रंथों की रचना नहीं की है, किंतु उनके काव्य पर भी रीति-धारा का स्पष्ट प्रभाव है।

इस प्रकार के कवियों का मार्ग-प्रदर्शन ब्रजभाषा के सुप्रसिद्ध काव्यशास्त्री केशवदास ने किया। केशवदास के आदर्श पर चलने वाले कवि स्वच्छंद रूप से कविता करने की अपेक्षा काव्य-रीति के सीमित क्षेत्र में ही अपनी प्रतिभा का विकास करने लगे। तब भी इस प्रकार के कवियों ने सुकृष्ण रचना द्वारा ब्रजभाषा में शृंगार रस के ऐसे सरस और हृदयग्राही छंदों का निर्माण किया है, जैसे अन्य भाषाओं में मिलने कठिन है। खेद है हमारे कुछ प्रतिष्ठित आलोचकों को वे पसंद नहीं है*।

इस प्रकार की आलोचना करने वाले महानुभाव कदाचित् यह भूल जाते हैं कि काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से 'रीतिकाल' ही ब्रजभाषा साहित्य का सर्वश्रेष्ठ काल है। उस काल के कवियों ने काव्य-शास्त्रानुसार काव्यांगों का भी विधिवत् वर्णन करने की चेष्टा की है, किंतु उनका मुख्य उद्देश्य कविता करना था, और उसकी पूर्ति के लिए उन्होंने जिन सरस छंदों की रचना का है, वे चाहे कुछ महानुभावों को पसंद न आवे, किंतु उनकी सराहना श्री रामचंद्र शुक्ल जैसे सर्वमान्य समालोचक को भी करनी पड़ी है†।

* "केशवदास ने शृंगार रस की चर्चा भक्ति से अलग भी की और काव्य-विज्ञान के ग्रंथों का बीज सा डाल दिया, जिससे साहित्य के खेत में जड़ की आर से सरस और ऊपर की ओर से सूखा सा एक अजीब पेड़ खड़ा हो गया, जिसमें पीछे से अनगिनती, देखने में सुंदर, किंतु नीरस फल लगे, जो आज भी देखे जा सकते हैं।"..... "दूध की पानी से अलग रखने की जो विधि केशवदास ने निकाली थी, उसी विधि से उस समय के कवि दूध की परवा न करके शब्दालंकारों की खोड़ मिला कर पानी ही पानी लोगों का पिला रहे थे और लोग भी इस शर्बत के नये स्वाद से प्रसन्न होकर दूध की याद भूल चले थे।"

—“हिंदी भाषा का इतिहास”

† “इन रीति-ग्रंथों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे।.....उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (विशेषतः शृंगार रस) और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यंत प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षण-ग्रंथों से चुन कर इकट्ठे करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।”

—“हिंदी साहित्य का इतिहास”

रीति-काल का प्रभाव—

केशवदास और उनकी परिपाटी पर चलने वाले कवियों के काव्य से भक्ति के धारावाही प्रवाह पर मानो बाँध सा बाँध दिया गया, जिसके कारण उसकी बढ़ती हुई गति रुक गई । यद्यपि उन कवियों ने लौकिक शृंगार का कथन किया है, तब भी उनके समय में कृष्ण और राधा बिलकुल लौकिक नायक और नायिका नहीं बन पाये थे । केशवदास ने कृष्ण को 'परम पुरुष' और राधा को 'माया देवी' लिखा है । उनके काव्य में राधा-कृष्ण की भक्ति की अपेक्षा उनकी स्तुति की भावना अधिक है । सूरदास आदि महात्माओं ने अपने काव्य में राधा-कृष्ण के जिस भक्तिपूर्ण शृंगार का वर्णन किया था, वह अब शिथिल सा हो रहा था ।

केशवदास के परवर्ती शृंगारवादी कवियों में बिहारी और देव महाकवि हुए हैं । उन्होंने भक्ति-भाव की भी आड़ ली है । उनके समय में राधा-कृष्ण लौकिक नायिका-नायक के रूप में आने लगे थे । देव ने नायिका और नायक को प्रकृति और पुरुष के रूप में भी लिखा है†, किंतु उनका अधिकांश शृंगार-वर्णन लौकिक रूप का है, जिसमें उन्होंने अपूर्व काव्य-कौशल का परिचय दिया है ।

इनके पश्चात् के कवियों ने राधा-कृष्ण के नाम पर लौकिक नायिका-नायको का वर्णन किया है । यदि उनके प्रति कुछ भक्ति-भाव प्रदर्शित भी किया है, तो वह केवल बहाने के लिए । वास्तव में उनका उद्देश्य कवियों अथवा रसिकों को रिझाने* के लिए शृंगार रस पूर्ण कविता करना था ।

† माया देवी नायिका नायक पुरुष आप ।

सबै दंपतिन में प्रकट, 'देव' करै तिहि जाप ॥

— 'प्रेमचंद्रिका'

* आगै के सुकवि रीझि है तौ कबिताई,

न तौ राधिका-कन्हैयाँ सुमिरन कौ बहानौ है ।

— दास

रसिक रीझि है जानि, तौ ह्वै है कबितौ सफल ।

न तरु सदा सुखदानि, श्री राधा हरि कौ मुजस ॥

— द्विजदेव

इस प्रकार के कवियों की शृंगार पूर्ण कविता में चाहे भक्ति-भावना नहीं थी, किंतु उनका शृंगार-वर्णन भी मर्यादा से बाहर नहीं हुआ है। उन्होंने काव्यशास्त्रोक्त रस-प्रकरण के अनुकूल शृंगार रस के अपूर्व छंदों का निर्माण किया है। शृंगार रस के कुछ कवि ऐसे भी हुए हैं, जिन्होंने राधा-कृष्ण के नाम पर कुरुचिपूर्ण और कामुकता को प्रश्रय देने वाली कविताओं का निर्माण किया है। उनके इस कृत्य की प्रशंसा नहीं की जा सकती। काव्य-क्षेत्र में उनकी इस प्रकार की कविताओं का भी कुछ मूल्य हो सकता है, किंतु मर्यादा की दृष्टि से ऐसे कवि निंदा के ही पात्र माने गये हैं।

उपरोक्त कथन का यह अभिप्राय नहीं समझना चाहिए कि रीति-काल में भक्ति-भावना और धार्मिकता बिल्कुल ही लुप्त होगई थी। जिस प्रकार भक्तिकाल में भी रीतिकालीन कवियों की सी कविता करने वाले कुछ कवि विद्यमान थे, उसी प्रकार रीतिकाल में भी शुद्ध भक्तिभाव से शृंगार रस की कविता करने वाले महात्मा भी समय-समय पर होते रहे हैं। अवश्य ही उनकी मर्यादा अत्यंत अल्प थी और वे अपने सीमित क्षेत्र में ही 'स्वान्तः सुखाय' काव्य की रचना कर रहे थे। अधिकांश कविगण दूसरे ही पथ के पथिक हो रहे थे।

शृंगारिक कवियों का प्रेम-भाव

वैसे तो कविगण स्वभाव से ही प्रेमी होते हैं, किंतु ब्रजभाषा के शृंगारिक कवियों में प्रेम-भाव की प्रचुरता थी। सूरदास जैसे महात्माओं और मीराबाई जैसे देवियों में भी प्रेम-बाहुल्य था, किंतु उनका प्रेम-भाव उनके दृष्ट देवों के प्रति होने के कारण अलौकिक, शुद्ध और निर्दोष था। जब तक कविता में भक्तिपूर्ण शृंगार की प्रचुरता रही, तब तक यह प्रेम-भाव भी अलौकिक रहा, किंतु जैसे ही इस शृंगार ने लौकिक रूप धारण किया, तो कवियों का प्रेम-भाव भी लौकिक हो गया। अथवा यों कहिए कि लौकिक प्रेम के उपासक कवियों ने ही भक्तिपूर्ण शृंगार को लौकिक शृंगार में परिवर्तित कर दिया !

दिव्य शृंगार के लौकिक शृंगार में परिवर्तन का कारण—

भक्त कवियों ने अपनी उपासना पद्धति के अनुसार जिस दिव्य शृंगार का वर्णन किया गया था, वह किस प्रकार लौकिक शृंगार में परिवर्तित हो गया, इस पर विचार करना आवश्यक है।

ब्रजभाषा के कृष्णोपासक भक्त कवियों को अपने काव्य की प्रेरणा अधिकतर वैष्णव धर्म के विभिन्न संप्रदायों अथवा श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध से मिली है। वैष्णव संप्रदायों में भक्ति-भावना का सर्वोपरि महत्त्व है। पुष्टि संप्रदाय की प्रेम-लक्षणा भक्ति और चैतन्य एवं राधावल्लभीय संप्रदायों की रागानुगा भक्ति ने ब्रजभाषा के भक्त कवियों को सब से अधिक प्रभावित किया है। श्रीमद्भागवत में भी श्री कृष्ण के मधुर रूप और गोपियों द्वारा माधुर्य भाव से उनकी भक्ति करने का वर्णन है। ब्रजभाषा के भक्त कवियों ने भी इसी आदर्श को अपनाया और अपने काव्य द्वारा गोपियों की सी मधुरा भक्ति का प्रचार किया।

ब्रजभाषा के ये शृंगारवादी भक्त कवि परमोच्च श्रेणी के महात्मा थे। उनका शृंगार वर्णन राधा-कृष्ण का दिव्य शृंगार है, जो उनके सांप्रदायिक सिद्धांत एवं उपामना-पद्धति के अनुकूल है। उन्होंने स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि उनके दिव्य शृंगार के कारण परवर्ती कवियों का मुकाबल लौकिक शृंगार-वर्णन की ओर भी हो सकता है। लेकिन हुआ यही, और कुछ कवियों ने तो उसका दुरुपयोग भी किया।

असल बात यह है कि इस प्रकार की भावना का आधार आलंबनगत है। भक्त कवियों की कविता के आलंबन राधा-कृष्ण है, इसलिए उनका शृंगार-वर्णन भी दिव्य और अलौकिक है। जब कवियों की दृष्टि राधा-कृष्ण से हट कर लौकिक आलंबन अर्थात् नायिका-नायक पर जाने लगी, तब उनके द्वारा लौकिक शृंगार की कविता होने लगी और कालांतर में उसका रूप भी विकृत होने लगा।

यह बात हिंदुओं तक ही सीमित नहीं रही। मुसलमान कवियों में भी इसी प्रकार की प्रतिक्रिया हुई। इस्लाम धर्म के अंतर्गत सूफी सतों की उपासना भी प्रेम-पंथ की है। वे स्त्री-पुरुष के रूप में परमात्मा की भक्ति का उपदेश देते हैं। सूफी कवियों द्वारा रचे हुए प्रेमाख्यानो में इसी उपासना-पद्धति का प्रतिपादन किया गया है। जहाँ हिंदू और मुसलमान दोनों के सहयोग से भक्ति-भावना का प्रचार हुआ, वहाँ उपर्युक्त कारण से दोनों पर उसकी प्रतिक्रिया भी हुई। जिस प्रकार आलंबन-भेद से हिंदुओं द्वारा लौकिक नायक-नायिकाओं का कथन होने लगा, उसी प्रकार मुसलमानों द्वारा आशिक-माशूको की शायरी होने लगी !

ब्रजभाषा-साहित्य का उदय और उत्थान मुसलमानी शासन में हुआ है। हिंदुओं के अतिरिक्त मुसलमान कवियों ने भी ब्रजभाषा साहित्य की उन्नति में योग दिया है। इसके साथ ही मुसलमान बादशाहों और सरदारों ने आरम्भ से ही ब्रजभाषा-काव्य को प्रश्रय दिया है। इन सब कारणों ने भी ब्रजभाषा के शृंगार साहित्य पर अत्यधिक प्रभाव डाला है।

रीति-काल में इस देश के शासक जहाँगीर और शाहजहाँ जैसे विलास प्रिय मुगल सम्राट थे जो अपने महान् ऐश्वर्य और शृंगारिक जीवन के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके ठाठ-बाट और ऐशो-आराम का चक्का उनके संपर्क में आने वाले हिंदू राजाओं और सरदारों को भी लग गया। इसका प्रभाव उन मुसलमान बादशाहों एवं हिंदू नरेशों के आश्रय में रहने वाले कवियों के काव्य पर भी पड़ा, जिसकी शैली भक्ति-कालीन कवियों से भिन्न होती स्वाभाविक थी।

कवि गण सदा से ही राज-दरबारों की शोभा माने गये हैं। प्रत्येक राजा के दरबार में कवि का होना आवश्यक था। यह नियम अति प्राचीन काल से चला आता है। बड़े-बड़े हिंदू राजाओं द्वारा अपने दरबार में सुप्रसिद्ध कवियों को आश्रय देकर उनको सम्मानित करने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। मुसलमान बादशाहों और नवाबों ने भी इस पृथा को प्रचलित रखा। यही कारण है कि अकबर और उनके परवर्ती बादशाह, उमराव, नवाब और हिंदू राजाओं द्वारा भी ब्रजभाषा के कवियों को प्रश्रय दोनों का उल्लेख मिलता है।

दरबारी कवि को अपने आश्रयदाता की रुचि का ध्यान रख कर ही कविता करनी पड़ती है, तभी उसकी वहाँ गुज़र हो सकती है। मुसलमानी शासन में उच्च धार्मिक जीवन का महत्व अवश्य कम हो गया था। जो महात्मा धार्मिक रीति से जीवन-यापन कर रहे थे, वे राज-दरबार की मान-प्रतिष्ठा से कोसों दूर थे। ऐसे त्यागी महात्मा, जो अपनी काव्य-रचना द्वारा किसी से मान-प्रतिष्ठा अथवा धन-संपत्ति प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखते थे, संख्या में बहुत थोड़े थे। अधिकांश कवियों को अपने भरण-पोषण के लिए राज्याश्रय की आवश्यकता होती थी और अपने आश्रयदाता का गुणानुवाद अथवा उसकी रुचि के अनुसार काव्य-रचना करना भी उनके लिए आवश्यक था।

इस प्रकार उस समय की धार्मिक भावना और राजकीय परिस्थिति के कारण ब्रजभाषा का दिव्य एवं अलौकिक शृंगार लौकिक-शृंगार में परिवर्तित हो गया।

शृंगारिक काव्य का चरित्र पर प्रभाव —

शृंगार रस के काव्य पर कभी-कभी यह आक्षेप किया जाता है कि इसके द्वारा विषयासक्ति और कामुकता को उत्तेजना मिलती है, जिसके कारण मानव-चरित्र को अवनत होने का अवसर प्राप्त होता है। यह बात सिद्धांत रूप से नहीं कही जा सकती। चरित्र को उन्नत व अवनत बनाने का दायित्व कवि की अभिरुचि और तत्कालीन स्थिति पर ही निर्भर है। इसके लिए शृंगारिक कविता को उत्तरदायी नहीं बनाया जा सकता। ब्रजभाषा शृंगार रस के कवियों में दोनों ही प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं, जो इस प्रकार की कविता द्वारा अपने चरित्र को उन्नत भी बना सके थे और अवनत भी।

रसखान और घनानंद ऐसे कवि थे, जो आरंभ में विषयी और कामुक थे। गदे और बाजारू प्रेम के वशीभूत होते हुए भी उन्होंने अपने जीवन को उन्नत किया और अपने हृदयगत प्रेम-भाव को पूरी लगन के साथ भगवान् के चरणों में लगा दिया, जिसके फल स्वरूप उनका काव्य लौकिक शृंगार की सीमा को पार कर अलौकिक हो गया। उन दोनों महानुभावों ने प्रेम-रस पूर्ण अत्यंत उच्च श्रेणी की कविता की है। इसके विपरीत परवर्ती काल में कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जिनमें विलासिता और कामुकता के प्रभाव से कतिपय कविगण लौकिक शृंगार के निम्नतम धरातल पर जा पहुँचे थे। आलम और बोधा के नाम इस संबन्ध में लिये जा सकते हैं। यद्यपि उनकी कविता भी प्रेम-रस पूर्ण है, तथापि उनका आदर्श निम्न कोटि का है।

क्या इस प्रकार के कवि निंदा के पात्र हैं ?

जिस काल का वर्णन ऊपर किया गया है, उस समय समाज में कुछ ऐसी धारा प्रवाहित हो रही थी, जिसके कारण विषय रस से शरावीर कविता का ही आदर होने लगा था ! प्रचलित परिपाटी के विरुद्ध जाना हर एक व्यक्ति का कार्य भी नहीं है। केवल भूषण जैसे कवि ही प्रचलित पद्धति के विरुद्ध काव्य-निर्माण कर सकते थे, क्योंकि उनको शिवाजी और छत्रशाल जैसे वीर-पुंगव नरेशों का आश्रय मिला था। अधिकांश कविगण देश, काल, पात्र की विवशता के कारण कामुकता के प्रवाह में बह रहे थे।

यदि कविगण उस प्रचलित प्रवाह के विरुद्ध जाने की चेष्टा करते तो उस समय के विषय-लोलुप नरेशों द्वारा उनको कदापि प्रश्रय नहीं मिलता, जिसके फल स्वरूप ब्रजभाषा-काव्य का जो विस्तार उस विकृत युग में हुआ

था, वह कदापि नहीं हो पाता। इन बातों पर विचार करने से उस समय के कविगण विषय-रसपूर्ण काव्य-रचना के लिए भी निंदा अथवा अनाद के पात्र नहीं हैं। उनकी विवशता जन्य काव्य-रचना पर सहानुभूति पूर्वक ही विचार करना चाहिए।

ब्रजभाषा-शृंगार-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ काल—

सं० १७०० वि० के पश्चात् साहित्य का वह समय आता है, जिसे इतिहास-कारों ने 'रीति काल' कहा है। यद्यपि भक्ति-काल में ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की यथेष्ट उन्नति हो चुकी थी, तथापि रीति-काल में वह अपने अभ्युदय की चरम सीमा पर पहुँच गया।

इस स्वर्ण काल में जिन सैकड़ों कवियों ने अपनी कृतियों से ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य को अलंकृत किया है, उनमें मतिराम, विहारी, सेनापति, देव, दास, घनानंद और पद्माकर मुख्य हैं। सूरदासादि भक्त कवियों के अतिरिक्त इन साहित्य-शिल्पियों के उद्योग से भी ब्रजभाषा शृंगार-साहित्य के उस सुंदर भवन का निर्माण हुआ है, जो दो शताब्दियों के पश्चात् भी काल के क्रूर कुशाराघात को सहन करता हुआ अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है।

'रीति-काल' ब्रजभाषा साहित्य का सर्वश्रेष्ठ काल है। प्रसृत पुस्तक का विषय भी इसी काल की रचना-प्रणाली से संबंध रखता है, अतः आगामी परिच्छेद में ब्रजभाषा के रीति-साहित्य का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

† “विषय-रस में शराबोर कविता में भी रमणीयता है, इसलिए चाहें वह उपयोगिनी न हो और चाहे उसके द्वारा समाज में किसी प्रकार के कुरुधि के भावों को आश्रय मिला हो, परंतु वह कविता अवश्य है, कविता-क्षेत्र से उसका बहिष्कार नहीं किया जा सकता। इन्हीं कवियों ने यदि प्रेम-भक्ति का दिव्य चित्र खींचा होता, तो कता बात थी। वे ऐसा न कर सके, इसका खेद है, पर उन्होंने जो कुछ किया, उसके लिए उनको शाप देने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने प्रतिकूल समय में कविता के दीपक को बुझने से तो बचाया; क्या हुआ, जो बुरे तेल के कारण दीपक से कुछ मलिन धुँआ भी निकला।”

—“मतिराम ग्रंथावली”

ब्रजभाषा का रीति-साहित्य



रीति-साहित्य की परिभाषा —

“रीति” शब्द का अर्थ है—प्रकार, ढंग अथवा मार्ग, किंतु काव्य के साथ संबंधित होने पर ‘काव्य-रीति’ अथवा केवल ‘रीति’ का अभिप्राय काव्य-शास्त्र के विभिन्न अंशों से होता है। सुप्रसिद्ध साहित्य-महारथी सेठ कन्हैयालाल जी पोद्दार ने रीति-ग्रंथों का अभिप्राय इस प्रकार लिखा है—

“जिनके अध्ययन से काव्य का स्वरूप एवं रहस्य तथा काव्य के रस, ध्वनि, अलंकार आदि भेदों का ज्ञान एवं दोष गुण के विवेचन की शक्ति उत्पन्न हो, उन ग्रंथों को रीति-ग्रंथ कहते हैं।”

इस प्रकार काव्य-लक्षण, भाव-भेद, रस-भेद, नायक-नायिका-भेद, नख-शिख, षट्छतु, ध्वनि, अलंकार, पिगल और काव्य के गुण-दोष आदि संपूर्ण काव्यांगों का विवेचन करने वाले ग्रंथ समूह को ‘रीति-साहित्य’ कहते हैं।

ब्रजभाषा-शृंगार-साहित्य की दो धाराएँ—

रीति साहित्य की उपर्युक्त परिभाषा को देखते हुए यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की दो प्रमुख धाराएँ हैं, जिनको ‘रीतिमुक्त’ और ‘रीतिवद्ध’ कहा जा सकता है। इन दोनों धाराओं में भी प्रत्येक के धार्मिक और लौकिक दो दो रूप हैं। रीतिमुक्त लौकिक शृंगार को प्राकृत-अपभ्रंश की परंपरा के कारण हिंदी के आरंभिक कवियों ने ही अपना लिया था। हिंदी साहित्य के आदि युग की वीर गाथाओं में इसी प्रकार का शृंगार वर्णन दिखलाई देता है। प्राकृत-अपभ्रंश को चमत्कारपूर्ण मुक्तक काव्य-शैली सीधी ब्रजभाषा में न आकर प्राकृत से संस्कृत में होती हुई ब्रजभाषा-साहित्य में आई है। बिहारीलाल और उनके जैसे अन्य कवियों ने इस प्रकार की रचना द्वारा ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य की अभिवृद्धि की है। यह चमत्कारपूर्ण शैली भी ब्रजभाषा-काव्य में आने पर रीति से अधिक प्रभावित हो गई। बिहारी सतसई पर रीति-धारा का स्पष्ट प्रभाव है, यद्यपि वह स्वयं कोई रीति-बद्ध रचना नहीं है।

† संस्कृत साहित्य का इतिहास।

ब्रजभाषा साहित्य की रीतिवद्ध धागा आरम्भ ने ही संस्कृत-साहित्य की ओर झुकी और वही से उसने आवश्यक जीवन-तत्त्व प्राप्त किया। रीतिवद्ध धारा में लौकिक शृंगार-साहित्य का प्राधान्य है। इस धारा का धार्मिक रूप नगण्य है। सूरदास आदि भक्त कवियों के काव्य में रीति-धारा का भी कुछ आभास मिलता है, किन्तु वह नाम मात्र को है।

रीति-साहित्य का आधार—

ब्रजभाषा की उत्पत्ति शौरसेनी नागर अपभ्रंश से होने पर भी उसके साहित्य पर जितना प्रभाव संस्कृत साहित्य का पड़ा है, उतना प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं के साहित्य का नहीं। ब्रजभाषा का रीति-साहित्य तो एक प्रकार से संस्कृत की ही देन है। इस साहित्य के मूल तत्व—रस, अलंकार, गुण, रीति, ध्वनि आदि काव्यांगों का मूल आधार संस्कृत साहित्य ही है। यह दूसरी बात है कि ब्रजभाषा के काव्याचार्यों ने इन विषयों का अपनी पद्धति के अनुसार घटा-बढ़ा कर वर्णन किया है। ब्रजभाषा का छंदशास्त्र भी मूल रूप में संस्कृत से ही लिखा गया है, किन्तु छंदों के व्यवहार में विशेष सादृश्य नहीं है। संस्कृत में प्रायः वर्ण-छंदों में अतुकांत कविता होती है, किन्तु ब्रजभाषा कवियों ने विशेष रूप से मात्रिक छंदों में तुकांत कविता की है। इस प्रकार पद्धति और व्यवहार में कुछ भेद होने पर भी ब्रजभाषा के समूचे रीति-साहित्य का आधार संस्कृत साहित्य है, अतः सन्निहित रूप से उसके विकास का विवेचन किया जाता है।

संस्कृत काव्यशास्त्र का विकास—

संस्कृत साहित्य में भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' एक प्राचीन ग्रंथ है, जो अभिनय से संबंधित होने पर भी काव्यशास्त्र का भी सर्व प्राचीन ग्रंथ माना जाता है। इसमें नाटक, काव्य एवं संगीत आदि विषयों का सांगोपांग वर्णन हुआ है। इसी ग्रंथ के आधार पर संस्कृत के काव्याचार्यों ने अपनी काव्य-समीक्षा का आरम्भ किया है। नाट्यशास्त्र अभिनय संबंधी ग्रंथ है, और उसका प्रधान विवेच्य विषय 'रस' है। नाट्यशास्त्र की परिपाटी पर जिन नाटक ग्रंथों की रचना हुई, उनमें 'रस' को प्रथम दिया गया, इसलिए भरतमुनि के शताब्दियों पश्चात् तक काव्य और नाटकों में रस का ही साम्राज्य रहा।

विक्रम की छठी शताब्दी के पश्चात् संस्कृत साहित्य में काव्य-रचना की दूसरी पद्धति आरंभ हुई । उस समय के कविगण नाटक एवं काव्यों की धारावाहक रचना की अपेक्षा स्फुट पद्यों में उक्ति-चमत्कार पर विशेष ध्यान देने लगे । उनकी दृष्टि में रस की अपेक्षा अलंकारों का विशेष महत्व था । प्राचीनता की दृष्टि से अलंकार विषय भी रस का ही समकालीन है, क्योंकि उसका आरंभ भी भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र से हुआ था । भरत ने नाम मात्र को चार अलंकार लिखे थे और उन्होंने उन पर ध्यान न देकर रस का ही विशेष रूप से विवेचन किया था, किंतु इस काल का प्रधान विषय अलंकार था ।

अलंकार विषय का वास्तविक प्रथम आचार्य 'भामह' है, जिसका प्रसिद्ध ग्रंथ "काव्यालंकार" इस विषय की प्रामाणिक रचना है । उसका समय छठी शताब्दी के लगभग है । भामह के पश्चात् काव्यशास्त्र का प्रसिद्ध आचार्य 'दंडी' हुआ, जिसने अलंकारों के साथ काव्य के अन्य अंग-रीति, गुण आदि का भी विवेचन किया है । दंडी ने अलंकारों का जो रूप खड़ा किया था, वह परवर्ती आचार्यों को मान्य नहीं हुआ । दंडी के पश्चात् आठवीं शताब्दी के लगभग 'उद्भट' और 'वामन' नामक दो प्रसिद्ध आचार्य हुए । उद्भट का मत प्रायः भामह के अनुकूल है । वामन ने अलंकार और अन्य काव्यांगों के अतिरिक्त 'रीति' का विशद विवेचन किया है । उसके मतानुसार काव्य की आत्मा वैदर्भी, गौडी और पांचाली रीतिचाँ है । यह मत भी परवर्ती आचार्यों को मान्य नहीं हुआ । इसके पश्चात् 'रुद्रट' नामक एक महान् आचार्य हुआ, जिसने भी अलंकारों का विशद विवेचन किया है ।

अब तक रस, अलंकार और रीति विषयों का महत्व मानते हुए आचार्यों ने अपने-अपने मतानुसार काव्यांगों का विवेचन किया था, किंतु उस काल में प्रधानता अलंकार विषय की थी । अलंकार अपने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता था । इसके पश्चात् नवमी शताब्दी के लगभग एक विचित्र परिवर्तन हुआ और काव्य के मुखांग रस, अलंकार और रीति के स्थान पर 'ध्वनि' नामक नवीन मत का प्रतिपादन हुआ । 'ध्वनि' सिद्धांत के प्रवर्तक एक अज्ञातनामा धुरंधर विद्वान् थे, जिनकी मूल कारिकाओं पर श्री आनंदवर्धनाचार्य ने विवेचना पूर्ण वृत्ति लिखकर अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ "ध्वन्यालोक" की रचना की है । इसी मत का प्रतिपादन बाद में अभिनवगुप्त जैसे धुरंधर विद्वान ने भी किया था ।

भामह, उद्भट और दंडी का अलंकार सिद्धांत और वामन का रीति सिद्धांत इस नवीन 'ध्वनि' मत के सन्मुख महत्वशून्य हो गया और जिस 'रस' का महत्व महामुनि भरत के समय से चला आ रहा था, वह भी ध्वनि के सामने दब सा गया। ध्वनिकारो ने रस को ध्वनि-प्रकरण के अंतर्गत मान कर उसे 'सर्वोत्तम ध्वनि' लिखा है। इस प्रकार पिछले आचार्यों के मतों को दबाकर ध्वनिकारो ने अपना अक्षय प्रभाव स्थापित कर दिया। उनके मतानुसार काव्य का सौन्दर्य व्यंग्यार्थ पर निर्भर है और व्यंग्यार्थ को ही 'ध्वनि' कहते हैं, इसलिए काव्य की आत्मा 'ध्वनि' है।

इसके पश्चात् दसवीं शताब्दी के लगभग 'राजशेखर' और 'धनंजय' नामक दो प्रसिद्ध आचार्य हुए। राजशेखर ने "काव्य मीमांसा" में काव्य के सभी अंगों का आलोचनात्मक रीति से विशद विवेचन किया है और धनंजय ने महामुनि भरत के मतानुसार अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ "दशरूपक" में नाट्य विषय का प्रतिपादन किया है। ब्रजभाषा काव्य के आचार्यों में केशवदास ने दंडी के अतिरिक्त राजशेखर के मत का भी उपयोग किया है। ब्रजभाषा नायिका-भेद के कथन में भरत के नाट्यशास्त्र और धनंजय के दशरूपक से सहायता ली गई है।

बारहवीं शताब्दी के लगभग 'कुंतल' नामक आचार्य ने "वक्रोत्तिजीवित" ग्रंथ लिख कर एक नवीन सिद्धांत 'वक्रोक्ति' को चलाने की चेष्टा की। यह मत ध्वनि सिद्धांत के विरुद्ध था, इसलिए भामह, दंडी और वामन के समान कुंतल का मत भी मान्य न हो सका। इसी समय के लगभग संस्कृत साहित्य का महान् आचार्य 'मम्मट' हुआ, जिसने पिछले सभी आचार्यों के मतों का सामंजस्य करते हुए नाना सिद्धांतों की गहन व्याख्या द्वारा काव्यशास्त्र का अपूर्व विवेचन किया है। मम्मट का सुप्रसिद्ध ग्रंथ "काव्य प्रकाश" है, जिसका उपयोग ब्रजभाषा आचार्यों ने विशेष रूप से किया है।

ध्वनि-सिद्धांत के सन्मुख अन्य काव्यांगों के सदृश अलंकार विषय भी महत्वशून्य हो गया था, किंतु बारहवीं शताब्दी के लगभग 'रुय्यक' ने अपने "अलंकार सर्वस्व" द्वारा उसके महत्व को पुनः स्थापित करने का उद्योग किया। इसी समय के लगभग जयदेव नामक महान् आचार्य ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ "चंद्रालोक" की रचना की। 'अप्पय दीक्षित' ने सोलहवीं शताब्दी में चंद्रालोक के पंचम मयूख में वर्णित अलंकार प्रकरण की विशद व्याख्या अपने ग्रंथ "कुवलयानन्द" में की है। ब्रजभाषा आचार्यों ने जयदेव और अप्पय दोनों के ग्रंथों से सहायता ली है। यह जयदेव गीतगोविंदकार जयदेव से भिन्न है।

चौदहवीं शताब्दी के लगभग आचार्य 'विश्वनाथ' ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ "साहित्य-दर्पण" की रचना की थी, जिसमें काव्य के समस्त अंगों का विस्तृत विवेचन हुआ है। इस ग्रंथ की यह विशेषता है कि श्रव्य और दृश्य दोनों प्रकार के काव्यांगों का एक ही स्थान पर विशद वर्णन है। ब्रजभाषा के आचार्यों ने इस ग्रंथ का भी पूर्ण उपयोग किया है।

भानुदत्त संस्कृत-साहित्य में 'नायिकाभेद' का एक मात्र आचार्य है। यद्यपि काव्यशास्त्र के आरंभिक ग्रंथ नाट्यशास्त्र और तत्पश्चात् अग्नि-पुराण में इस विषय का कुछ उल्लेख हुआ है; तदनंतर रुद्रट, धनंजय, भोज, मम्मट और रुच्यक ने भी इस विषय का थोड़ा-बहुत विवेचन किया है, तथापि भानुदत्त ने अपनी "रसमञ्जरी" में इसका अपेक्षाकृत अधिक वर्णन किया है। भानुदत्त की अन्य रचना "रसतरंगिणी" है। ब्रजभाषा के आचार्यों ने नायिका-भेद एवं रस-भेद के कथन में इन दोनों ग्रंथों का विशेष रूप से उपयोग किया है। भानुदत्त का समय चौदहवीं या सोलहवीं शताब्दी माना जाता है।

पंडितराज 'जगन्नाथ' का "रसगंगाधर" संस्कृत काव्यशास्त्र का अंतिम सर्वमान्य ग्रंथ है, जिसकी रचना मुगल सम्राट शाहजहाँ के काल में हुई थी। इसका समय विक्रम की सत्तरहवीं शताब्दी है, जब कि ब्रजभाषा रीति-साहित्य की यथेष्ट उन्नति हो चुकी थी। यह ग्रंथ अपने विषय का ऐसा महत्वपूर्ण है कि ब्रजभाषा के आचार्यों ने इसके मत का भी उपयोग किया है।

संस्कृत साहित्य में विषय-प्रतिपादन के लिए शास्त्रार्थ और खंडन-मंडन की प्रणाली अति प्राचीन काल से प्रचलित है। प्रत्येक आचार्य ने अन्य आचार्यों के मतों की आलोचनात्मक समीक्षा द्वारा अपने मत को श्रेष्ठ प्रतिपादित किया है, इसलिए वहाँ पर रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति और ध्वनि नामक पाँच वर्ग अथवा संप्रदाय बन गये हैं। प्रत्येक आचार्य इन वर्गों में से किसी एक को मुख्य मानता हुआ दूसरों को उसके अंतर्गत मानता है, इसलिए काव्य के मुख्य उद्देश्य के संबंध में उनमें मतभेद है। किंतु शताब्दियों के शास्त्रार्थ के पश्चात् काव्य का मुख्य हेतु व्यंग्यार्थ निश्चित होकर ध्वनि-संप्रदाय का एक-छत्र राज्य स्थापित हो गया है। गुणीभूत व्यंग्य और अलंकारों का महत्व ध्वनि से न्यून समझा गया है। इस प्रकार काव्य में ध्वनि का स्थान सर्वश्रेष्ठ, इसके पश्चात् गुणीभूत व्यंग्य और तत्पश्चात् अलंकारों का स्थान निश्चित हुआ है।

ब्रजभाषा साहित्य में खंडन-मंडन की प्रणाली विशेष रूप से प्रचलित नहीं हुई। इसके आचार्यों को संस्कृत साहित्य के क्रमिक विकास के कारण अपने मत के प्रतिपादन करने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

ब्रजभाषा रीति-साहित्य का आदर्श—

संस्कृत रीति-साहित्य के विवरण से स्पष्ट है कि ब्रजभाषा की उत्पत्ति से पूर्व ही वह अत्यंत उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुका था। जब ब्रजभाषा में काव्य ग्रंथों का निर्माण प्रचुर परिमाण में होने लगा, तब विद्वानों का ध्यान काव्यशास्त्र के ग्रंथ-निर्माण की ओर भी गया। ब्रजभाषा कवियों के लिए शताब्दियों से प्रस्तुत अपार संस्कृत रीति-साहित्य सहज ही सुलभ था, इसलिए उन्होंने ब्रजभाषा रीति-ग्रंथों की रचना में संस्कृत ग्रंथों की अनुपम साहित्य-सामग्री का पूरा-पूरा उपयोग किया है।

ब्रजभाषा रीति-साहित्य के ग्रंथों में काव्य के दसों अंगों का विवेचन करने की चेष्टा की गई है, किंतु उनमें अलंकार, रस और नायिकाभेद विषयों का प्राधान्य है। काव्यशास्त्र का अलंकार प्रकरण अत्यंत विस्तृत और जटिल है। संस्कृत साहित्य में इस विषय पर बड़ी विवेचना पूर्वक विचार किया गया है। ब्रजभाषा साहित्य में यह विषय संस्कृत ग्रंथों के आधार पर ही लिखा गया है। संस्कृत के आचार्यों ने यह विषय जहाँ तक बढ़ाया था, उससे आगे ब्रजभाषा के आचार्य नहीं जा सके; बल्कि यह कहना चाहिए कि वे वहाँ तक भी नहीं पहुँच सके। कुछ आचार्यों ने नये अलंकारों की उद्भावना करने की भी चेष्टा की, किंतु उनका विवेचन संस्कृत आचार्यों के समान मौलिक, स्पष्ट और पांडित्यपूर्ण नहीं हुआ। कहीं-कहीं तो उनका कथन भ्रान्तिपूर्ण भी हो गया है। ब्रजभाषा रीति-साहित्य का अलंकार प्रकरण संस्कृत साहित्य पर आधारित होने पर भी उसकी कोटि का नहीं हो सका।

ब्रजभाषा साहित्य का अलंकार विषय अधिकतर अप्रत्यक्ष दीक्षित के 'कुवलयानंद' ग्रंथ पर आधारित है। केशवदास आदि ने ढंड़ी कृत 'काव्यादर्श' जैसे संस्कृत साहित्य के पुराने ढर्रे के ग्रंथों का भी उपयोग किया है, किंतु अधिकांश व्यक्तियों ने जयदेव के 'चंद्रालोक' और अप्रत्यक्ष दीक्षित के 'कुवलयानंद' जैसे नवीन परिपाटी के ग्रंथों का सहारा लिया है।

रस-प्रकरण के विवेचन लिए संस्कृत साहित्य के काव्यप्रकाश, साहित्य-दर्पण, चंद्रालोक, शृंगारप्रकाश आदि ग्रंथों से सहायता ली गई है। रस विषय पर लिखते हुए उन्होंने नव रसों का विस्तृत विवेचन नहीं किया है, बल्कि अन्य रसों का संक्षिप्त वर्णन कर शृंगार रस पर अधिक ध्यान दिया है। शृंगार रस में भी उन्होंने नायिकाभेद के वर्णन में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली है। नव रस का थोड़ा सा वर्णन कर रस-प्रकरण में नायिकाभेद का अधिक विस्तार करने में ब्रजभाषा कवियों को अधिक सुविधा ज्ञात हुई है। इस प्रकार का कथन उन्होंने भानुदत्त कृत 'रसतरंगिणी' के आधार पर किया है। इसी ग्रंथ के आधार पर ब्रजभाषा रीति-साहित्य में अनेक रस-ग्रंथों की रचना हुई है। दशांग काव्य पर लिखने वालों ने काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण का आधार लिया है।

ब्रजभाषा रीति साहित्य में सबसे अधिक विचार नायिकाभेद पर किया गया है। इस विषय के वर्णन के लिए भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र', धनंजय कृत 'दशरूपक', विश्वनाथ कृत 'साहित्यदर्पण' और भानुदत्त कृत 'रसमंजरी' का आधार लिया गया है। भानुदत्त के दोनों ग्रंथ 'रसतरंगिणी' और 'रसमंजरी' ब्रजभाषा कवियों के विशेष रूप से मार्ग-प्रदर्शक रहे हैं। ब्रजभाषा रीति-साहित्य का नायिकाभेद ही एक ऐसा विषय है, जो मूलतः संस्कृत साहित्य पर आधारित होते हुए भी ब्रजभाषा के कवियों एवं आचार्यों द्वारा बहुत आगे बढ़ाया गया है। इस विषय में वे लोग अपने अग्रज संस्कृत साहित्यकारों को बहुत पीछे छोड़ गये हैं।

ब्रजभाषा रीति-साहित्य का आरंभ—

ब्रजभाषा रीति-साहित्य का कब से आरंभ हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, किंतु विक्रम की १६ वीं शताब्दी में इस प्रकार के ग्रंथों की रचना निश्चित रूप से होने लगी थी। ब्रजभाषा रीति-साहित्य के अब तक उपलब्ध ग्रंथों में कृपाराम कवि कृत 'हिततरंगिणी' सबसे प्राचीन है। इसकी रचना स० १५९८ की माघ शु० ३ को हुई थी। 'हिततरंगिणी' की रचना में कृपाराम ने भरतमुनि के ग्रंथ का आधार लेने की बात लिखी है[†], किंतु इसकी रचना उन्होंने अधिकतर भानुदत्त के

† 'कृपाराम यो कहत है, भरत-ग्रंथ अनुमानि।'

आधार पर की है। इस पुस्तक में नायिकाभेद का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। रीति-साहित्य की सर्व प्रथम उपलब्ध रचना में नायिकाभेद का ऐसा सर्वांगपूर्ण वर्णन होने से ब्रजभाषा-कवियों द्वारा इस विषय को इतना महत्व दिये जाने की बात समझ में आ सकती है।

कृपाराम के पश्चात् अष्टछाप के भक्त-कवियों द्वारा रची हुई रीति-रचनाएँ प्राप्त होती हैं। यदि 'साहित्य-लहरी' को सूरदास की रचना मान लिया जाय, तब तो कृपाराम के पश्चात् सूरदास ही रीति-ग्रंथ रचयिता के रूप में उपस्थित होते हैं। हिंदी साहित्य के इतिहासकारों एवं सूर-समीक्षकों ने अब तक 'साहित्य-लहरी' को सूरदास की रचना मान कर उसके एक पद के आधार पर उनका काल-निर्णय करने की चेष्टा की है। इस पद से ज्ञात होता है कि साहित्य-लहरी की रचना वैशाख की अक्षय तृतीया, रविवार, कृतिका नक्षत्र और सुकर्म योग में हुई थी। इस पद में प्रयुक्त 'रसन' शब्द का अर्थ लगाने में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ लोग इसका अर्थ शून्य (०), कुछ एक (१) और कुछ दो (२) लगाते हैं। इस प्रकार साहित्य-लहरी का रचना-संवत् भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा १६०७, १६१७ और १६२७ बतलाया जाता है। प्रो० मुंशीराम शर्मा 'रसन' का अर्थ दो (२) लगाते हैं। इसकी पुष्टि में उनका कथन है कि पद में प्रयुक्त 'सुबल' का पर्यायवाची वृषभ संवत् १६२७ में पड़ा था*। इस मत का खंडन करते हुए श्री महावीरसिंह गहलोत गणित द्वारा साहित्य-लहरी का निर्माण संवत् १६१७ सिद्ध करते हैं†।

‡ मुनि पुनि रसन के रस लेख ।

दसन गौरीनद कौ लिखि, सुबल संबन पेख ॥

नंदनदन मास, छै तैं हीन तृतीया, बार—

नंदनंदन—जनम तैं है बान, सुख आगार ॥

तृतीय रीछ, सुकर्म योग विचार सूर नवीन ।

नदनदनदास हित साहित्य-लहरी कीन ॥

—“साहित्य-लहरी”

* 'सूर सौरभ' प्रथम भाग पृ० ८

† 'सम्मेलन पत्रिका' पौष सं० २००२

साहित्य-लहरी की रचना चाहे सं० १६१७ में हुई और चाहे सं० १६२७ में, प्रश्न तो यह है कि यह सूरदास की रचना है या नहीं ? सूरदास की भक्तिपूर्ण रचना-शैली से इस पुरतक की रीति-प्रधान शैली का सामंजस्य न होने के कारण अब कुछ विद्वानों की यह धारणा हो रही है कि साहित्य-लहरी सूरदास की रचना नहीं है। यदि इस पुस्तक को सूरदास की रचना नहीं मानते हैं, तब भी अपने रचना-काल के कारण वह ब्रजभाषा रीति-साहित्य की आरम्भिक कृतियों में कृपाराम की 'हिततरंगिनी' के बाद मानी जावेगी। वैसे सूरदास ने सूरसागर के अनेक पदों द्वारा रीतिकालीन कवियों की सी रचना-प्रवृत्ति का भी परिचय दिया है, वद्यपि उनके काव्य की मूल प्रेरणा भक्ति है, रीति नहीं।

साहित्यलहरी के प्रत्येक पद में एक अलंकार और एक नायिका का उल्लेख किया गया है। अतः में रस-भेद और भाव-भेद का भी कथन है। इन काव्यशास्त्रोक्त विषयों के उसमें लक्षण नहीं दिये गये, केवल उदाहरण ही दिये गये हैं। इसलिए 'साहित्य लहरी' रीतिशास्त्र की पुरतक न होकर रीति-रचना मात्र है।

साहित्यलहरी के पश्चात् नंददास कृत "रसमंजरी" भी ब्रजभाषा रीति-साहित्य की सुप्रसिद्ध आरंभिक कृति है। नंददास महात्मा सूरदास के अनंतर अष्टछाप के प्रधान कवि हैं। उनकी भक्तिपूर्ण सरस, मधुर और प्रौढ़ रचनाएँ ब्रजभाषा शृंगार-साहित्य की बहुमूल्य कृतियाँ हैं। उनकी रीति विषयक एक मात्र रचना 'रस-मंजरी' है, जिसमें भानुदत्त कृत संस्कृत रसमंजरी के अनुसार नायिकाभेद का सरस वर्णन हुआ है। नंददास की अन्य रचना "रूप-मंजरी" में भी रीति-रचना शैली का प्रभाव है। इस ग्रंथ में उपपत्ति रस की योजना की गई है। इसमें नायिका-भेद और रस-शास्त्र के अनुकूल अनेक सांगोपांग कथन किये गये हैं। इस कथा-काव्य में पुष्टि संप्रदाय की प्रेम-लक्षणा भक्ति का प्रतिपादन किया गया है, इसलिए इस पर रीति-शैली का प्रभाव होते हुए भी यह रीति-रचना नहीं है। फिर भी इन दोनों पुस्तकों के कारण नंददास रीति साहित्य के कवि माने जा सकते हैं। नंददास का जन्म सं० १५७० के लगभग हुआ था। उन्होंने अनुमानतः सं० १६२० के लगभग 'रस-मंजरी' और 'रूप-मंजरी' की रचना की थी।

नंददास के पश्चात् रहीम का नाम भी रीति-साहित्य के रचयिताओं में गिनाया जा सकता है। वे हिंदी साहित्य में अपने नीति विषयक दोहाओं के लिए प्रसिद्ध हैं, किंतु उनकी शृंगार विषयक रचनाएँ भी बड़ी सुंदर हैं। उनकी रीति विषयक रचना “बरवा नायिका” है, जिसमें नायिकाभेद का बड़ा सुंदर वर्णन किया गया है। यह ग्रंथ ब्रजभाषा में न होकर अवधी बोली में है, किंतु उसके बरवा इतने सरस और सुंदर हैं और उनमें नायिकाओं के उदाहरण इतने स्पष्ट हैं कि हम इस पुस्तक में भी उनके उपयोग करने का लोभ नहीं छोड़ सके हैं। ‘बरवा नायिका’ की रचना अनुमानतः सं० १६४० के लगभग हुई होगी।

नंददास और रहीम के समकालीन मोहनलाल, मनोहर, गंग, गंगाप्रसाद और कर्णेश कवियों की भी रीति-रचनाओं का उल्लेख मिलता है। मोहनलाल और गंगाप्रसाद ने रस-रीति के ग्रंथों की रचना की थी। मोहनलाल की रचना का नाम ‘शृंगार-सागर’ है, किंतु गंगाप्रसाद की रचना के नाम का उल्लेख नहीं मिलता। मनोहर और गंग ने स्फुट छंदों में उत्कृष्ट रचना की है। कर्णेश कवि ने ‘कर्णभरण’, ‘श्रुतिभूषण’ और ‘भूप भूषण’ जैसे ब्रजभाषा के आरंभिक अलंकार-ग्रंथों की रचना की थी। ये सभी कविगण मुगल सम्राट अकबर के राज्य काल में हुए थे और उनमें से कई कवियों का अकबरी दरबार से भी संबंध था। उन सब कवियों का रचना-काल सं० १६२० से १६४० के लगभग है।

सं० १६४० के आसपास बलभद्र और मुनिलाल नामक दो रीति-कवियों का नामोल्लेख मिलता है। बलभद्र सुप्रसिद्ध केशवदास के बड़े भाई थे। उनकी रची हुई ‘नखशिख’ और ‘दूषणविचार’ सुंदर रीति-रचनाएँ हैं। बलभद्र रचित नख-शिख के छंद अपने विषय के अनुपम हैं। मुनिलाल ने सं० १६४२ में अपने रीति-ग्रंथ ‘रामप्रकाश’ की रचना की थी।

उपर्युक्त सभी व्यक्ति ब्रजभाषा रीति-साहित्य के आरंभिक कवि थे। उन्होंने अपने काव्य द्वारा इस प्रकार की रचना का आरंभ कर दिया था, किंतु उनमें संस्कृत रीति-ग्रंथकारों की सी विद्वता और विवेचना-शक्ति नहीं थी। इसीलिए उनको आचार्य न मान कर रीति-कवि माना जाता है।

ब्रजभाषा रीति-साहित्य के वास्तविक प्रथम आचार्य महाकवि केशवदास थे, जिन्होंने अपने विद्वतापूर्ण ग्रंथों द्वारा काव्य-विवेचन का सूत्रपात किया था।

ब्रजभाषा-काव्यशास्त्र के प्रवर्तक केशवदास—

महाकवि केशवदास ब्रजभाषा-काव्यशास्त्र के वास्तविक प्रथम आचार्य थे, जिन्होंने संस्कृत साहित्य के आधार पर अपने रीति-ग्रंथों का निर्माण किया था। उन्होंने सं० १६४८ में “रसिकप्रिया” और सं० १६५८ में “कविप्रिया” नामक प्रसिद्ध ग्रंथों की रचना की थी। इन दोनों ग्रंथों से उनका प्रकांड पांडित्य ज्ञात होता है।

केशवदास संस्कृत काव्यशास्त्र के भारी विद्वान और मर्मज्ञ थे, इसलिए वे संस्कृत ग्रंथों में वर्णित काव्यांगों जैसा विशद विवेचन करने में समर्थ हुए हैं। उन्होंने ‘रसिकप्रिया’ की रचना साहित्य-दर्पण और शृंगार-प्रकाश के आधार पर की है और ‘कविप्रिया’ की रचना में प्रसिद्ध अलंकार-वादी दंडी कृत “काव्यादर्श” राजशेखर कृत “काव्यमीमांसा” केशवमिश्र कृत “अलंकार-शेखर” के अतिरिक्त ‘कविकल्पलतावृत्ति’ से भी यथेष्ट सहायता ली है। केशवदास ने इन ग्रंथों पर ही आधारित न रह कर अपने अपूर्व पांडित्य और अद्भुत मेधा शक्ति से काव्यशास्त्र के कुछ नवीन नियमों का भी निर्माण किया है। उन्होंने कुछ नवीन अलंकारों की भी उद्भावना कर कुल ३७ अलंकारों का विवेचन किया है। उनके मतानुसार कविता का मुख्य आधार ही अलंकार है। अलंकार शब्द को उन्होंने उसके व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया है, जहाँ कि काव्य के सभी अंगों का अलंकार में ही समावेश हो जाता है। उनका सिद्धांत है—

‘जदपि सुजाति, सुलच्छनी, सुबरन, सरस, सुवृत्त।
भूषन विनु न बिराजई, कविता, बनिता मित ॥”

केशवदास कृत ‘रसिकप्रिया’ रस-रीति की प्रसिद्ध रचना है, जिसमें रसभेद और नायिकाभेद का कथन हुआ है। ‘कविप्रिया’ में अलंकार-वर्णन की प्रधानता होते हुए भी काव्यशास्त्र की सभी प्रमुख बातें दी गई हैं। यह ग्रंथ बड़ा महत्वपूर्ण है।

केशवदास के अनंतर—

केशवदास ने काव्यशास्त्र पर इतना अधिकारपूर्ण लिखा और उनके पांडित्य की कुछ ऐसी धाक जमी कि उनके पश्चात् प्रायः पचास वर्ष तक किसी को इस विषय पर लिखने का साहस ही न हुआ। साहित्य के कुछ

ग्रंथों पर स्फुट रचना अवश्य होती रही। सं० १६५० के पश्चात् मोहनदास ने 'बारहमासा' और हरिराम एवं बालकृष्ण ने क्रमशः 'छंदरत्नावली' और 'रसचंद्रिका' जैसी पिंगल विषय की रचना की।

सं० १६६० में मुबारक ने और सं० १६७६ में लीलाधर ने नख शिख विषय की रचनाएँ कीं, जिनमें मुबारक कृत 'अलकशतक' और 'तिलशतक' प्रसिद्ध पुस्तकें हैं।

सं० १६८८ में सुंदर कवि ने 'सुंदरशंगार' में नायिकाभेद का कथन किया था। यह अपने विषय की उत्कृष्ट रचना है। सुंदर कवि मुगल सम्राट शहजहाँ के दरवारी कवि थे। उन्होंने 'बारहमासा' और 'मिहासन बत्तीसी' नामक दो अन्य पुस्तकें भी रची थी।

सं० १७०६ में सेनापति ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'कवित्त रत्नाकर' की रचना की थी। यह ग्रंथ व्रजभाषा साहित्य की प्रौढ़ रचना है। इसमें अन्य विषयों के अतिरिक्त षट् ऋतुओं पर बड़े टकसाली छंद दिये गये हैं।

केशवदास ने रीति-ग्रंथों का आरंभ अवश्य किया था, किंतु जिसे साहित्य का 'रीति काल' कहा गया है, वह उनसे ५० वर्ष पश्चात् सं० १७०० वि० से आरंभ हुआ। सं० १७०० से १८०० वि० तक काव्यशास्त्र पर अनेक ग्रंथों का निर्माण हुआ और उसके विभिन्न अंग—रस, अलंकार, पिंगल, नायिकाभेद, ऋतु-वर्णन और नखशिख आदि पर भी सैकड़ों कवियों ने अग्रणीत ग्रंथों की रचना की। इस दो सौ वर्ष के समय का उल्लेख इतिहासकारों ने "रीतिकाल" नाम से किया है।

रीतिकालीन आचार्यों का परिवर्तित दृष्टिकोण—

केशव ने भामह, उद्भट और दंडी आदि प्राचीन संस्कृत आचार्यों के मतानुसार अलंकारों को ही प्रमुख मानकर साहित्य की जो परिपाटी चलायी, उसका रीति काल में मान नहीं हुआ। उन प्राचीन आचार्यों का प्रभाव परवर्ती आचार्यों के विवेचना-पूर्ण ग्रंथों द्वारा संस्कृत साहित्य में ही नष्ट हो चुका था और मम्मट आदि दूसरे आचार्यों के मत का मान था। केशवदास के समय तक संस्कृत-साहित्य की इस परिवर्तित धारा ने यथेष्ट बल प्राप्त कर लिया था, फिर न मालूम उन्होंने इस पर ध्यान न देकर उसी पुराने राग को क्यों अलापा, जो अनेक मान्य विद्वानों द्वारा बेसुरा सिद्ध हो चुका था।

संस्कृत साहित्य के सुप्रसिद्ध अलंकाराचार्य अप्पय दीक्षित केशवदास के प्रायः समकालीन थे। संभव है अप्पय कृत 'कुवलयानन्द' का निर्माण तब तक न हुआ हो अथवा वह प्रसिद्धि प्राप्त न कर सका हो; किंतु रुद्रट, भोज, मम्मट, रुय्यक, जयदेव और विश्वनाथ के ग्रंथ केशवदास को निस्संदेह सुलभ थे, क्योंकि ये सभी 'आचार्य' उनके पूर्ववर्ती थे। केशवदास संस्कृत के प्रकांड पंडित थे और साहित्यशास्त्र का उन्होंने गंभीर अध्ययन किया था, अतः यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उक्त आचार्यों के ग्रंथों का उन्होंने अवश्य अवलोकन किया होगा; फिर उनका अनुकरण न कर उन्होंने दंडी आदि प्राचीन आचार्यों की शैली को ही क्यों अपनाया, इसका कारण समझ में नहीं आता। रीतिकाल के अन्य आचार्यों ने केशव के मत पर न चलकर संस्कृत साहित्य के परवर्ती आचार्य आनंदवर्धनाचार्य, मम्मट और विश्वनाथ आदि का ही अनुकरण किया है। ब्रजभाषा साहित्य में अलंकार ग्रंथ जयदेव के 'चंद्रालोक' और अप्पय दीक्षित द्वारा उसके परिवर्द्धित रूप 'कुवलयानन्द' के आधार पर लिखे गये हैं। अन्य काव्यांगों के लिये 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण' आदि से सहायता ली गयी है। इस प्रकार संस्कृत-साहित्य का जो क्रमिक विकास अनेक वर्षों में अनेक आचार्यों की दीर्घ तपस्या के बाद हुआ, उसकी पुनरावृत्ति केशवदास के मत को अमान्य कर ब्रजभाषा के आचार्यों ने अनायास ही कर डाली !

रीति-कालीन कवि और आचार्य—

केशवदास के पश्चात् रीति-काल के प्रमुख आचार्य चिंतामणि त्रिपाठी थे। उन्होंने काव्यशास्त्र का विधि-पूर्वक विवेचन किया है। उनका कविता-काल वि० सं० १७०० के आस-पास है। उन्होंने 'छंदविचार', 'काव्यविवेक', 'कविकुलकल्पतरु', 'काव्यप्रकाश' और 'रसमंजरी' आदि कई रीति-ग्रंथों द्वारा दशांग काव्य का विवेचन किया है।

चिंतामणि त्रिपाठी के तीन भाई—भूषण, मतिराम और जटाशंकर भी सुकवि थे। भूषण ब्रजभाषा साहित्य में वीर रस के सर्व प्रधान कवि है। उन्होंने महाराज शिवाजी और वीरवर छत्रशास्त्र के आश्रय में अपने ओज-पूर्ण काव्य का निर्माण किया था। भूषण ने अपने सुप्रसिद्ध 'शिवराजभूषण' ग्रंथ की रचना स० १७३० वि० के लगभग की थी। यह ग्रंथ अलंकार विषय का है, किंतु इसका महत्व अलंकार-ग्रंथ होने के कारण नहीं, बल्कि वीर रस के अपूर्व काव्य होने के कारण है।

मतिराम रीति-कालीन शृंगारी कवियों में प्रमुख थे। उनके समय में रीति के अंतर्गत 'रस-रीति' पर विशेष जोर दिया जाने लगा और रस-वर्णन में शृंगार को रसरज मान कर उसी को विशेषता देने हुए अन्य रसों का वर्णन संक्षिप्त रूप से होने लगा। शृंगार रस के 'आलंबन नायिका-नायक और उद्दीपन षट् ऋतु आदि पर सुंदर से सुंदर कविताएँ होने लगी। मतिराम ने 'रसरज', 'ललितललाम', 'छंदसार', 'साहित्यसार', 'सतसई' आदि कितने ही ग्रंथों का निर्माण किया था। उनका सब में अधिक प्रसिद्ध ग्रंथ 'रसरज' है, जिसमें उन्होंने नायिकाभेद का सुंदर विवेचन किया है।

जोधपुर नरेश महाराजा जसवंतसिंह ब्रजभाषा साहित्य में अलंकार विषय के सर्व प्रसिद्ध आचार्य थे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'भाषाभूषण' संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध आचार्य जयदेव कृत 'चंद्रालोक' और अप्पय दीक्षित कृत 'कुवलयानंद' की पद्धति और उन्हीं के आधार पर बनाई गई है। इसमें एक ही दोहा में लक्षण और उदाहरण दोनों दिये गये हैं।

काव्य-सौन्दर्य, उक्ति-चमत्कार और भाव-व्यजना की दृष्टि से बिहारीलाल ब्रजभाषा साहित्य में अपनी समता नहीं रखते। उन्होंने दोहा जैसे छोटे छंद में इतना अधिक भाव-गांभीर्य भर दिया है कि उनकी कारीगरी देखते ही बनती है। इस प्रकार की रचना-शैली का आरंभ अब से प्रायः दो हजार पूर्व प्राकृत भाषा में हुआ था। हाल द्वारा सगृहीत 'गाथा-सतसई' इसी शैली की रचना है। इस शैली का जन्म प्राकृत में और विकास संस्कृत में होने पर भी, उसका पूर्ण उत्कर्ष ब्रजभाषा साहित्य में हुआ। बिहारीलाल द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' इसी शैली की सर्वोत्कृष्ट रचना है। बिहारीलाल ने न तो किसी रीति-ग्रंथ की रचना की, और न दूसरे विषय का कोई बड़ा ग्रंथ लिखा, फिर भी एक मात्र सात सौ दोहाओं की इस अत्यंत रचना के बल पर ही वे समस्त कवि-समुदाय के शिरोमणि बने हुए हैं। 'बिहारी सतसई' रीति-धारा से प्रभावित ब्रजभाषा के साहित्य-कोष का वैदीप्यमान उज्ज्वल रत्न है।

सितारा नरेश 'नृप संभु' (कविताकाल सं० १७०७ वि०) सुकवि और कवियों के आश्रयदाता थे। उनका नखशिख-वर्णन बड़ा सुंदर है। कुलपति मिश्र एक प्रमुख आचार्य और सुकवि थे। उन्होंने सं० १७२७ में 'रसरहस्य' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में काव्यशास्त्र का विवेचन किया है। इस ग्रंथ की

रचना में संस्कृत ग्रंथ काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण से विशेष सहायता ली गई है। सुखदेव मिश्र भी इसी काल के प्रसिद्ध आचार्य थे। उन्होंने छंदशास्त्र पर अपनी प्रसिद्ध रचना 'छंदविचार' का निर्माण किया है। उन्होंने कई रीति-ग्रंथों की रचना की थी, जिनमें छंदविचार के अतिरिक्त 'वृत्तविचार', 'रसार्णव' और 'शृंगारलता' मुख्य हैं। उनका कविता काल वि० सं० १७२० से १७६० तक है।

महाकवि देव ब्रजभाषा साहित्य के सर्वश्रेष्ठ शृंगारी कवि और आचार्य थे। उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना द्वारा दशांग कविता का पूर्ण विवेचन किया है। काव्यशास्त्र का ऐसा कोई विषय नहीं, जिस पर देव ने प्रकाश न डाला हो। उनके ७२ ग्रंथ कहे जाते हैं, जिनमें ३० प्रसिद्ध हैं। इन ग्रंथों में 'काव्यरसायन' द्वारा समस्त काव्यांगों का और 'सुखसागरतरंग' द्वारा नायिकाभेद का बड़ा मनोहारी वर्णन हुआ है। उनके 'भावविलास', 'भवानीविलास', 'रसविलास' आदि भी प्रसिद्ध रीति-ग्रंथ हैं। देव ब्रजभाषा साहित्य के युगांतरकारी महाकवि हुए हैं। उनका कविता-काल विक्रम सं० १७४६ से १८०० तक है।

देव के समय तक ब्रजभाषा साहित्य अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच चुका था। बड़े-बड़े आचार्य, महाकवि और काव्य मर्मज्ञों की जैसी बाढ़ उस समय आई थी, वह अभूतपूर्व थी। ब्रजभाषा साहित्य के स्तंभ सुरत मिश्र, घनानंद, श्रीपति, सोमनाथ, दास, तोष, रसलीन, रघुनाथ आदि अनेक सुकवि उसी काल में हुए थे। उनके अनंतर दूलह, बेनीप्रवीन, पद्माकर, ग्वाल, प्रतापसाहि आदि सैकड़ों सुकवियों ने रीति-साहित्य का शृंगार किया है। दो-चार परम प्रसिद्ध कवियों के अतिरिक्त उन सब का संक्षिप्त वर्णन लिखना भी स्थानाभाव से संभव नहीं है, इसलिए उनके नामोल्लेख मात्र से ही संतोष करना पड़ता है।

सोमनाथ ब्रजभाषा के उत्कृष्ट कवि और आचार्य हुए हैं। उन्होंने सं० १७६४ में 'रसपीयूषनिधि' नामक रीति विषयक प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की थी। रसपीयूषनिधि बड़ा ग्रंथ है। उसमें काव्य के समस्त अंगों का मार्मिक विवेचन हुआ है। भिखारीदास उपनाम 'दास' प्रशंसनीय कवि और प्रतिष्ठित आचार्य हुए हैं। उनके ग्रंथ 'काव्यनिर्णय' और 'शृंगारनिर्णय' रीति साहित्य के मान्य ग्रंथ हैं। रसलीन के 'अंगदर्पण' और 'रसप्रबोध' भी प्रसिद्ध रीति-ग्रंथ हैं। दूलह ने 'कविकुलकंठाभरण' के ८१ छंदों में अलंकार विषय को गागर में सागर की तरह भर दिया है। पद्माकर और बेनीप्रवीन

ने रीति-साहित्य के सुंदर ग्रंथों की रचना की है और बाल कवि एवं प्रतापसाहि भी रीति-काल के अंतिम समय में प्रशसनीय कवि हुए हैं।

चिंतामणि त्रिपाठी से आरंभ होकर रीति-धारा का अविरल प्रवाह प्रतापसाहि तक बड़े वेग से बहता रहा। इस २०० वर्ष के काल में रीति और विशेष कर रस-रीति पर इतना साहित्य लिखा गया कि ब्रजभाषा वाङ्मय में अन्य विषयों का अपार भंडार होते हुए भी लोगों को रस-रीति और विशेष कर शृंगार रस की रचनाएँ ही दृष्टिगोचर होती हैं। सं० १६०० वि० के पश्चात् वह समय आता है, जब कि रीति विषयक रचनाओं की न्यूनता और अन्य विषयों की अधिकता होने लगी थी; किंतु प्राचीन परिपाटी ने मुक्तियों के हृदयों पर ऐसा अधिकार जमा रखा था कि जो कवि विशेष रूप से अपनी काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन करना चाहता था, वह रीति-कालीन शैली को ही अपनाता था।

रीति-कालीन कवियों की रचना-प्रणाली और उनका लक्ष—

ब्रजभाषा कवियों ने आरंभ से ही धारावाहक प्रबंध काव्यों की अपेक्षा स्फुट रूप से मुक्तक रचना पर अधिक ध्यान रखा है। भक्तिकाल के कवियों ने भी भक्तिपूर्ण प्रबंध काव्य की अपेक्षा मुक्तक रचना में ही अपने भक्ति-भाव को प्रकट किया था। यही कारण है कि सूरदास जैसे महाकवि का काव्य भी प्रबंध की अपेक्षा अधिकतर मुक्तक की ही श्रेणी में आता है।

रीति-कालीन कवियों ने तो एक मात्र इसी पद्धति पर काव्य-रचना की है। उन्होंने स्फुट छंदों में उक्ति-चमत्कारपूर्ण ऐसा अद्भुत काव्य-कौशल दिखलाया है, जैसा अन्य भाषाओं के साहित्य में कठिनाता से मिल सकेगा। 'हाल' और 'गोवर्धन' ने क्रमशः प्राकृत और संस्कृत में जिन सतसईयों का निर्माण किया था, वे ब्रजभाषा की अमर कृति 'बिहारी सतसई' के काव्य-सौन्दर्य की समता नहीं कर पाती। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य का आधार लेकर भी ब्रजभाषा के रीति कालीन कवियों ने इस दिशा में जिस अनुपम साहित्य का निर्माण किया है, वह काव्य-सौन्दर्य और काव्य-परिमाण दोनों ही दृष्टियों से संस्कृत साहित्य की अपेक्षा अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

काव्य-सौन्दर्य के अतिरिक्त अन्य बातों का विचार किया जाय तो रीति-कालीन कवियों का महत्व कुछ कम हो जाता है। भक्त कवियों के समान उनका आदर्श उच्च धरातल पर नहीं था, इसलिये जहाँ भक्त कवियों का यह सिद्धांत था—

आचार्य जब स्वयं कवि बनने की चेष्टा करता है, तो उससे किसी विशेष साहित्यिक विवेचन की आशा नहीं रह जाती। इसके साथ ही यह आवश्यक भी नहीं है कि काव्य-मर्मज्ञ लक्षणकार सुकवि भी हो और वह सभी उदाहरण एक ही उत्तमता के साथ बना सके। इसका यह फल हुआ कि जो आचार्य केशवदास के समान सुकवि भी थे, वे तो सुदूर उदाहरण उपस्थित कर सके, किंतु निम्न कोटि के कवि काव्यशास्त्र के पूरे पंडित होते हुए भी लक्षणों के साथ उदाहरण गढ़ने की धुन में अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल न हो सके। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य के समान ब्रजभाषा रीति-साहित्य में साहित्यिक विश्लेषण के लिए शास्त्रार्थ और खंडन मंडन की प्रणाली विशेष रूप से प्रचलित नहीं हो सकी। ब्रजभाषा साहित्य के रीति-ग्रंथ रचयिताओं में रीति-कवि ही अधिक हैं, आचार्यों की संख्या बहुत कम है।

रीति-कालीन कवियों की कविता के विषय—

जैसा पहले लिखा जा चुका है, रीति-काल में ब्रजभाषा-साहित्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई थी। उस काल में शृंगार रस का अपूर्व काव्य-कौशल तो दिखलाया ही गया, किंतु अन्य विषयों पर भी यथेष्ट काव्य-रचना हुई। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, नीति, कथा-वार्ता, उजोतिष, वैद्यक आदि अनेक विषयों की रचना के कारण ब्रजभाषा साहित्य का भंडार भर गया।

विभिन्न विषयों का अपार साहित्य होते हुए भी उस काल की शृंगार पूर्ण रचनाओं की अधिकता के कारण कुछ लोग भ्रम वश यह आक्षेप करते हैं कि ब्रजभाषा साहित्य में शृंगार रस की रचनाओं के अतिरिक्त अन्य विषयों का सर्वथा अभाव है। जो लोग इस प्रकार का कथन करते हैं, वे उस काल के विशाल साहित्य से पूरी तरह परिचय नहीं रखते।

फिर भी यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि अन्य विषयों का अभाव न होते हुए भी रीति-काल में रस-रीति की रचना अपेक्षाकृत अधिक परिमाण में हुई है। रस-रीति में भी शृंगार रस पर अधिक ध्यान रखा गया है।

रीति-काल के कवियों ने अपने शृंगार वर्णन का आधार अधिकतर अलंकार, नखशिख, षट् ऋतु और नायिकाभेद आदि विषयों को बनाया है। इन विषयों पर उन्होंने इतना अधिक लिखा है कि उनके पृथक्-पृथक् विवेचन की आवश्यकता है।

रीति-काल में अलंकारों का प्रभाव —

रीतिकालीन आचार्यों ने संस्कृत अलंकार-साहित्य के आधार पर अलंकार ग्रंथों की रचना की है। इस विषय के विवेचनापूर्ण ग्रंथों की रचना में उनको अधिक सफलता नहीं मिली, किंतु रीति कालीन कवियों ने कविता के ऊपरी ढाँचे को सुंदर बनाने और शब्द-चमत्कार दिखाने के लिए अपनी कविता में अलंकारों के समावेश की विशेष चेष्टा की है। इसके कारण उनकी कविता रोचक और भावोत्पादक बनने के साथ कुछ अप्राकृतिक भी हो गई है। जिस प्रकार कतिपय आभूषणों द्वारा सुंदर स्त्री की सुंदरता और भी बढ़ जाती है, उसी प्रकार काव्य-सौन्दर्य के लिए भी कुछ अलंकार वॉछनीय हैं, किंतु रीति-काल के कवियों ने अलंकारों की इतनी भरमार की है कि उनकी कविता-कामिनी उनके बोझ से ही दब गई है! इस प्रकार की कविता प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती, क्योंकि कविता का आधार रस है, अलंकार नहीं।

जिस प्रकार स्वाभाविक रूप से सुंदर स्त्री को दो-एक मामूली से आभूषण पहना देना ही पर्याप्त होता है, उसी प्रकार सुंदर कविता के लिए भी किंचित अलंकारों का समावेश ही यथेष्ट है, किंतु अत्यधिक अलंकारों के पचड़े में पड़ने से कविता का मुख्य प्रयोजन ही नष्ट हो जाता है। जब कविकी प्रतिभा अलंकारों द्वारा कविता का बाहरी रूप सजाने में लग जाती है, तो वह उसके आंतरिक रूप अर्थात् भाव की ओर ध्यान ही नहीं दे सकता, तभी उसकी कविता कुरूप स्त्री को भोड़े आभूषण पहना देने जैसी हो जाती है।

अलंकार के दो भेद अर्थालंकार और शब्दालंकार में से अर्थालंकार कविता के लिए उपयोगी हो सकते हैं, किंतु शब्दालंकार ऐसे अधिक उपयोगी नहीं है। शब्दालंकार कविता का बाहरी रूप मात्र सुधारते हैं—उसकी आत्मा को जागृत नहीं करते; इसीलिए जिस काव्य में शब्द की रमणीयता मात्र होती है, वह अधम काव्य कहलाता है, जब कि केवल अर्थ की रमणीयता से मध्यम और शब्द और अर्थ दोनों की रमणीयता से उत्तम काव्य कहा जाता है।

वैसे तो कविता का बाहरी रूप भी उपेक्षणीय नहीं है, क्योंकि सबसे पहिले उसी पर दृष्टि जाती है—कविता का अंतरात्मा को तो काव्य-मर्मज्ञ ही पहचान पाते हैं, किंतु उसके बाहरी रूप से साधारण व्यक्ति भी आकर्षित हो सकते हैं और उससे प्रभावित होकर उसके अंतरंग रूप की परख करने के

लिए उत्साहित हो जाते हैं। किंतु यह बाहरी रूप आंतरिक रूप का सहायक और पोषक होना चाहिए, न कि कविता का आधार ही उसे बना लेना चाहिए।

रीति कालीन कतिपय कवियों ने इस शाश्वत सत्य पर ध्यान न देकर जिस प्रकार की कविता की है, उसमें कभी-कभी शब्दाडंबर के अतिरिक्त वास्तविक तथ्य का अभाव दिखलाई देता है।

नख-शिख वर्णन—

✓ आरंभ में भक्त कवियों ने अपने उपास्य देव के अंग-प्रत्यंगों का भक्ति-भावना पूर्ण वर्णन किया था। उनके अनुकरण पर शृंगार रस के वर्णन में नखशिख-कथन की प्रणाली ही चल पड़ी, जो राधाकृष्ण के रूप-वर्णन में आरंभ होकर लौकिक नायिका-नायकों पर जाकर रुकी।

रीति-काल के कवियों ने नायिका के रूप-वर्णन को एक स्वतंत्र विषय ही बना लिया था। उन्होंने नख से शिखा तक समस्त अंग-प्रत्यंगों का ऐसी बारीकी से वर्णन किया है कि उनकी अद्भुत सूक्ष्म और कारीगरी की प्रशंसा करनी पड़ती है। ✓ एक-एक अंग के वर्णन पर पूरी-पूरी पुस्तकें लिख डाली हैं! इसके प्रमाण के लिए 'अलक-शतक' और 'तिल-शतक' का नामोल्लेख किया जा सकता है।

किसी-किसी कवि ने नायिका का नख-शिख वर्णन ऐसी कामुकता और विषयासक्ति के साथ किया है, कि वह कुरुचि-उत्पादक हो गया है! ऐसा वर्णन कुछ लफट कवियों द्वारा हुआ है, जिनकी यह प्रवृत्ति कदापि प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती।

षट् ऋतु वर्णन—

रीति काल के कवियों ने षट् ऋतुओं का भी बड़ा हृदयग्राही वर्णन किया है। इस प्रकार के वर्णन में ऋतुओं के नैसर्गिक सौन्दर्य की अपेक्षा उनके उद्दीपक प्रभाव का अधिक कथन किया गया है। इसका यह कारण है कि ऋतुओं को उद्दीपन विभाव के अंतर्गत लिखने से उनके उद्दीपक प्रभाव का वर्णन करना आवश्यक हो जाता है। इस रहस्य को न जानने के कारण ही आज-कल के पाठक ऋतु-वर्णन में भी प्रकृति-चित्रण का अभाव देख कर ब्रजभाषा के रीति-कालीन कवियों से खीझ उठते हैं। षट् ऋतुओं के कथन में शृंगार रस के संयोग और विप्रलम्भ दोनों पक्षों पर बड़े उत्कृष्ट छंद लिखे गये हैं।

नायिकाभेद-कथन—

रीति-काल का सर्वप्रिय और सर्वाधिक व्यापक विषय नायिकाभेद है। ब्रजभाषा-कवियों ने इस विषय की मूल सामग्री संस्कृत साहित्य से प्राप्त करने पर भी उसकी वास्तविक उन्नति स्वयं की है। रीति-काल के अन्य विषयों में ब्रजभाषा-कवि चाहे अपने पूर्ववर्ती संस्कृत कवियों की समता न कर सके, किंतु नायिकाभेद के कथन में उनको अत्यंत सफलता प्राप्त हुई है। इस विषय के वर्णन में वे संस्कृत-कवियों से भी बहुत आगे बढ़ गये हैं।

नायिकाभेद कोई ऐसा आवश्यक विषय नहीं है, जिसके बिना काव्य-साहित्य का काम ही न चल सके। काव्य-रीति में भी उसका महत्व विभाव के एक अंग के नाते नगण्य ही है, किंतु ब्रजभाषा-कविता ने इसको इतना महत्व क्यों दिया गया, यह बात बहुत से व्यक्तियों को आश्चर्यजनक ज्ञात होती है।

नायिकाभेद का संबंध काव्य से उतना नहीं है, जितना अभिनय से है, और इसी सिलसिले में उसकी उत्पत्ति भी हुई है। संस्कृत साहित्य में, जहाँ इस विषय का सूत्रपात हुआ है, इसका उल्लेख सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र और दशरूपक जैसे अभिनय ग्रंथों में ही मिलता है। काव्य से इसका संबंध इतना ही हो सकता है कि उसके पात्रों के चरित्र-चित्रण संबंधी कोई अयुक्त, अमर्यादित और अस्वाभाविक बात न कहदी जावे, किंतु ब्रजभाषा साहित्य में कुछ ऐसी रीति चल पड़ी कि बड़े-बड़े प्रतिभाशाली कवि भी प्रबंध काव्यों की अपेक्षा मुक्तक छंदों द्वारा विभाव पक्ष का ही पोषण करते रहे। उनका ध्यान नायिकाओं के अगणित भेदोपभेदों द्वारा नारी-मन के सूक्ष्म से सूक्ष्म विकारों के प्रदर्शन को और तो गया, किंतु उन्हीं नारियों को महा काव्य अथवा खंड-काव्यों की नायिकाएँ बनाकर कथा का विस्तार किया जाता, तो उन कवियों की प्रतिभा और भी अधिक चमत्कृत हो जाती।

जो नहीं हुआ, उसका खेद अवश्य है, किंतु जो कुछ है, वह भी इतना महान् और महत्वपूर्ण है कि उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। ब्रजभाषा कवियों द्वारा कथित नायिकाभेद के छंदों में सर्वोच्च श्रेणी की काव्य-प्रतिभा, अद्भुत कल्पना शक्ति, सराहनीय सहृदयता और सूक्ष्मदर्शिता के अतिरिक्त काव्य-कला के समस्त गुण विद्यमान हैं। इन छंदों को पढ़कर पाठक रस में तन्मय होकर असीम सुख का अनुभव करने लगता है और अनायास ही उनके रचयिताओं की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगता है। यदि ब्रजभाषा-साहित्य

के सर्वोच्च काव्य-सौन्दर्य को को देखना है, तो वह नायिकाभेद के काव्य में ही मिलेगा, चाहे पाठक इस विषय की रचनाएँ पसंद करे या न करे ।

नायिकाभेद की रचनाओं का काव्य-सौन्दर्य और उनके द्वारा साहित्य का उपकार मानते हुए भी उनकी लौकिक उपयोगिता के विषय में संदेह किया जाता है । हमारे कुछ प्रतिष्ठित विद्वान् उनको 'कोकशास्त्र' समझ कर उनसे हिंदू-समाज का अपकार होता मानते हैं[‡] । नायिकाभेद की रचनाओं को कोकशास्त्र कहकर उनकी अवहेलना करना उचित नहीं है, यद्यपि कोकशास्त्र पढ़ाना भी दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाने के लिए आवश्यक है । इस प्रकार की रचनाओं में स्त्री-पुरुष के जीवन की समस्याओं को हल किया गया है । विद्वद्गरुड डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ने ठीक कहा है—

“स्त्री-पुरुष की समस्या जीवन की सबसे बड़ी कड़ी पहेली है । धर्म, कर्म, काम और मोक्ष इसी धुरे पर चक्कर खा रहे हैं । पुरुष और प्रकृति की यह लीला नित्य और नूतन है । इसके रहस्य को समझ लेने से जीवन की और मनुष्य की सामाजिक समस्या हल हो जाती है । उस साहित्य से हमारे समाज को हानि पहुँचने की कल्पना मिथ्या और अपवादात्मक है।”

नायिकाभेद की रचनाओं द्वारा मनोवैज्ञानिक शैली में नारियों की विभिन्न मनोदशाओं का ऐसा विदग्धतापूर्ण वर्णन हुआ है कि जिसके कारण पाठकों को गृहस्थ की अनेक उलझनों को सुलझाने में सुविधा होती है । उनके द्वारा वे नारियों की प्रकृति से परिचित हो जाने के कारण दाम्पत्य जीवन में कटुता उत्पन्न होने के अनेक अवसरों से अपने को बचा सकते हैं । इस प्रकार रीतिकालीन कवियों का नायिकाभेद साहित्यिक दृष्टि से उपादेय होने पर भी सामाजिक दृष्टि से भी उपेक्षणीय नहीं है ।

‡ गिरी हुई हिंदू जाति को कोकशास्त्र पढ़ाना ऐसा ही समझिए, जैसा किसी निमोनिया के पुराने बीमार को बिना काठी और लगाम के मस्त घोड़े पर चढ़ाकर घोड़े को चाबुक मार देना । इसलिए हमारे विचार में तो इस ढंग के कवियों से जहाँ हिंदी साहित्य का उपकार हुआ, वहाँ हिंदू-समाज का अपकार भी हुआ ।

— “हिंदी भाषा का इतिहास”

† ब्रज-साहित्य-मंडल के सभापति पद से दिया हुआ भाषण ।

नायिकाभेद की परंपरा और उसका आधार



नायिकाभेद का महत्व और आधार—

आरंभिक परिच्छेदों के रस-प्रकरण में बतलाया जा चुका है कि काव्य के प्राणस्वरूप नव रसों में शृंगार एक प्रमुख रस है। विभाव, अनुभाव और संचारीभावों के एकीकरण से स्थायी भाव 'रति' परिपुष्ट होकर 'शृंगार रस' संज्ञा को प्राप्त होता है। इस प्रकार विभाव शृंगार रस का एक अंग हुआ। विभाव के दो भेद होते हैं—आलंबन और उद्दीपन। शृंगार रस के आलंबन नायिका और नायक होते हैं, अतः शृंगार रस के आलंबन विभाव के अंतर्गत नायिकाभेद काव्यशास्त्र के विशाल परिवार का एक लघु अंग ही नहीं, प्रत्युत उपांग मात्र है।

किंतु इस छोटे से उपांग ने ही ब्रजभाषा कवियों पर कुछ ऐसा जादू किया था कि उनमें से बड़े-बड़े प्रतिभाशाली व्यक्तियों की संपूर्ण प्रतिभा और शक्ति इसी विषय के वर्णन में लग गई! कई सौ वर्षों तक अगणित सर्वोच्च श्रेणी के कलाकारों ने पूर्ण साधना के साथ अपने जीवन के अनेक अमूल्य वर्षों को इस विषय की रचना में लगाया है। हिंदू राजा-महाराजा और सामंत-सरदारों के अतिरिक्त मुसलमान बादशाह-नवाब और अमीरों ने भी इस विषय के प्रोत्साहन में गुण-ग्राहकता पूर्वक पुष्कल धन-व्यय किया है। जिस विषय की रचना में इतनी विपुल जन-शक्ति और धन-शक्ति लगी है, उसका ब्रजभाषा-साहित्य में अनुपम महत्व होना ही चाहिए।

इस विषय पर विशेष प्रकाश डालने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि ब्रजभाषा-नायिकाभेद की परंपरा और उसके वर्णन का आधार क्या है। इस संबंध में हमको सरकृत साहित्य पर दृष्टि डालनी पड़ती है, क्योंकि ब्रजभाषा-कवियों ने इस विषय की मूल सामग्री वहीं से प्राप्त की है।

नायिकाभेद का उद्गम स्थान—

नायिकाभेद की परंपरा काव्यशास्त्र की परंपरा के साथ ही साथ आरंभ होती है। इसलिए इस विषय का सर्वप्रथम वर्णन महामुनि भरत के

‘नाट्यशास्त्र’ में मिलता है। नाट्यशास्त्र जैसे संस्कृत रीति-साहित्य के प्राचीनतम ग्रंथ में इस विषय का विस्तार पूर्वक उल्लेख होने से नायिकाभेद का महत्व स्वयंसिद्ध है। अवश्य ही भरतमुनि ने नायिकाओं का वर्णन उस क्रम से नहीं किया है, जैसा इस विषय के ब्रजभाषा-आचार्यों ने किया है। इसके दो कारण हैं। प्रथम तो नाट्यशास्त्र एक अत्यंत प्राचीन ग्रंथ है, अतः उसमें इस विषय की आदिम अवस्था का ही रूप दिखलाई देता है, जिसका क्रमशः विकास होते हुए वर्तमान-कालीन नायिकाभेद बना है। दूसरे नाट्यशास्त्र अभिनय संबंधी ग्रंथ है, अतः उसमें नायिकाओं का वर्णन अभिनय से संबंधित होने के कारण हुआ है। फिर भी भरतमुनि कृत नायिकाओं के अतर्गत किसी न किसी रूप में वर्तमान नायिकाभेद की प्रायः सभी नायिकाएँ आ जाती हैं, अतः महामुनि भरत इस विषय के प्रवर्तक और नाट्यशास्त्र इसका सर्व प्रथम उद्गम स्थान है।

नाट्यशास्त्र में वर्णित उत्तमा, मध्यमा और अधमा एवं कुलजा, प्रेप्त्या और वेश्या—ये तीन-तीन प्रकार की नायिकाएँ तथा बासकसजा, विरहोत्कंठिता स्वाधीनभर्तृका, कलहांतरिता, खडिता, विप्रलब्धा, प्रोपितपतिका एवं अभिसारिका—ये आठ प्रकार की नायिकाएँ वर्तमान नायिकाभेद के अनुकूल हैं। इनके अतिरिक्त महादेवी, देवी, स्वामिनी, स्थापिनी, भोगिनी, शिल्पकारिणी, नाटकी, नर्तकी, अनुचारिका, आयुक्ता, परिचारिका, संचारिणी, प्रेषण-कारिका, सुमहत्तरा, प्रतिहारी, कुमारी, स्थविरा, नवयौवना, धीर, ललित, उदात्त, निभृत, अनुरक्ता और विरक्ता आदि विभिन्न नायिकाओं में भी परवर्ती कवियों की अधिकांश नायिकाओं का आदिम रूप दिखलाई देता है। महामुनि भरत ने प्रेप्त्या और वेश्या के नाम से वर्तमान नायिकाभेद की परकीया और सामान्या का भी उल्लेख किया है।

इसके साथ ही अभिलाषा, चिंतन, गुण-कथन आदि दश दशाएँ, हाव-भाव, सखा-सखी, दूती आदि सभी विषयों का उल्लेख होने से ‘नाट्यशास्त्र’ में वर्तमान नायिकाभेद की प्रायः सभी सामग्री मिल जाती है। यह ग्रंथ ३७ अध्यायों में समाप्त हुआ है। इसके २२ वें अध्याय में इस विषय का विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है।

नाट्यशास्त्र के पश्चात् व्यासदेव कृत ‘अग्निपुराण’ में इस विषय का उल्लेख मिलता है। उक्त पुराण में शृंगार रस को विशेष महत्व दिया गया है, इसलिए प्रसंगवश नायिकाभेद का भी कुछ वर्णन हुआ है।

संस्कृत साहित्य में नायिकाभेद—

भरत और व्यास का निश्चित समय निर्धारित नहीं हो सका है, किंतु वे अवश्य ही विक्रम संवत् से पूर्व के हैं। उन प्राचीन मुनियों के ग्रंथों के अतिरिक्त फिर शताब्दियों तक नायिकाभेद का साहित्य उपलब्ध नहीं होता। संस्कृत साहित्य में भरत और व्यास के अनंतर दसवीं शताब्दी के उपरांत होने वाले आचार्यों के ग्रंथों में ही नायिकाभेद का थोड़ा-बहुत उल्लेख मिलता है। यह वह समय है जब कि आचार्यों ने काव्य के समस्त अंगों पर विस्तृत रूप से विवेचन करना आरंभ कर दिया था; किंतु नायिकाभेद पर उन्होंने बहुत ही संक्षिप्त रूप से लिखा है। संस्कृत साहित्य के प्राचीन आचार्यों ने अलंकार विषय का बड़ा गंभीर विवेचन किया है। जिन आचार्यों ने अलंकार के अतिरिक्त काव्य के अन्य अंगों की मार्मिक विवेचना की है, उन्होंने रस प्रकरण के अंतर्गत नायिकाभेद का भी संक्षिप्त उल्लेख कर दिया है, किंतु ब्रजभाषा कवियों की तरह उसको स्वतंत्र विषय मान कर उसका विस्तृत विवेचन नहीं किया गया।

संस्कृत साहित्य के अनेक आचार्यों में से रुद्रट, धनंजय, भोज, मम्मट, सूर्यक, भानुदत्त, वाग्भट्ट द्वितीय, विश्वनाथ, केशव मिश्र आदि ने नायिकाभेद का थोड़ा-बहुत उल्लेख किया है। उन आचार्यों के ग्रंथों में भी धनंजय कृत 'दशरूपक', विश्वनाथ कृत 'साहित्यदर्पण' और भानुदत्त कृत 'रसमंजरी' मुख्य हैं। इनमें नायिकाभेद का अपेक्षा कृत अधिक वर्णन है। इनमें भी 'साहित्यदर्पण' और 'रसमंजरी' में ही इस विषय की विशेष सामग्री मिलती है।

'दशरूपक' में रसमंजरी और साहित्यदर्पण की तरह नायिकाभेद का विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं होने पर भी उसका महत्व इसलिए अधिक है कि भरत के शताब्दियों पश्चात् सर्व प्रथम इसी में इस विषय का विस्तार सहित उल्लेख मिलता है। भरतमुनि ने नायिकाओं का वर्णन अभिनय के संबंध में किया था, यही आदर्श 'दशरूपक'—कार का भी है। वास्तव में नायिकाभेद की उत्पत्ति का कारण अभिनय ही है, काव्य में उसका प्रवेश बाद में हुआ, जैसा इस पुस्तक के आरंभ में ही लिखा जा चुका है।

धनंजय का काल विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी है। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'दशरूपक' में भरतमुनि द्वारा उल्लिखित स्वाधीनपतिका आदि

अष्ट नायिकाओं के अतिरिक्त नायिका के मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा—इन तीन भेदों का भी उल्लेख किया है। मुग्धा के वयोमुग्धा, काममुग्धा, रतिवामा और कोपमृदु—ये चार भेद; मध्या के यौवनवती और कामवती—ये दो भेद एवं प्रगल्भा के गाढयौवना, भावप्रगल्भा और रत्नप्रगल्भा—ये तीन भेद लिखे हैं। इनसे स्पष्ट है कि धनंजय कृत ये उपभेद वर्तमान नायिकाभेद के अनुकूल नहीं हैं। धीरादि भेद मध्या के मध्या के साथ और प्रगल्भा के प्रगल्भा के साथ होने से वर्तमान नायिकाभेद के अनुसार हैं। इसके अतिरिक्त परकीया और सामान्या का भी कथन हुआ है। इस प्रकार धनंजय कृत 'दशरूपक' नायिकाभेद-परंपरा का एक उल्लेखनीय ग्रंथ है।

भानुदत्त संस्कृत साहित्य में नायिकाभेद के सर्व प्रधान विवेचन-कर्त्ता हैं। उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'रसतरंगिणी' और 'रसमंजरी' द्वारा संस्कृत-साहित्य में नायिकाभेद का विस्तारपूर्वक कथन किया है। उनकी रसमंजरी इस विषय की बड़ी महत्वपूर्ण रचना है।

आचार्य विश्वनाथ ने अपने 'साहित्यदर्पण' में काव्य के अन्य अंगों के साथ नायिकाभेद का भी विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है। ब्रजभाषा कवियों ने नायिकाभेद-कथन के लिए भानुदत्त और विश्वनाथ दोनों के ग्रंथों से सहायता ली है, किंतु वास्तव में रसमंजरी ही ऐसी रचना है, जिसके आधार पर ब्रजभाषा-नायिकाभेद की परिपाटी निश्चित की गई है। साहित्यदर्पण में समस्त काव्यांगों का एक ही स्थान पर विस्तृत वर्णन होने से ब्रजभाषा आचार्यों ने अपने ग्रंथों में उसका भी विशेष रूप से उपयोग किया है। रस-प्रकरण की अन्य बातों के लिए साहित्यदर्पण विशेष रूप से सहायक रहा है, किंतु केवल नायिकाभेद कथन में उसका इतना अधिक उपयोग नहीं हुआ, जितना 'रसमंजरी' का। रसमंजरी में वर्णित नायिकाओं का क्रम ही ब्रजभाषा आचार्यों ने नहीं लिया, बल्कि उसके रस-कथन की प्रणाली भी उन्होंने स्वीकार कर ली। साहित्यदर्पण में वर्णित नायिकाओं के उपभेद ब्रजभाषा नायिकाभेद में ग्रहण नहीं किये गये, जब कि रसमंजरी के उपभेद तथा अन्य नायिकाओं को वहाँ पर उसी रूप में ले लिया गया है। इसलिए ब्रजभाषा नायिकाभेद के कथन में साहित्यदर्पण की अपेक्षा रसमंजरी को ही आधार मानना चाहिए। साहित्यदर्पण और रसमंजरी के नायिकाभेद की तुलना करने पर यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है।

साहित्यदर्पण और रसमंजरी के नायिकाभेद की तुलना—

नायिका के आरंभिक तीन भेद स्वकीया, परकीया और सामान्या साहित्यदर्पण और रसमंजरी में समान हैं, जिनके विषय में कहा जा सकता है कि ये भेद दोनों में दशरूपक से लिये गये होंगे। दोनों में स्वकीया के मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा भेद किये गये हैं, किंतु महत्व का अंतर इन तीनों के उपभेदों में आता है। साहित्यदर्पण में मुग्धा के १. प्रथमावतीर्ण यौवना, २. प्रथमावतीर्ण मदनविकारा, ३. रतिचामा, ४. मानमृदु और ५. समधिक लज्जावर्ती किये गये हैं, जो दशरूपक के उपभेदों की भाँति वर्तमान नायिकाभेद में प्रचलित नहीं हैं। रसमंजरी में मुग्धा के १. अकुरितयौवना, २. नवोटा और ३. विश्रब्ध नवोटा—ये तीन भेद किये गये हैं और अकुरितयौवना के ज्ञातयौवना और अज्ञातयौवना—ये दो उपभेद किये गये हैं, जो वर्तमान नायिकाभेद में भी प्रचलित हैं।

इनके अनंतर साहित्यदर्पण में मध्या के भी ५ उपभेद—विचित्रसुरता, प्ररूढस्मरा, प्ररूढयौवना, ईषतप्रगल्भवचना और मध्यमव्राडिता किये गये हैं। ये भेद वर्तमान नायिकाभेद में प्रचलित नहीं हैं। रसमंजरी में मध्या का कोई उपभेद नहीं किया गया। यही मत ब्रजभाषा के मान्य आचार्य मतिराम-पद्माकर आदि का भी है। साहित्यदर्पण में प्रगल्भा के भी ६ उपभेद जैसे स्मरान्धा, गाढतारुण्या समस्तरतकोविदा, भावोन्नता, दरब्रीडा और आक्रान्ता किये गये हैं, जो प्रचलित नहीं हैं; किंतु रसमंजरी में प्रगल्भा के केवल दो उपभेद रतिप्रीता और आनदात्संमोहा किये गये हैं, जो ब्रजभाषा के प्राय सभी आचार्यों को मान्य हैं। इसके अनंतर धीरादि भेद और ज्येष्ठा—कनिष्ठा दोनों में समान हैं। साहित्यदर्पण में ज्येष्ठा—कनिष्ठा के उपभेद नहीं किये गये हैं, जब कि रसमंजरी में ज्येष्ठा—कनिष्ठा के भी धीरादि भेद कर उनको पतिप्रेमानुसार ६ भेदों में विभाजित कर दिया है। यहाँ तक स्वकीया का वर्णन हुआ।

अब परकीया को लीजिये। साहित्यदर्पण और रसमंजरी दोनों में परकीया के परोटा और कन्यका—ये दो भेद किये गये हैं, जो वर्तमान नायिकाभेद में प्रचलित नहीं हैं। साहित्यदर्पण—कार ने अपने पूर्ववर्ती आचार्य भरत, धनंजय आदि की तरह परकीया के उपभेदों का विस्तार नहीं किया है, केवल परोटा में एक उपभेद कुलटा की ओर इंगित करके छोड़ दिया है, किंतु रसमंजरी—कार

ने परोढा के गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशापना और मुद्रिता—इन ६ भेदों को लिखा है, जो वर्तमान; नायिकाभेद के अनुकूल हैं। इनके अतिरिक्त गुप्ता के भूत, भविष्यत् और वर्तमान, विदग्धा के वाग्विदग्धा और क्रिया-विदग्धा एवं अनुशापना के वर्तमान स्थान विवद्वता, भावी स्थान अभाव, सकत स्थलनष्टा आदि उपभेदों के कारण रसमंजरी में ही वर्तमान नायिकाभेद की समस्त सामग्री मिल जाती है।

इसके अतिरिक्त सामान्या दोनों में समान है। स्वार्थानपत्तिका आदि अष्ट नायिकाएँ और उत्तमादि तीन नायिकाएँ भी दोनों में समान हैं जिनका वर्णन भरतमुनि के समय से चला आता है। रसमंजरी में दशानुसार तीन भेद—अन्यसंभोगदुःखिता, वक्रोक्तिगर्विता एवं मानवती और लिखे गये हैं। साथ ही वक्रोक्तिगर्विता में प्रेमगर्विता और सौन्दर्यगर्विता तथा मानवती में लघु, मध्यम और गुरु मान लिखकर उसमें यह विषय भी पूर्ण कर दिया है, जो साहित्यदर्पण में बिलकुल नहीं है। रसमंजरी में दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य-ये तीन भेद और भी किये हैं, जो वर्तमान नायिकाभेद में विशेष प्रचलित नहीं हैं और जिनका साहित्यदर्पण में भी उल्लेख नहीं है।

नायिकाभेद की इस तुलना से ज्ञात हो सकता है कि दोनों का क्रम एक दूसरे से भिन्न है और साहित्यदर्पण की अपेक्षा रसमंजरी का क्रम ब्रजभाषा नायिकाभेद के आचार्यों ने विशेष रूप से स्वीकृत किया है। इस प्रकार निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि वर्तमान नायिकाभेद का प्रमुख आधार—अथ 'रसमंजरी' है, जहाँ से ब्रजभाषा—नायिकाभेद की प्रायः सम्पूर्ण सामग्री ली गई है।

भानुदत्त और विश्वनाथ का काल-निर्णय—

सेठ कन्हैयालाल जी पोद्दार के शब्दों में “भानुदत्त का समय संभवतः ईसा की १३ वीं और १४ वीं शताब्दी का मध्य काल^{*} है। उन्होंने विश्वनाथ का समय १४ वीं शताब्दी लिखकर उससे भानुदत्त का परवर्ती निर्धारित किया है, किंतु पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय ‘हरिऔध’ तथा हिंदी के कई अन्य विद्वानों ने भानुदत्त का समय १६ वीं शताब्दी लिख कर विश्वनाथ को उसका पूर्ववर्ती माना है।

* ‘संस्कृत साहित्य का इतिहास’

श्री हरिऔध जी ने लिखा है—“ मैं समझता हूँ आज कल जिस प्रणाली से नायिका-विभेद लिखा जाता है, उसके आदि प्रवर्त्तक साहित्यदर्पणकार ही है। रसमंजरी में साहित्यदर्पण की ही छाया दृष्टिगत होती है। यह ग्रंथ ईसवी सोलहवीं शताब्दी का है और केवल नायिकाभेद पर लिखा गया है। ग्रंथ अच्छा है और आधुनिक प्रणाली का आदर्श है। उससे साहित्यदर्पण से कहीं-कहीं कुछ भिन्नता है, पर नाम मात्र की।”

नायिकाभेद की प्रचलित प्रणाली के प्रवर्त्तक साहित्यदर्पण-कार है, अथवा रसमंजरी-कार, इसका उत्तर उक्त दोनों व्यक्तियों के नायिकाभेदोक्त क्रम और काल-निर्णय पर निर्भर है। दोनों के क्रम का विवेचन गत पृष्ठों में किया जा चुका है। अब उनके काल-निर्णय पर विचार किया जाता है। श्री हरिऔध जी आदि विद्वानों ने भानुदत्त का समय १६ वीं शताब्दी किस आधार पर लिखा है, यह हमको ज्ञात नहीं, किंतु पोद्दार जी द्वारा निश्चित समय का एक पुष्ट प्रमाण प्राप्त है। श्री पी. वी. कणे महोदय ने साहित्यदर्पण की अंगरेजी भूमिका में लिखा है कि ‘गोपाल’ ने रसमंजरी की टीका सन् १४३७ ई० में की थी, इसलिए भानुदत्त का समय संभवतः १३ वीं शताब्दी का अन्तिम अथवा १४ वीं शताब्दी का प्रारंभिक काल होना चाहिए।

जब रसमंजरी की टीका सन् १४३७ ई० में बन चुकी थी, तब उसके रचयिता को १६ वीं शताब्दी का किस प्रकार माना जा सकता है। अब विश्वनाथ के काल पर विचार कीजिए। विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण की एक प्रतिलिपि जंबू में है, जिस पर सं० १४४० वि० (सन् १३८४ ई०) लिखा हुआ है। इससे निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि साहित्यदर्पण की रचना सन् १३८४ ई० से पूर्व हो चुकी थी, इसलिए विश्वनाथ सन् १३८४ ई० से पूर्व के अंशरूप हैं।

† ‘रस न्तस’

‡ A commentary on the रसमंजरी by गोपाल was composed in 1437 A C Therefore भानुदत्त flourished probably towards the end of the 13th and the beginning of the 14th century

—Introduction of “Sahitya Darpan” by P V Kane

* A ms of the Sahitya Darpan deposited at Jammu is dated in the Vikram year 1440, i e approximately 1384 A C From this it may be safely concluded that the Sahitya Darpan was composed at some time earlier than 1384 A C.

इन प्रमाणों से यह तो निश्चय हो गया कि भानुदत्त १६ वीं शताब्दी में नहीं हुए, वे सन् १४३७ ई० से पूर्व के हैं और विश्वनाथ भी सन् १३८४ ई० से पूर्व के हैं। अब इन दोनों का निश्चित समय क्या है और कौन पूर्ववर्ती और कौन परवर्ती है; यह निश्चय करने का हमारे पास कोई अन्य प्रमाण नहीं है। ऐसी दशा में पोद्दार जी का यह मत कि भानुदत्त विश्वनाथ का पूर्ववर्ती है, विरोधी पुष्ट प्रमाणों के अभाव में माना जा सकता है, किंतु इसमें एक आपत्ति यह आ खड़ी होती है कि यदि रसमंजरी को साहित्यदर्पण से पूर्व की रचना मानते हैं, तो विश्वनाथ नायिकाभेद के कथन में रसमंजरी का अवश्य उपयोग करते, जैसा उन्होंने काव्य के दोनों भेद 'श्रव्य' और 'दृश्य' के समस्त अंगों का एक ही स्थान पर एकीकरण करने के अभिप्राय से अपने सभी पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का उपयोग किया है। किंतु दोनों के नायिका-भेद के क्रम को देखने से यह स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि साहित्यदर्पण में रसमंजरी का उपयोग नहीं हुआ है। फिर क्या हरिऔध जी के मतानुसार विश्वनाथ को भानुदत्त का पूर्ववर्ती मान कर "रसमंजरी में साहित्यदर्पण की ही छाया दृष्टिगत" होना सत्य मानना चाहिए? विश्वनाथ को चाहे भानुदत्त का पूर्ववर्ती मान लिया जावे, किंतु "रसमंजरी में साहित्यदर्पण की छाया दृष्टिगत" नहीं होती—यह पहले ही बतलाया जा चुका है।

ऐसी दशा में यह भी संभव हो सकता है कि ये दोनों ही आचार्य समकालीन हो, और दोनों ने स्वतंत्र रूप से बिना एक दूसरे की सहायता के लिखा हो, क्योंकि दोनों के क्रम में पर्याप्त अंतर है। जहाँ तक नायिकाभेद के वर्णन का संबंध है, साहित्यदर्पण की रचना रसमंजरी से पूर्व की होना अधिक संभव है, क्योंकि रसमंजरी में इस विषय का जो विस्तार किया है, वह इसकी क्रमशः विकासोन्मुखी अवस्था का सूचक है। नाट्यशास्त्र से अधिक दशरूपक में और दशरूपक से अधिक साहित्यदर्पण में और सबसे अधिक रसमंजरी में नायिकाभेद का विस्तार किया गया है। फिर भी भानुदत्त और विश्वनाथ के ठीक-ठीक काल निर्णय के संबंध में निश्चित रूप से कोई बात नहीं कही जा सकती। जो कुछ कहा जा सकता है, वह यही है कि भानुदत्त १६ वीं शताब्दी से पूर्व के हैं और रसमंजरी के नायिकाभेद में साहित्यदर्पण का उपयोग नहीं किया गया है। इस प्रकार संस्कृत-आचार्यों की परंपरा में उन्हीं के आधार पर ब्रजभाषा-कवियों ने नायिकाभेद का विकास किया है, जिसका विस्तार पूर्वक विवेचन आगामी परिच्छेद में किया जावेगा।

ब्रजभाषा-नायिकाभेद का विकास



ब्रजभाषा-नायिकाभेद का आरंभ—

विगत पृष्ठो मे लिखा जा चुका है कि ब्रजभाषा रीति-साहित्य की आरंभिक कृतियाँ हिततरंगिनी, साहित्यलहरी, रसमंजरी और बरवानायिका है, जो सब ही नायिकाभेद की रचनाएँ हैं। इससे ज्ञात होता है कि जिस रीति काल में ब्रजभाषा-साहित्य का परम उत्कर्ष हुआ, उसका आरंभ भी नायिकाभेद की रचनाओं से हुआ था।

ब्रजभाषा रीति-साहित्य अथवा नायिकाभेद के उपलब्ध ग्रंथों में 'हिततरंगिनी' सबसे प्राचीन है। इसकी रचना कृपाराम कवि ने सं० १५१८ वि० में की थी। यह ग्रंथ दोहा छंद में लिखा गया है, और पाँच तरंगों में समाप्त हुआ है। ग्रंथारंभ के दो दोहाओं में मंगलाचरण किया गया है। इसके अनंतर ग्रंथ की रचना का हेतु इस प्रकार बतलाया गया है—

“रचौ ग्रंथ कवि-मत धरे, धरे कृष्ण कौ ध्यान ।
 राखे सरस उदाहरन, लक्षण जुत सज्जन ॥ ३ ॥
 ब्रजनाथ कवि सिगार रस, छंद बड़े विस्तारि ।
 मै बरन्यौ दोहान बिच, याते सुवर विचार ॥ ४ ॥
 अक्षर थोरे भेद बहु, पून रस कौ धाम ।
 हिततरंगिनी नाम कौ, रच्यौ ग्रंथ अभिराम ॥ ५ ॥
 ग्रंथ अनेक पढ़े प्रथम, पुनि विचार कै चित्त ।
 मै बरन्यौ सिगार रस, सजन तिहारे हित ॥ ६ ॥”

उपर्युक्त दोहाओं से ज्ञात होता है कि हिततरंगिनी में लक्षण युक्त सरस उदाहरण लिखे गये हैं, इसलिए यह निश्चित रूप से रीति-रचना है, जिसे कृपाराम कवि ने आचार्यत्व की दृष्टि से लिखा था। इनसे यह भी

ज्ञात होता है कि कृपाराम के समय में अथवा उनसे पहिले कविगण बड़े छंदों में विस्तार पूर्वक शृंगार रस का वर्णन करते थे, किंतु कृपाराम ने दोहा जैसे छोटे छंद के थोटे अक्षरों में अधिक भाव रखते हुए शृंगार रस का वर्णन किया है।

कृपाराम कवि के उपर्युक्त कथन से सिद्ध है कि 'हिततरंगिनी' अपने समय में शृंगार रस की एक मात्र रचना नहीं थी। अन्य कवियों द्वारा भी शृंगार रस का बड़े विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ था। यदि कृपाराम के कथन का अभिप्राय 'हिततरंगिनी' के समान लक्षण-उदाहरण सहित रीति-रचनाओं से है, तो उस समय की वे कृतियाँ आजकल उपलब्ध नहीं हैं। यदि उनका अभिप्राय भक्त कवियों की शृंगार-भक्तिपूर्ण रचनाओं से है, तो वे आजकल भी उपलब्ध हैं। अष्टछाप एवं ब्रज के अन्य भक्त कवियों की कृष्ण-लीला विषयक शृंगारिक रचनाएँ कृपाराम के समय में बड़े विस्तार पूर्वक हो रही थीं। अष्टछाप कवियों में से सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास और कृष्णदास सं० १५७६ तक महाप्रभु बल्लभाचार्य के शिष्य होकर लीला विषयक पदों की रचना करने लगे थे। उनकी आरंभिक रचनाओं में श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं की प्रधानता थी, किंतु सं० १५८७ में श्री बल्लभाचार्य के देहावसान के अनंतर वृंदावन स्थित चैतन्य संप्रदाय के गोसाईंयों के प्रभाव से जब पुष्टि संप्रदाय में राधा का महत्व बढ़ा, तब अष्टछाप के कवियों की रचनाओं में भी शृंगार-रस का विशेष वर्णन होने लगा। इस प्रकार सं० १५६८ वि० में 'हिततरंगिनी' की रचना के समय तक अष्टछाप एवं वैष्णव संप्रदायों के कवियों द्वारा भी शृंगार-रस का वर्णन हो रहा था। इस तरह का वर्णन लक्षण-उदाहरण की रीति-शैली में न होकर उन भक्त कवियों की उपासना-पद्धति के अनुकूल कीर्तन-रचना में होता था, जिस पर शृंगार-रस और नायिकाभेदोक्त कथन का भी यथेष्ट प्रभाव था।

✓ प्रासंगिक विचार से ऐसा ज्ञात होता है कि कृपाराम का अभिप्राय भक्त कवियों की शृंगार-भक्तिपूर्ण रचनाओं से नहीं है, बल्कि 'हिततरंगिनी' के समान लक्षण-उदाहरण सहित रस-रीति की रचनाओं से है। इस प्रकार की रचनाएँ अभी तक उपलब्ध नहीं हुईं। 'हिततरंगिनी' के बाद नायिकाभेद की उपलब्ध रचनाओं में 'साहित्य-लहरी' और 'रसमंजरी' का

† अष्टछाप-कवियों के आलोचनात्मक एवं प्रामाणिक जीवन-वृत्तांत के लिए लेखक कृत ग्रन्थ 'अष्टछाप-परिचय' देखना चाहिए।

उल्लेख किया सकता है। इन दोनों रचनाओं में भी लक्षण-उदाहरण की शैली नहीं अपनाई गई है, किंतु फिर भी वे रीति-रचनाएँ हैं।

साहित्य-लहरी ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ भक्त कवि महात्मा सूरदास की रचना कही जाती है, यद्यपि अब कुछ विद्वानों की धारणा इसके विरुद्ध है। रसमंजरी निश्चित रूप से अष्टछाप के प्रसिद्ध भक्त कवि नंददास की रचना है। महात्मा सूरदास ने चाहे साहित्य-लहरी की रचना नहीं की हो, किंतु अन्य भक्त कवियों की तरह उनके अनेक पदों में भी नायिकाभेदोक्त कथन मिलते हैं।

भक्त कवियों की रचनाओं के नायिकाभेद संबंधी कथन पर आजकल के बहुत से पाठक आश्चर्य करते हुए उसका कारण नहीं समझ पाते। यद्यपि ब्रजभाषा-साहित्य का नायिकाभेद रीति-कालीन रचना है, तथापि उसका आरंभ भक्ति-काल के आरंभ में ही हो गया था। कितने ही भक्त कवियों की रचनाओं में भी नायिकाभेद का यथेष्ट प्रभाव है, इसलिए ब्रजभाषा नायिकाभेद का विकास बतलाने के पूर्व भक्त कवियों के नायिकाभेदोक्त कथन पर विचार कर लेना चाहिये।

भक्त कवि और नायिकाभेद—

भक्त कवियों की रचनाओं में शृंगाररस और नायिकाभेद का जो प्रभाव दिखलाई देता है, वह उनकी उपासना-पद्धति और उनके सांप्रदायिक सिद्धांतों के कारण है। नंददास ने अपनी 'रसमंजरी' और 'रूपमंजरी' नामक रचनाओं में इस विषय को स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने रसमंजरी के आरंभ में ही कहा है कि इस संसार में जो कुछ 'रस' है, उसका एक मात्र आधार परमात्मा है—जिस प्रकार जल अनेक नदियों में बहता हुआ अंततः सागर में जाकर समा जाता है। जब 'रस' का आधार ही परमात्मा है, तब रसपूर्ण कथन में संकोच क्यों होना चाहिये! बल्कि इस संसार में जो कुछ रूप, प्रेम और आनंद विषयक रस है, वह सब परमात्मा का है, इसलिये उसका वर्णन निःसंकोच होकर करना चाहिए।

† हे जु कछुक रस यह ससारा । ताको प्रभु तुमही आधारा ॥

ज्याँ अनेक सरिता जल बहै । आन सबै सागर में रहे ॥

रूप, प्रेम, आनंद रस, जो कछु जग में आहि ।

सो सब गिरिवर देव को, निवरक वरनौ ताहि ॥—“रसमंजरी”

नंददास ने लिखा है कि उन्होंने अपने एक मित्र को सुनाने के लिए नायिकाभेद की रचना की थी। उन्होंने इसका कारण बतलाते हुए कहा है कि नायिकाभेद को जाने बिना प्रेम-तत्त्व की भी पहिचान नहीं हो सकती। अपने इस कथन के समर्थन में उन्होंने फिर कहा है कि इस भेद को जाने बिना प्रेम का परिचय उसी प्रकार नहीं हो सकता, जिस प्रकार पगु ऊँचे पर्वत पर नहीं चढ़ सकता।

भक्त कवियों में प्रेम का महत्व सबसे अधिक माना गया है। लोक और वेद के ऊपर प्रेम की प्रतिष्ठा करना उन भक्त कवियों की प्रेम-लक्षणा भक्ति है। इस प्रेम के परिचय के लिए नायिकाभेद की अनिवार्यता मान कर उन भक्त कवियों ने 'बेधड़क' इस प्रकार के वर्णन लिखे हैं। भक्त कवियों द्वारा नायिकाभेद के कथन का औचित्य बतलाते हुए तत्संबंधी इतनी स्पष्ट स्वीकारोक्ति और क्या हो सकती है !

नंददास ने रसमंजरी में नायिकाभेद द्वारा प्रेम-तत्त्व को जानने की बात लिखी है। उन्होंने अपनी अन्य रचना 'रूपमंजरी' में इसी प्रेम की एक विशिष्ट पद्धति का प्रतिपादन किया है।

उन्होंने लिखा है—

“कवियों ने भगवत्प्राप्ति के अनेक मार्ग बतलाये हैं। उनमें यह अत्यंत सूक्ष्म मार्ग है। जो इस मार्ग से चलना चाहते हैं, मैं उनकी बलिहारी जाता हूँ।”

† एक मित्र हम से अस गुन्यौ। मैं नायिकाभेद नहि सुन्यौ ॥

जब लग इनके भेद न जानै। तब लग प्रेम-तत्त्व न पहिचानै ॥

बिन जानै यह भेद सब, प्रेम न परचै होय।

चरन हीन ऊँचे अचल, चढत न देख्यौ कोय ॥

—“रसमंजरी”

* परम प्रेम पद्धति इक आरी। नंद यथामति बरसूं ताहीं ॥

पैवै कों प्रभु के पकज पग। कविन अनेक प्रकार कहे मग ॥

† तिनमे इहि इक सूच्छम रहै। हौ तिहि बलि, जो इहिं चलि चहै ॥

—“रूपमंजरी”

इस सूक्ष्म मार्ग की प्रेम-पद्धति से नन्ददास का अभिप्राय उपपत्ति-रस से है। इसकी निष्पत्ति के लिए उन्होंने 'रूपमंजरी' में एक कथा की कल्पना की है। कथा इस प्रकार है—रूपमंजरी एक अत्यंत रूपवती कन्या है, जिसका विवाह एक अयोग्य वर से हो जाता है। इस बे मेल संबंध से रूपमंजरी की सखी इंदुमती अत्यंत दुःखित है। वह सोचती है कि किस प्रकार उसकी सखी का अलौकिक रूप और दुर्लभ यौवन व्यर्थ नष्ट न होकर सार्थक हो सके। इसके लिए वह उपपत्ति की योजना करती है। रूपमंजरी स्वयं उस उपपत्ति को स्वप्न में देख कर उसके अपार रूप-लावण्य पर मुग्ध हो जाती है और उससे प्रेम करने लगती है। अंत में स्वप्न में ही उपपत्ति को प्राप्त कर वह कृतकृत्य हो जाती है।

कथानक की दृष्टि से यह अत्यंत साधारण सी कथा है, जिसमें न तो कथा-वस्तु का विस्तार है और न पात्रों का चारित्रिक विकास। यह वास्तव में एक रूपक है, जिसकी रचना सांप्रदायिक सिद्धांत के प्रतिपादन के लिए की गई है। रूपक के अनुसार रूपमंजरी भक्त है, इंदुमती गुरु और उपपत्ति परमात्मा हैं। गुरु रूपी इंदुमती भक्त रूपी रूपमंजरी का जीवन सार्थक करने के लिए उसे उपपत्ति रूप परमात्मा की ओर आकर्षित करती है और अंत में उसे प्राप्त भी करा देती है। ✓

आध्यात्मिक पक्ष में इस प्रकार के वर्णन महत्वपूर्ण होते हुए भी लौकिक व्यवहार में उनसे बड़ी सावधानी की आवश्यकता है, अन्यथा उनसे अनिष्टकारी परिणाम भी हो सकते हैं। विद्वद्भर डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ने इसीलिए कहा है—

“सच पूछिये तो वह अत्यंत गंभीर, सूक्ष्म और रहस्यपूर्ण वर्णन है, जिसकी मीमांसा बड़ी सावधानी और व्यापक दृष्टि से होने की आवश्यका है। यह लीला जितनी रसमयी है, उतनी ही रहस्यगर्भित है।”

भक्त कवियों ने स्वयं इसका अनुभव करते हुए अधिकारी व्यक्तियों के लिए ही इस प्रकार की रचनाओं का विधान किया है। नन्ददास का मत है—

जो अधिकारी होइ सो पावै। बिन अधिकारी भए न आवै ॥ ५

रूपमंजरी के कथा-काव्य में नन्ददास ने पुष्टि संप्रदाय के एक अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धांत का भी प्रतिपादन किया गया है। वह सिद्धांत यह है कि

“संसार का सब सौन्दर्य, प्रेम और ऐश्वर्य भगवान् के भोग के लिए है, मनुष्य के भोग के लिए नहीं। इस प्रकार इंद्रियों को लौकिक विषयो से हटा कर कृष्णान्मुख करने की चेष्टा की गई है। यहाँ पर ‘परकीया’ रति की भी व्यवस्था है। रूपमंजरी का प्रेम परकीया का प्रेम है, यद्यपि कृष्ण स्वप्न में ही मिलते हैं, साक्षात् में नहीं। इससे स्पष्ट है कि अति निद्रित परकीया प्रेम को वैष्णव भक्तों ने केवल एक मानसिक आध्यात्मिक अवस्था माना है।”

जायसी आदि प्रेम मार्गीय सूफी कवियों ने भी इसी प्रकार की लौकिक कथाओं द्वारा सिद्धांत पक्ष का प्रतिपादन किया है। ब्रजभाषा साहित्य के भक्ति मार्गीय वैष्णव कवियों ने नायिकाभेदोक्त कथनों द्वारा ‘लौकिक रति’ और ‘देवरति’ अथवा ‘लौकिक शृंगार रस’ और ‘अलौकिक भक्ति रस’ को एक सूत्र में बाँधने का अद्भुत प्रयास किया है।

रूपमंजरी की सी परकीया भक्ति पुष्टि संप्रदाय के कवियों को उतनी मान्य नहीं है, जितनी गौड़ीय संप्रदाय के कवियों को। इस प्रकार की भक्ति का समुन्नत रूप श्री चैतन्य महाप्रभु के गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय में ही दिखलाई देता है। ब्रज के कवियों ने राधा को स्वकीया माना है, किंतु चैतन्य संप्रदाय में राधा को परकीया अथवा प्रेयसी स्वीकार किया गया है। परकीया में आत्मत्याग और लगन की माता अधिक होती है, इसलिए उनके सिद्धांतानुसार भगवान् की भक्ति परकीया भाव से ही करनी चाहिए।

गौड़ीय संप्रदाय में इस प्रकार की भक्ति को ‘उज्ज्वल रस’ कहा गया है। चैतन्य महाप्रभु के शिष्य और गौड़ीय संप्रदाय के विख्यात रस-शास्त्री रूप गोस्वामी ने इसी आदर्श पर अपने प्रसिद्ध ग्रंथ “उज्ज्वल नीलमणि” की रचना की है। उन्होंने रसराय श्री कृष्ण के साथ रास-विलास करने वाली भिन्न-भिन्न प्रकृति की अनेक गोपियों का नायिकाभेद के अनुसार वर्गीकरण किया है। इस वर्गीकरण का यह अभिप्राय है कि विभिन्न स्वभाव की गोपियों के साथ श्री कृष्ण की विभिन्न प्रेम लीलाओं का विविध रीति से वर्णन किया जा सके। इस ग्रंथ में ३६३ प्रकार की गोपियों की नाना प्रकार की चेष्टाएँ, उनके भिन्न-भिन्न स्वभाव, रहन-सहन और विविध वस्त्राभूषणों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। उसमें ३६३ प्रकार की नायिकाओं के उदाहरण के लिए गोपियों का ही नामोल्लेख किया गया है। ५

गौडीय संप्रदाय के नायिकाभेद की यह शैली ब्रजभाषा साहित्य में स्वीकार नहीं की गई। यहाँ पर भक्त कवि एवं रीति साहित्य के आचार्य—दोनों ने ही प्राचीन रस-शास्त्रियों की शैली पर नायिकाभेद का कथन किया है। उन्होंने नायिकाओं के रूप में गोपियों की संख्या बाँधना शायद आध्यात्मिक दृष्टि से भी उचित नहीं समझा। आध्यात्मिक पक्ष में श्री कृष्ण को परमब्रह्म और गोपियों को जीवात्मा माना गया है। जीवात्माएँ अगणित हैं, उनकी कोई निश्चित संख्या नहीं हो सकती। तब नायिकाओं के रूप में गोपियों की भी संख्या कैसे निश्चित की जा सकती थी! संभवतः इसीलिए धार्मिक दृष्टि से प्रचलित गौडीय संप्रदाय के नायिकाभेद की यह प्रणाली धार्मिक दृष्टि से ही स्वीकृत न हो सकी। कारण कुछ भी हो, ब्रजभाषा कवियों का नायिकाभेद गौडीय भक्तों के नायिकाभेद से भिन्न है।

जयदेव और विद्यापति ने कृष्ण-लीलाओं के साथ शृंगार रस और नायिकाभेदोक्त कथन के गायन की जो प्रणाली प्रचलित की थी, उसका अनुसरण ब्रजभाषा के भक्त कवियों ने भी किया। सूरदास, हरिवंश, हरिदास, श्रीभट्ट, व्यास, तानसेन आदि कवि और गायकों ने इसी प्रणाली को आगे बढ़ाया। इन भक्त कवियों की मधुरा भक्ति ने ही ब्रजभाषा-रीति-साहित्य के मार्ग को प्रशस्त किया है। ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद उन भक्त कवियों की भक्ति-भावना से भी अत्यधिक प्रभावित है।

“नायक और नायिका संबंधी उत्प्रेक्षाओं, प्रतीकों, भावों, अनुभावों और रसों के सहारे वैष्णव साहित्यकों ने मानव-हृदय की गूढ़ और गहन भावनाओं की अपूर्व अभिव्यक्ति की है। मनोविज्ञान के प्रेमियों के लिए उसमें विपुल सामग्री है। उसमें ईश्वर और जीव का भावात्मक और रसात्मक संबंध स्थापित किया है। लौकिक और पारलौकिक की दीवारों को तोड़ कर उन्होंने सीमित और असीमित का परिणय करा दिया है। फिर भी उत्तम, मध्यम, और अधम की विवेकात्मक रेखाओं को उन्होंने मिटाया नहीं।”

इस प्रकार ब्रजभाषा-नायिकाभेद के आरम्भिक काल में भक्त कवियों ने भी उसके प्रसार में योग दिया है। भक्त कवियों की भक्ति-भावना कब तक नायिकाभेद के साथ रही और कब उसने उसका साथ छोड़ दिया, इसका विवेचन ब्रजभाषा नायिकाभेद का विकास बतलाते हुए आगामी पृष्ठों में किया गया है।

* ब्रज साहित्य मंडल के समापति पद से डा० रामप्रसाद त्रिपाठी का भाषण.

कृपाराम कृत 'हिततरंगिनी'—

'हिततरंगिनी' ब्रजभाषा के रीति-साहित्य एवं नायिकाभेद की सबमे प्राचीन उपलब्ध रचना है। इसे कृपाराम कवि ने सं० १५६८ वि० में लिखा था, जैसा इसके अंतिम दोहा से सिद्ध है—

सिधि, निधि, सिवमुख, चद्र लखि, भाव सुद्ध तृतियासु ।

हिततरंगिनी हौं रची, कवि—हित परम प्रकासु ॥

हिततरंगिनी में रचना-काल के अतिरिक्त उसके रचयिता के विषय में कुछ नहीं लिखा है, इसलिए कृपाराम का जीवन-वृत्तांत अज्ञात है। श्री जगन्नाथदास रत्नाकर ने कृपाराम नाम से ऐसा अनुमान किया है कि वे 'पश्चिमदेश के निवासी ब्राह्मण रहे होंगे', क्योंकि इस प्रकार के नाम उसी प्रांत के ब्राह्मणों के होते हैं। ब्रजभाषा साहित्य के आरंभिक काल में ही इतनी शुद्ध और परिमार्जित ब्रजभाषा लिखने के कारण उनका ब्रजभाषा क्षेत्र का निवासी होना भी सिद्ध होता है।

✓ हिततरंगिनी अपने विषय की सर्व प्रथम कृति होने पर भी सर्वांगपूर्ण रचना है। इसका कारण यह है कि उसके रचयिता को इस विषय का संस्कृत-साहित्य सुलभ था, जिसका उसने पूर्णतया उपयोग किया है। जिस नायिका-भेद का आरंभ महामुनि भरत ने किया था, उसकी उन्नति क्रमशः धनंजय, विश्वनाथ और भानुदत्त द्वारा हुई थी। कृपाराम ने उन आचार्यों के ग्रंथों से, विशेष कर भानुदत्त की रचनाओं से, लाभ उठाकर 'हिततरंगिनी' की रचना की थी। ✓

यह ग्रंथ दोहा छंद में लिखा गया है और पाँच तरंगों में समाप्त हुआ है। इसके दोहे बड़े सरस और भावपूर्ण हैं। इनमें से कई दोहे विहारी के दोहों से मिलते हैं। इनके विषय में पं० रामचंद्र शुक्ल का अनुमान है कि या तो उन दोहों को विहारी ने जान बूझ कर लिया अथवा वे पीछे से विहारी की रचना में मिल गये।

कृपाराम द्वारा कथित नायिकाओं के वर्णन से ज्ञात होता है कि उन्होंने इस विषय का पूर्ण विकसित रूप उपस्थित किया है। यही क्रम कुछ लौट-फेर के साथ परवर्ती कवियों ने भी लिखा है। इस प्रकार वे ब्रजभाषा-नायिकाभेद के सर्व प्रथम आचार्य सिद्ध होते हैं।

कृपाराम ने नायिका के सर्व प्रथम तीन भेद—स्वीया, परकीया और सामान्या लिखे हैं। स्वीया के मुग्धा, मध्या और प्रौढा भेद किये हैं। मुग्धा के चार उपभेद अज्ञातयौवना, ज्ञातयौवना, नवोद्गा और विश्रब्ध नवोद्गा कर नवोद्गी के पुनः ललिता, वयसधि और उदितयौवना उपभेद किये हैं। मुग्धा के ये उपभेद परवर्ती कवियों के उपभेदों से कुछ भिन्न हैं। मध्या के दो उपभेद साधारण मध्या और अतिविश्रब्धनवोद्गा मध्या भी बाद में प्रचलित नहीं हुए। प्रौढा के दोनो उपभेद रतिप्रिया और आनन्दमत्ता नामभेद के साथ परवर्ती कवियों की रचनाओं में भी मिलते हैं। इसके बाद ज्येष्ठा-कनिष्ठा लिख कर स्वीया प्रकरण को समाप्त किया गया है।

परकीया नायिका के सर्व प्रथम दो भेद अनूढा और ऊढा कर ऊढा के अतर्गत परप्रिया और परविवाहिता का उल्लेख किया है। इन नायिकाओं को भी इसी प्रकार परवर्ती कवियों ने स्वीकार नहीं किया। इसके बाद परकीया के सात भेद किये गये हैं, जिनमें ललिता, विदग्धा, कुलटा, मुदिता, अनुशयना और सुरतिगोपना परवर्ती काल में भी प्रचलित रहे, किंतु स्वयंकृति को परकीया का सातवाँ स्वतंत्र भेद परवर्ती काल में नहीं माना गया।

सामान्या नायिका में भी मुग्धा और उसके उपभेद, मध्या एवं प्रौढा का कथन बाद के कवियों में विशेष रूप से प्रचलित नहीं हुआ। भक्त कवियों द्वारा तो सामान्या का कथन हुआ ही नहीं है, अन्य कवियों ने भी मर्यादा के विचार से उसका विस्तार नहीं किया है। कृपाराम द्वारा भक्तिकाल के आरंभ में ही सामान्या का भेदोपभेद सहित वर्णन उन्हें भक्त कवियों की विचार-धारा से पृथक् कर देता है। वास्तव में कृपाराम का दृष्टिकोण शुद्ध रसवादी और उनकी कृति शुद्ध रीति-रचना है।

सामान्या के पश्चात् उन्होंने उत्तमा, मध्यमा और अधमा का उल्लेख कर मान भेद और धीरादि भेद को लिखा है। इसके पश्चात् अन्यसमोग-दुःखिता और गर्विता लिख कर प्रत्येक के स्वीया, परकीया और सामान्या उपभेद किये हैं। ये उपभेद परवर्ती कवियों में विशेष रूप से प्रचलित नहीं हुए। गर्विता के प्रथम वक्रोक्ति और सरलोक्ति दो भेद कर प्रत्येक के अंतर्गत रूपगर्विता, गुणगर्विता और प्रेमगर्विता का कथन किया है। इन नायिकाओं का भी इतना विस्तार बाद के अधिकांश कवियों को मान्य नहीं हुआ।

सब के अंत में नायिकाओं के दस भेद स्वाधीनपतिका आदि किये गये हैं। इन भेदों को कृपाराम ने भरत के मतानुसार बलताया है, किंतु भरत ने केवल आठ भेद किये थे। वास्तव में कृपाराम ने अपने ग्रंथ की रचना भानुदत्त के आधार पर की थी। यही कारण है कि उसमें नायिकाभेद का इतना विकसित और विस्तृत रूप दिखलाई देता है।

सूरदास और 'साहित्यलहरी'—

हिततरंगिणी के पश्चात् 'साहित्यलहरी' ब्रजभाषा रीति-साहित्य और नायिकाभेद की प्राचीन रचना है। अब तक इसे महात्मा सूरदास की रचना माना जाता था, किंतु अब कुछ विद्वान इस मत के विरुद्ध हैं।

साहित्यलहरी की रचना दृष्टिकूट पदों में की गई है। श्लेष और यमक आदि अलंकार तथा अनेकार्थवाची कतिपय शब्दों के प्रयोग से ऐसी रचना करना, जिसका समझना साधारण पाठक के लिए कठिन हो, दृष्टिकूट काव्य कहलाता है। इस प्रकार की रचनाओं का लाभ अधिकारी व्यक्तियों को हो और अनधिकारी व्यक्ति उसका दुरुपयोग न कर सके, इसलिए कविगण अपने सिद्धांत विषय को कभी-कभी दृष्टिकूट काव्य के कठिन आवरण से ढक देते थे। साहित्य में इस प्रकार की रचनाएँ प्राचीन काल से होती रहीं हैं।

इसके सभी दृष्टिकूट पद गेय हैं। उनमें नायिकाभेद, अलंकार, रस-भेद और भाव-भेद का वर्णन हुआ है। इन विषयों के लक्षण न देकर केवल उदाहरण ही दिये गये हैं, इसलिए साहित्यलहरी को रीतिशास्त्र की रचना न मान कर रीति-रचना ही मानना चाहिये।

इसके प्रत्येक पद में एक अलंकार, एक नायिका तथा काव्य के किसी एक अंग का वर्णन किया गया है। जिस पद में जो विषय लिखा गया है, उसे उसका उदाहरण भी समझना चाहिए। आरंभ में ३१ पदों तक नायिकाभेद का कथन है। इन ३१ पदों में से ६ पदों में केवल अलंकार लिखे गये हैं, और ५ पद प्रसिद्ध ज्ञात होते हैं, शेष २० पदों में नायिकाभेद का उल्लेख किया गया है। कहीं-कहीं नायिकाओं के नाम भी कूट में ही दिये गये हैं। नायिकाओं के बाद अलंकार, रस और भाव विषय का वर्णन किया गया है।

साहित्यलहरी के १०६ वें पद में रचना-काल और ११८ वें पद में कवि-वंशावली का वर्णन है। इन दो पदों को सूरदास पर लिखने वाले सभी

विद्वानों ने उनके काल-निर्णय के संबंध में उद्धृत किया है। रचना-काल वाले पद की आरंभिक टेक इस प्रकार है—

मुनि पुनि रमन के रस लेख ।

दसन गौरीनंद कौ, लिखि सुवल संवत् पेख ॥

इसमें साहित्यलहरी का रचना-काल दिया गया है। पद में प्रयुक्त 'रसन' शब्द का अर्थ अब तक शून्य (०) लगाया जाता था, जिसके कारण साहित्यलहरी का रचना-काल सं० १६०७ माना जाता था, किंतु अब 'रसन' का अर्थ एक (१) लगाने से रचना-काल सं० १६१७ होता है। यही संवत् गणित के अनुसार भी ठीक निकलता है, अतः साहित्यलहरी का रचना-काल सं० १६१७ मानना चाहिए।

कवि-वंशावली वाले पद से साहित्यलहरी के रचयिता की जाति और उसके वंश पर विशेष प्रकाश पड़ता है। जो विद्वान साहित्यलहरी को सूरदास की रचना कहते हैं, वे भी कवि-वंशावली के विवरण के कारण इस पद को उसमें पीछे से सम्मिलित किया हुआ मानते हैं। प्रो० मुंशीराम शर्मा साहित्यलहरी को सूरदास की रचना स्वीकार करते हैं और उसके वंशावली वाले पद को भी प्रामाणिक मानते हैं[†]। इसके विरुद्ध डा० ब्रजेश्वर शर्मा इसे सूरदास की रचना स्वीकार नहीं करते। उनके मतानुसार "साहित्यलहरी का रचना-कार कोई सूरजचंद भाट जान पड़ता है, जो कदाचित् चंद वरदाई और सूरदास—हिंदी के दो महान् कवियों से अपने व्यक्तित्व को संबंधित और मिश्रित करने के लोभ में साहित्यिक प्रवचना का अपराध कर बैठा[‡]।" इन परस्पर विरुद्ध मतों के कारण यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि साहित्यलहरी का रचयिता सूरदास है अथवा कोई सूरजचंद भाट।

रचना-काल वाले पद के अंत में उसकी रचना का उद्देश्य इस प्रकार बतलाया गया है—

“नंदनंदनदास हित साहित्यलहरी कीन ।”

* सम्मेलन पत्रिका, पौष सं० २००२

† 'सूरसौरभ' प्रथम भाग, पृ० ३२

‡ सूरदास पृ० ६६

जिन 'नन्दनन्दनदास' के लिए साहित्यलहरी की रचना की गई थी, उनके विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। पुष्टि सांप्रदायिक वार्ता साहित्य के विद्वान श्री द्वारिकादास परिख का मत है कि इस ग्रंथ की रचना अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि और 'रसमंजरी' के रचयिता नन्ददास के लिए हुई थी†। इस मत के समर्थन कर्त्ताओं ने स्पष्ट रूप से लिखा है— "रीति काव्य क्षेत्र में नन्ददास सूरदास के शिष्य है। सूरदास ने इनके लिए ही ६ मास में समस्त साहित्य-लहरी की रचना की थी। कदाचित् रीति शास्त्र की शिक्षा भी ध्येय था, इसीसे उसमें नायिकाभेद आदि के दर्शन होते हैं*।"

श्री परिख के मत का खंडन करते हुए श्री महावीरसिंह गहलोत 'नन्दनन्दनदास' का अर्थ कृष्णदास कर इस बात पर जोर देते हैं कि अष्टछाप वाले अधिकारी कृष्णदास को काव्य का ज्ञान कराने के लिए सूरदास ने साहित्यलहरी की रचना की थी‡।

हमारे मतानुसार साहित्यलहरी की रचना न तो नन्ददास के लिए हुई और न अधिकारी कृष्णदास के लिए। 'नन्दनन्दनदास' का साधारण अर्थ कृष्ण के दास अर्थात् भगवद्भक्त होता है, इसलिए भक्तों की मधुरा भक्ति के अनुकूल मधुर रस का आस्वादन कराने के लिए इसकी रचना एक भक्त कवि द्वारा भगवद्भक्तों के लिए हुई थी। इस गोपनीय तत्त्व को अनधिकारी व्यक्तियों से बचाने के लिए उसे दृष्टिकूट के आवरण से भी ढक दिया गया है। यदि इसकी रचना परम भक्त महात्मा सूरदास द्वारा हुई है, तब तो इस कथन की यथार्थता स्वयंसिद्ध है।

✓ साहित्यलहरी में नायिकाभेद सच्चिद रूप में लिखा गया है, फिर भी उसमें मुख्य-मुख्य नायिकाओं का विवरण आ गया है। सर्व प्रथम नायिका के दो भेद स्वकीया और परकीया किये गये हैं; तीसरा भेद सामान्या नहीं लिखा गया। इससे भी इस ग्रंथ के रचयिता की धार्मिक भावना का

† प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग, गुजराती विभाग पृ० १०७

* नन्ददास—एक अध्ययन, पृ० ५१

‡ संमेलन पत्रिका, श्रावण-भाद्रपद सं० २००२

संकेत मिलता है। सामान्या नायिका रस का कारण नहीं हो सकती और देव रति में उसका कोई स्थान भी नहीं है, इसलिए भक्त कवियों ने उसका उल्लेख नहीं किया है। केवल भक्त-रहित शृंगारवादी कवियों ने अथवा रीतिकाखीन कवियों ने उसका वर्णन किया है।

स्वकीया के अंतर्गत मुग्धा के ज्ञातयौवना और अज्ञातयौवना दो उपभेद किये गये हैं। मुग्धा के पश्चात् मध्या और प्रौढ़ा का उल्लेख कर धीरा और ज्येष्ठा—कान्ठ्या को लिखा गया है। परकीया के अनूढ़ा भेद का उल्लेख कर फिर उसके प्रसिद्ध ६ भेदों में से सुरतिगुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, मुदिता और अनुशयना का वर्णन किया गया है, किंतु कुलटा को छोड़ दिया गया है। परकीया के दूसरे भेद ऊढ़ा और कुलटा का उल्लेख न होने से साहित्यलहरी के रचयिता के उच्चादर्श का और भी एक प्रमाण मिलता है।

इसके पश्चात् नायिका के अन्य भेदों में पहले अन्यसुरतिदुःखिता, गर्विता और मानवती लिख कर बाद को प्रोषितभर्तृका, खडिता, उत्कडिता, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका, पतिगमनी, आगतपतिका और कहलांतरिता—इन नौ भेदों को लिखा गया है। इस प्रकार साहित्यलहरी के दृष्टिकोण में नायिकाभेद का उल्लेख हुआ है।

यदि साहित्यलहरी को सूरदास की रचना न भी मानें, तब भी सूरसागर के अनेक पदों में नायिकाभेदोक्त कथन मिलते हैं। राधा-कृष्ण की प्रेम-भावना के विकास में अज्ञातयौवना से लेकर स्वकीया के समस्त भेदोपभेदों के अनुकूल वर्णन किये गये हैं। परकीया भक्ति पुष्टि संप्रदाय के अनुकूल नहीं है और सूरदास ने राधा का वर्णन स्वकीया के रूप में किया है, इसलिए सूरसागर में परकीया नायिका के पद मिलने की आशा नहीं हो सकती, किंतु कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेमानुराग और तत्संबंधी उनकी अनेक चेष्टाओं में परकीया—प्रेम की भी अभिव्यंजना हो जाती है। इसके अतिरिक्त मानवती, गर्विता आदि दशानुसार और खडिता, कलहांतरिता आदि अवस्थानुसार सभी भेदों के अनुकूल बड़े विस्तार पूर्वक कथन किये गये हैं। नायिकाओं के लक्षण और उनके नामों का निर्देश किये बिना प्रायः संपूर्ण नायिकाभेद सूरदास के पदों में मिल जाता है।

सूरदास के अतिरिक्त अष्टछाप के समस्त कवि तथा वैष्णव संप्रदायों के अन्य समकालीन कवियों की पद-रचनाओं में भी इसी प्रकार के नायिकाभेदोक्त कथन मिलते हैं। अष्टछाप के आठों कवियों की रचनाओं में खडिता के पद प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। ये पद आरंभ से ही पुष्ट संप्रदाय के मंदिरो में मंगला-झोंकी के समय गाये जाते रहे हैं।

इस प्रकार के नायिकाभेदोक्त कथन कृपाराम के समय में अथवा कुछ उनसे भी पहले सूरदास आदि भक्त कवियों द्वारा हुए थे, किंतु रीति-रचना के रूप में नायिकाभेद की सर्व प्रथम कृति 'हिततरंगिनी' है और उसके बाद की रचना 'साहित्य-लहरी' है। इसी क्रम से उनका उल्लेख भी किया गया है।

नंददास और 'रसमंजरी'—

'रसमंजरी' प्रसिद्ध भक्त कवि नंददास कृत नायिकाभेद की एक रीति-रचना है। नंददास के ग्रंथों के संपादक श्री उमाशंकर शुक्ल ने इस बात की संभावना प्रकट की है कि—

“रसमंजरी भाषा-साहित्य में कदाचित नायिकाभेद का पहला ग्रंथ है*,” किंतु इससे पहले 'हिततरंगिनी' और 'साहित्यलहरी' की रचना हो चुकी थी, इसलिए 'रसमंजरी' नायिकाभेद का पहला ग्रंथ न होते हुए भी आरंभिक ग्रंथों में से अवश्य है।

नंददास के ग्रंथों में उनके रचना-काल का उल्लेख नहीं हुआ है, इसलिए यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि 'रसमंजरी' की रचना कब हुई। नंददास ने अपनी कुछ उत्कृष्ट रचनाएँ अपने किसी 'रसिक मित्र' के कहने से की थी। ये रचनाएँ 'रसमंजरी', 'विरह मंजरी' और 'दशमस्कंध' हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार 'रूपमंजरी' की कथा भी उसी 'रसिक मित्र' से संबंध रखती है। ये सब रचनाएँ एक ही श्रेणी में आती हैं। काव्यशास्त्र की दृष्टि से ये सब गौड रचनाएँ हैं, किंतु “इनमें काव्यकला का इतना आग्रह नहीं है, जितना सांप्रदायिक दृष्टिकोण का।” इस दृष्टि से ये सब नंददास की अंतिम रचनाएँ हो सकती हैं। नंददास अंतिम रूप से गृहस्थ को त्याग कर सं० १६२४

* 'नंददास', भूमिका पृ० ६३

के लगभग गोवर्धन में रहने लगे थे और वही पर वे अपने देशवासन-काल सं० १६४० तक रहें। इससे अनुमान होता है कि ये सब प्रौढ़ ग्रंथ उसी समय में रचे गये होंगे, अतः 'रसमंजरी' का रचना-काल सं० १६२४ से १६३० तक हो सकता है।

नंददास ने इसकी रचना भानुदत्त कृत रसमंजरी के आधार पर की थी। रसमंजरी भानुदत्त की सुप्रसिद्ध संस्कृत रचना का अनुवाद नहीं है, किंतु उसके मतानुकूल अवश्य है, जैसा पुस्तक के आरंभ में ही स्वीकार किया गया है—

‘रसमंजरी’ अनुसारि कै, नंद सुमति अनुसार।

वरनत बनिता-भेद जहूँ, प्रेम सार विस्तार॥

रसमंजरी में नायिकाओं के लक्षण मात्र लिखे गये हैं, किंतु उनके लिखने की शैली ऐसी अद्भुत है कि उनमें लक्षण और उदाहरण दोनों का समावेश हो जाता है। परवर्ती कवियों ने नायिकाभेद को शास्त्रीय रूप दे दिया था, किंतु नंददास ने उसे ऐसे विलक्षण कवित्वपूर्ण ढंग से लिखा है कि उनके पढ़ने में सरस निबंध का सा आनंद आता है।

नंददास के नायिकाभेद का क्रम प्रचलित क्रम से कुछ भिन्न है। उन्होंने नायिकाभेद के तीनों भेद स्वकीया, परकीया और सामान्या में मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा उपभेदों को लिखा है, जब कि अन्य प्रसिद्ध कवियों ने पिछले तीनों उपभेदों को केवल स्वकीया के अंतर्गत माने गये हैं। मुग्धा के नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा दो भेदों लिख कर फिर अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना दो अन्य भेदों को लिखा है। नायिकाभेद के जिन परवर्ती आचार्यों ने मुग्धा नायिका को स्वकीया के अंतर्गत न लिख कर तीनों नायिकाओं में चयक्रमानुसार लिखा है, उन्होंने प्रायः नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा उपभेदों को नहीं लिखा है, क्योंकि ये उपभेद स्वकीया में ही समीचीन ज्ञात होते हैं, परकीया और सामान्या में नहीं। यही बात 'अज्ञातयौवना' के विषय में भी कही जा सकती है। अधिकांश आचार्यों ने मुग्धा आदि तीनों भेदों को स्वकीया के ही अंतर्गत माना है। इसी सिखसिखे में नंददास ने धीरादि तो लिखे हैं, किंतु ज्येष्ठा-कनिष्ठा का उल्लेख नहीं किया।

परकीया के भेदों में केवल लुगनिगोपना वाग्विदग्धा और लक्षिता को लिखा है। परकीया के शेष तीन भेद एवं ऊढ़ा, अनूढ़ा का उल्लेख न कर उन्होंने इस विषय का संक्षिप्त रूप से वर्णन किया है, जो उनके सांप्रदायिक सिद्धांत के अनुकूल है।

उन्होंने दशानुसार गर्विता आदि तीनों भेदों को नहीं लिखा है। दस प्रकार की प्रचलित नायिकाओं में से उन्होंने नौ को लिखा है, दसवीं 'आगतपतिका' का उल्लेख नहीं किया है। इन नायिकाओं के उपभेदों में मुग्धा, मध्या, प्रौढा और परकीया का कथन किया है, किंतु सामान्या का उल्लेख नहीं किया। इन भेदों में से सामान्या का बहिष्कार उनकी भक्ति-भावना के अनुसार उचित ही है।

उपर्युक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि रसमंजरी में नायिकाभेद का संक्षिप्त रूप से कथन किया गया है। इसका महत्व केवल इसलिए है कि यह नायिकाभेद की आरंभिक रचनाओं में से है और इसके लिखने की शैली बड़ी सरस और कवित्वपूर्ण है।

नंददास की अन्य रचना 'रूपमंजरी' पर भी नायिकाभेद का अत्यंत प्रभाव है। यह 'रसमंजरी' की तरह रीति-रचना नहीं है, किंतु इसके कथानक में नायिकाभेद के अनुकूल अनेक प्रसंग लिखे गये हैं। इन प्रसंगों में रसमंजरी के अनेक छंदों को दुबारा लिख दिया गया है। इस प्रकार एक सामग्री का दो स्थानों में उपयोग किया गया है।

ग्रंथ-रचना के अतिरिक्त नंददास की स्फुट रचना के रूप में बहुत से गेय पद भी प्राप्त हैं। इन पदों को उन्होंने कीर्तन के लिए लिखा था। अन्य भक्त कवियों की तरह इन पदों में भी उन्होंने नायिकाभेदोक्त कथन किये हैं। इस प्रकार के पदों में खडिता के पद यथेष्ट संख्या में उपलब्ध हैं।

रहीम और 'बरवा नायिकाभेद'—

अबदुरहीम खानखाना सम्राट अकबर के उच्च राज-कर्मचारी थे। उन्होंने सेनापति और मंत्री के सर्वोच्च पदों पर रह कर बादशाह की सेवा की थी। ऐसे प्रतिष्ठित एवं उन्नतदायित्वपूर्ण पदों पर रहते हुए भी उनका विद्या-व्यसन और काव्य-प्रेम सराहनीय है। वे तुर्की, फारसी, संस्कृत, हिंदी आदि भाषाओं के विद्वान और कवि थे। उनका जन्म सं० १६१० में

और मृत्यु सं० १६८३ में हुई थी। उन्होंने अपने जीवन के कई सुखी एवं दुखी पक्ष देखे थे। वे परम उदार और गुणग्राहक थे। उन्होंने कवियों एवं गुणियों को अपने जीवन में लाखों रुपये प्रदान किये थे।

हिंदी साहित्य में वे अपने नीति विषयक दोहाओं के लिए प्रसिद्ध हैं, किंतु वे शृंगार रस की भी बड़ी उत्कृष्ट रचना करते थे। नायिकाभेद पर उन्होंने 'बरवा नायिकाभेद' नामक प्रसिद्ध रचना की थी। यह पुस्तक अवधी भाषा में है और बरवा छंद में लिखी गई है। अवधी भाषा की कृति होने के कारण इस पुस्तक में उसके उल्लेख की आवश्यकता भी नहीं थी, किंतु भाषा नायिकाभेद की आरंभिक कृतियों में होने के कारण उसके उल्लेख की भी आवश्यकता समझी गई। इस पुस्तक में नायिकाभेद का वर्णन ऐसी सरल, सरस और स्पष्ट रीति से हुआ है कि उसके बरवा छंदों का उपयोग हमने भी यथा स्थान किया है।

'बरवा नायिकाभेद' की रचना कब हुई, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। हिततरंगिनी, साहित्यलहरी और रसमंजरी की रचना इससे पहले हो चुकी थी, किंतु केशवदास कृत 'रसिकप्रिया' से 'बरवा नायिकाभेद' पहले बना या नहीं, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। रसिकप्रिया की रचना सं० १६४८ में हुई थी। ऐसा अनुमान होता है कि बरवा-नायिकाभेद इससे पहले बन चुका था। इस अनुमान का यह आधार है कि गो० तुलसीदास ने अपनी बरवा रामायण रहीम के बरवों को देख कर बनाई थी। यह भी कहा जाता है कि रहीम ने ही गोस्वामीजी को बरवा रामायण लिखने के लिए प्रेरित किया था। बाबा वेणीमाधवदास ने इसका उल्लेख भी किया है[†]। इसलिए यह समझा जा सकता है कि 'बरवा नायिकाभेद' की रचना केशवदास की 'रसिकप्रिया' से पूर्व सं० १६४५ के लगभग हुई थी।

'बरवा नायिकाभेद' में ११५ बरवे हैं। इनमें आरंभ के ६५ बरवों में नायिकाभेद लिखा गया है। अंत के शेष बरवों में नायकभेद, सखी आदि का संक्षिप्त रूप से उल्लेख किया गया है। रहीम के नायिकाभेद का क्रम प्रायः वैसा ही है, जैसा रीति-काल के अधिकांश नायिकाभेद के कवियों ने लिखा है।

† कवि रहीम बरवै रचे, पठये सुनिवर पासैं।

लखि तेइ सुंदर छंद में, रचना कियेउ प्रकास ॥

—“गुसाई चरित्र”

‘बरवा नायिकाभेद’ में प्रथम स्वकीया नायिका के अंतर्गत मुग्धा, मध्या और प्रौढा का उल्लेख कर मुग्धा के उपभेद अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना का तथा ज्ञातयौवना के उपभेद नवोढा एवं विश्रब्ध नवोढा का कथन किया गया है। परकीया नायिका के ऊढा और अनूढा भेदों के अतिरिक्त गुप्ता आदि छै प्रसिद्ध भेदों को लिख कर गुप्ता के उपभेद भूत, वर्तमान एवं भविष्य पुरतिसंयोगना का तथा विदग्धा के उपभेद वचन एवं क्रिया विदग्धा का उल्लेख किया गया है। अनुशयना में भी प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय अनुशयना नायिकाओं को लिखा गया है। इस प्रकार परकीया का कथन कर उसके पश्चात् गणिका का कथन किया गया है।

दशानुसार नायिकाओं में अन्यसुरतिदुःखिता और वक्तोक्तिगर्विता को लिखा है, किंतु मानवती का उल्लेख नहीं किया। गर्विता के अंतर्गत प्रेमगर्विता एवं रूपगर्विता को लिखा है। इसके पश्चात् दस प्रकार की प्रसिद्ध नायिकाओं को लिख कर उनके अंतर्गत मुग्धा, मध्या, प्रौढा, परकीया एवं गणिका उपभेदों का कथन किया गया है। सबके अंत में उन्नुमा, मध्यमा और अधमा नायिकाएँ लिख कर इस विषय की समाप्ति की गई है।

नंददास ने रसमंजरी में नायिकाओं के उदाहरण न लिख कर लक्षण मात्र लिखे थे, इसके विरुद्ध रहीम ने बरवा नायिकाभेद में लक्षण न लिख कर केवल उदाहरण ही लिखे हैं। खोज में रहीम कृत नायिकाभेद की कुछ ऐसी हस्तलिखित प्रतियाँ भी मिली हैं, जिनमें लक्षण मतिराम कृत ‘रसरज’ के दोहाओं के दिये गये हैं। इन प्रतियों में मतिराम के लक्षण और रहीम के उदाहरणों के कारण विषय की अद्भुत पूर्णता आ गई है। रहीम कृत नायिकाभेद का ऐसा संपादन संभवतः स्वयं मतिराम ने किया हो, अथवा उनके बाद किसी कवि ने, किंतु वह तभी किया गया होगा, जब मतिराम कृत सुप्रसिद्ध ग्रंथ ‘रसरज’ की रचना हो चुकी होगी। रहीम के अंतिम समय में मतिराम कुछ समय तक उनके समकालीन भी रहे। मतिराम के काव्य में भी रहीम का कुछ प्रभाव ज्ञात होता है।

रहीम कृत ‘नगर शोभा’ नामक एक अन्य रचना भी प्राप्त हुई है। इसमें १४२ दोहा छंद हैं। इस पुस्तक में भिन्न-भिन्न जाति की स्त्रियों का शृंगार रस पूर्ण कथन हुआ है। प्रत्येक जाति की स्त्री के वर्णन में उसके अनु-रूप विशिष्ट शब्दों के लाने की चेष्टा की गई है, जिनके कारण उसका पूर्ण चित्र

नेत्रों के सन्मुख खिंच जाता है। संभवतः रहीम की इसी कृति के अनुकरण पर महाकवि देव ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'जाति-विलास' की रचना की थी। देव ने भी इसी शैली में विविध प्रदेशों और जातियों की स्त्रियों का सरस वर्णन किया है। रहीम कृत 'नगर शोभा' ग्रंथ भी एक प्रकार से नायिकाभेद संबंधी रचना कही जा सकती है। श्री मयाशंकर याज्ञिक का कथन है कि यह ग्रंथ रहीम के सैलानी स्वभाव का परिचायक है और इसके लिखने की प्रेरणा उनको अकबर के मीना बाज़ार से मिली होगी।

इसी प्रकार के कुछ बरवा छंद भी मिले हैं, जिनमें 'नगर शोभा' की शैली में अनेक जाति की स्त्रियों का वर्णन किया गया है। विषय, भाव और शब्द-योजना को देखते हुए ये छंद भी रहीम के ही हो सकते हैं। संभवतः दोहा छंद में 'नगर शोभा' लिखने पर उनकी संतुष्टि न हुई हो और उन्होंने इसी विषय को अपने प्रिय छंद बरवा में भी लिख डाला हो। बरवा छंद के लिखने में रहीम को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। इस दोहा से भी छोटे छंद में अवधी बोली द्वारा रहीम ने 'जिस सरस कवित्व का परिचय दिया है, वह रसिकों को अतीव आनंद देने वाला है।

केशवदास और 'रसिकप्रिया'—

नायिकाभेद के आरम्भिक कवियों में कृपाराम के बाद केशवदास ही इस विषय के आचार्य कहे जा सकते हैं। साहित्यलहरी, रसमंजरी और बरवा नायिकाभेद के रचयिता इस विषय के कवि थे, आचार्य नहीं। केशवदास ने संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार हिंदी में भी रीति-ग्रंथों का निर्माण किया था। उन्होंने 'रसिकप्रिया' में रस-रीति और नायिकाभेद का तथा 'कविप्रिया' में अलंकार और काव्य-शिक्षा का पांडित्यपूर्ण विवेचन किया है। 'रामचंद्रिका' द्वारा उन्होंने अपने पिंगल-विषयक ज्ञान का परिचय दिया है। इन ग्रंथों के कारण केशवदास हिंदी साहित्य में रीति-ग्रंथों के प्रवर्तक माने जाते हैं।

केशवदास के कुल में सदा से ही संस्कृत साहित्य के विद्वान होते रहे थे, अतः वे 'भाषा-कवि' कहलाने में गौरव का अनुभव नहीं करते थे, किंतु

‡ 'रहीम रत्नावली' पृष्ठ १६

† भाषा बोल न जानही, जिनके कुल के दास ।

'भाषा-कवि' भौ मदमति, तिहिं कुल केसवदास ॥

उनकी भाषा-कविता ने ही उनको सदैव के लिए अमर कर दिया है। उनका जन्म सं० १६१२ में और देहावसान सं० १६७४ के लगभग हुआ था। उन्होंने सं० १६४८ में 'रसिकप्रिया' एवं सं० १६५८ में 'कविप्रिया' और 'रामचंद्रिका' की रचना की थी। इनके अतिरिक्त उन्होंने और भी कई ग्रंथों का निर्माण किया था।

केशवदास संस्कृत काव्यशास्त्र के महान् पंडित थे। संस्कृत के ही आधार पर उन्होंने अपने समस्त ग्रंथों की रचना की थी। काव्य-रीति में उनका मत रसवादी मम्मट-विश्वनाथ के अनुकूल न होकर चमत्कारवादी दंडी-रुद्रक के अनुकूल था। नायिकाभेद का वर्णन उन्होंने 'रसिकप्रिया' में किया है। इस ग्रंथ की सरसता और विषय-प्रतिपादन की सरलता के कारण केशवदास को अपने अन्य ग्रंथों की अपेक्षा इसकी रचना में विशेष सफलता प्राप्त हुई है। इसी में उनके कवि-हृदय का भी परिचय प्राप्त होता है। यदि उन्होंने अन्य ग्रंथों को भी इसी शैली में लिखा होता तो वे शायद 'कठिन काव्य के प्रेत' नहीं कहे जाते।

'रसिकप्रिया' में वर्णित नायिकाभेद का क्रम विविध संस्कृत ग्रंथों के आधार पर निश्चित किया गया है। सर्व प्रथम पद्मिनी, चित्रिनी आदि चार प्रकार की नायिकाएँ लिखी गई हैं। इनके उपरान्त उन्होंने मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा नायिकाओं को परकीया के अंतर्गत लिख कर प्रत्येक के चार-चार भेद किये हैं, जो उनके परिवर्ती मतिराम आदि आचार्यों ने रवीकृत नहीं किये। धीरादि भेद पृथक् न लिख कर मध्या और प्रौढ़ा के साथ ही साथ लिखे गये हैं, किंतु ज्येष्ठा-कनिष्ठा का उल्लेख नहीं हुआ है। परकीया में केवल ऊढ़ा और अनूढ़ा लिख कर अन्य छै भेदों का उल्लेख नहीं किया गया। गणिका नायिका का भी उन्होंने उल्लेख नहीं किया है। 'नाट्यशास्त्र' की प्रणाली पर नायिकाओं के केवल ८ भेद लिखे गये हैं। ब्रजभाषा नायिकाभेद के अन्य आचार्यों की तरह 'प्रच्छन्नपतिका' और 'आगतपतिका' का उन्होंने उल्लेख नहीं किया है। इन आठों प्रकार की नायिकाओं के मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्या भेद न कर 'प्रच्छन्न' और 'प्रकाश' नामक प्रत्येक के दो-दो भेद लिखे हैं। केशवदास ने भोजराज कृत 'शृंगार प्रकाश' के आधार पर जो प्रच्छन्न और प्रकाश भेदों को लिखने की प्रणाली प्रचलित की, वह देव के अतिरिक्त ब्रजभाषा के अन्य आचार्यों ने स्वीकार नहीं की। अष्ट नायिकाओं में से अभिसारिका के ६ भेद भी परिवर्ती कवियों को मान्य नहीं हुए। अभिसारिका

में शुक्लाभिसारिका एवं कृष्णाभिसारिका तो प्रचलित हैं, किंतु केशवदास द्वारा वर्णित प्रेमाभिसारिका, गर्वाभिसारिका, कामाभिसारिका और उनके प्रच्छन्न एवं प्रकाश भेद ब्रजभाषा नायिकाभेद में प्रचलित नहीं हुए। अभिसारिका के वर्णन में ही उन्होंने परकीया आदि तीन भेद लिखे हैं, जबकि अन्य सात नायिकाओं में ये भेद नहीं लिखे गये। सामान्या नायिका पृथक् रूप से न लिख कर भी अभिसारिका के अंतर्गत लिखी है। इन आठ प्रकार की नायिकाओं के अतिरिक्त नायिका के तीन प्रचलित भेद अन्यसंभोगदुःखिता, गर्विता और मानवती का भी उन्होंने उल्लेख नहीं किया। सबके अंत में उत्तमा, मध्यमा और अधमा नायिकाओं का उल्लेख कर इस विषय की समाप्ति की गई है। उनके द्वारा वर्णित कुल नायिकाओं की संख्या ३६० होती है। यथा—

केसवदास गु तीन विधि, बरनी सुकिया नारि ।
परकीया द्वै भौंति पुनि, आठ-आठ अनुहारि ॥
उत्तम, मध्यम अधम अरु, तीन-तीन विधि जान ।
प्रगट 'तीन सै साठि' तिय, केसवदास बखान ॥

केशवदास ने भक्त कवियों की प्रणाली के अनुसार परकीया और सामान्या का विशेष विस्तार नहीं किया। परकीया नायिका की परिभाषा भी उन्होंने उसी प्रणाली के अनुकूल की—“सब ते पर परसिद्ध जो, ताकी तिया जो होय ।” केशवदास भक्त कवि न होकर रीति वादी कवि थे, किंतु परकीया और सामान्या के कथन में उन्होंने रीति वादी कवियों के समान आचरण नहीं किया। इसका कारण उनके समकालीन भक्त कवियों का प्रभाव ही हो सकता है।

यदि केशवदास की तरह परवर्ती काल के अन्य कवि भी परकीया और सामान्या नायिकाओं के भेदोपभेदों पर जोर नहीं देते, तो आचार और उपयोगिता की दृष्टि से उन कवियों की रचनाएँ और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जातीं और समाज-व्यवस्था पर भी इसका हितकारी प्रभाव पड़ता। जो कुछ भी हो, रसिकप्रिया ब्रजभाषा साहित्य के नायिकाभेद की आरंभिक रचनाओं में अत्यंत महत्वपूर्ण है, किंतु उसके रस-वर्णन की परिपाटी और नायिकाभेद को परवर्ती कवियों ने स्वीकार नहीं किया।

रीति कालीन परिवर्तित दृष्टिकोण का प्रभाव—

हिंदी साहित्य में केशवदास रीति-ग्रंथों के प्रवर्तक माने जाते हैं, किंतु उनका मत परवर्ती कवियों को मान्य नहीं हुआ। केशवदास के प्रायः ५० वर्ष पश्चात् आचार्य चिंतामणि ने रीति कालीन युग-परिवर्तन का कार्य किया है। उन्होंने दशांग कविता का मार्मिक विवेचन कर केशवदास से भिन्न मत प्रकट किया, जिसका अनुकरण परवर्ती कवियों ने भी किया है। अलंकारादि काव्यांगों की चिंतामणि ने नवीन और निश्चित प्रणाली प्रचलित कर दी थी, किंतु नायिकाभेद-कथन में उनका भी मत अनुकरणीय नहीं समझा गया।

नायिकाभेद की निश्चित और सर्वमान्य प्रणाली इन्हीं चिंतामणि के छोटे भाई आचार्य मतिराम ने चलाई, जिनका 'रसरंज' नायिकाभेद का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इनके तीसरे भाई भूषण ने महाराज शिवाजी के आश्रय में वीर रस के काव्य का पुनरुद्धार किया था। इस प्रकार इन तीनों भाइयों ने ब्रजभाषा-साहित्य के गति-परिवर्तन में अपने-अपने विभिन्न मार्गों द्वारा ऐसा महत्वपूर्ण कार्य किया है, जो साहित्य-जगत् में अनुपम है।

केशवदास के पश्चात् और चिंतामणि के पूर्व एक 'सुंदर' नामक कवि ने भी नायिकाभेद का सुंदर कथन किया है। 'सुंदर कवि' शाहजहाँ बादशाह के दरबारी कवि थे। उन्होंने सं० १६८८ में अपने ग्रंथ 'सुंदर शृंगार' द्वारा अपने पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा नायिकाभेद पर अधिक प्रकाश डाला है। उनकी कविता में यमक और अनुप्रास की अद्भुत छटा दिखलाई देती है। उन्होंने नायिकाओं की विभिन्न दशाओं का भी अच्छा कथन किया है।

चिंतामणि कृत "कविकुलकल्पतरु"—

आचार्य चिंतामणि का सबसे प्रमुख और प्रशंसनीय ग्रंथ 'कविकुलकल्पतरु' है। इसकी रचना सं० १७०७ वि० में हुई थी। इस महत्वपूर्ण ग्रंथ में उन्होंने काव्यशास्त्र के समस्त अंगों का मार्मिक विवेचन किया है। इसके पंचम अध्याय में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के उपरान्त भावभेद का साधारण कथन कर शृंगार रस के विभावांगत नायिकाभेद का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

चिंतामणि ने नायिका के सर्वप्रथम दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य— ये तीन भेद किए हैं, जो देव के अतिरिक्त किसी बड़े आचार्य ने नहीं लिखे,

देव ने भी इन नायिकाओं को नायिका के प्रधान वर्गों में न लिख कर स्वकीया के अंतर्गत लिखा है। इन भेदों के बाद उन्होंने स्वकीया, परकीया और सामान्या भेदों को लिख कर स्वकीया के तीन भेद मुग्धा, मध्या और प्रौढा का उल्लेख किया है। इनके अनंतर मुग्धा के छै भेद, मध्या के चार भेद और प्रौढा के चार भेदों का उल्लेख किया है, जिनके नाम अन्य आचार्यों के कथित नामों से भिन्न हैं, यद्यपि नायिकाओं के कथन में विशेष भिन्नता नहीं है। इसके पश्चात् मध्या और प्रौढा में धीरादि भेद लिख कर ज्येष्ठा-कनिष्ठा का भी उल्लेख किया है। परकीया नायिका में उदा लिख कर उसी के अंतर्गत 'सुरतिगोपना' आदि छै भेदों का कथन किया है, फिर अनूढा लिख कर परकीया प्रकरण को समाप्त किया है। केशवदास के विरुद्ध चित्तामणि ने नायिका का तीसरा भेद सामान्या स्वीकार करते हुए भी उसका विशेष वर्णन नहीं किया है। केशवदास की तरह गर्विता आदि तीन नायिकाओं का उल्लेख कर उन्हीं के समान आठ प्रकार की नायिकाएँ भी लिखी हैं, किंतु केशवदास के विरुद्ध और परिवर्ती आचार्यों के अनुसार इन आठों नायिकाओं में मुग्धा, मध्या, प्रौढा, परकीया और सामान्या का कथन किया है। केशवदास की तरह शेष दो 'प्रवच्छत्तपतिका' और 'आगतपतिका' नायिकाओं का उन्होंने भी उल्लेख नहीं किया। अंत में उत्तमा, मध्यमा और अधमा नायिकाओं का कथन कर नायिकाभेद की समाप्ति की है।

इस प्रकार चित्तामणि का नायिकाभेद केशवदास के नायिकाभेद से प्रायः मिलता हुआ होने पर भी उससे अधिक विस्तृत है और परिवर्ती आचार्यों के मत से भी अधिक भिन्न नहीं है। चित्तामणि के कथन में केशवदास और मतिराम के बीच की परिवर्तित स्थिति का स्पष्ट दिग्दर्शन होता है।

रस-रीति का प्रमुख अंग-नायिकाभेद —

गत पृष्ठों में लिखा जा चुका है कि ब्रजभाषा-नायिकाभेद का प्रधान आधार संस्कृत ग्रंथ 'रसमंजरी' है। रसमंजरी नाम से ऐसा अनुमान होता है कि उसमें रस विषय का पूर्ण विवेचन होगा, परंतु उक्त ग्रंथ में शृंगाररस के विभावांतर्गत नायिकाभेद का ही विशेष वर्णन है। ब्रजभाषा नायिकाभेद के कवियों एवं आचार्यों ने भी इसी परिपाटी को ग्रहण किया। मतिराम का 'रसरस' इसी पद्धति का आदर्श ग्रंथ है। इसमें उन्होंने नायिकाभेद का विस्तारपूर्वक वर्णन कर रस-भेद की अन्य बातें संक्षिप्त रूप से लिखी हैं। केशवदास की 'रसिकप्रिया' का क्रम दूसरा है। उसमें विविध संस्कृत

ग्रंथों के आधार पर रस-रीति का विशद वर्णन करने पर भी नायिकाभेद का उतना ही विवेचन किया गया है, जितना एक रस के उपांग का होना उचित था। केशवदास के परवर्ती कवियों में केवल देव ने अपने आरम्भिक ग्रंथों में उनका कुछ अनुसरण किया है, किंतु अन्य कवियों को मतिराम की शैली ही उपयुक्त ज्ञात हुई।

इस काल में नायिकाभेद के वर्णन पर इतना जोर क्यों दिया गया, इसके विषय में गत पृष्ठों में विस्तार पूर्वक लिखा जा चुका है। उस समय के धर्माचार्य, उनकी भक्ति-भावना तथा उनसे प्रभावित कविगण, उस समय की राजकीय एवं सामाजिक स्थिति—सब ने ब्रजभाषा के शृंगार-साहित्य और नायिकाभेद का मार्ग प्रशस्त किया था। ऐसी दशा में शृंगार रस और विशेष कर नायिकाभेद के साहित्य की उन्नति होना स्वाभाविक ही था।

नायिकाभेद का सर्वमान्य आचार्य—मतिराम—

मतिराम ब्रजभाषा साहित्य के सुप्रसिद्ध शृंगारी कवि और नायिकाभेद के सर्वमान्य आचार्य थे। उनका 'रसराम' नायिकाभेद का सर्वप्रधान ग्रंथ है, जिसमें नायिकाओं का सुसंबंधित क्रम, उनके सरल लक्षण और रपट उदाहरण दिये गये हैं। रसराम के नायिका-वर्णन की शैली/इतनी सुंदर और सरल है तथा इसकी भाषा इतनी प्रसाद गुण संपन्न और स्वाभाविक है कि अपने विषय का सर्वप्रथम सर्वांगपूर्ण ग्रंथ होने पर भी इस विषय पर किसी भी परवर्ती कवि की रचना इसके समान सुंदर नहीं बन सकी। मतिराम के पश्चात् सैकड़ों कवियों ने नायिकाभेद का कथन किया है। उन्होंने विषय-विस्तार और नवीन उद्भावनाओं में भी काफ़ी मगज़-पच्ची की है, किंतु कला की दृष्टि से वे मतिराम के उच्च धरातल तक नहीं पहुँच सके। इसीलिए नायिकाभेद पढ़ने वाले विद्यार्थी आज तक सर्वप्रथम रसराम का ही अध्ययन करते हैं।

मतिराम का रचना-काल सं० १७०० के बाद आरंभ होता है। आयु में वे अपने दोनों भाई चिंतामणि और भूषण से छोटे थे। 'रसराम' के अतिरिक्त इनके बनाए कई अन्य रीति ग्रंथ भी हैं। इनकी 'सतसई' नामक पुस्तक शृंगाररस की उत्कृष्ट रचना है। सतसई के अनेक दोहे विहारी के काव्य-कौशल का स्मरण दिलाते हैं। मतिराम शृंगार रस के सफल कवि हैं। इनकी कविता में शब्दाडंबर न होकर स्वाभाविक सौन्दर्य है और इनके भावों में सजीवता है।

लिखा गया था। इस ग्रंथ की यह विशेषता है कि संस्कृत में लिखा होने पर भी इसकी रचना हिंदी छंद छप्पय, सवैया, दोहा आदि में हुई है। हिंदी छंदशास्त्र के नियमानुसार पदों के अंत में तुक भी मिलाई गई है। इस ग्रंथ से देव कवि का संस्कृत काव्य-रचना पर भी पर्याप्त अधिकार-ज्ञात होता है।

देव का जन्म स० १७३० वि० में हुआ था और वे कदाचित् स० १८०० के बाद तक जीवित रहे। इस प्रकार उन्होंने पूर्ण आयु का उपभोग किया था। उन्होंने १६ वर्ष की अल्प आयु में ही 'भावविलास' जैसे प्रौढ़ ग्रंथ की रचना की थी और मृत्यु पर्यंत कविता-कामिनी का शृंगार करते रहे। इस प्रकार देव ने अपनी आयु के कम से कम ५० वर्ष काव्य-रचना में लगाए। इस दीर्घ काल में जितना साहित्य इस कवि ने प्रस्तुत किया है, वह परिमाण में तो अत्यधिक है ही, किंतु काव्य-सौन्दर्य में भी अनुपम है। उन्होंने अग्रणी छंदों द्वारा भिन्न-भिन्न विषयों पर काव्य-रचना की है, किंतु उनका कोई छंद उठा लीजिए, उसमें कुछ न कुछ अनूठापन अवश्य मिलेगा।

महाकवि देव का सर्वप्रथम ग्रंथ 'भावविलास' है। इसकी रचना उन्होंने केवल १६ वर्ष की आयु में ही की थी। इस ग्रंथ में भाव-भेद का बड़ा ही उत्कृष्ट वर्णन हुआ है। विषय-विस्तार और काव्य-सौन्दर्य दोनों दृष्टियों से यह ग्रंथ ऐसा प्रौढ़ बना है, जैसा दूसरे आचार्य अपनी प्रौढ़ावस्था में भी नहीं बना सके हैं। इसमें नायिकाभेद का वर्णन विस्तृत रूप से नहीं हुआ है, किंतु कोई आवश्यक बात भी नहीं छूटने पाई है। इस ग्रंथ का क्रम केशवदास की 'रसिकप्रिया' से प्रायः मिलता हुआ है। इस ग्रंथ में वर्णित नायिकाओं की संख्या भी प्रायः केशवदास कृत नायिकाओं के समान ही है। जहाँ केशवदास ने 'रसिकप्रिया' में नायिकाओं की संख्या ३६० लिखी है, वहाँ देव ने 'भावविलास' में उनकी संख्या ३८४ लिखी है*।

स्वीया तेरहू भेद करि, द्वै जु भेद पर-नारि ।

एक जु वेस्या ये सबै, सोरह कहौ विचार ॥

एक-एक प्रति, सोरही, आठ अवस्था जान ।

जोरि सबै ये एक सौ अट्ठाईस बखान ॥

उत्तम, मध्यम, अधम करि, ये सब त्रिविधि विचार ।

चौरासी अरु तीनसै, जोरै सब विस्तार ॥

—“भावविलास”

इस ग्रंथ के पश्चात् देव ने जिन ग्रंथों का निर्माण किया, उनमें नायिकाभेद का विशेष रूप से विस्तार किया है। इन ग्रंथों में वर्णित नायिकाओं की संख्या भी बेहद बढ़ गई है।

देव ने नायिकाभेद का वर्णन बड़े विस्तारपूर्वक किया है। उन्होंने स्थान-स्थान पर नायिकाओं के ऐसे शब्द-चित्र खींचे हैं, जिनके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर पाठक भी चित्रवत् हो जाता है। देव के इतने अधिक ग्रंथों में एक मात्र नायिकाभेद का कोई ग्रंथ नहीं किंतु उन्होंने अपने कई ग्रंथों में भिन्न-भिन्न प्रकार से नायिकाभेद का इतना विशद विवेचन किया है कि उनसे अधिक इस विषय पर अन्य कोई कवि अथवा आचार्य नहीं लिख सका है।

देव ने नायिकाओं को प्रधान रूप से जाति, कर्म, गुण, देश, काल, वयक्रम, प्रकृति और सत्व—इन ८ वर्गों में विभाजित कर उनके अनेक अंतर्भेदों का कथन किया है।[†] इस प्रकार नायिकाभेद को विस्तृत रूप देकर नायिकाओं की संख्या-वृद्धि का आग्रह करने वाले आचार्यों के लिए देव ने मार्ग प्रशस्त कर दिया था, जिसका अनुकरण आगे चल कर रसलीन और दाम आदि ने पूरी तरह किया। देश-भेद से देव ने भारतवर्ष के अनेक भागों की स्त्रियों का वर्णन कर अपने देशव्यापी पर्यटन और अपनी सूक्ष्म दृष्टि का अद्भुत परिचय दिया है। ‘जातिविलास’ और ‘रसविलास’ में अनेक जाति की स्त्रियों का रसपूर्ण कथन उन्होंने कदाचित् रहीम कृत ‘नगर शोभा’ के अनुकरण पर किया है। इस प्रकार के वर्णन में जोहरिन, छीपिन, पटविन, सुनारिन, गंधिन, तेलिन, कुम्हारिन, दरजिन—यहाँ तक कि चूहरी तक का कथन बड़े ही रसपूर्ण शब्दों में किया गया है।

देव के जिन ग्रंथों में नायिकाभेद का कथन हुआ है, उनमें “सुखसागर-तरंग” मुख्य है। इसे उन्होंने अपनी प्रौढ़ अवस्था में पिहानी वाले खान अली अकबर खों के लिये सं० १८२४ वि० में बनाया था। ऐसा ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ की रचना स्वतंत्र रूप से नहीं हुई। देव ने अपने ग्रंथों के सुंदर छंदों को लेकर इसकी रचना की है, अतः यह एक संग्रह ग्रंथ है। इस

† आठ भेद नायिका के, वरनत है कवि सत।

भेद-भेद प्रति होत है, अंतरभेद अनत ॥

जाति, कर्म, गुण, देस अरु काल, वयक्रम जान।

प्रकृति, सत्व नाइका के, आठौ भेद बखान ॥

—“रसविलास”

ग्रंथ के छंद काव्य-सौन्दर्य में बड़े ही प्रौढ़ और उत्कृष्ट हैं। इस विशाल सग्रह ग्रंथ में विशेष रूप से नायिकाभेद के ही छंद मिलते हैं, किंतु उसमें न तो नायिकाओं की परिभाषा दी गई है और न उनका निश्चित क्रम ही। इससे प्रकट होता है कि इस ग्रंथ की रचना लेखक ने नायिकाभेद के ग्रंथ रूप में भी नहीं की। संभव है उत्कृष्ट छंदों को एक स्थान पर एकत्रित कर देने के अभिप्राय से इसकी रचना की गई हो। नायिकाभेद की क्रमबद्ध रचना न होने पर भी इसमें प्रायः सभी नायिकाओं के बढ़िया से बढ़िया उदाहरण मिलते हैं। नायिकाभेद के अतिरिक्त भावभेद, नखशिख तथा पटञ्जल आदि के उत्तम छंद भी दिये गये हैं। यह बहुत बड़ा ग्रंथ है, जिसमें प्रायः १०० कवित्त एवं सवैया छंद हैं।

देव ने नायिका को जाति, कर्म, गुण, देश, काल, वय, प्रकृति और सत्व के अनुसार आठ प्रधान वर्गों में विभाजित किया है। उन वर्गों में से प्रत्येक के भेद-उपभेद बतलाते हुए सब से प्रथम जाति अनुसार वर्ग के पद्मिनी आदि चार भेद लिखे हैं। दूसरे वर्ग कर्मानुसार में नायिका के स्वकीया, परकीया और गणिका—ये तीन भेद लिखे हैं, जिनमें स्वकीया के पुनः दो भेद—अंशाभेदानुसार और ज्येष्ठा-कनिष्ठा किये हैं। अंशभेद के अनुसार स्वकीया नायिका के पाँच उपभेद किये हैं और उनको वयक्रमानुसार इस प्रकार विभाजित किया है—१. देवी (७ वर्ष), २. देव-गंधर्वी (१४ वर्ष), ३. गंधर्वी (२१ वर्ष), ४. गंधर्व-मानुषी (२८ वर्ष), ५. मानुषी (३५ वर्ष)। इनमें देवी को पूज्य, देव-गंधर्वी, गंधर्वी और गंधर्व मानुषी को भोग-विलास योग्य एवं मानुषी को कुल-धर्म तथा संतान-सुखार्थ लिखा है। उन्होंने परकीया के अनूठा और ऊँचा दो भेद लिखे हैं, जिनमें ऊँचा के अतर्गत गुप्ता आदि छै भेदों को लिखा है। उन्होंने गणिका का कोई भेद नहीं लिखा। तीसरे वर्ग गुणानुसार में उत्तमा आदि तीन भेद लिखे हैं। चौथे वर्ग देशानुसार में अनेक देशों की स्त्रियों का वर्णन किया है, जो अद्भुत और विलक्षण हैं। पाँचवें वर्ग कालानुसार में स्वाधीनपतिका आदि आठ भेद लिखे गये हैं। इनमें प्रवच्छ्रितपतिका और आगतपतिका भेदों का उल्लेख नहीं हुआ है। छठे वर्ग वयक्रमानुसार में मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा भेद किये हैं और इनमें से प्रत्येक के उपभेद भी किये हैं।

मुग्धा आदि नायिकाओं को सभी आचार्यों ने वयक्रमानुसार विभाजित किया है, किंतु उनकी वय का विचार नहीं किया। देव ने इनके भेद और उपभेदों के वय-क्रम का भी उल्लेख कर दिया है। इस प्रकार मुग्धा

नायिका को १२ से १६ वर्ष तक, मध्या को १७ से २० वर्ष तक तथा प्रौढा को २१ से २४ वर्ष तक लिखा गया है। इनके उपभेदों के वय-क्रम का भी उल्लेख है। इनमें सबसे प्रथम मुग्धा के पाँच उपभेद लिखे हैं, जिनके नाम और उनकी वय इस प्रकार लिखी गई है—१. वयसधि (अज्ञातयौवना) १२ से १३ वर्ष तक, २. नवलवधू १३ वर्ष, ३. नवयौवना १४ वर्ष—इन दोनों का दूसरा नाम ज्ञातयौवना भी लिखा है—४ नवलअनगा (नवोढा) १५ वर्ष, ५. सलज्जरति (विश्रब्धनवोढा) १६ वर्ष। मध्या के ४ भेद किये हैं—१. रूढयौवना १७ वर्ष, २. प्रगटमनोज (प्रादुर्भूत मनोभवा) १८ वर्ष, ३. प्रगल्भवचना १९ वर्ष, ४. विचित्रसुरता २० वर्ष। प्रौढा के भी चार भेद किये हैं—१. लब्धापति २१ वर्ष, २. रतिकोविदा २२ वर्ष, ३. आक्रांता २३ वर्ष, ४ सविभ्रमा २४ वर्ष।

इसके अनंतर मध्या-प्रौढा-मान के नाम से धीरादि भेदों का उल्लेख कर छठे वर्ग की समाप्ति की है। सातवें वर्ग प्रकृति-अनुसार में कफ, पित्त और वात नामक भेद किये हैं और अतिमवर्ग सत्त्वानुसार में देव, मनुष्य आदि नौ भेद किये हैं।

इस प्रकार देव कृत नायिकाभेद का क्रम है, जो उनके कई ग्रंथ भाव-विलास, भवानीविलास, रसविलास, सुखसागरतरंग आदि में वर्णित है। गर्विता आदि तीन नायिकाओं को देव ने अपने प्रधान वर्गों में स्वीकार नहीं किया किंतु भावविलास में परस्तिदुःखिता, प्रेमगर्विता, रूपगर्विता और मानिनी के नाम से इन चारों नायिकाओं का भी उल्लेख कर दिया है। रसविलास के आरंभ में नायिका के ६ वर्ग और भी लिखे हैं, जो सब से निराखे हैं, यथा—१. नागरी २. पुरवासिन ३. ग्रामीणा ४. वनवासिन ५. सेन्या ६. पथिकतिय। देव ने इन भेदों के भी अनेक उपभेद किये हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नायिकाभेद का जितना विस्तार देव ने किया है, उतना कोई भी आचार्य नहीं कर सका। देव के परवर्ती रसलीन, दास आदि कितने ही आचार्यों ने भी नायिकाओं की संख्या-वृद्धि का आग्रह किया है किंतु उन्होंने उनके प्रधान वर्गों में ही भेदोपभेद बढ़ाकर उनकी वृद्धि की है। देव ने जिन नवीन और अद्भुत भेदों का आविष्कार किया था, उनका अनुकरण बाद में नहीं हुआ। देव का महत्व नायिकाओं की संख्या-वृद्धि करने के कारण नहीं है, बल्कि काव्यशास्त्र के विशद विवेचन और अपूर्व काव्य-कौशल के कारण है। इस संबंध में कदाचित् ही कोई कवि उनकी समता कर सका है।

रीति-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ काल और नायिकाभेद के प्रमुख कवि—

देव के अंतिम समय में ब्रजभाषा साहित्य के कितने ही बड़े आचार्य और सुकवि उत्पन्न हुए। उनमें सुरति मिश्र, श्रीपति, तोष, रघुनाथ सोमनाथ, रसलीन और दास प्रमुख हैं। वे प्रायः सभी समकालीन थे। उन धुरंधर आचार्यों और कवियों ने साहित्य के रूप को इस प्रकार सुधारा और उसके अंग-उपांगों का ऐसा मार्मिक तथा विवेचनापूर्ण वर्णन किया कि वि० सं० १७७५ से १८२५ तक का ५० वर्ष का समय रीति-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ तथा गौरवपूर्ण काल कहा जा सकता है। इसी काल में नायिकाभेद पर भी कवियों का यथेष्ट ध्यान रहा और उन्होंने उसका बड़ा विशद विवेचन किया। इस काल के सभी कवियों का वर्णन लिखना कठिन है, अतः कुछ प्रमुख कवियों का सन्निपत्त परिचय दिया जाता है।

सुरति मिश्र—साहित्य के मार्मिक विद्वान और सुप्रसिद्ध टीकाकार थे। उन्होंने 'रसरसर', 'काव्यसिद्धांत', 'रसरत्नाकर' आदि कितने ही ग्रंथों का निर्माण किया और नायिकाभेद पर सुंदर रचनाएँ कीं। उनका विशेष महत्व केशव और बिहारी के काव्यों पर विद्वतापूर्ण टीक-ग्रंथों के कारण है।

श्रीपति—ब्रजभाषा साहित्य के उत्कृष्ट आचार्य और सुकवि थे। उनका 'काव्यसरोज' प्रमुख ग्रंथ है, जिसमें प्रसंगानुसार नायिकाभेद का भी कथन हुआ है। इस प्रशंसनीय ग्रंथ की रचना स० १७७७ वि० में हुई थी। इसमें काव्य के समस्त अंगों पर पांडित्यपूर्ण विवेचन किया गया है। इस ग्रंथ से ज्ञात होता है कि वे काव्यशास्त्र के अच्छे विद्वान और उसके मर्मज्ञ थे। उन्होंने केशव जैसे महाकवि की कविता में भी दोष ढूँढ़ निकाले हैं, और दास जैसे धुरंधर आचार्य तक ने उनके ग्रंथों का आधार लिया है। इन बातों से उनका महत्व स्वयंसिद्ध है। उन्होंने कई अन्य रीति-ग्रंथों की भी रचना की थी, जिनमें प्रसंगानुसार नायिकाभेद के भी उत्कृष्ट छंद लिखे गये हैं।

तोष—रसरति और नायिकाभेद के उत्तम कवि हुए हैं। उन्होंने 'सुधानिधि' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ की रचना स० १७६१ वि० में की थी। इसमें नायिकाभेद का भी सुंदर विवेचन हुआ है।

रघुनाथ—रस-रीति और नायिकाभेद के उत्कृष्ट कवि और कई रीति-ग्रंथों के रचयिता थे। उन्होंने स० १८०२ में 'काव्यकलाधर' की रचना द्वारा भाव-भेद और रस-भेद के अतिरिक्त नायिकाभेद का भी विस्तृत कथन किया था।

सोमनाथ, रसलीन और दास नायिकाभेद के प्रमुख कवि और आचार्य थे। उनका विस्तार पूर्वक वर्णन आगे किया गया है।

सोमनाथ और 'रसपीयूषनिधि'—

सोमनाथ ब्रजभाषा रीति-साहित्य के सुप्रसिद्ध आचार्य और सुकवि थे। उन्होंने स० १७६४ में अपने विख्यात ग्रंथ 'रसपीयूषनिधि' की रचना की थी। रसपीयूषनिधि बड़ा ग्रंथ है। इसमें दशांग काव्य का विशद विवेचन हुआ है। इसमें छंद, काव्य-लक्षण, काव्यभेद, शब्दार्थ, ध्वनि, भावभेद, रसभेद गुण, अलंकार, काव्यदोष, चित्र-काव्य आदि सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार यह ब्रजभाषा रीति-साहित्य का प्रमुख ग्रंथ है। इसमें उपर्युक्त सभी विषयों को बड़ी सुगम रीति से समझाया गया है। ब्रजभाषा साहित्य में दशांग काव्य का विवेचन करने वाले आचार्य देव, श्रीपति, सोमनाथ और दास थे। उनमें सोमनाथ का महत्वपूर्ण स्थान है।

'रसपीयूषनिधि' में शृंगार रस के आलंबन विभाव के अंतर्गत नायिकाभेद का भी उत्कृष्ट वर्णन किया गया है। सोमनाथ ने परकीया और दस प्रकार की नायिकाओं का अपेक्षाकृत सुंदर कथन किया है। नायिकाभेद के आरंभ में पद्मिनी, चित्रिनी आदि चार प्रकार की नायिकाओं का कथन कर स्वकीया का भेदोपभेद सहित वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् परकीया प्रकरण में प्रथम उसके परोढा और अनूढा दो भेद लिखे गये हैं। परोढा नायिका के अंतर्गत गुप्ता आदि छै भेदों को लिखा गया है। इसके उपरांत अन्य भेदों को लिखकर अंत में स्वाधीनपतिका आदि दस प्रकार की नायिकाओं के विस्तृत वर्णन के साथ इस विषय को समाप्ति की गई है। सोमनाथ के नायिकाभेद का क्रम सरल और विस्ताररहित है।

रसलीन और 'रसप्रबोध'—

रसलीन का पूरा नाम सैयद गुलाम नबी बिलग्रामी 'रसलीन' था। यह सुसलमान सुकवि ब्रजभाषा नायिकाभेद और काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य थे। उन्होंने स० १७६४ में 'अंगदर्पण' और स० १७६६ में सुप्रसिद्ध 'रसप्रबोध' की रचना की थी। अंगदर्पण में नखसिख और रसप्रबोध में रस-रीति और नायिकाभेद का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। ये दोनों ग्रंथ दोहा छंद में हैं। उनका निम्न दोहा विख्यात है—

अमिय, हलाहल, मद भरे, सेत, स्याम, रतनार ।
जियत, मरत, भुकि-भुकि परत, जेहि चितबत इक बार ॥

यह सुप्रसिद्ध दोहा, जो रसिकों की जिह्वा पर नाँचता रहता है और जो पहिले बिहागी का समझा जाता था, वह इन्हीं सुमलमान कवि के 'अंगदर्पण' का है। इससे इनके 'काव्य-चमत्कार' का अच्छा परिचय मिलता है।

'रसप्रबोध' अत्यंत प्रशंसनीय ग्रंथ है। इसके ११५५ दोहाओं में रसभेद, भावभेद और नायिकाभेद का ऐसा विशद और सर्वांगपूर्ण वर्णन किया गया है कि इस ग्रंथ के महत्व पर उसके रचयिता की निम्न लिखित उक्ति यथार्थ ज्ञात होती है—

बोचि आदि ते अंत लौ, ये समुझै जो कोइ ।

ताहि और रस ग्रंथ की, फेर चाहि नहि होइ ॥

इस ग्रंथ के आरम्भ में रस का साधारण परिचय देकर—'भावहि तें रस होत है, समुझि लेउ मन मोहि । याते पहिलै भाव सब बरनत सुकवि सराहि ।'—इस उक्ति के कारण पहले भाव-भेद का वर्णन किया गया है। आचार्यों ने स्थायी भाव के कारण को विभाव, कार्य को अनुभाव और सहकारी कारणों को संचारी भाव कहा है। चूँकि कारण से ही कार्य होता है, इसलिये पहले कारण का वर्णन करना सर्वथा उचित है। रस के कारणीभूत स्थायी भाव का भी कारण विभाव है, इसलिये रसभेद के ग्रंथों में विभाव का वर्णन पहले किया जाता है। रसों में भी प्रमुखता शृंगार रस की है और शृंगार रस के आलंबन विभाव में नायिका-नायक का वर्णन होता है, इसलिये शृंगार रस के आलंबन स्वरूप नायिकाभेद का पहले वर्णन कर अन्य बातों को बाद में लिखा जाता है। व्रजभाषा साहित्य में यह परिपाटी पहले से ही प्रचलित थी और कितने ही कवियों ने उसका अनुसरण भी किया था, किंतु उसका यथार्थ कारण रसलीन ने अपने 'रसप्रबोध' में बतलाया है।

रसलीन ने भावभेद का संक्षिप्त वर्णन कर शृंगार रस के अंतर्गत नायिकाभेद का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। नायिकाभेद के पश्चात् नायकभेद भी बड़े विस्तार से लिखा गया है। इसके अनंतर सखी, दूती, षष्ठ्युत्त आदि का वर्णन कर 'विभाव' प्रकरण को समाप्त किया गया है। इसके बाद 'अनुभाव' के वर्णन में ही 'हाव' और 'सात्विक भावों' का कथन किया गया है। इसके अनंतर संचारी आदि भावभेद की शेष बातें कह कर रसभेद का वर्णन किया गया है। इसमें शृंगार रस के दो भेद संयोग और विप्रलंब का वर्णन कर शेष रसों को संक्षिप्त रूपसे लिखा गया है।

रसप्रबोध में भावभेद और रसभेद का विस्तृत वर्णन होने पर भी उसका नायिकाभेदोक्त कथन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। उन्होंने अनेक नायिकाओं के उल्लेख द्वारा इस विषय का बड़ा विस्तार किया है। देव की तरह उन्होंने भी कितनी ही नई नायिकाओं की उद्गावना की है, जिनके कारण नायिकाभेद एक जंजाल सा बन गया है !

उनके मतानुसार १३५२ प्रकार की नायिकाएँ होती हैं—

इक सुकिया, द्वै परकिया, सामान्या मिलि चारि ।

अष्ट नायिका मिलि सोई, बत्तिस होत विचारि ॥

उत्तमादि सों मिलि उहै, सुन छियानवे होत ।

पुन चौरासी तीनसै, पद्मिन आदि उदोत ॥

तेरासै बाबन बहुरि, दिव्यादिक के संग ।

यों गनना मे नायिका, बरनी बुद्धि तरंग ॥

रसलीन ने नायिका के सर्व प्रथम स्वकीया, परकीया और गणिका तीन भेद लिखे हैं। स्वकीया के अंतर्गत मुग्धा, मध्या और प्रौढा लिखकर उन्होंने मुग्धा के पाँच, मध्या के चार और प्रौढा के छै भेदों का उल्लेख किया है। मुग्धा के पाँच उपभेदों में नवयौवना के अंतर्गत अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना, नवलअनंगा के अंतर्गत अविदितकाम और विदितकाम, तथा नवलवधू के अंतर्गत नवोढा, विश्रब्धनवोढा और लज्जासक्ता-रतिकोविदा—इन उपभेदों का कथन किया है। इसके बाद धीरादि भेद और ज्येष्ठा—कनिष्ठा लिख कर स्वकीया-वर्णन को समाप्त किया है। परकीया के भेदों में पहले ऊढा और अनूढा दो भेद लिख कर दोनों के उद्बुद्धा और उद्बोधिता दो-दो भेद लिखे हैं। फिर परकीया को असाध्या और सुखसाध्या दो भेदों में विभाजित किया है। उन्होंने असाध्या के पाँच उपभेद किये हैं—१. समीता, २. गुरुजनसमीता, ३. दूतीवर्जिता, ४. अतिक्रान्ता, ५. खलपृष्ठ, तथा सुखसाध्या के दस उपभेद किये हैं—१. वृद्धबधू, २. बालबधू, ३. नपुंसकबधू, ४. विधवाबधू, ५. गुनीबधू, ६. गुनरिभूवती, ७. सेवकबधू, ८. निरंकुश, ९. परतिथासक्त पति की स्त्री, १०. अति रोगी की स्त्री। इसके बाद परकीया के अवस्थाभेद से गुप्ता आदि छै भेदों को लिखा गया है। इनमें लज्जिता के तीन उपभेद भी लिखे हैं।

रसलीन ने स्वकीया और परकीया के कामवती, अनुरागिनी और प्रेमासक्ता नामक तीन नये भेद और भी लिखे हैं। उन्होंने सामान्या के भी चार भेद लिखे हैं—१. स्वतन्त्रा, २. जननीआश्रीना, ३. नेमता और ४. प्रेमदुःखिता।

इसके पश्चात् दशा-भेद से गर्विता आदि तीन भेद किये गये हैं। इनमें गर्विता के अंतर्गत प्रेम, रूप और गुण के अनुसार तीन और वक्रोक्ति द्वारा तीनों—कुल छँ उपभेद किए गये हैं। इसके बाद दसों नायिकाओं का कथन कर उनको सुग्धा, मध्या, प्रौढा, परकीया और सामान्या नायिकाओं में विभाजित किया गया है। सबके अंत में गुणानुसार उत्तमादि तीनों भेदों को लिख कर इस विषय की समाप्ति की है।

रसलीन के नायिकाभेद से ज्ञात होता है कि उन्होंने परकीया और गणिका का विशेष रूप से विस्तार किया है। परकीया नायिका के कितने ही नये भेदों की उद्भावना कर, जहाँ उन्होंने अपनी विस्तारकारिणी प्रतिभा का अद्भुत परिचय दिया है, वहाँ एक अनावश्यक विषय का व्यर्थ विस्तार भी किया है।

ब्रजभाषा-नायिकाभेद में दस प्रकार की नायिकाओं का कथन किसी निश्चित क्रम के अनुसार नहीं किया गया। प्रत्येक कवि ने अपनी रुचि के अनुसार उक्त नायिकाओं का आगे-पीछे उल्लेख किया है। रसलीन ने इन नायिकाओं को जिस क्रम से लिखा है, उससे उनकी क्रमशः विकसित मनोदशा का परिचय मिलता है। ब्रजभाषा साहित्य में इस प्रकार का क्रमवद्ध कथन रसलीन के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने नहीं किया। रसलीन ने भी इस प्रकार के क्रमवद्ध विवेचन का कोई कारण नहीं बतलाया है, किंतु यह भी नहीं माना जा सकता कि उसका अनायास ही कथन हो गया है। वास्तव में रसलीन ने नायिकाओं की विकसित मनोदशा पर दृष्टि रख कर उनका क्रमवद्ध वर्णन किया है, चाहे अपने इस कथन का स्पष्ट कारण उन्होंने नहीं लिखा।

काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से उनके नायिकाभेद-कथन का विशेष महत्व नहीं है, इसलिए उनको इस विषय का सुकवि नहीं कहा जा सकता। उन्होंने नायिकाभेद का कथन आचार्यत्व की दृष्टि से किया है, इसलिए उन्होंने दोहा छंदों द्वारा सीधी-सादी भाषा में अपना मन्तव्य प्रकट कर दिया है। नायिकाओं के लक्षण, उदाहरण और विस्तृत विवेचन के कारण रसलीन को इस विषय का प्रमुख आचार्य कहा जा सकता है।

दास और 'शृंगारनिर्णय' —

दास ब्रजभाषा नायिकाभेद के सुप्रसिद्ध कवि और आचार्य थे। उनका पूरा नाम भिखारीदास था। उन्होंने कई रीति ग्रंथों की रचना की थी। उनके रचित ग्रंथों में 'काव्यनिर्णय' और 'शृंगारनिर्णय' विशेष प्रसिद्ध हैं। इन ग्रंथों से उनका पांडित्य और आचार्यत्व सिद्ध होता है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से भी उनकी कविता अच्छी हुई है। रस-रीति और नायिकाभेद पर उनका प्रशसनीय ग्रंथ 'शृंगारनिर्णय' है। इसकी रचना सं० १८०७ में हुई थी। यह अपने विषय का प्रमुख ग्रंथ है।

दास ने नायिका का प्रथम वर्ग 'आत्मधर्मानुसार' लिखा है और उसके स्वकीया एवं परकीया दो भेद किये हैं। तीसरे भेद सामान्या का दास ने उल्लेख नहीं किया। उन्होंने स्वकीया के पतिव्रता, उद्धारिज और माधुर्य—ये तीन उपभेद किये हैं। इनके पश्चात् उन्होंने ज्येष्ठा-कनिष्ठा का कथन किया है। प्रायः सभी आचार्यों ने ज्येष्ठा—कनिष्ठा नायिका का एक ही भेद लिखकर उसका अत्यंत सक्षिप्त वर्णन किया है, किंतु दास ने इसके छै उपभेद लिखकर उनका भी विस्तारपूर्वक कथन किया है। ज्येष्ठा-कनिष्ठा के छै उपभेद ये हैं—

१. साधारण ज्येष्ठा, २. दक्षिण की ज्येष्ठा-कनिष्ठा, ३. शठ की ज्येष्ठा, ४. शठ की कनिष्ठा, ५. छष्ट की ज्येष्ठा और ६. छष्ट की कनिष्ठा।

उन्होंने परकीया नायिका के सर्वप्रथम प्रगल्भा और धीरा दो भेद किये हैं। इनके बाद उसे अनूढा और ऊढ़ा दो भेदों में विभाजित किया है। इनमें अनूढा के अंतर्गत उद्बुद्धा और उद्बोधिता लिख कर उद्बुद्धा के दो उपभेद अनुरागिनी और प्रेमासक्ता किये हैं। ऊढ़ा के अंतर्गत पहले असाध्या, दुःखसाध्या और साध्या तीन भेद किये हैं, फिर विदग्धा, लक्षिता, मुदिता और अनुशयना—ये चार भेद किये हैं। उन्होंने पाँचवें भेद गुप्ता को विदग्धा के अंतर्गत रखा है और छठे भेद कुलटा का उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने मुदिता और अनुशयना में भी विदग्धत्व स्थापित किया है और परकीया के अतिरिक्त स्वकीया में भी ऊढ़ा-अनूढा का कथन किया है।

उनका दूसरा वर्ग 'अवस्थानुसार' है, जिसके मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा तीन भेद किये गये हैं। इन भेदों को उन्होंने स्वकीया और परकीया दोनों में लिखा है। मुग्धा के दो भेद अज्ञातयौवना और ज्ञानयौवना को भी स्वकीया और परकीया दोनों में लिखा गया है, किंतु नवोढ़ा, विश्रब्धनवोढ़ा और तीसरे नये भेद अविश्रब्धनवोढ़ा में स्वकीया और परकीया का भेद नहीं किया है।

तीसरा वर्ग अष्ट नायिकाओं का है। इन नायिकाओं को उन्होंने संयोग शृंगार और वियोग शृंगार में विभाजित किया है। संयोग शृंगार में पहले स्वाधीनपत्तिका को लिखा है, जिसके अतर्गत रूपगर्विता, प्रेमगर्विता और गुनगर्विता का कथन किया है, फिर बासवसज्जा को लिखकर उसी के अतर्गत आगतपत्तिका को लिखा है। तीसरी नायिका अभिसारिका है, जिसमें शुक्ला और कृष्णा दो भेद किये गये हैं। उन्होंने संयोग शृंगार की तीनों नायिकाओं को स्वकीया और परकीया दोनों में लिखा है। वियोग शृंगार में उत्कण्ठिता, खण्डिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा और प्रोषितभर्तृका—इन पाँच भेदों को लिखा है। इनमें खण्डिता के अतर्गत धीरादि भेद और मानिनी नायिका का उल्लेख कर मानिनी में, मज्जभेद का भी कथन कर दिया है। कलहांतरिता के अतर्गत भी मानभेद का कथन है। विप्रलब्धा के अतर्गत अन्यसभोगदुःखिता और प्रोषितभर्तृका के अतर्गत प्रवत्सव्यप्रियसा, आगच्छतपत्तिका एवं आगतपत्तिका का उल्लेख किया गया है।

उन्होंने चौथे वर्ग 'उत्तमादि' के अतर्गत उत्तमा, मध्यमा और अधमा का उल्लेख कर नायिकाभेद की समाप्ति की है।

दास द्वारा कथित नायिकाभेद के उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होगा कि उन्होंने किसी भी आचार्य का अनुकरण न कर अपनी परिपाटी स्वतंत्र रूप से चलाई थी। उन्होंने देव और रसलीन की तरह अनेक प्रकार की नवीन नायिकाओं की उद्भावना की है और उनके भेदोपभेद-कथन में बड़ी कारगरि दिखलाई है। उनके कथन में स्वतंत्र उद्भावना के साथ मौलिकता की छाप है। इस दृष्टि से ब्रजभाषा नायिकाभेद के कवियों में दास का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

उन्होंने आचार्यत्व की दृष्टि से भी नायिकाभेद का महत्वपूर्ण कथन किया है और पूर्व आचार्यों से कई बातों में भिन्न मत रखते हुए उन्होंने अपना स्वतंत्र मत प्रकट किया है। यदि ब्रजभाषा-साहित्य में संस्कृत-साहित्य की तरह शास्त्रार्थ और खडन-मंडन की प्रणाली प्रचलित होती, तो दास को अपने मत की पुष्टि के लिए अन्य आचार्यों के मतों का खंडन करना पड़ता। उस समय उनके रचना-कौशल का महत्व और भी बढ़ जाता। इस प्रणाली के अभाव में उन्होंने अपना विशिष्ट मत तो प्रकट कर दिया, किंतु उन्होंने ऐसा क्यों किया और किन कारणों से उनका मत पूर्वआचार्यों से भिन्न है, यह जानने का कोई साधन नहीं है।

नायिकाभेद का इतना विस्तार करने पर भी दास ने सामान्या और कुलटा नायिकाओं का कथन नहीं किया है। इन नायिकाओं को भक्त कवि एवं केशवदास के अतिरिक्त प्रायः सभी बड़े आचार्यों ने लिखा है और रसलीन ने तो सामान्या के भी उपभेदों का उल्लेख किया है, जो उनके अतिरिक्त कदाचित किसी भी प्रमुख आचार्य ने नहीं किया। दास के नायिकाभेद-कथन से ज्ञात होता है कि वे इस विषय में शुद्धादर्श स्थापित करने के पक्षपाती थे।

रीति-काल के अंतिम वर्ष—

ब्रजभाषा काव्य के समस्त अंगों की उन्नति के लिए वैसे तो रीति-काल (सं० १७०० से १८०० तक) के पूरे दो सौ वर्ष ही महत्वपूर्ण हैं, किंतु पूर्वोल्लेखित पचास वर्ष (सं० १७७५ से सं० १८२५ तक) में उनकी अभूतपूर्व उन्नति हुई थी। इस काल में रीति विषयक कविता करने वाले कवियों और साहित्य-शास्त्र का विवेचन करने वाले आचार्यों की बाढ़ सी आ गई थी। रीति संबंधी विषयों का जैसा उत्कृष्ट, विशद और कवित्वपूर्ण विवेचन इस काल में हुआ था, वैसा फिर न हो सका। सं० १८२५ के पश्चात् आचार्यों की बाढ़ कुछ रुक सी जाती है और महाकवि भी संख्या में कम दिखलाई देते हैं। वैसे कवि-कर्म करने वाले व्यक्तियों की संख्या में कमी दिखलाई नहीं देती, किंतु काव्योत्कर्ष के विचार से बहुत थोड़े ही सुकवि कहे जा सकते हैं।

ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय तक कविता-कामिनी का जितना शृंगार हो चुका था, वह इतना अधिक था कि उससे अधिक कर सकने की क्षमता कवियों में रही ही नहीं। वास्तव में बात भी कुछ ऐसी ही थी। उस समय तक इन विषयों पर जितना लिखा जा चुका था, वह यथेष्ट था। उससे अधिक एवं अच्छा लिखना संभव भी नहीं था, इसलिए कवियों को अपनी काव्य-प्रतिभा का उपयोग अन्य विषयों के विवेचन में भी करना उचित था। किंतु उनमें से अधिकांश भले-बुरे ढंग से उन्हीं पुराने विषयों का पिष्ट-पेषण मात्र करते रहे।

इस प्रकार के कवियों ने साहित्य के अन्य अंगों पर उत्कृष्ट रचनाएँ नहीं की, किंतु उन्होंने नायिकाभेद पर फिर भी अच्छी रचनाएँ की हैं। उन कवियों में से कतिपय प्रमुख व्यक्तियों का यहाँ पर उल्लेख किया जाता है।

नायिकाभेद के कतिपय प्रमुख कवि—

पद्माकर—रीति काल के प्रमुख कवियों में गिने जाते हैं। प्रसिद्धि के विचार से कविवर बिहारीलाल के अतिरिक्त इस काल का कोई कवि उनकी समता नहीं कर सका। नायिकाभेद की दृष्टि से भी मतिराम के पश्चात् उन्हीं की रचना सर्वप्रिय हो सकी है। उनके काव्य में भाषा और भाव दोनों का उत्कर्ष दिखलाई देता है। उन्होंने सरस कवित्व और कमनीय कल्पना के साथ भाषा के उपरी ढाँचे को भी आकर्षक बनाने की चेष्टा की है। उनका काव्य-कौशल उनकी सानुप्रास रचना में दिखलाई देता है।

उन्होंने कई ग्रंथों की रचना की थी। उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'जनद्विनोद' है। इसकी रचना सं० १८६७ में हुई थी। नायिकाभेद के ग्रंथों में यह भी मतिराम के रसराम की तरह प्रसिद्ध है। पद्माकर के नायिकाभेद का क्रम भी मतिराम के क्रम जैसा ही है। अंतर केवल इतना है कि मतिराम ने प्रौढ़ा नायिका का कोई भेद नहीं लिखा, जब कि इन्होंने उसके रतिप्रीता और आनंदसंमोहिता नामक दो भेद लिखे हैं। प्रौढ़ा के इन दोनों भेदों का कथन प्रायः सभी कवियों ने किया है।

बेनीप्रवीन—ब्रजभाषा नायिकाभेद के प्रसिद्ध कवि हुए हैं। उन्होंने कई रीति-ग्रंथों की रचना की थी। उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'नवरस-तरंग' है। इसकी रचना सं० १८७८ में हुई थी। इस ग्रंथ में नायिकाभेद का बड़ा मनोहर कथन हुआ है।

नवरस-तरंग नाम से ऐसा समझा जा सकता है कि उसमें नव रसों का विस्तृत वर्णन होगा, किंतु ग्रंथ के अधिकांश भाग में शृंगार रस और उसके अंतर्गत नायिकाभेद का कथन हुआ है। ग्रंथ के अंत में श्लेष रसों का संक्षिप्त रूप से उल्लेख मात्र कर दिया गया है। इस प्रकार उन्होंने भी मतिराम-पद्माकर के रस-कथन की शैली को अपनाया है।

नवरस-तरंग एक प्रकार से नायिकाभेद का ही ग्रंथ है। इस ग्रंथ में नायिकाओं के लक्षण अधिकतर बरवा जैसे छोटे छुट्टे में ही दिये गये हैं, जिसके कारण विद्यार्थियों उन्हें कंठस्थ करने में सुविधा हो सकती है। इनके नायिकाभेद का क्रम भी मतिराम-पद्माकर के क्रम से मिलता हुआ है। इस प्रकार नवरस-तरंग ब्रजभाषा नायिकाभेद की एक प्रमुख रचना है, और उसके रचयिता बेनीप्रवीन इस विषय के प्रमुख कवि हैं।

प्रतापसाहि—रीति-काल के अंत में परम यशस्वी रीति-कवि और आचार्य हो गये हैं। वे चरखारी के महाराज विक्रमशाह के दरबारी कवि थे। उन्होंने कई-रीति ग्रंथों की रचना की थी। उनके रचे हुए ग्रंथों में 'व्यंग्यार्थ-कौमुदी' और 'काव्यविलास' विशेष प्रसिद्ध हैं। इन ग्रंथों की रचना-क्रमशः सं० १८८२ और सं० १८८६ में हुई थी। इन ग्रंथों की रचना द्वारा प्रतापसाहि के अपार पांडित्य और उनके रचना-कौशल का परिचय मिलता है।

उन्होंने 'व्यंग्यार्थ कौमुदी' में व्यंग्य काव्य द्वारा समस्त नायिकाभेद का कथन किया है। इसके छंदों पर उन्होंने स्वयं टीका भी लिखी है, जिससे उनकी भाव-व्यंजना को समझने में सुविधा होती है। उनकी सराहनीय सहृदयता और काव्य-कौशल के कारण जहाँ वे उत्कृष्ट कवि कहे जा सकते हैं, वहाँ उनके प्रकांड साहित्यिक ज्ञान और विवेचनात्मक प्रतिभा के कारण उनको उच्च श्रेणी का आचार्य भी कहना चाहिए।

ग्वाल—रस-रीति के उत्तम कवि हुए हैं। उनकी कविता ब्रज के काव्य-प्रेमियों में बड़ी प्रसिद्ध है। वे परम प्रतिभाशाली और अलौकिक शक्ति-सम्पन्न कवि थे। उन्होंने कितने ही ग्रंथों की रचना की थी। इन ग्रंथों से उनका साहित्यिक महत्व प्रकट होता है।

उनके रचे हुए ग्रंथों में 'रसरंग' बड़ी उत्कृष्ट रचना है। इसे उन्होंने अपनी प्रौढावस्था में सं० १६०४ में लिखा था। यह रस-रीति की प्रशंसनीय रचना है। यद्यपि इसमें भावभेद और रसभेद का विस्तृत वर्णन किया गया है, तथापि इसमें नायिकाभेद का प्राधान्य है। इस ग्रंथ से ग्वाल कवि का शास्त्रीय ज्ञान और अपूर्व पांडित्य ज्ञात होता है। ग्वाल ने अपनी बहुत सी कविताएँ पद्माकर की शैली के अनुकरण में लिखी हैं। पद्माकर की तरह उन्होंने भी अनुप्रासों का प्रचुरता से प्रयोग किया है। ग्वाल अपने समय में प्रसिद्ध कवि और आचार्य समझे जाते थे।

द्विजदेव—अयोध्या नरेश महाराज मानसिंह उपनाम 'द्विजदेव' उत्तम शृंगारी कवि और कवियों के आश्रयदाता थे। उनकी 'शृंगार बत्तीसी' और 'शृंगार-लतिका' उत्तम पुस्तकें हैं। शृंगार-लतिका में नायिकाभेद के उत्कृष्ट छंद लिखे गये हैं। इन छंदों से उनकी सहृदयता और कवित्व-शक्ति प्रकट होती है। इनका कविता-काल सं० १६०० से १६२० के लगभग है।

नवीन—गोपालराय उपनाम 'नवीन' अच्छे कवि और काव्य-मर्मज्ञ थे। उनके रचे हुए ग्रंथों में 'रस-तरंग' विशेष प्रसिद्ध है। इसकी रचना स० १८९६ में हुई थी। इन काव्य-ग्रंथों के अतिरिक्त उन्होंने 'प्रबोध-सुधा-सागर' नामक एक विशाल संग्रह-ग्रंथ की भी रचना की थी। इस ग्रंथ में रीति-काल के अनेक कवियों की उत्कृष्ट कविताओं का संकलन किया गया है। नायिकाभेद पर उन्होंने सुंदर छंदों की रचना भी की है।

सेवक—नायिकाभेद के सुकवि हो गये हैं। उनका 'वाग्बिलास' इस विषय का उत्तम ग्रंथ है। इसमें नायिकाभेद के साथ नायकभेद भी विस्तार पूर्वक लिखा गया है। इस ग्रंथ की रचना स० १९०० वि० के लगभग हुई थी।

सूरदास—पुरानी परिपाटी के सुकवि और काव्य-मर्मज्ञ थे। उनका कविता-काल स० १९०२-४० है। उन्होंने 'साहित्य-सरसी', 'व्यंग्य-विलास' और 'साहित्य-सुधाकर' आदि कई ग्रंथों की रचना की थी। उन्होंने केशव और बिहारी के काव्यों पर तथा सूरदास के दृष्टिकोण पर मार्मिक टीकाएँ लिखी हैं और 'शृंगार-संग्रह' में ब्रजभाषा के अनेक दुर्लभ छंदों का संकलन किया है। उनका 'साहित्यसुधाकर' प्रसिद्ध रीति-ग्रंथ है। उनके नायिकाभेद विषयक छंद भी सुंदर बने हैं।

लछिराम—रसरिति के सुंदर कवि और काव्यशास्त्र के ज्ञाता थे। उन्होंने कई ग्रंथों की रचना की है। नायिकाभेद पर उनका 'महेश्वरविलास' ग्रंथ है, जिसमें इस विषय के उत्तम छंद लिखे गये हैं।

नंदराम—नायिकाभेद के सुकवि थे। उन्होंने स० १९२९ वि० में भाव-भेद और रस-भेद पर 'शृंगारदर्पण' नामक ग्रंथ की रचना की थी। उनकी शैली वही मतिराम-पद्माकर की है और क्रम भी उन्हीं के जैसा है, अंतर केवल इतना है कि उन्होंने मध्या और प्रौढ़ा दोनों के चार-चार भेद किये हैं।

'द्विज'—मन्नालाल त्रिवेदी उपनाम 'द्विज' ने स० १९४२ वि० के लगभग 'साहित्यसिंधु' की रचना की थी। इसके अतिरिक्त उनके रचित ग्रंथ 'शृंगार-सुधाकर', 'सुंदरी-सर्वस्व' और 'शृंगार-सरोज' भी हैं। वे नायिकाभेद के उत्तम कवि थे।

प्रतापनारायण सिंह—उपनाम 'दुआ साहब' अयोध्या के राजा थे। वे अयोध्या नरेश 'द्विजदेव' जी के दौहित्र और उनके उत्तराधिकारी थे। वे स्वयं कवि नहीं थे, किंतु उच्च श्रेणी के काव्य-मर्मज्ञ और कवियों के

आश्रयदाता थे। उन्होंने द्विजदेव कृत शृंगारलतिका पर सौरभी टीका लिखी थी, जिसके कारण द्विजदेव जी के भावों का पूर्णतया स्पष्टीकरण हो सका है। इस 'शृंगारलतिकासौरभ' के अतिरिक्त उन्होंने स० १६५१ में 'रसकुसुमाकर' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ में नायिकाभेदों का अच्छा वर्णन हुआ है।

जगन्नाथप्रसाद 'भानु'—काव्यशास्त्र के समर्प और कई रीति-ग्रंथों रचयिता थे। 'काव्यप्रभाकर' उनका विशाल सग्रह ग्रंथ है। इसकी 'द्वादश मयूखों' में काव्यशास्त्र के समस्त अंगों का वर्णन और तत्संबंधी दुर्लभ छंदों का संकलन किया गया है। इस ग्रंथ की तृतीय मयूख में नायिकाभेद का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है। नायिकाभेद पर इनकी अन्य पुस्तक 'नायिकाभेद-शंकावली' भी है।

विहारीलाल भट्ट—पुरानी शैली के आधुनिक कवि हैं। इन्होंने स० १६८८ वि० में ब्रजभाषा कविता में 'साहित्य-सागर' नामक विशाल ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ में दशांग कविता के अतिरिक्त नायिकाभेद का भी विशद वर्णन किया है। इन्होंने नायिकाभेद संबंधी अपना विशिष्ट मत स्थापित करने की चेष्टा की है।

इन्होंने ज्येष्ठा—कनिष्ठा को प्रोढ़ा का ही भेद माना है और उसी के अंतर्गत धीरादिभेद का कथन किया है। इसका यह अभिप्राय है कि जब नापक ज्येष्ठा के पास होकर कनिष्ठा के पास जाता है तभी धीरादिभेद की सृष्टि होती है। इन्होंने नायिका के स्वाधीनपतिकादि भेद भरतमुनि के अनुसार ८ ही लिखे हैं। ब्रजभाषा-आचार्यों ने इनके अतिरिक्त ५ भेद और माने हैं, जिनमें गर्विता, अन्यसंभोगदुःखिता और मानवती—इन तीनों को पृथक् कहा गया है और शेष दो प्रवत्स्यप्रेयसी और आगतपतिका को आठ नायिकाओं में सम्मिलित कर यह संख्या १० मानी गई है, किंतु इन्होंने इन पाँचों को भी उन्हीं आठों के अंतर्गत लिख कर और कुल नायिकाएँ १३ मान कर भी मुख्य संख्या ८ ही रखी है। जैसे गर्विता को स्वाधीनपतिका के अंतर्गत, अन्यसंभोगदुःखिता और मानिनी को खंडिता के अंतर्गत तथा प्रवत्स्यप्रेयसी और आगतपतिका को प्रोषितपतिका के अंतर्गत लिखा है। यह क्रम कुछ नवीनता लिए हुए है। ८ प्रकार की नायिकाओं को भी एक क्रम से रखा गया है। इसके विषय में कहा गया है कि यह क्रम इनका आविष्कृत है, किंतु ऐसा ही क्रम पहले रसलीन द्वारा रसप्रबोध में लिखा जा चुका है।

हरिऔध—कविसम्राट् पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध' कृत 'रसकलस' प्राचीन परिपाटी और आधुनिक शैली पर लिखी हुई ब्रजभाषा काव्य-रीति की सबसे प्रमुख पुस्तक है, जो रा० १६८८ वि० में प्रकाशित हुई है। जहाँ 'प्रियप्रवास' लिख कर हरिऔध जी सड़ी बोली के महाकवि माने गये हैं, वहाँ 'रसकलस' के कारण आप ब्रजभाषा के भी महाकवि और आचार्य माने जाते हैं। हिंदी भाषा के दोनों रूपों की कविता में इतना सिद्धहस्त होना आपका ही काम था।

रसकलस में ब्रजभाषा कविता द्वारा रस विषय का पूर्ण और सांगोपांग कथन हुआ है। शृंगार-रस के प्रतर्गत नायिका-नायकभेद भी विस्तार पूर्वक लिखा गया है। नायिकाभेद के आरंभ में जाति अनुसार पद्मिनी प्रादि चार नायिकाओं का कथन कर प्रकृति अनुसार उत्तमा, मध्यमा और अधमा नायिकाएँ लिखी गई हैं। इनमें उत्तमा के आठ—१. पतिप्रेमिका, २. परिवारप्रेमिका, ३. जातिप्रेमिका, ४. देशप्रेमिका, ५. जन्मभूमिप्रेमिका, ६. निजतानुरागिनी, ७. लोकप्रेमिका, ८. धर्मप्रेमिका और मध्यमा के दो—१. व्यंगविदग्धा, २. मर्मपीडिता—ये नवीन भेद लिखे गये हैं। ये भेद इस युग के सर्वथा अनुकूल हैं, किंतु शृंगार-रस के आलंबन स्वरूप 'नायिका' में इन भेदों का होना कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय है। इसके अनंतर तीसरे धर्मानुसार वर्ग में स्वकीया, परकीया और सामान्या का उल्लेख है। स्वकीया के अंतर्गत मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा और मध्या-प्रौढ़ा के धीरादि-भेद लिख कर यही पर रवभावानुसार अन्यसुरतिदुःखिता, वक्रोक्तिगर्विता और मानवती नायिकाओं का भी कथन कर दिया है। इसके अनंतर ज्येष्ठा-कनिष्ठा लिख कर स्वकीया के वर्णन को समाप्त किया गया है। इसके उपरान्त परकीया के ऊढ़ादि दो और गुसादि छै भेदों का कथन कर सामान्या को लिखा है। अंत में प्रोषितपत्तिकादि दस नायिकाएँ और उनके मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा और परकीया—ये ४-४ उपभेद लिख कर नायिकाभेद-कथन की समाप्ति की है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि उत्तमा के अंतर्गत आधुनिक नायिकाओं को लिख कर और दस प्रकार की नायिकाओं में सामान्या का उल्लेख न कर हरिऔधजी ने इस युग के अनुकूल कथन किया है। इसके अतिरिक्त उनकी कथित नायिकाएँ प्राचीन शैली की हैं। रसकलस में पहले प्रत्येक विषय गद्य द्वारा समझाया गया है और बाद में उदाहरण स्वरूप हरिऔध जी कृत ब्रजभाषा कविता के सुंदर छंद दिये गये हैं। ये छंद काव्य-सौन्दर्य में ब्रजभाषा

के बड़े से बड़े कवि की तुलना में रखे जा सकते हैं। इस ग्रंथ के आरंभ की विशद भूमिका से लेखक का अपार साहित्यिक ज्ञान, गंभीर अध्ययन और पांडित्यपूर्ण विवेचन पूर्णतया प्रकट है। इस प्रशंसनीय पुस्तक द्वारा हरिऔध जी ब्रजभाषा के प्राचीन और नवीन रीति-कवियों में अत्यंत उच्च स्थान के अधिकारी हैं।

आधुनिक गद्य ग्रंथों में नायिकाभेद --

प्राचीन काल के कवियों ने साहित्य के सभी अंगों का कवितावद् वर्णन किया था। इसी परिपाटी के अनुसार नायिकाभेद का भी कविता में कथन किया गया। वह युग ही कविता का था, इसलिए सभी प्रकार के विषय—ज्योतिष, वैद्यक तक कविता में लिखे गये थे। ऐसी दशा में नायिकाभेद, जो काव्य का ही एक अंग है, अब तक कविता में लिखा जाता रहा, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

युग-परिवर्तन के साथ जब गद्य का प्रचार हुआ, तब सभी विषयों को गद्य में लिखा जाने लगा। कविता-काल में भी विषय के स्पष्टीकरण के लिए भाष्य और टीकाओं के रूप में गद्य का उपयोग किया जाता था, किंतु उस काल का गद्य शिथिल और अस्पष्ट होने के कारण वास्तविक उद्देश्य की सिद्धि करने में असमर्थ था। गद्य-काल में यह बात नहीं रही। गद्य की उन्नति के कारण सभी विषयों को स्पष्ट रूप और सरल रीति से लिखा जाने लगा।

इस युग में नायिकाभेद के स्पष्टीकरण के लिए भी गद्य के उपयोग की आवश्यकता हुई। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अयोध्यानरेश महाराजा प्रतापनारायणसिंह 'दुआ साहब' ने "रसकुसुमाकर" और श्री जगन्नाथप्रसाद 'भानु' ने "काव्यप्रभाकर" ग्रंथों की रचना की थी। इन ग्रंथों में लक्षण संक्षिप्त-रूप से गद्य में दिये गये हैं और उनके अधिकांश भाग में तत्संबंधी कविताओं का संग्रह दिया गया है।

आधुनिक काल के गद्यात्मक रस-ग्रंथों में रस-प्रकरण की अन्य बातों के साथ नायिकाभेद का भी थोड़ा-बहुत उल्लेख किया गया है। इस प्रकार के ग्रंथों में श्री बाबूराम बिथरिया कृत 'हिंदी काव्य में नवरस', सेठ कन्हैयालाल पोद्दार कृत 'रसमंजरी', श्री गुलाबराय कृत 'नवरस' और श्री हरिशंकर शर्मा कृत 'रस-रत्नाकर' मुख्य हैं। श्री बाबूराम बिथरिया कृत 'हिंदी काव्य में नवरस' इस विषय की प्रथम पुस्तक होने के कारण विशेष महत्वपूर्ण नहीं है। इसके रस-सामग्री नामक परिच्छेद में आलंदन विभाग के अंतर्गत

नायिकाभेद का अत्यंत संक्षिप्त रूप से उल्लेख मात्र कर दिया गया है। सेठ कन्हैयालाल पोद्दार कृत 'रसमंजरी' अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें रस-प्रकरण का बड़ा पांडित्यपूर्ण विवेचन किया गया है। इस विषय की अन्य बातों का विशद विवेचन होने के कारण इसमें शृंगार रस के अंतर्गत नायिकाभेद का संक्षिप्त वर्णन ही किया जा सका है। श्री गुलाबराय कृत 'नवरस' और श्री हरिशंकर शर्मा कृत 'रस-रत्नाकर' में रस-भेद की अन्य बातों के साथ नायिकाभेद का भी अपेक्षाकृत अधिक वर्णन किया गया है।

गद्य साहित्य में नायिकाभेद का विस्तृत विवेचन सर्वप्रथम श्री गुलाबराय द्वारा 'नवरस' में हुआ है। इसके पश्चात् श्री हरिशंकर शर्मा कृत 'रस-रत्नाकर' में भी इस विषय का विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। इन दोनों रस-ग्रंथों में अन्य विषयों के साथ नायिकाभेद पर इससे अधिक लिखा जाना संभव भी नहीं था। इन रस ग्रंथों द्वारा रस-प्रकरण के प्रमुख अंग के रूप से नायिका-भेदोक्त विवेचन का सूत्रपात तो हो गया है, किंतु उसका यथार्थ और विस्तृत वर्णन इस विषय के स्वतंत्र ग्रंथों में ही हो सकता है।

नायिकाओं की संख्या-वृद्धि का आग्रह—

नायिकाभेद के आरम्भिक आचार्य कृपाराम और केशवदास ने नायिकाओं की संख्या का अधिक विस्तार नहीं किया था। कृपाराम ने संस्कृत नायिका-भेद के प्रमुख कवि भानुदत्त के आधार पर ब्रजभाषा-नायिकाभेद का सर्वांगपूर्ण कथन किया था। उन्होंने जितनी नायिकाओं का उल्लेख किया है, वे इस विषय के वर्णन के लिए पर्याप्त थीं, बद्यपि मतिराम और पद्माकर ने मध्या और सामान्या का और भी संक्षिप्त कथन कर इस विषय को सरल और सुगम बना दिया था। केशवदास द्वारा मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा में प्रत्येक के चार-चार उपभेद करने से नायिकाओं की कुछ संख्या बढ़ा दी गई थी, किंतु परकीया के वेचल छै भेद लिखने और सामान्या का उल्लेख न करने से प्रस्तार करने पर भी संख्या अधिक नहीं होती थीं। इन आचार्यों के पश्चात् नायिका-भेद के सर्वमान्य आचार्य मतिराम ने संख्या-वृद्धि का आग्रह न कर मुख्य नायिकाओं का ही उल्लेख किया है। केशवदास से अधिक परकीया और सामान्या का कथन करने पर भी उनके द्वारा वर्णित नायिकाओं की संख्या और केशवदास की संख्या में अधिक अंतर नहीं है।

जिन आचार्यों ने नायिकाओं की संख्या-वृद्धि करने की रुचि प्रकट की है, उनमें देव, रसलीन और दास प्रमुख हैं। महाकवि देव ने सर्वप्रथम नायिकाओं की संख्या का विस्तार किया था। उनका विस्तार देश, सत्त्व, प्रकृति और जाति के अनुसार है, मुख्य नायिकाओं के भेदों के अंतर्भेद मान कर नहीं। रसलीन और दास ने मुख्य भेदों के अनेक अंतर्भेद कर दिये हैं। रसलीन ने परकीया और सामान्या के उपभेदों की विशेष रूप से वृद्धि की है, किंतु दास ने उपभेदों का विस्तार करते हुए भी सामान्या और कुलटा नायिकाओं का कथन नहीं किया है। इन तीनों कवियों ने संख्या-वृद्धि के आग्रह से नायिकाभेद को अत्यंत जटिल और दुर्बोध बना डाला है।

देव की सूक्त के अनुसार देवल, रावल, राजनागरी, पुरवासिन, ग्रामीणा, बनवासिन सेन्या और पथिक-तिथ आदि अनेक प्रकार की अद्भुत नायिकाएँ और उनके देवी, पूजनहारी, द्वारपालिका, जौहरिन, छीपिन, तेलिन, तमोलिन, धोविन, नायन, यहाँ तक कि चूहरी (भंगिन ?) तक पचासो उपभेदों का प्रचार हो जाता तो नायिकाभेद एक खासा चिड़िया-घर बन जाता ! रसलीन के मतानुसार परकीया के अंतर्गत ऊढ़ा नायिका के असाध्या और सुखसाध्या तथा अन्य भेद सर्भीता, गुरुजनसर्भीता, दूतीवर्जिता, अतिक्रांता, खलपृष्ठ एवं वृद्धबधू, बालबधू, नर्पुसकबधू, विधवाबधू, गुनीबधू, सेवकबधू, तथा लक्षिता के हेतुलक्षिता, सुरतिलक्षिता, प्रकाशलक्षिता एवं कुलटा के मूढपतिदुःखिता, बालपतिदुःखिता, वृद्धपतिदुःखिता आदि, यहाँ तक कि सामान्या के भी स्वतंत्रा, जननीआधीना, नेमता, प्रेमःदुखिता जैसे उपभेदों के कारण नायिकाभेद एक अजीब गोरखधंधा बन गया है ! दास ने न तो देव की तरह अद्भुत भेदों का आविष्कार किया और न रसलीन की तरह कुलटा और सामान्या जैसी आचारहीन नायिकाओं का व्यर्थ विस्तार किया, फिर भी उन्होंने ज्येष्ठा-कनिष्ठा नायिकाओं में दक्षिण, शठ और घृष्ट नायिकों की ज्येष्ठा और कनिष्ठाएँ, परकीया में प्रगल्भा और धीरा, अनूढा में उद्बुद्धा, अनुरागिनी, प्रेमासक्ता; ऊढ़ा में साध्या, असाध्या, दुःखसाध्या और सुखसाध्या; लक्षिता में सुरतिलक्षिता, हेतुलक्षिता तथा धीरा और मुदिता में विदग्धा आदि अनेक उपभेदों के विस्तार से नायिकाभेद के किसी विशेष हित का संपादन नहीं किया है।

देव, रसलीन और दास के अतिरिक्त जिन कवियों ने नायिकाओं की संख्या-वृद्धि का प्रयास किया है, उनके द्वारा वर्णित नायिकाओं का प्रस्तार

करने पर यह संख्या हज़ारों पर पहुँचती है ! यह गनीमत हुई कि नायिकाओं की संख्या-वृद्धि करने की प्रवृत्ति ने विशेष बल नहीं पकड़ा, वरना उपर्युक्त अद्भुत और नवीन नायिकाओं के जजाल में पड़ कर कविता-कामिनी की घोर दुर्दशा हो जाती ।

१) नायिकाभेद काव्यशास्त्र के अतर्गत एक मनोवैज्ञानिक विवेचन है । कुछ थोड़ा सा नायिकाओं का उल्लेख नारी-मन के विकारों का अध्ययन करने के लिए आवश्यक है, जिससे 'दृश्य' और 'श्रव्य' काव्यों में पात्रों के चरित्र-चित्रण संबंधी कोई अस्वाभाविक बात न कहदी जावे । इसी लिए साहित्य में नायिकाभेद कथन की आवश्यकता भी प्रतीत हुई, किंतु ब्रजभाषा-साहित्य के अनेक कवि नायिकाभेदोत्पत्ति के इस मूल तत्व को भूल कर उनकी संख्या-वृद्धि के बखेडे में ही पड़े रहे !^१

वर्तमान काल के आलोचक नायिकाभेद के कथन की तो कुछ आवश्यकता समझते हैं, किंतु उसके इस विस्तार को व्यर्थ और अनावश्यक मानते हैं । वास्तव में देखा जाय तो नायिकाभेद के ये कविगण संख्या-वृद्धि के प्रपंच में पड़ कर अपने वास्तविक उद्देश्य से भटक गये थे ।

† “नायिकाभेद का यह विवेचन नाट्यशास्त्र और विशेषतः अभिनय की वस्तु थी, उसकी बहुत मोट गीतों काव्य में ग्रहण करने की थी । केवल अवस्था, स्वभाव और श्रेणियों के अनुसार उनके स्वरूप का सकेत मात्र कर देने की आवश्यकता थी और वह इसलिए कि प्रबंध काव्यों में अथवा काव्य-ग्रंथों में पात्रों का स्वरूप-चित्रण करने में कोई बे ठिकाने की बात न कह दी जाय, इसलिए नहीं कि उन्हीं विभेदों के केवल लक्ष्य प्रस्तुत करके काव्य के वास्तविक उद्देश्य से बाहर भटका जाय । काव्य का वास्तविक उद्देश्य रस-संचार है, यह नहीं कि लोग केवल रस के आलंबन अथवा विभाव पक्ष का निरूपण या वर्णन करते रह जाँय, भाव पक्ष पर उनकी दृष्टि ही न हो ।”

अष्टम परिच्छेद

नायिकाभेद का सिंहावलोकन



कामशास्त्र और तंत्रों का प्रभाव—

लजभाषा—नायिकाभेद की पृष्ठभूमि और उसके विकास के संबंध में गत पृष्ठों में बहुत-कुछ लिखा जा चुका है । अब नायिकाभेद की प्रमुख नायिकाओं का सिंहावलोकन करते हुए उनके स्वरूप पर विचार किया जाता है । नायक—नायिकाओं के विभिन्न आचार—व्यवहार, रहन—सहन और आमोद—प्रमोद पर गंभीरता पूर्वक विचार करने से यह ज्ञात होता है कि उन पर केवल नाट्यशास्त्र अथवा काव्यशास्त्र का ही प्रभाव नहीं है, बल्कि कामशास्त्र और तंत्रों का भी यथेष्ट प्रभाव है ।

भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि—मुनियों ने केवल पारलौकिक चिन्ता में ही अपनी प्रखर प्रतिभा का उपयोग नहीं किया था, बल्कि उन्होंने लौकिक जीवन को सुखी और सतुष्ट बनाने के साधनों पर भी गंभीरता पूर्वक विचार किया था । इस प्रकार की लौकिक चिन्ता उन कामसूत्रों में व्यक्त की गई थी, जो विक्रम संवत् से भी पहले परोपकारी ऋषि—मुनियों द्वारा प्रस्तुत किये गये थे । महामुनि वात्स्यायन ने उन कामसूत्रों के सकलन द्वारा सुप्रसिद्ध कामशास्त्र की नींव डाली । इस महत्वपूर्ण शास्त्र ने भारतीय गृहस्थ के लोक—जीवन को बहुत—कुछ प्रभावित किया है ।

कामशास्त्रोक्त ग्रंथों में स्त्री—पुरुष के आहार—विहार और केलि—क्रीडा का ही कथन नहीं है, बल्कि उनमें दाम्पत्तिक और गार्हस्थिक जीवन को सुखी, समृद्ध एवं संतुष्ट बनाने के समस्त साधनों की व्याख्या की गई है । उन ग्रंथों में जहाँ स्त्री—पुरुष के मधुर जीवन की व्याख्या की गई है, वहाँ उन साधनों को भी बतलाया गया है, जिनके कारण जीवन में माधुर्य का संचार होता है । इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उनमें गृहस्थ के दैनिक जीवन की अनेक बातों पर विस्तार पूर्वक विचार किया गया है । घर की बनावट और सजावट किस प्रकार की हो, बाग—बगीचा, खिडकी—दरवाज़े किस प्रकार के और कहाँ बनवाये जाँय, उत्सव—अभरण आदि किस समय और किस प्रकार से किये जाँय, इन सब बातों पर भी उनमें विचार किया गया है ।

नायिकाभेद के ग्रंथों में नायक-नायिकाओं के दैनिक रहन-सहन और आचार-व्यवहार की मर्यादा कामशास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर ही बँधी गई है। वात्स्यायन के अनंतर कामशास्त्र के ग्रंथों में अन्य आवश्यक बातों के अतिरिक्त शुद्ध 'काम' से संबंधित विषयों का अधिक उल्लेख होने लगा। तब 'अनगरग' और 'पंचसायक' जैसे ग्रंथों के कारण नायिकाभेद में भी भोग-विलास की बातों पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा।

यही पर भारत की प्राचीन तांत्रिक उपासना-पद्धति पर भी विचार कर लेना चाहिए। तंत्रों में देवता और उसकी शक्ति के स्वरूप, गुण, कर्म आदि के चिंतन पूर्वक उनकी उपासना करने की विधि बतलाई गई है। तंत्र की पूजा में पंचम कार—मत्स्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन—का विधान है। आरंभ में इन उपादानों का आध्यात्मिक अर्थ किया जाता था, किंतु कालान्तर में वे भौतिक अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण भ्रष्टाचार में सहायक होने लगे। तंत्रों की आध्यात्मिक साधना में जो स्त्री पूज्य भाव से ग्रहण की जाती थी, वही तांत्रिक साधना के ही कारण भोग-विलास की वस्तु बन गई!

स्त्री-जीवन की विविध भौक्तियाँ—

इस प्रकार कामशास्त्र और तंत्रों के विकृत प्रभाव ने स्त्री को काम-वासना और भोग-विलास का साधन बना दिया। नायिकाभेद के ग्रंथों में इस विकृत प्रभाव के कारण स्त्री का यही रूप स्वीकार किया गया है, किंतु उनमें गृहस्थ-जीवन की उन समस्याओं को भी सुलझाया गया है, जो स्त्री को दूसरे रूप में भी चित्रित करती है। इसलिए स्त्री-जीवन की नाना प्रकार की भौक्तियों के लिए नायिकाभेद की विविध नायिकाओं का दिग्दर्शन कसना आवश्यक है। ब्रजभाषा कवियों ने इन नायिकाओं का ऐसा कवित्वपूर्ण कथन किया है, जिसके कारण लौकिक उपयोगिता से भी अधिक उनका साहित्यिक महत्व हो गया है।

वैष्णव संप्रदायों के कई कवियों ने नायिकाभेद की रचनाओं द्वारा अपनी मधुर भक्ति को भी अभिव्यक्त किया है। ब्रजभाषा नायिकाभेद के साहित्य में वैष्णव कवियों की नायिकाएँ अपना पृथक् स्थान रखती हैं। इस प्रकार ब्रजभाषा साहित्य के नायिकाभेद का कई दृष्टियों से महत्व है, जिसका यथार्थ ज्ञान इसके सिंहावलोकन मात्र से हो सकता है।

नायिका की परिभाषा और उसका वर्गीकरण—

नायिकाभेद के आचार्यों ने नायिका की इस प्रकार परिभाषा की है— जिस रमणी को देखते ही चित्त में शृंगार रस का संचार हो, उसे 'नायिका' कहते हैं।[†] इस परिभाषा के अनुसार नायिकाभेद का संपूर्ण विषय शृंगार रस से संबंधित है।

आचार्यों ने नायिका के विविध भेदों के विवेचन के लिए उसके कितने ही वर्ग लिखे हैं। उनमें से ५ वर्ग मुख्य हैं—

१. जाति-अनुसार, २. धर्म-अनुसार, ३. दशा-अनुसार,
४. अवस्था-अनुसार और ५. गुण-अनुसार।[✓]

प्रथम वर्ग 'जाति-अनुसार' में नायिका के ४ भेद होते हैं—१. पद्मिनी, २. चित्रिनी, ३. शशिनी और ४. हस्तिनी। नायिकाभेद में इस वर्ग की नायिकाओं का विशेष महत्व नहीं माना गया है, इसलिए इनका संक्षिप्त रूप से वर्णन किया गया है।

नायिकाओं का दूसरा 'धर्म-अनुसार' वर्ग सबसे अधिक महत्वपूर्ण है—अथवा यह कहना चाहिए कि संपूर्ण नायिकाभेद का आधार ही इस वर्ग पर है, इसलिए इस वर्ग की नायिकाओं का विस्तार पूर्वक कथन किया गया है। धर्म-अनुसार वर्ग में नायिका के ३ भेद होते हैं—

१. स्वकीया, २. परकीया और ३. सामान्या

अपनी स्त्री को स्वकीया, दूसरे की स्त्री को परकीया और सबकी (अर्थात् जो धन दे उसकी) स्त्री को सामान्या कहते हैं। इस प्रकार विवाह संस्कार द्वारा प्राप्त निज पत्नी को स्वकीया, प्रेम-संबंध से उपलब्ध पर-नारी को परकीया और धन से प्राप्त बाजारू स्त्री को सामान्या कहा गया है।

स्वकीया नायिका—

नारी जाति को धर्मानुसार तीन भेदों में विभाजित करते हुए नायिकाभेद के आचार्यों ने स्वकीया नायिका को प्रधानता दी है। इसी नायिका को उन्होंने शृंगार रस की प्रमुख पात्र स्वीकार किया है।[†]

† 'पात्र मुख्य सिंगार की, सुद्ध सुकीया नारि।'।

जहाँ आचार्यों ने नायिका के अष्टांग—१ पौवन, २ रूप, ३ गुण, ४. शील, ५. प्रेम, ६. कुल, ७. भूषण और ८. वैभव का वर्णन किया है, वहाँ स्वकीया में ही इनका पूर्ण विकास माना है, जिनके कारण वह अष्टांगवती नायिका कहलाती है। आचार्यों ने नायिकापन का पूर्ण विकास भी स्वकीया में ही माना है, इसलिए उन्होंने इसका विस्तार पूर्वक कथन किया है।

स्वकीया नायिका की परिभाषा करते हुए उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है कि जो विवाहिता स्त्री मन, वचन और कर्म से सदा अपने पति के अनुकूल रहे और पर-पुरुष की ओर भूल कर भी आवर्षित न हो, उसे स्वकीया नायिका कहना चाहिए।

यही आर्य ललनाओं का आदर्श है। पति के दोष को न देख कर उसके गुण ही गुण देखना उसका धर्म है। पति की सब प्रकार सेवा करना, उसके संबंधियों को अपना सबधी, उसके मित्रों को अपना मित्र और उसके शत्रुओं को अपना शत्रु मानना उसका कर्तव्य है। स्वकीया नायिका का आदर्श अन्यत उच्च, उसका त्याग प्रशसनीय और उसका पति-प्रेम अनुपम होता है। स्वकीया नायिका पति के परिवार रूपी रत्न की धुरी है, जिसके आधार पर वह संसार की यात्रा को सुख और सरलता पूर्वक पूरी करता है।

आर्य ललनाएँ अपने पातिव्रत धर्म के लिए जग-विख्यात हैं। हिंदुओं का संपूर्ण ऐतिहासिक, पौराणिक और धार्मिक साहित्य ऐसी देवियों के उज्ज्वल चरित्रों से भरा पड़ा है। इस प्रकार के देवोपम चरित्र संसार के साहित्य में अन्यत्र मिलना असंभव है। हिंदू स्त्रियाँ अपने पति द्वारा ही अपनी समस्त लौकिक और पारलौकिक आकांक्षाओं की पूर्ति कर पाती हैं और उसी पर अपनी समस्त आशाएँ और अभिलाषाएँ केन्द्रित कर देती हैं। वे पति के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी रहती हैं। भला बुरा जैसा भी पति हो, वही उनके लिए सर्वस्व है। पति का दोष वे देखती ही नहीं, पति के गुण ही गुण उन्हें दिखलाई देते हैं। उनका पति-प्रेम कामानुराग पर आश्रित नहीं है, बल्कि कर्तव्य पर आधारित है। सच्चे और सात्विक प्रेम की वे मूर्तियाँ हैं। हिंदू नारियाँ अपने प्रेम का बदला पति से नहीं चाहती, वे तो प्रेम करने के लिए ही प्रेम करती हैं। इस प्रकार की स्त्रियाँ गौरव और आदर की पात्र हैं और उन्हीं के कारण हिंदू-परिवार का इतना महत्व है। इस प्रकार की आदरणीय नारियों का वर्णन स्वकीया नायिका के अंतर्गत किया गया है।

वय क्रम के अनुसार स्वकीया नायिका के तीन भेद किये गये हैं—

१. मुग्धा, २. मध्या और ३. प्रौढ़ा ।

मुग्धा नायिका—

जिसके शरीर में नव यौवन का संचार हो रहा हो, ऐसी लज्जाशीला नायिका को 'मुग्धा' कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार नव विवाहिता पत्नी की विभिन्न चेष्टाओं का बड़ा ही मनोरम वर्णन 'मुग्धा' नायिका के अंतर्गत किया गया है। मुग्धा नायिका के दो भेद होते हैं—१. अज्ञातयौवना और २. ज्ञात-यौवना। ज्ञातयौवना को भी नवोद्गा और विश्रब्ध नवोद्गा दो भेदों में विभाजित किया गया है।

मुसलमानों के शासन-काल में लड़के-लड़कियों को बहुत छोटी आयु में ही विवाहित करने की प्रथा चल पड़ी थी। इसका आभास नायिकाभेद के ग्रंथों में भी मिलता है। बाला पत्नी के तन में नवयौवन का संचार हो रहा है, किंतु स्वयं उसे इनका ज्ञान नहीं है। ऐसी अबोधवस्था वाली किशोरी को 'अज्ञात-यौवना' कहा गया है। अज्ञातयौवना का अलहडपन दिखलाने में कवियों ने मनोविज्ञान का अच्छा परिचय दिया है। धीरे-धीरे नायिका का वह बाल-स्वभाव जनित अलहडपन दूर होने लगता है। अब उसकी चेष्टाओं ने भिन्न रूप धारण कर लिया है। जहाँ पहले वह उछलती-कूदती चलती थी, वहाँ वह अब मंद गति से चलने लगती है। खिलखिला कर हँसने की अपेक्षा वह मुँह छिपाकर मुसकाती हैं। अपने प्रत्येक कार्य में उसे अब लज्जा का अनुभव होता है। इस प्रकार की चेष्टा वाली नायिका का उल्लेख 'ज्ञातयौवना' के नाम से किया गया है। 'ज्ञातयौवना के दोनों भेद 'नवोद्गा' और 'विश्रब्धनवोद्गा' का संबंध नव विवाहित दंपति की काम-क्रीड़ा से है। जो 'नव विवाहिता बाला पत्नी-भय और लज्जा के कारण अपने पति का संग नहीं चाहती, उसे 'नवोद्गा' नायिका कहते हैं। भय और लज्जा के भाव में कुछ कमी आने पर जब वह अपने पति की ओर किंचित आकर्षित होने लगती है, तब उसे 'विश्रब्धनवोद्गा' कहा जाता है। मुग्धा नायिका के भेदोपभेदों में कवियों ने जिन मधुर और कोमल भावों की उद्गावना की है, वे सहृदय जनो को अतीव आनंद प्रदान करते हैं।'

मध्या नायिका—

'मुग्धत्व की लज्जाजनित अवस्था के पश्चात् तथा निःसंकोच भाव से केलि-क्रीड़ा में तत्पर होने वाली प्रौढ़ावस्था के पूर्व आचार्यों ने एक मध्यवर्ती अवस्था

का भी उल्लेख किया है, जिसमें नायिका की लज्जा और काम-चेष्टा का समान रूप से कथन होता है। इस अवस्था की नायिका को 'मध्या' कहते हैं। मध्या के कथन में लज्जा और काम-चेष्टा के दोनों पलड़ों को बराबर रखने में कवियों ने बड़ी कारीगरी दिखलाई है। वास्तव में मध्या का कलापूर्ण वर्णन पढ़ने की चीज़ है।

प्रौढ़ा नायिका—

नायिकाभेद के कवियों की परम प्रिय नायिका 'प्रौढ़ा' है। यह रति-कला में अत्यंत प्रवीण है और अपने नायक को सब प्रकार से सन्तुष्ट करने की क्षमता रखती है। प्रौढ़ा को 'रतिप्रीता' और 'आनन्दसमोहा' नामक दो भेदों में विभाजित किया गया है। ये दोनों भेद उसकी रति-गियता और अपने पति के रतिसुख-जनित प्रेमानन्द में निमग्न होने की अवस्था के सूचक हैं। प्रौढ़ा के वर्णन में कवियों ने काम-विज्ञान और केलि-कला के अनेक गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन किया है।

धीरादि भेद और ज्येष्ठा-कनिष्ठा—

स्वकीया नायिका अपने पति के संपूर्ण प्रेम का पूरी तरह उपभोग करने की आकांक्षा ही नहीं रखती, बल्कि उस पर एक मात्र अपना ही अधिकार समझती है। इसमें कोई अन्य स्त्री, चाहें वह उसके पति की विवाहिता दूसरी पत्नी हो, अथवा उसके पति से गुप्त प्रीति रखने वाली कोई परकीया हो, कुछ भी हिस्सा बंटाना चाहे, तो उसे ईर्ष्या होती है। किसी भी पत्नी की यह चेष्टा स्वाभाविक है। किंतु प्राचीन समय से ही हिंदू समाज में एक पुरुष की अनेक विवाहिता पत्नियों का होना पाया जाता है। इसके फल स्वरूप जो अनिष्टकारी परिणाम हुए हैं, उनसे इतिहास और पुराणों के पृष्ठ के पृष्ठ भरे पड़े हैं। राजा दशरथ का शोचनीय अंत और राम जैसे सर्वगुण संपन्न पुत्र का बनवास इसी बहु-विवाह-प्रणाली के कुफल थे। एक से अधिक पत्नियों के कारण गार्हस्थ्यक अशांति और पारिवारिक कलह का होना भी अनिवार्य है।

अपने पति को अन्य स्त्री पर आसक्त जानकर उसकी ईर्ष्यापूर्ण अनेक चेष्टाओं को धीरादि भेद में और अनेक पत्नियों की प्रेम-प्रतियोगिता को ज्येष्ठा-कनिष्ठा में दिखलाया गया है। धीरा नायिका की व्यंगोक्ति, अधीरा के कटु वचन और धीराधीरा के अश्रुपात पाठक के हृदय में नायिका की परिहास-प्रियता, तेजस्विता और दयनीय दशा का मूर्तिमान चित्र उपस्थित कर देते हैं।

एक पुरुष अपनी कई पत्नियों से समान रूप में प्रेम कर सके—ऐसा संभव नहीं है। जिस पत्नी पर पति का अधिक प्रेम हो, उसे 'ज्येष्ठा' और जिस पर न्यून हो, उसे 'कनिष्ठा' कहा गया है। ज्येष्ठा-कनिष्ठा में स्वपत्नियों की प्रेम-प्रतियोगिता और गार्हस्थिक अशांति का उल्लेख होना उचित था, किंतु इन नायिकाओं के वर्णन में नायिकाभेद के आचार्यों की चेष्टा पति द्वारा सभी पत्नियों को संतुष्ट करने की रही है। इस संबंध में कवियों द्वारा जो कथन किये गये हैं, वे बच्चों के खिलवाड़ से ज्ञात होते हैं।

धीरादि और खंडिता में अंतर—

धीरादि भेदों का कथन स्वकीया के मध्या-प्रौढा भेदों में और खंडिता का नायिका के अवस्थानुसार भेदों में पृथक्-पृथक् रूप से किया जाता है, किंतु इनकी उत्पत्ति के कारण प्रायः समान हैं। परतियासक्त पति के तन पर कतिपय चिन्ह देख कर ही धीरादि और खंडिता दोनों प्रकार के भेदों की उत्पत्ति होती है, इसलिए कभी-कभी इन दोनों प्रकार की नायिकाओं में अंतर करना कठिन हो जाता है। आचार्यों ने इनके भेद-प्रदर्शन की एक मर्यादा बाँध दी है। जिन चिन्हों को देख कर धीरादि और खंडिता की उत्पत्ति होती है, वे दो प्रकार के माने गये हैं—१. साधारण और असाधारण। साधारण चिह्न वे हैं, जिनसे निश्चयपूर्वक पर-स्त्री संसर्ग का बोध न होता हो, जैसे पाग के बंदों का का खुलना, नेत्रों की अरुणिमा और नायक का आलस्य-भाव। इन चिन्हों का कथन धीरादि भेद में होता है। असाधारण चिह्न उनको कहते हैं, जिनसे निश्चय पूर्वक नायक की रति का बोध हो, जैसे नायक के वक्षस्थल पर नख-क्षत, नेत्रों पर पीक और अधर पर अंजन के दाग आदि। इन चिह्नों का कथन 'खंडिता' में होता है।

इस प्रकार की मर्यादा होने पर भी कवियों ने कभी कभी अपने कथन में उसे भंग कर दिया है, जिसके फल स्वरूप धीरादि और खंडिता के उदाहरणों में गड़बड़ हो जाती है। नायिकाभेद के प्रमुख आचार्य मतिराम भी प्रौढा-खंडिता और प्रौढा-धीरा में कुछ स्पष्ट भेद सूचित नहीं कर सके हैं! इसी प्रकार और भी कितने ही कवियों के नाम गिनाये जा सकते हैं। साधारणतः यह कहना चाहिये कि धीरादि में स्पष्ट रूप से रति-चिन्हों का वर्णन नहीं होता, जब कि खंडिता में इनका वर्णन करना आवश्यक है।

स्वकीया का उच्चादर्श और गौरव—

सौत की कल्पना स्त्री मात्र के लिए दुःखदायी है, किंतु नायिकाभेद के कवियों ने ऐसी स्वकीया नायिकाओं का भी कथन किया है, जो सौत की स्थिति को प्रसन्नता पूर्वक सहन ही नहीं करती है, बल्कि उनके प्रति सज्जाव भी रखती है। इन प्रकार के उल्लेख से उन्होंने स्वकीया के उच्चादर्श का गौरवपूर्ण कथन किया है। जहाँ अन्य देशीय स्त्रियों सौत का नाम सुनते ही पति का जीवन दुभर कर देगी, अथवा उसको तलाक दे देंगी, वहाँ आर्य ललनाएँ पति तो क्या सौत के प्रति भी उदार रहती हैं।

प्रायः ऐसा कहा जाता है कि हिंदू-सभ्यता स्त्रियों के प्रति अनुरक्त है। उसमें नारियों का कर्तव्य कठोर और उनके स्वाभिमान को ठेस पहुँचाने वाला घोषित किया गया है; किंतु नायिकाभेद के आचार्यों ने स्वकीया स्वाधीनपतिका के उल्लेख से इस मत के विरुद्ध कथन किया है।

स्वकीया स्वाधीनपतिका का पति अपनी पत्नी पर इतना अनुरक्त है कि वह उसका सब शृंगार अपने हाथ से ही करता है। वह उसकी सेवा-चाकरी और दहल तक करता है और सब प्रकार से उसको प्रसन्न रखने की चेष्टा करता है, किंतु पत्नी शृंगार-बिहार में भी पति के मान-मर्यादा की रक्षा करती हुई अपने गौरव की वृद्धि करती है।

नायिकाभेद के प्रमुख आचार्य रसलीन ने स्वकीया और पतिव्रता में भी भेद का कथन किया है। उनके विचारानुसार स्वकीया स्नेह के कारण पति से प्रेम करती है, किंतु पतिव्रता अपना कर्तव्य मान कर पति-भक्ति करती है*।

‡ “पीय कौं वञ्छिन जानि न दूषत, चौगुनो चाउ बडै वा लली कौं ।
सौतिन हू कौ असीसै सुहाग, भरै कर आपने सेंदुर टीकौ ॥”

† ‘सरसाए दुकूल सुगंय सौं सानि, सबै रति-मंदिर बास रह्यौ ।
रंग-रंग के अंग अनूप सिंगार, सिंगार निहारि कै मोद लह्यौ ॥
पुनि बीरी खबावत हू ‘ससिनाथ’, मुजान सौं प्यारी कछू न कह्यौ ।
जब लागन लागे महावर पौंय, तबै मुसक्याय कै हाथ गह्यौ ॥”

—“रसपीयूषनिधि”

* सुकीया और पतिव्रता, में यह भेद विचारि ।
वह स्नेह, यह भगति सो, सेवत है निरधारि ॥

प्रायः देखा जाता है कि स्त्री-पुरुष का दाम्पत्य प्रेम इन्द्रिय-सुख पर भी आधारित है। इन्द्रिय-सुख के अभाव में इस दाम्पत्य-प्रेम में उदासीनता आ जाती है, किंतु पतिव्रता स्वकीया नायिका इन्द्रिय-सुख के अभाव में भी कर्तव्यवश अपने पति की भक्ति ही नहीं करती, बल्कि उसके दोष को छिपाने की भी चेष्टा करती है। बृद्ध और नपुंसक पति की पत्नी आत्मत्याग पूर्वक अपने पतिव्रत का निर्वाह ही नहीं करती, बल्कि पति के दोष को छिपा कर कलंक को स्वयं अपने ऊपर ले लेती है[†]। स्वकीया नायिका की महत्ता और उसका गौरव सर्वमान्य है। उसके महत्वपूर्ण वर्णन से नायिकाभेद के ग्रंथों के पृष्ठ के पृष्ठ भरे पड़े हैं।

परकीया नायिका—

पर-पुरुष से प्रीति करने वाली स्त्री को परकीया कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार परकीया नायिका भारतीय संस्कृति और शिष्टाचार के विरुद्ध है। इस देश में पतिव्रता और पत्नीव्रत के आदर्शों को महत्व दिया गया है। यहाँ पर मन और वचन से भी स्त्री को पर-पुरुष और पुरुष को पर-स्त्री की ओर आकर्षित होने में पातक माना गया है फिर कर्म से पर-पुरुष-गमन अथवा पर-स्त्री-रति की बात करना भी घोर अनुचित कार्य है।

यह होने पर भी नायिकाभेद के आचार्यों ने परकीया नायिका का उल्लेख किया है। इसका कारण यह है कि धर्म और आचार के विरुद्ध होने पर भी समाज में परकीयापन के बीज अति प्राचीन काल से विद्यमान रहे हैं। जहाँ समाज में स्वकीया और पतिव्रता स्त्रियाँ अथवा पत्नीव्रत पुरुषों की स्थिति है, वहीं परकीया और कुलटा स्त्रियाँ अथवा उपपति और लंपट पुरुषों का भी अभाव नहीं है। अत्यंत प्राचीन काल में जब धार्मिक और सदाचारपूर्ण जीवन का अधिक महत्व था, तब इस प्रकार के आचारहीन स्त्री-पुरुषों की संख्या अत्यंत अल्प थी, किंतु जिस प्रकार समाज में आदर्शहीनता का प्रभाव बढ़ा, उसी प्रकार इन आचारहीन नर-नारियों की संख्या भी वृद्धि को प्राप्त होने लगी।

† गुरुजन दूजे ब्याह को, प्रति दिन कहत रिसाय।

पति की पति राखै बहू, आपुन बॉझ कहाय ॥

नायिकाभेद के आचार्यों ने सब प्रकार के नर-नारियो का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक शैली पर किया है। ऐसी दशा में स्वकीया के साथ परकीया का भी उल्लेख आवश्यक था। परकीया के कथन में कवियों ने उसको आदर्श रूप में उपस्थित न कर उसकी बुराई बतलाने की ही चेष्टा की है। समाज के नर-नारियो का वास्तविक रूप से चरित्र-चित्रण करने के लिए भले की भलाई और बुरे की बुराई बतलाना आवश्यक था। नायिकाभेद के ग्रंथो में स्वकीया के साथ परकीया के भी उल्लेख का यही कारण है।

साहित्य में परकीयापन का प्राचीन आदर्श—

वैष्णव संप्रदायों के धार्मिक साहित्य में श्रीकृष्ण से प्रेम करने वाली अनेक गोपियों का उल्लेख है। गोपियों ने अपने पतियों के रहते हुए भी अति शुद्ध भाव से श्रीकृष्ण से प्रेम किया था। जब गोपी-कृष्ण के प्रेम का उल्लेख साहित्य में होने लगा तो कृष्ण को नायक और गोपियों को परकीया नायिका लिखना आवश्यक था। धार्मिक साहित्य में परकीयापन के प्रचार का यही कारण ज्ञात होता है।

इस प्रकार परकीया नायिका का उल्लेख होने पर भी आरंभिक कवियों ने उस पर कोई दोषारोपण नहीं किया। इसका कारण स्पष्ट है कि गोपियों ने शुद्ध भाव से प्रेम किया था और उनके प्रेम का पात्र कोई लौकिक नायक नहीं, बल्कि स्वयं श्रीकृष्ण थे, जो परमात्मा के अवतार माने गये हैं। ब्रजभाषा साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि महात्मा सूरदास ने गोपियों के प्रेम का बड़ा अपूर्व वर्णन किया है। उनकी गोपियाँ कहने को परकीया थीं, किंतु उन्होंने स्वकीया भाव से कृष्ण के प्रति प्रेम किया था। जहाँ परकीया नायिका अपना परकीयत्व भूल कर स्वकीया भाव से भगवान् की भक्ति करती है, ऐसे परकीयापन को कौन बुरा कहेगा? आदर्श देवी मीरा का प्रेम भी इसी कोटि का था।

सूरदासजी ने गोपियों की भावना को इस प्रकार व्यक्त किया है—
 “व्याहो लाख, धरौ दस कुबरी, अंतहू कान्हू हमारौ” जो गोपियाँ ऐसे अनन्य भाव से श्रीकृष्ण का चिंतन करती थीं, उनके आचरण पर दोषारोपण करने का कौन अपराध कर सकता है!

वैष्णव संप्रदायों की भक्ति-भावना में गोपियों की सी परकीया भक्ति को श्रेष्ठकर माना गया है। जिस प्रकार परकीया नायिका पूर्ण आत्म-त्याग

और लगन के साथ नाना प्रकार की बाधाओं के रहते हुए भी अपने प्रेम का निर्वाह करती है, इसी प्रकार सावक को भी भगवान् की भक्ति करनी चाहिए। वैष्णवों की परकीया भक्ति का यही अभिप्राय है।

ब्रजभाषा साहित्य का अलौकिक और लौकिक परकीया प्रेम—

ब्रजभाषा नायिकाभेद के आरम्भिक आचार्यों में प्रमुख महाकवि केशवदास ने परकीया नायिका की परिभाषा उपर्युक्त आदर्श के अनुसार की है[‡] और परकीया प्रकरण को समाप्त करते हुए भी उसके संबन्ध में इसी प्रकार के उद्गार प्रकट किये हैं*। कालांतर में परकीयापन का यह अलौकिक शुद्धादर्श लौकिक नर-नारियों की प्रेम-लीला में परिणित होगया। तब केशवदास की परिभाषा के विरुद्ध अपने पति से छिपा कर पर-पुरुष से प्रीति करने वाली स्त्री को परकीया नायिका लिखा जाने लगा[‡]।

ब्रजभाषा साहित्य में अलौकिक और लौकिक दोनों प्रकार के परकीया प्रेम का कथन किया गया है। अलौकिक प्रेम से जहाँ भक्तों को भगवान् के प्रति शुद्ध भक्ति-भावना की प्रेरणा मिलती है, वहाँ लौकिक प्रेम से विषयी जनो का विषय-वासना की ओर भी झुकाव हो सकता है। किंतु ब्रजभाषा कवियों ने परकीया की दयनीय दशा का ऐसा मार्मिक और व्यथापूर्ण वर्णन किया है, जिसके कारण विषयी जीवों की विषय-वासना भी मद् पड़ जाती है। वे परकीया-प्रेम के दुष्परिणाम का चिंतन कर इस मार्ग पर चलने से अपने को बचा सकते हैं।

‡ सव ते पर, परसिद्ध जो, ताकी प्रिया जु होय ।

परकीया तासो कहे, परम पुराने लोय ॥

—‘रसिकप्रिया’

* जगनायक की नायिका, बरनी केशवदास ।

—“रसिकप्रिया”

‡ करै नेह पर कत सो, दुरादुरी जो नारि ।

ताहि परकिया कहत है, पंडित लोग विचारि ॥

—“रसपीयूषनिधि”

परकीयापन से शिक्षा—

जत्र रंति—काल के कवियों ने परकीया नायिका के लौकिक रूप पर अधिक ध्यान दिया, तो वे नायिकाभेद के ग्रंथों में उसके अनेक भेदोपभेदों का कथन करने लगे। ब्रजभाषा नायिकाभेद के आचार्यों में रसलीन और दास ने परकीया नायिका का विशेष रूप से विस्तार किया है। उन्होंने नवीन भेदों की उद्भावना द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार की परकीया नायिकाओं का विस्तृत वर्णन किया है।

उस समय की धार्मिक एवं राजकीय परिस्थिति के कारण साहित्य में परकीया नायिकाओं का विशेष रूप से वर्णन होने लगा, किंतु कवियों ने इस प्रकार का कथन करते हुए भी परकीयत्व को प्रश्रय नहीं दिया। उन्होंने स्वकीया के प्रेम की अपेक्षा परकीया के प्रेम को निम्न कोटि का ही नहीं, बल्कि अहितकर भी बतलाया है। महाकवि देव ने स्वकीया के प्रेम रूपी शुद्ध दूध की तुलना में परकीया के प्रेम को खोआ में गर्म पानी मिला कर बनाये हुए नकली दूध के समान बतलाया है† ।

नायिकाभेद के कवियों ने परकीया के कंटकाकीर्ण मार्ग का कथन करते हुए पाठकों को शिक्षा दी है कि इसमें बड़ा खतरा है, इससे बचना चाहिए। श्री हरिऔधजी के शब्दों में परकीया का वर्णन सुनिये—

“परकीया नायिका में जो प्रेमजन्य व्याकुलता होती है, उसमें जो अधीरता, उत्सुकता, प्रेमोन्माद और तडप देखी जाती है, वह बड़ी ही अदम्य एवं वेदनामयी होती है। पहाड़ी नदियों की गति में बड़ी प्रखरता, बड़ी सबलता, बड़ा वेग और बड़ी ही दुर्दमनीयता होती है, क्यों कि उसके पथ में विघ्न-बाधा स्वरूप अनेक प्रस्तर खंड, अनेक संकीर्ण मार्ग और बहुत से पहाड़ी दर्रे होते हैं। परकीया नायिकाओं का पथ भी इसी प्रकार विपुल सकटाकीर्ण होता है। उसको लोक-लाज की बेड़ी काटनी पड़ती है, वंशगत बंधन तोड़ना पड़ता है, गुरुजनों की भर्त्सना, गाँव वालों का उत्पीड़न और सखियों का तिरस्कार सहना पड़ता है, अतएव उसकी गति भी पहाड़ी नदियों की सी उद्वेलित होती है। उसके हृदय के भावों का चित्रण टेढ़ी खीर है, साथ

† पर-रस चाहै परकीया, तजै आप गुन गोत ।

आप औटि खोआ मिले, खात दूध फल होत ॥

ही बड़ा ओजमय, द्रावक और मर्मस्पर्शी भी है। उसमें सत्यता है, सौन्दर्य है, और है प्रेम-पथ का भीषण दृश्य। उसमें वह अटलता है, जो हथेली पर सूर लिए फिरने वालों में ही देखी जाती है।

परकीया के वर्णन में बतलाया गया है कि रूप के अद्भुत आकर्षण से चढ़ती जवानी में स्त्री-पुरुष न मालूम कैसे-कैसे अनर्थ कर बैठते हैं^१, जिनके कारण उनको जन्म भर पछताना पड़ता है। युवावस्था के आरंभ में स्त्री-पुरुषों में प्रेम की हिलोरे उठने लगती है। स्त्री का मन सुंदर पुरुष की ओर तथा पुरुष का मन सुंदर स्त्री की ओर स्वाभाविक रूप से आकर्षित होता है, किंतु लोकाचार और कुल-मर्यादा के विचार उनको अनुचित मार्ग पर चलने से रोकते हैं। जो दुर्बल मन के स्त्री-पुरुष अपने पर काबू नहीं रख सकते, वे पथभ्रष्ट हो जाते हैं। स्त्री जब तक अपने पर काबू रख सकती है, तब तक पुरुष की अपेक्षा अधिक दृढ़ता का परिचय देती है। वैसे तो स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष ही अधिक आचारहीन देखे जाते हैं, किंतु जब स्त्री का मन बेकाबू हो जाता है, तो वह बेलगाम घोड़े की तरह सरपट दौड़ने लगता है। उस समय उसे काबू में रखना प्रायः असंभव हो जाता है। उस अवस्था में वह लोक-लाज, कुल-मर्यादा और भविष्यत् परिणाम का विचार किये बिना ही बड़ी से बड़ी मूर्खता करने को तैयार हो जाती है ! इस प्रकार की स्त्रियों का वर्णन परकीया नायिका में किया गया है।

ब्रजभाषा कवियों ने परकीया नायिका की दयनीय दशा, वेदनामयी परिस्थिति और उसके प्रेमोन्माद का ऐसा कर्णोत्पादक वर्णन किया है, जिसे पढ़ कर कलेजा मुँह को आने लगता है ! इस विवरण से यह शिक्षा मिलती है कि यह मार्ग अनुचित ही नहीं, बड़ा दुःखपूर्ण भी है। इसमें सुख नाम मात्र को भी नहीं है, अतः अपना भला चाहने वालों को इस पथ पर भूल कर भी पग नहीं रखना चाहिए। जो लोग इस पथ पर चलते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं, और दीन-दुनियाँ कहीं के भी नहीं रहते हैं। जिस प्रेम के लिए वे इतना

† “रस-कलस”

* एक भीजे चले परे, बूढ़े बड़े हजार ।

कितने औगुन जग करत, नय बय चढ़ती वार ॥

मँहगा सौदा करते हैं, वह भी प्रायः उनको नहीं मिलता, केवल हृदय की तपन, कसक और निराशा ही उनको प्राप्त होती है ! इसीलिए परकीया द्वारा सुख-प्राप्ति को योग से भी कठिन व्यापार माना गया है[‡] ।

इस प्रकार के वर्णन कभी परकीयापन को उत्साहित नहीं कर सकते, बल्कि जो लोग भूल से इस पथ पर चल पड़े हैं, वे भी इसके भीषण परिणाम को पढ़कर सावधान हो सकते हैं ।

परकीया के भेद—

परकीया नायिका के मुख्य रूप से दो भेद किये गये हैं—१. अनूढा और २. ऊढ़ा अर्थात् परोढ़ा । अविवाहित अवस्था में किसी पुरुष से प्रीति करने वाली और उसके साथ विवाह करने की इच्छा रखने वाली कुमारी को अनूढा कहते हैं । इस प्रकार की परकीया में कोई दोष नहीं है, बल्कि इसे परकीया कहना ही नहीं चाहिए । हिंदुओं के धार्मिक साहित्य में भगवती पार्वती, जगज्जननी जानकी, महारानी रुक्मिणी आदि सभी देवी स्त्रियाँ अनूढा रह चुकी हैं । उनके इस कार्य को कोई बुरा नहीं कहता । क्षत्रिय राजाओं में स्वयंवर की प्रथा और राजपूत बालाओं का स्वेच्छा से किसी वीर योद्धा से प्रेम करना और उसके साथ विवाह करना सदा से प्रचलित है, इसलिए अनूढा नायिका के आदर्श पर कोई दोष नहीं लगाया जा सकता । अनूढा के शुद्ध प्रेम में व्यभिचार की भावना करना अनुचित है । हम जानते हैं कि रीति-काल के कुछ खंपट कवियों ने अनूढा नायिका के व्यभिचार का भी कथन किया है, किंतु यह भारतीय आदर्श नहीं है । मुसलमानी काल की विलासिता और व्यभिचार-वृद्धि का यह प्रभाव हो सकता है ।

परकीया नायिका का दूसरा भेद ऊढ़ा है । जो विवाहिता स्त्री अपने पति के अतिरिक्त पर-पुरुष से प्रीति करे, वह ऊढ़ा कहलाती है । इस प्रकार ऊढ़ा ही वास्तव में परकीया नायिका है । आचार्यों ने ऊढ़ा के निम्न लिखित छे भेद किये हैं—

१. मुद्रिता, २. विदग्धा, ३. अनुशयना, ४. गुप्ता, ५. लक्षिता ६. क्लृप्ता ।

उपर्युक्त भेदों में परकीया की मनोदशा का विभिन्न रूप से वर्णन किया गया है । पर-पुरुष से प्रीति करने वाली स्त्री अपने प्रेमी से मिलने का

[‡] भूले हू न भोग, बड़ी निपति वियोग-विधा,

जोग हू तैं कठिन संयोग पर नारी कौ ।

अकस्मात् अवसर पाकर किस तरह प्रसन्न होती है, किस प्रकार वह संकेत द्वारा अपनी आंतरिक भावना को पर-पुरुष के प्रति प्रकट करती है, प्रेमी से मिलने का संकेत-स्थल नष्ट हो जाने पर उसे किस प्रकार व्यथा होती है, अपनी गुप्त प्रीति को छिपाने की अनेक चेष्टाएँ करने भी वह किस प्रकार प्रकट हो जाती है आदि बातों से परकीया नायिका की मनोवृत्ति का विश्लेषण किया गया है। परकीया के छोटे भेद कुलटा में परकीयत्व की चरम सीमा बतलाई गई है। अनेक पुरुषों से संबंध रखने वाली व्यभिचारिणी स्त्री को कुलटा कहते हैं।

वैष्णव भक्तों की परकीया-भक्ति में कुलटा के लिए कोई स्थान नहीं है, इसलिए भक्त कवियों द्वारा इसका कथन नहीं किया गया है। वैसे भी कुलटा में प्रेम का अभाव होता है, इसलिए नायिकाभेद के कई आचार्यों ने भी इसका उल्लेख नहीं किया है। जिन कवियों ने इसका कथन किया है, उन्होंने कुलटा में परकीयत्व की भयावह अवस्था का दिग्दर्शन कराया है।

सामान्या नायिका—

धन के लिए पर-पुरुष से प्रेम का ढोंग करने वाली बाज़ारू स्त्री को सामान्या, गाणिका या वेश्या कहते हैं। सामान्या की स्थिति स्त्री जाति के लिए कलंक है, किंतु फिर भी समाज में उसका अस्तित्व है। इस प्रकार की स्त्रियाँ इस देश में अति प्राचीन काल से होती रही हैं, किंतु उनके आचार-व्यवहार में समय-समय पर अंतर होता रहा है।

विक्रम संवत् से पूर्व को बौद्ध कथाओं में राजनर्तकियों का उल्लेख मिलता है। उग्र समय की सामाजिक स्थिति के अनुसार वे नर्तकियाँ प्रतिष्ठित मानी जाती थीं। समाज में उनका उच्च स्थान था। विशाल की विख्यात नर्तकी अम्बपाली का वर्णन बौद्ध ग्रंथों में हुआ है। मौर्य काल में वेश्याओं की और भी उन्नत अवस्था का परिचय प्राप्त होता है। राज-महलों में वेश्याओं को अनेक प्रकार के सेवा-कार्यों के लिए नियत किया जाता था। स्नान-गृह से शयन-गृह तक की परिचर्या, पुष्प-माला बनाना, अंगराग तैयार करना, पंखा डुलाना, राज-लुत्र को धारण करना, अंतःपुर की रत्नियों को नृत्य-गायन की शिक्षा देना और इन कलाओं से सबका मनोरंजन करना आदि अनेक प्रकार की राजकीय सेवाएँ वे करती थीं। यात्राओं में राजाओं के साथ रहने का उनको सम्मान प्राप्त था। इन वेश्याओं का संबंध राज-दरबार और धनी-मानी व्यक्तियों से रहता था और उनको पुष्कल धन की आय होती थी। वे बड़े ठाट-बाट से ऐश्वर्य पूर्ण जीवन व्यतीत करती थीं।

प्राचीन काल की वेश्याओं के विवरण से ज्ञात होता है कि उनका पेशा घृणा की दृष्टि से नहीं, बल्कि आदर और प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता था। भले घर की स्त्रियाँ स्वेच्छा पूर्वक इस पेशे को स्वीकार कर, समाज में उसी प्रकार प्रतिष्ठित समझी जाती थी, जिस प्रकार आज-कल की नर्स आदि। दृष्टिगण भारत के देव-मंदिरों में भगवान् की सेवा के लिए पवित्र वेश्याएँ रहती थी, जिनको देव-दासियाँ कहते थे। सब प्रकार के उत्सवों में उनकी उपस्थिति मंगल सूचक मानी जाती थी। नृत्य, गायन आदि ललित कलाओं से उनका सदा से संबद्ध रहा है। प्रतिष्ठित घराने के व्यक्ति भी उनसे इन कलाओं की शिक्षा लेने अथवा उनसे अपना मनोरंजन करने में अपनी मान-हानि नहीं समझते थे।

यह प्राचीन काल की वेश्याओं का विवरण है, किंतु इस समय उनका पेशा घृणित और अपमानपूर्ण माना जाता है। वास्तव में आज-कल की वेश्याएँ नारी-जाति के लिए कलंक हैं। यद्यपि इनके द्वारा समाज में कुरुचिपूर्ण और अहितकर भावना का प्रचार होता है, तथापि कभी कभी बुराई में भी कुछ भलाई निकल आती है। इस नियमानुसार इन वेश्याओं द्वारा भी समाज की कुछ सेवा हो जाती है !

वर्तमान काल की सामान्या स्त्रियाँ घृणित एवं अपवित्र जीवित व्यतीत करती हुई अनेक स्त्री-रहित, कामुक और व्यभिचारी पुरुषों की कामाग्नि को शांत करती हैं। यदि समाज में सामान्याएँ न हों, तो उपर्युक्त व्यक्ति गृहस्थ की कुलशीला नारियों की ताक में रहेगे, जिसके फल स्वरूप उनका जीवन सदैव अरक्षित रहेगा और समाज में अनेक प्रकार के अपराध बढ़ जावेगे। इस दृष्टि से सामान्याएँ स्वयं अपवित्र जीवन व्यतीत कर आचारवती कुलशीला नारियों के पवित्र चरित्र की रक्षा करती हैं। छावनी में सैनिकों के लिए वेश्याओं का उपयोग अत्यंत प्राचीन काल से होता रहा है। महाकवि देव ने इस प्रकार की सामान्या नायिका का कथन किया है।

सामान्या नायिका किस प्रकार चतुरता पूर्वक दूसरों से धन प्राप्त करती है, यह भी एक कला है। कदाचिन् इसीलिए प्राचीन समय में लोग चतुरता सीखने के लिये वेश्याओं के घर पर जाया करते थे। नीतिशास्त्र में देश-विदेशों का भ्रमण, विद्वानों की मैत्री, राजसभा-प्रवेश और शास्त्रानुशीलन के अतिरिक्त वेश्याओं को भी चतुरता सीखने का साधन माना गया है—

उन्होंने उसका विशेष विस्तार न कर केवल नाम मात्र का उल्लेख कर दिया है। उन्होंने उसका वर्णन भी उसकी धन-लोलुपता और स्वार्थ बुद्धि को दिखलाते हुए किया है।

रसलीन द्वारा सामान्या का विस्तार—

ब्रजभाषा कवियों ने सामान्या नायिका का उपयुक्त प्रकार से वर्णन करते हुए उसके भेदों का विस्तार करने की रुचि नहीं दिखलाई। नायिकाभेद के प्रधान आचार्यों में से एक रसलीन ही ऐसा व्यक्ति है, जिसने सामान्या के भी भेदों का कथन किया है। रसलीन के मतानुसार चार प्रकार की सामान्या नायिकाएँ होती हैं—

१. स्वतंत्रा, २. जननी-आधीना, ३. नेमता और ४. प्रेम-दुःखिता।

१. स्वतंत्रा—सामान्या स्त्रियों में प्रभुता और प्रतिष्ठा प्राप्त एवं अपनी इच्छा से धनी पुरुषों के साथ भोग-विलास करने वाली नायिका को 'स्वतंत्रा' सामान्या कहते हैं। इसी प्रकार की सामान्या नायिकाओं का अन्य आचार्यों और कवियों ने कथन किया है।

२. जननी-आधीना—जननी अथवा अभिभावकों के आश्रय और अनुशासन में रहने वाली तथा उन्हीं की इच्छानुसार धनी पुरुषों की काम-वासना को तृप्त करने वाली सामान्या 'जननी-आधीना' कहलाती है।

३. नेमता—जो सामान्या द्रव्य लेकर एक ही पुरुष के पास रहे और द्रव्य-प्राप्ति न होने पर ही उससे पृथक् हो, उसे 'नेमता' कहते हैं।

४. प्रेमदुःखिता—साधारणतया सामान्या स्त्री अपने प्रेमी से वास्तविक प्रेम नहीं करती, वह कृत्रिम प्रेम दिखलाती हुई धन प्राप्त करती रहती है। धन मिलने में कमी होने पर उसका प्रेम भी लुप्त हो जाता है।

१ 'देव' हमें तुमैं अंतर पारत, द्वार उतारि इतै धरि राखौ ।

—देव

लाए पायल हौ भली, परी रहैगी पाय ।

लाल ! दीजिए माल जो, राखौ हिय मे लाय ॥

—रसलीन

जो सामान्या स्त्री धन लेकर किसी पुरुष के साथ रहती हुई और उससे कृत्रिम प्रेम करती हुई भी कालांतर में उससे वास्तविक प्रेम करने लगे और नायक के बिछुड़ने पर दुःखित होवे, उसे 'प्रेमदुःखिता' कहते हैं। यथा—

वित-हित बाढ़त नेम यह, बँध्यौ जीव सुख पाय ।

अब अलि छुटवत होत दुख, कीजै कौन उपाय ॥

✓रसखीन कृत सामान्या के उपर्युक्त भेदों को नायिकाभेद के आचार्यों ने स्वीकार नहीं किया। सामान्या के वर्णन के साथ नायिकाभेद के सबसे महत्वपूर्ण वर्ग की समाप्ति होती है।

दशा-अनुसार नायिकाएँ—

नायिका का तीसरा वर्ग दशा-अनुसार होता है। इसके तीन भेद कहे गये हैं—

१. गर्विता, २. अन्यसभोगदुःखिता और ३. मानवती ।

अधिकांश आचार्यों ने उपर्युक्त तीनों नायिकाओं को पृथक् वर्ग के अंतर्गत रखा है, किंतु शुद्ध रूप से ये स्वकीया के अंतर्गत मध्या और प्रौढ़ा में हो सकती है। कुछ कवियों ने परकीया और सामान्या में भी इनका वर्णन किया है, जो अधिकांश आचार्यों के मतानुसार समीचीन नहीं है। कुछ कवियों ने खीच-तान कर मुग्धा में भी इन भेदों का कथन किया है, जो सर्वथा अनुचित है।

गर्विता—

✓जो स्त्री अपने प्रियतम के प्रेम और अपने रूप का गर्व करे, उसे 'गर्विता' नायिका कहा गया है। गर्विता के दो भेद होते हैं—१. प्रेमगर्विता और २. रूपगर्विता। दास ने 'गुणगर्विता' और देव ने 'कुलगर्विता' का भी कथन किया है, किंतु अधिकांश कवियों ने प्रेमगर्विता और रूपगर्विता को ही लिखा है। ✓

रूप, गुण और कुल का गर्व करना अनुचित कहा जा सकता है, किंतु अपने पति-प्रेम का गर्व करना किसी भी स्त्री के लिए बड़े सौभाग्य की बात है।

अन्यसंभोगदुःखिता—

किसी स्त्री के तन पर अपने प्रियतम के प्रीति-चिह्न देख कर दुःखिन होने वाली नायिका को 'अन्यसंभोगदुःखिता' कहा गया है। अपने नायक को किसी अन्य स्त्री पर आसक्त जान कर नायिका को जो व्यथा होती है, उसका वर्णन धीरादिभेद और खडिता में किया जाता है, किंतु जब नायक की प्रेमपात्रा स्वयं नायिका के सन्मुख उपस्थित हो और वह भी नायिका की सखी या दूती हो, तब उसकी मनोदशा किस प्रकार की होती है, यह अन्यसंभोगदुःखिता के वर्णन में बतलाया गया है। नायिका अपनी सखी के कृत्य पर मन ही मन कुढ़ रही है, किंतु ऊपर से अनभिज्ञता प्रकट करती हुई व्यग्य वचनो द्वारा उसे पानी-पानी कर देती है !

मानवती—

अपने प्रियतम को अन्य स्त्री की ओर आकर्षित जान कर ईर्ष्या पूर्वक मान करने वाली नायिका को 'मानवती' या मानिनी कहा गया है। मानवती की विभिन्न चेष्टाओं और उसके प्रियतम द्वारा उसको मनाने के यत्न में कभी सफल और कभी विफल होने के अनेक उदाहरण कवियों ने उपस्थित किये हैं। नायक-नायिका का परस्पर रुठना और मनाना भी काम-क्रीडा-कौतुक से संबंधित बातें हैं, जिनको पढ़ कर सहृदय जनो को अतीव आनंद की प्राप्ति होती है।

आचार्यों ने रोष के परिमाणानुसार मान को लघु, मध्यम और गुरु तीन भेदों में विभक्त किया है। किस प्रकार का मान किस स्थिति में होता है और उसकी किस प्रकार शांति होती है, इसकी भी मर्यादा बाँधी गई है। आचार्यों का मत है कि अपने प्रियतम को पर-स्त्री की ओर लोलांशित भाव से देखने पर नायिका को 'लघु' मान होता है, जो नायक द्वारा हँसी-विनोद अथवा मनोरंजन की बातें करने से ही दूर हो जाता है। अपने प्रियतम के मुख से पर-स्त्री की चर्चा आदर और प्रशंसापूर्ण शब्दों में सुनने से नायिका को 'मध्यम' मान होता है, जो उसके प्रियतम के विनयपूर्ण वचन अथवा शपथ आदि से दूर हो जाता है, किंतु पर-स्त्री-गमन का विश्वास होने पर नायिका को 'गुरु' मान होता है, जो उसके प्रियतम द्वारा अन्य चेष्टाओं के विफल होने पर अधीनता पूर्वक प्रियतम के पैर पकड़ने पर ही दूर होता है। ✓

अवस्था-अनुसार नायिकाएँ—

नायिका का चतुर्थ वर्ग अवस्था-अनुसार होता है। इस वर्ग में नायिका की अवस्था अथवा परिस्थिति के अनुसार दस भेद किये गये हैं—

१. स्वाधीनपत्निका, २. बासकसज्जा, ३. उत्कण्ठिता, ४. अभिसारिका,
५. विप्रलब्धा, ६. खडिता, ७. कलहांतरिता,
८. प्रवरस्त्रेयसी, ९. शोषितपत्निका, १०. आगतपत्निका

उपर्युक्त भेदों में मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा के उपभेदों सहित स्वकीया, परकीया और सामान्या नायिकाओं का कथन किया जाता है। इन भेदों में नायिका की विभिन्न मनोदशा का मार्मिक वर्णन किया गया है। नायिका की विकसित मनोदशा का वैज्ञानिक क्रम निश्चित करते हुए इन भेदों का विस्तार पूर्वक वर्णन आगामी परिच्छेद में किया गया है, अतः वहाँ पर उनके विषय में अधिक लिखना अनावश्यक है।

गुण-अनुसार नायिकाएँ—

नायिका का पंचम वर्ग गुण अथवा प्रकृति के अनुसार होता है। यह वर्ग विशेष महत्वपूर्ण नहीं है, इसलिए नायिकाभेद में इसका सबके अंत में कथन होता है। इस वर्ग की नायिकाओं के तीन भेद किये गये हैं—

१. उत्तमा, २. मध्यमा, ३. अधमा,

उत्तमा नायिका—

अपने प्रियतम का दोष जान भी रुष्ट न होने वाली और अपने प्रति उसका अहित देख कर भी उसका हित करने वाली नायिका को 'उत्तमा' कहा गया है। उत्तमा नायिका हिंदू-संस्कृति की गौरवशाली नायिका है, जो सात्विक प्रकृति की स्वकीया ही हो सकती है। ऐसी आसधारण नारियों के कारण ही हिंदू-परिवार का गौरव है। आचार्यों ने लिखा है कि उत्तमा नायिका कभी अपने प्रियतम से 'मान' नहीं करती।

मध्यमा नायिका—

अपने प्रियतम का हित देख कर उसके साथ हित और उसका दोष देख कर मान करने वाली नायिका 'मध्यमा' कहलाती है। प्रायः इसी प्रकार की स्त्रियाँ आज-कल के समाज में हुआ करती हैं। अपनी इस साधारण प्रकृति के अनुसार न तो मध्यमा नायिका प्रशंसनीय है, और न निंदनीय।

अधमा नायिका—

अपने प्रियतम के हित करने पर भी उसके साथ मान करने वाली नायिका को 'अधमा' कहा गया है। वह तामसी प्रकृति की ककशा जैसी जिस परिवार में होगी, वहाँ सुख और शांति का रहना असंभव है।

इस प्रकार भली और बुरी सभी प्रकार की स्त्रियों की प्रकृति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण नायिकाभेद के ग्रंथों में किया गया है।

ब्रजभाषा-नायिकाभेद के आचार्य और कवि—

ब्रजभाषा साहित्य के नायिकाभेद का सिंहावलोकन करने से ज्ञान होता है कि उसमें विभिन्न नायिकाओं के भेदोपभेदों का मनोवैज्ञानिक रीति से विश्लेषण करने की अपेक्षा उनका सरस कवित्वपूर्ण कथन करने में अधिक रुचि प्रकट की गई है। इसलिए ब्रजभाषा साहित्य में नायिकाभेद के आचार्य कम हैं, किंतु कवि अधिक हैं। आचार्य भी अपने कवित्व की दृष्टि से पहले कवि हैं और बाद को आचार्य। कवियों में दो प्रकार के व्यक्ति हैं। एक वे, जिन्होंने नायिकाभेद के लिए ही नायिकाओं का क्रमवद्ध कथन किया है। दूसरे वे, जिन्होंने नायिकाभेद तो नहीं लिखा, किंतु उनकी रचना में नायिकाभेद के अनुसार कितनी ही नायिकाओं का कथन हुआ है।

✓ नायिकाभेद के आचार्य—आचार्यत्व की दृष्टि से जिन्होंने नायिकाभेद का विवेचन किया है, उनमें से प्रमुख व्यक्तियों के नाम निम्न लिखित हैं—

१. कृपाराम, २. केशवदास, ३. मतिराम, ४. देव, ५. दास ६. रसखीन।

नायिकाभेद के कवि—कवित्व की दृष्टि से नायिकाभेद का कथन करने वाले व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक है। इसमें आचार्यों को भी सम्मिलित किया जावेगा, क्योंकि वे भी आचार्य होने की अपेक्षा कवि ही अधिक हैं। उनमें से प्रमुख व्यक्तियों के नाम निम्न लिखित हैं—

१. कृपाराम, २. नंददास, ३. रहीम, ४. केशवदास, ५. सुंदर, ६. चित्तोभेदि, ७. मतिरात, ८. कुलपति, ९. सुखदेव, १०. देव, ११. सुरति, १२. श्रोपति, १३. सोमनाथ, १४. तोप, १५. रघुनाथ, १६. दास, १७. रसखीन, १८. पद्माकर, १९. वेनी प्रवीन, २०. प्रतापसाहि, २१. ज्वाल, २२. सेवक, २३. चन्द्रार, २४. लछिराम, २५. नदराय, २६. बिहारीलालभट्ट, २७. हरिऔध। ✓

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त निम्न लिखित उत्कृष्ट कवियों की रचनाओं में भी अनेक प्रकार की नायिकाओं का कथन मिलता है—

१. सूरदास, २. रसखान, ३. बिहारीलाल, ४. सेनापति, ५. घनानंद, ६. नेवाज, ७. पजनेस, ८. ठाकुर, ९. बोधा, १०. आलम, ११. शेख, १२. द्विजदेव

नवम परिच्छेद

नायिकाभेद का वैज्ञानिक क्रम



नायिकाओं के नाम और उनकी संख्या—

नायिकाभेद के आचार्यों ने जितनी नायिकाओं का कथन किया है, उनके मूल भेद आठ या दस माने गये हैं। इन भेदों के अंतर्गत अन्य नायिकाओं का भी कथन किया गया है। भरतमुनि ने इनकी संख्या आठ लिखी है। भरत के अनुकरण पर संस्कृत साहित्य में धनजय, विश्वनाथ और भानुदत्त ने भी अष्ट नायिकाओं का कथन किया है।

ब्रजभाषा साहित्य में केशवदास, चिंतामणि और देव ने भी संस्कृत आचार्यों की शैली पर आठ नायिकाएँ ही लिखी हैं, किंतु कृपाराम, मतिराम और पद्माकर आदि ब्रजभाषा के प्रायः समस्त आचार्य एवं कवियों ने दस नायिकाओं का उल्लेख किया है। रसलीन ने पहले आठ नायिकाएँ लिख कर शेष नायिकाओं को पृथक् रूप से लिख दिया है। दास ने मूल रूप से आठ नायिकाएँ मान कर भी शेष नायिकाओं को उनके अंतर्गत लिखा है। इस प्रकार सभी आचार्यों ने अपनी-अपनी रुचि का प्रदर्शन किया है—किसी निश्चित मत पर चलने की चेष्टा नहीं की। इस संबंध में यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य में और उसका अनुकरण करने वाले ब्रजभाषा कवियों की कृतियों में आठ नायिकाओं का कथन किया गया है, जब कि ब्रजभाषा के अन्य कवि एवं आचार्यों ने दस नायिकाएँ मानी हैं।

भरतमुनि द्वारा प्रचारित अष्ट नायिकाएँ उन्हीं के निश्चित नाम और क्रम के अनुसार निम्न लिखित हैं—

१. बासकसज्जा २. विरहोत्कण्ठिता ३. स्वाधीनभर्तृका ४. कलहांतरिता
५. खंडिता ६. विप्रलब्धा ७. प्रोषितपतिका ८. अभिसारिका ।।

संस्कृत साहित्य में धनजय, विश्वनाथ और भानुदत्त ने तथा उन्हीं का अनुकरण करने वाले ब्रजभाषा कवियों ने भी इन्हीं आठों नायिकाओं का उल्लेख किया है, किंतु उनके नाम और क्रम में अंतर है। ब्रजभाषा के जिन कवियों ने उनसे अधिक नायिकाओं का कथन किया है, उनमें नंददास ने एक

‘प्रीतमगमनी’ और बढ़ाकर यह संख्या नौ कर दी है। कृपाराम, सतिराम और पद्माकर आदि ने प्रवत्स्यत्रेयसी एवं आगतपतिका लिखकर यह संख्या दस मानी है। रसखीन और दास ने एक नई नायिका ‘आगच्छत्पतिका’ और लिखी है। इस प्रकार उन्होंने कुल नायिकाओं की संख्या ग्यारह मान कर भी मूल रूप से आठ नायिकाएँ ही मानी हैं शेष नायिकाओं को उनके अंतर्गत या पृथक् रूप से लिखा है। इन ग्यारह नायिकाओं के नाम निम्न लिखित हैं —

१. स्वाधीनपतिका, २. वासकमज्जा, ३. उत्कठिता, ४. अभिसारिका,
५. विप्रलब्धा, ६. खंडिता, ७. कलहांतरिता, ८. प्रवत्स्यत्रेयसी,
९. प्रोषितपतिका, १०. आगच्छत्पतिका, ११. आगतपतिका।

वास्तव में इन सब नायिकाओं के उल्लेख से ही संख्या में पूर्णता आती है, किंतु अधिकांश आचार्यों ने ‘आगच्छत्पतिका’ को पृथक् न लिखकर केवल दस नायिकाओं का ही कथन किया है।

इस प्रकार ज्ञात हुआ कि भिन्न-भिन्न आचार्यों के कथित नाम, संख्या और क्रम में बड़ा अंतर है। नाम और संख्या का प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि उत्कठिता को विरहोत्कठिता अथवा उक्ता, प्रोषितपतिका को प्रोषितभर्तृका तथा स्वाधीनपतिका को स्वाधीनभर्तृका लिख देने से नायिकाओं के अभिप्राय को समझने में कोई असुविधा नहीं होती है। इसी प्रकार उनकी संख्या भी प्रायः दस स्वीकार कर ली गई है। मुख्य प्रश्न उनके क्रम का है, जिस पर हमें विशेष रूप से विचार करना है।

निश्चित क्रम का अभाव—

भिन्न-भिन्न आचार्यों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार आठ, नौ, दस अथवा ग्यारह नायिकाओं को मान कर भी उनको किसी निश्चित क्रम के अनुसार नहीं लिखा है। ऐसा ज्ञात होता है कि इन नायिकाओं की मनोदशा का अत्यंत सूक्ष्म विवेचन करते हुए भी उनका कोई वैज्ञानिक क्रम निश्चित करने की चेष्टा नहीं की गई। नायिकाओं के इस वर्ग को आचार्यों ने अवस्था, दशा अथवा काल के अनुसार माना है। इस वर्ग का नाम कुछ भी रख लिया जाय, किंतु जब इसके अंतर्गत अन्य नायिकाओं का भी कथन किया जाता है, तो यह मानना पड़ेगा कि प्रत्येक नायिका को किसी अवस्था या परिस्थिति में इस वर्ग को अवश्य पार करना पड़ता है। ऐसी दशा में इसका कोई ऐसा क्रम अवश्य होना चाहिए, जिसके अनुसार नायिकाओं की उत्तरोत्तर विकसित मनोदशा का परिचय प्राप्त हो सके।

आश्चर्य की बात है कि इस महत्वपूर्ण विषय पर संस्कृत और ब्रजभाषा के किसी आचार्य अथवा कवि का ध्यान नहीं गया और उन्होंने नायिकाओं की विकसित मनोदशा के अनुसार उनको किसी निश्चित क्रम से रखने की चेष्टा नहीं की। संस्कृत साहित्य में इस विषय के चार प्रमुख आचार्य भरत, धनंजय, विश्वनाथ और भानुदत्त सब का क्रम एक दूसरे से भिन्न है। क्रम की भिन्नता किसी सिद्धांत पर आधारित नहीं है, बल्कि प्रत्येक आचार्य ने बिना किसी विशेष कारण के अपनी इच्छानुसार चाहे जिस नायिका को आगे-पीछे लिख दिया है।

यही बात ब्रजभाषा के आचार्यों व कवियों के संबंध में भी कही जा सकती है। जहाँ उन्होंने नायिकाओं की सख्या-वृद्धि और उनकी मनोदशा के अनुसार उनके अनेक भेदोपभेद करने में इतनी सरपच्ची की है, वहाँ उन्होंने उनका कोई वैज्ञानिक क्रम निश्चित करने की चेष्टा नहीं की।

हमने अपनी बुद्धि के अनुसार इन नायिकाओं का एक क्रम निश्चित कर उसका मिलान संस्कृत और ब्रजभाषा के प्रायः समस्त प्रमुख कवियों के क्रमों से किया, तो हमारी यह दृढ़ धारणा हो गयी कि उन लोगों ने अपने इन क्रमों को रखने में किसी सिद्धांत का विचार नहीं किया है। केवल रसलीन और दास के क्रम ही इसके अपवाद हैं।

रसलीन का क्रम—

जब हमने अपने क्रम का मिलान रसलीन के क्रम से किया, तो वह उससे मिला गया। संस्कृत और ब्रजभाषा के समस्त क्रमों में यही एक ऐसा क्रम है, जो हमारे विचारानुसार नायिकाओं की विकसित मनोदशा को पूर्ण रूप से व्यक्त कर सकता है।

जिस प्रकार अन्य कवियों ने बिना कोई कारण बतलाये अपनी रुचि के अनुसार नायिकाओं का आगे-पीछे कथन कर दिया है, उसी प्रकार रसलीन ने भी अपने पूर्ववर्ती कवियों से भिन्न क्रम रखते हुए उसके सबंध में एक शब्द भी लिखना उचित नहीं समझा। इसके कारण यह ज्ञात नहीं हो सका कि उनके द्वारा अनायास ही ऐसे वैज्ञानिक क्रम का कथन हो गया है, अथवा उन्होंने विचार पूर्वक इसे लिखा है।

संभव है रसलीन का ध्यान ही सर्व प्रथम ऐसा क्रम निर्धारित करने की ओर गया हो और उन्होंने नायिकाओं की विकसित मनोदशा के अनुसार

उनको एक क्रम से रख दिया हो। पद्यपि उनके ग्रंथ में इस संबंध का कोई उल्लेख नहीं किया गया, तब भी यह कैसे समझा जा सकता है कि उनके द्वारा अनायास ही ऐसे सुंदर वैज्ञानिक क्रम का कथन है गूँपा है। अतः यह मानना चाहिए कि सर्व प्रथम रसलीन ने ही नायिकाओं का क्रमबद्ध कथन किया था।

दास का क्रम—

रसलीन ने इस क्रम के संबंध में कुछ विवेचन नहीं किया था, अतः उनके परवर्ती कवियों का भी ध्यान उनके क्रम की ओर नहीं गया। रसलीन कृत 'रसप्रबोध' के कुछ ही समय पश्चात् ब्रजभाषा नायिकाभेद के सुप्रसिद्ध आचार्य दास ने 'शृंगारनिर्णय' ग्रंथ की रचना की थी, जिसमें उन्होंने अपनी विशिष्ट धारणाओं के अनुसार अनेक भेदोपभेदों का उल्लेख किया था।

दास ने अपनी इन मौलिक धारणाओं के अनुसार नायिकाओं को संयोग और वियोग शृंगार के दो भेदों में विभाजित किया है। संयोग शृंगार में क्रम से स्वाधीनपत्तिका, वासकसजा और अभिसारिका का कथन है। इनमें स्वाधीनपत्तिका के अंतर्गत रूप-प्रेम-गुणगर्विता और वासकसजा के अंतर्गत आगतपत्तिका का उल्लेख किया गया है। वियोग शृंगार में क्रम से उत्कण्ठिता, खडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा और प्रोषितभर्तृका का कथन किया गया है। इनमें खडिता के अंतर्गत धीरादिभेद, मानिनी और मानभेद का, विप्रलब्धा के अंतर्गत अन्यसंभोगदुःखिता का तथा प्रोषितभर्तृका के अंतर्गत प्रवत्स्यत्वेयसी, प्रोषितपत्तिका, आगच्छत्पत्तिका एवं आगतपत्तिका का उल्लेख किया गया है।

दास के इस उल्लेख से यह तो ज्ञात हो गया कि उन्होंने अन्य कवियों की तरह बिना किसी क्रम के नायिकाओं का कथन न कर उनको संयोग-और वियोग शृंगार के अनुसार दो भागों में विभाजित कर दिया है, किंतु संयोग और वियोग की अवस्था में भी नायिकाओं की विकसित मनोदशा के अनुसार एक क्रम हो सकता था, जिसका उन्होंने विचार नहीं किया। जैसे वियोग पक्ष में उत्कण्ठिता के पश्चात् विप्रलब्धा और उसके अनंतर खडिता एवं कलहांतरिता का क्रमशः कथन करना सर्वथा उचित था, किंतु उन्होंने उत्कण्ठिता के पश्चात् खडिता आदि लिखकर नायिकाओं की विकसित मनोदशा के अनुकूल कथन नहीं किया है। इसके अतिरिक्त भरत मुनि की अष्ट नायिकाओं को प्रमुखता देकर उनके अंतर्गत अन्य नायिकाओं के अतिरिक्त गर्विता, मानिनी और अन्यसंभोगदुःखिता को

भी सम्मिलित कर दिया है। अधिकांश आचार्यों के मतानुसार इन तीनों नायिकाओं का पृथक् वर्ग है, जो केवल स्वकीया में ही बन पाता है, जब कि वे अष्ट नायिकाएँ स्वकीया, परकीया और सामान्या—सब में होती हैं, और प्रायः सभी कवियों ने उनको इन सब नायिकाओं में पृथक्-पृथक् लिखा भी है। इन सब बातों के कारण दास के क्रम में भी गड़बड़ी हो गयी है।

रसलीन और दास के पश्चात्—

रसलीन और दास के पश्चात् किसी प्रमुख कवि ने क्रमवद्ध कथन करने की चेष्टा नहीं की। उन्होंने या तो बिना किसी सिद्धांत का विचार किये अपनी रुचि के अनुसार चाहे जिस नायिका का आगे-पीछे कथन कर दिया है, अथवा नायिकाभेद के प्रमुख आचार्य मतिराम ने नायिकों को जिस क्रम से लिखा है, वैसे ही उन्होंने भी लिख दिया है। यहाँ पर यह बतलाना आवश्यक है कि स्वयं मतिराम का क्रम भी किसी सिद्धांत पर आधारित नहीं है।

नवीन शैली की जिन आधुनिक पुस्तकों में नायिकाभेद का कथन हुआ है, उनके कर्त्ताओं ने भी इस विषय पर विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी। यही कारण है कि यद्यपि हरिऔध जी वृत्त 'रसकलस' अपने विषय की महत्वपूर्ण रचना है, तथापि उसमें भी वही पुराना—बे सिलसिले का क्रम दिखाई देता है।

बिहारीलाल भट्ट का क्रम—

आधुनिक पुस्तकों में केवल पं० बिहारीलाल भट्ट कृत 'साहित्य-सागर' में जो क्रम दिया गया है, वह ठीक है और रसलीन के क्रम से मिलता हुआ है। साहित्य-सागर की भूमिका में इस क्रम के आविष्कार का श्रेय भट्टजी को दिया गया है। यह कथन यथार्थ नहीं है। वास्तव में इसके आविष्कार का श्रेय रसलीन को देना चाहिए।

भट्टजी ने नायिकाओं को एक विशिष्ट क्रम के अनुसार रख कर स्वाधीन-पतिका के अंतर्गत रूप-प्रेम-गुणगर्विता, खंडिता के अंतर्गत अग्न्यसंभोग-दुःखिता, मानिनी और मानभेद, एवं प्रोषितपतिका के अंतर्गत प्रवत्स्यप्रियेसी और आगतपतिका को लिखा है। इस विशिष्ट क्रम के लिए भी भूमिका में उनकी प्रशंसा की गयी है, किंतु जैसा हम पहले लिख चुके हैं, इसी पद्धति से

दास भी अपनी नायिकाओं का उल्लेख कर चुके हैं, और जो दोष दास के कथन में बतलाया जा चुका है, वही भट्टजी के कथन में भी आता है। भट्टजी ने दास के मत के विरुद्ध अन्यसंभोगदुःखिता को विप्रलब्धा की अपेक्षा खंडिता के अंतर्गत और आगतपतिका को बासकसज्जा की अपेक्षा प्रोषितपतिका के अंतर्गत लिख कर भी कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया है।

नायिकाओं का क्रमबद्ध कथन—

नायिकाओं की विकसित मनोदशा के अनुसार उनको इस प्रकार क्रमबद्ध रखा जा सकता है—

१. स्वाधीनपतिका—अपने रूप, प्रेम और गुण के कारण नायक को सदा अपने वशीभूत रखने वाली।

२. बासकसज्जा—अपने प्रियतम का निश्चित मिलन जान कर उससे मिलने के लिए साज-शृंगार और संभोग-सामग्री एकत्रित करने वाली।

३. उत्कण्ठिता—केलि-स्थान में नायक की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करने वाली।

४. अभिसारिका—कामार्त्त होकर स्वयं नायक के पास जाने वाली।

५. विप्रलब्धा—केलि-स्थान पर नायक को न पाकर व्यथित एवं अपमानित होने वाली।

६. खंडिता—रात्रि में अन्यत्र रम कर प्रातःकाल आने वाले अपने नायक के तन पर पर-स्त्री-संमर्ग के चिह्न देख कर ईर्ष्या करने वाली।

७. कलहांतरिता—अपने नायक का अपमान कर पुनः पश्चात्ताप करने वाली।

८. प्रवत्स्यत्प्रेयसी—अपने नायक के भविष्यत् वियोग की आशंका से व्याकुल होने वाली।

९. प्रोषितपतिका—अपने नायक के वियोग में विरह-वेदना से कष्ट पाने वाली।

१०. आगतपतिका—अपने नायक के आगमन पर प्रसन्न होने वाली।

इस क्रम का विवेचन—

नायक अपनी नायिका पर इस प्रकार अनुरक्त है कि वह पूर्णतया उसके वशीभूत हो जाता है। इस प्रकार जिसका नायक उसके आधीन है, ऐसी नायिका को 'स्वाधीनपतिका' कहते हैं। नायक की यह आधीनता नायिका के रूप, प्रेम और गुण के कारण होती है, इसलिए सर्व प्रथम दास ने और कदाचित्त उनके अनुकरण पर बिहारीलाल भट्ट आदि ने रूपगर्विता, प्रेमगर्विता और गुणगर्विता नायिकाओं को स्वाधीनपतिका के अंतर्गत लिखा है। हम गत पृष्ठों में लिख चुके हैं कि स्वाधीनपतिका नायिका स्वकीया, परकीया और सामान्या—सब में होती है, जब कि गर्विता का उल्लेख स्वकीया में ही होना उचित है। परकीया और सामान्या नायिकाएँ नायक से गर्व करने पर कदाचित्त अपनी स्थिति को कायम न रख सकें। वास्तव में यह अधिकार स्वकीया का है। जहाँ स्वकीया नायिका अपने पति से मन, चचन और कर्म से प्रेम करती है और पर-पुरुष का ध्यान स्वप्न में भी नहीं करती, वहाँ वह किसी समय गर्व भी कर सकती है।

इस प्रकार अनुरक्त नायक प्रति दिन नायिका के पास आता रहता है। नायिका भी अपने प्रियतम से मिलने के लिए साज-शृंगार और सभोग-सामग्री एकत्रित करती है। इस अवस्था वाली नायिका को 'बासकसज्जा' कहा गया है। बासकसज्जा मुग्धा नायिका भी लिखी जाती है, किंतु मुग्धा में विश्रब्धनबोड़ा ही बासकसज्जा हो सकती है। नवोटा अपनी किम्बक के कारण बासकसज्जा नहीं हो सकती। 'आगतपतिका' नायिका भी नायक का स्वागत करती है, इसलिए दास ने उसे भी 'बासकसज्जा' के अंतर्गत लिखा है। आगतपतिका परदेश से आये हुए नायक का स्वागत करती है, इसलिए बासकसज्जा के अंतर्गत उसका रखना उचित नहीं है।

नायक से मिलने के लिए नायिका सब प्रकार के साज-शृंगार सहित प्रस्तुत है, किंतु उसका नायक अभी नहीं आया है। अब नायिका उसकी उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करती है। इस अवस्था की नायिका को 'उत्कण्ठिता' कहा गया है।

नायिका अपने नायक की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा कर रही है, किंतु वह नहीं आ रहा है। अब नायिका कामार्त्त होकर स्वयं नायक के पास जाती है। इस प्रकार की नायिका को 'अभिसारिका' कहा गया है।

यद्यपि स्वकीया, परकीया एवं सामान्या—सब प्रकार की अभिसारिकाओं का कथन होता है, तथापि इसका औचित्य परकीया में ही है; उसीलिए शुक्ला, कृष्णा और दिवा आदि अनेक प्रकार की अभिसारिकाएँ परकीया में ही मानी गयी हैं। वैसे तो कवियों ने स्वकीया के अंतर्गत मुग्धा अभिसारिका का भी कथन किया है, किंतु उनका यह कथन अधिक उपयुक्त ज्ञात नहीं होता।

नायिका स्वयं नायक के पास गयी, किंतु जहाँ उससे मिलने की आशा थी, वहाँ नायक को न पाकर उसे अत्यंत व्यथा हुई। इस प्रकार की मनोदशा वाली नायिका को 'विप्रलब्धा' कहा गया है। कभी-कभी नायिका स्वयं नायक के पास न जाकर उसे अपने यहाँ सखी अथवा दूती द्वारा बुलवाती है। नायिका की भेजी हुई वह स्त्री नायिका का हित-संपादन तो नहीं करती, बल्कि स्वयं नायक के साथ प्रेम-संबंध स्थापित कर लेती है! जब वह स्त्री नायक का संदेश लेकर नायिका के पास वापिस आती है, तो उसके रंग ढग से नायिका ताड़ जाती है कि दाल में कुछ काला है। इस प्रकार की मनोदशा वाली नायिका को 'अन्यसंभोगदुःखिता' कहा गया है। इस नायिका को एक पृथक् वर्ग के अंतर्गत लिखा जाता है। दास ने प्रसंग के विचार में अन्यसंभोगदुःखिता को विप्रलब्धा के अंतर्गत लिखा है, किंतु इसका पृथक् वर्णन होना ही उचित है।

नायिका रात्रि भर नायक के लिए व्याकुल रही, किंतु वह किसी अन्य नायिका के साथ केलि-क्रीड़ा करता रहा। प्रातःकाल होने पर जब वह नायिका के पास आता है, तो उसके तन पर पर-स्त्री-संसर्ग के चिह्न देखकर नायिका को अत्यंत ईर्ष्या होती है। इस प्रकार की मनोदशा वाली नायिका को 'खडिता' कहा गया है। पर-स्त्री-प्रेम का अनुमान होने पर नायिका की नायक के प्रति अनेक चेष्टाओं का वर्णन किया जाता है। नायक के कृत्य के लिए कभी नायिका व्यंग्योक्ति करती है, कभी उपाख्य देती है, कभी नायक के प्रेम के प्रति उदासीनता और विरक्ति का प्रदर्शन करती है, कभी अश्रु-पात करती है और कभी कटु वचनों द्वारा अपना रोष प्रकट करती है। इन सब चेष्टाओं का वर्णन धीरादि भेद के अंतर्गत होता है। धीरादि भेद स्वकीया नायिका के मध्या-प्रौढा भेदों में माने गये हैं, किंतु दास ने धीरादि भेद, मानिनी और मानभेद को, तथा बिहारीलाल भट्ट ने अन्यसंभोगदुःखिता, मानिनी और मानभेद को खडिता के अंतर्गत लिख कर क्रम के सूत्र को जोड़ने की चेष्टा की

है, किंतु उनका यह प्रयाम आचार्यों की निश्चित प्रणाली के विरुद्ध है। बिहारीलाल भट्ट ने धीरादि भेद ज्येष्ठा-कनिष्ठा के अंतर्गत लिखे हैं, जो कुछ उचित भी ज्ञात होते हैं, फिर भी ज्येष्ठा-कनिष्ठा और धीरादि भेद पृथक्-पृथक् लिखने की ही प्रथा है।

खंडिता की स्थिति में नायिका नायक के कृत्य पर दुःखित होकर उसका अपमान कर देती है, जिसके कारण नायक भी नायिका से रूष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाने पर नायिका अपने कृत्य पर परचात्ताप करती है। इस प्रकार की मनोदशा वाली नायिका को 'कलहांतरिता' कहा गया है।

इसी प्रकार के गार्हस्थिक क्लेश अथवा किसी कार्यवश नायक परदेश जाना चाहता है, अथवा किसी अन्य कारण से उसका नायिका से वियोग होने वाला है। इस भविष्यत् वियोग की आशंका से दुःखित नायिका को 'प्रवत्स्यत्प्रेयसी' कहा जाता है।

परदेश-गमन अथवा किसी अन्य कारण से नायक अपनी नायिका से पृथक् होगया है। नायिका उसके वियोग में रात-दिन दुःखी रहती है। विरह-व्यथा से व्यथित इस प्रकार की विरहिणी नायिका को 'प्रोषितपतिका' कहा गया है।

नायिका अधिक समय तक नायक के वियोग में दुःखी रह चुकी है। अब उसका प्रियतम आने वाला है, अथवा आगया है। इस प्रकार अपने नायक के आगमन पर प्रसन्न होने वाली नायिका को 'आगतपतिका' कहा गया है। कुछ आचार्यों ने इस प्रकार की नायिका की मनोदशा को दो भागों में विभाजित किया है। नायिका ने नायक के आगमन का समाचार सुना है, किंतु वह अभी आया नहीं है। इस स्थिति की नायिका को 'आगमस्थपतिका' कहा जाता है। जब नायक आ जाता है, तब उसका स्वागत करने वाली नायिका को 'आगतपतिका' कहा गया है। अधिकांश आचार्यों ने इन दोनों का कथन न कर केवल आगतपतिका का ही उल्लेख किया है।

इस प्रकार नायिकाभेद की दस नायिकाओं का उनकी अवस्था के अनुसार क्रमवद्ध कथन किया जा सकता है।

अन्य नायिकाओं का क्रम—

स्वकीया नायिका के सबसे प्रमुख भेद वयक्रम के अनुसार मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा होते हैं। इनका क्रम सर्वथा उचित है। यद्यपि इन भेदों का कथन नायिका के वय-क्रम के अनुसार होता है, तथापि देव के अतिरिक्त कदाचित किसी भी प्रमुख आचार्य ने उनके वय-क्रम का विचार नहीं किया। देव ने

७ वर्ष से ३५ वर्ष तक की नायिकाएँ लिखी हैं और उनके नाम और वय का क्रमपूर्वक उल्लेख भी किया है। स्वकीया के अतर्गत धीरादि भेदों का क्रम ठीक है।

परकीया नायिका के विभिन्न भेदों का परकीयत्व की विकसित अवस्था के अनुसार क्रम पूर्वक कथन नहीं किया गया है। इसका कारण यह हो सकता है कि आरंभिक आचार्यों ने तो परकीया के विस्तार में अपनी रुचि ही नहीं दिखलायी और परवर्ती आचार्य उसके भेदोपभेदों में उलझे रहे। उनकी दृष्टि में अष्ट नायिकाओं की तरह परकीया का क्रम पूर्वक कथन भी महत्वपूर्ण ज्ञात नहीं हुआ। रसलीन और दास ने परकीया के अनेक भेदोपभेद लिखकर उसका विशेष रूप से विस्तार किया है, किंतु अधिकांश आचार्यों ने उसके अनूढा-ऊढा और गुप्तादि छै भेदों का ही कथन किया है। अनूढा और ऊढा का वर्णन तो क्रमपूर्वक होना ही है, किंतु गुप्तादि भेदों को क्रमपूर्वक लिखने की आवश्यकता है।

हमने परकीयत्व के क्रमिक विकास पर दृष्टि रख कर परकीया का भी एक क्रम निश्चित किया है। संभव है इस क्रम में सुधार करने की आवश्यकता हो। हम स्वयं इस क्रम को निर्विवाद और अंतिम-रहित नहीं मानते हैं। यदि इसमें अधिकारी विद्वानों द्वारा उचित सुझाव बतलाया गया, तो आगामी संस्करण में उसके अनुसार संशोधन कर दिया जावेगा।

परकीया का क्रम—

पर-पुरुष से प्रेम करने वाली स्त्री को परकीया नायिका कहते हैं। परकीयत्व की मनोभावना के अनुसार उसके भेदों को इस क्रम के अनुसार रखा जा सकता है—

१. मुदिता—पर-पुरुष से मिलने का संयोग उपस्थित होने पर मुदित होने वाली।

२. विदग्धा—पर-पुरुष से मिलने का अवसर आने पर अपनी मनोभिलाषा को सकेत द्वारा प्रकट करने वाली।

३. अनुशयना—पर-पुरुष से मिलने के संकेत-स्थानों के नष्ट हो जाने पर व्यथित।

४. गुप्ता—पर-पुरुष प्रेम को छिपाने की चेष्टा करने वाली।

५. लज्जिता—पर-पुरुष-प्रेम जब छिपाने से न छिप सके और वह सब प्रकट हो जावे, इस प्रकार की स्थिति वाली।

६. कुलटा—अनेक पुरुषों से संबंध रखने वाली दयामिचारिणी स्त्री।

परकीया के क्रम का विवेचन—

परकीया के सर्व प्रथम अनूढ़ा और ऊढ़ा दो भेद लिखे जाते हैं। अविवाहित अवस्था में किसी पुरुष से प्रीति करने वाली कुमारी को 'अनूढ़ा' कहते हैं, और विवाहित होने पर भी अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से प्रेम करने वाली स्त्री को 'ऊढ़ा' कहते हैं। आजकल जिस अर्थ में परकीया का बोध होता है, उसे देखते हुए 'अनूढ़ा' को परकीया कहना ही व्यर्थ है। वास्तव में 'ऊढ़ा' ही परकीया नायिका है।

परकीया नायिका के गुप्ता आदि छै भेद और किये जाते हैं। कुछ आचार्यों ने इनको 'ऊढ़ा' के भेद माने हैं, और दूसरो ने इनको पृथक् रूप से अवस्था के अनुसार परकीया के स्वतंत्र भेद लिखे हैं। यहाँ पर परकीयत्व की विकसित अवस्था के अनुसार उसके भेदों का क्रमबद्ध विवेचन करना है।

नायिका के मन में पर-पुरुष-प्रेम की भावना के उठते ही वह परकीया हो जाती है। वह किसी पुरुष से मन ही मन प्रीति कर सकती है, किंतु लोकाचार, कुल-मर्यादा और संबंधियों के भय के कारण उसको अपने प्रेमी से मिलने का अवसर अति काल तक प्राप्त नहीं होता। यदि संयोग वश ऐसा कोई अवसर आ जावे, जब वह अपने प्रेमी से मिल सके, तो उस समय वह अत्यंत मुदित होती है। इस प्रकार मुदित होने वाली नायिका को 'मुदिता' कहा गया है। आचार्यों द्वारा कथित परकीया के छै भेदों में उसकी आरंभिक अवस्था का बोध 'मुदिता' में ही हो सकता है। अतः अब तक के प्रायः सभी आचार्यों और कवियों की परंपरा के विरुद्ध हमने मुदिता से ही परकीया के क्रम का आरंभ किया है। अधिकांश आचार्य परकीया के भेदों को गुप्ता से आरंभ करते हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि परकीया अपने कृत्य को गुप्त रखना चाहती है, अतः उसकी सर्व प्रथम अवस्था 'गुप्ता' ही समझी गयी है, किंतु गुप्ता को प्रथम रखने से उसका क्रमबद्ध कथन नहीं हो सकता है।

संयोगवश पर-पुरुष से मिलने का अवसर तो आ गया; किंतु जिस पुरुष के प्रति नायिका का प्रेम है, संभव है उसे इसका ज्ञान भी न हो। अब नायिका अपनी आंतरिक भावना को नायक पर प्रकट करना चाहती है, किंतु स्त्री-स्वभाव जनित लज्जा इस कार्य में बाधक हो रही है। उधर कामदेव अपने शस्त्रों का प्रहार कर रहा है। इस प्रकार बाध्य होकर नायिका

अपनी मनोमिलाषा को संकेत द्वारा नायक पर प्रकट करती है। यह संकेत क्रिया और वचन दोनों प्रकार की विदग्धता से हो सकता है। अतः इस अवस्था वाली नायिका को 'विदग्धा' कहा गया है और उसके 'क्रिया विदग्धा' एवं 'वचन विदग्धा' दो भेद किये गये हैं।

नायिका अपनी विदग्धा से जिन संकेत-स्थलों पर नायक से मिला करती थी, उनके अनायास नष्ट हो जाने पर उसे अपने प्रेमी से सुविधापूर्वक मिलने में बाधा उपस्थित हो जाती है; अथवा प्रेमी से मिलने का अवसर आने पर भी किसी हठात् बाधा से वह उससे मिलने में असमर्थ हो जाती है। इस प्रकार की अवस्था वाली चिंताकुला नायिका को 'अनुशयना' कहा गया है। अनुशयना के तीन भेद किये गये हैं, जो उसकी अवस्थाओं के सूचक हैं। जिस नायिका का 'सहेट' नष्ट हो गया है, उसे 'प्रथम अनुशयना', केलि-स्थान-विनाशिता अथवा स्थानविघट्टना आदि कई नामों से लिखा गया है। जिस सहेट में वह अपने प्रेमी से मिला करती थी, वहाँ भविष्य में किसी कारणवश न मिल सकने की आशका वाली अवस्था 'द्वितीय अनुशयना', भावीस्थानअभाव, भावीस्थानसाधन आदि कई नामों से लिखी गयी है। जो स्थान और समय प्रिय-मिलन के लिए निश्चित था, उस पर किसी कारणवश न जा सकने से व्यथित होने वाली नायिका को 'तृतीय अनुशयना', संकेतस्थलनष्टा आदि नामों से लिखा गया है।

नायिका गुप्त रीति से संकेत स्थानों पर अपने प्रेमी से मिला करती है। उसके दुष्कृत्य की किसी को कानो-कान खबर नहीं होती। कालांतर में किसी अवसर पर वे प्रेमी युगल एक साथ देख लिये जाते हैं, तब नायिका अपने कृत्य को छिपाने का यत्न करती है। इस प्रकार पर-पुरुष-प्रेम को छिपाने की चेष्टा करने वाली नायिका 'गुप्ता' कही गयी है। गुप्ता नायिका के कालानुसार तीन उपभेद होते हैं—भूत गुप्ता, भविष्यत् गुप्ता और वर्तमान गुप्ता। पर पुरुष-प्रेम की विगत घटना को छिपाने वाली 'भूत गुप्ता', भविष्य में होने वाली घटना को पहले से ही छिपाने की चेष्टा करने वाली 'भविष्यत् गुप्ता' और उपस्थित घटना को छिपाने का प्रयास करने वाली 'वर्तमान गुप्ता' कही जाती है।

छिपाने की चेष्टा करने पर भी जिस नायिका का पर-पुरुष-प्रेम सब पर प्रकट हो जावे, उसे 'लज्जिता' कहा गया है। परकीया नायिका की समस्त चेष्टाएँ गुप्त रहती हैं। मुदिता से गुप्ता तक के भेदों में परकीयत्व के उत्तरोत्तर

विकास की सूचना मिलती है। 'लक्षिता' की अवस्था में पहुँचने पर परकीयत्व एक निश्चित सीमा पर पहुँच जाता है। परकीया नायिका भी कुलशीला स्त्री होती है। वह अपनी प्रकृति की दुर्बलता के कारण किसी अन्य पुरुष से प्रीति तो करती है, किंतु लोकापवाद के भय से उसे सदा गुप्त रखने की चेष्टा करती रहती है। मुदिता से गुप्ता की अवस्था तक परकीया का प्रेम गुप्त रहता है। जब वह प्रेम प्रकट हो जाता है, तब परकीया नायिका 'लक्षिता' कहलाती है। पर-पुरुष-प्रेम के प्रकट हो जाने पर लोकापवाद से बचने के लिए वह अपने दुष्कृत्य को छोड़ भी सकती है, उस समय उसका परकीयापन समाप्त हो सकता है। दास आदि द्वारा परकीया के छूटे भेद 'कुलटा' का उल्लेख न होने का यह भी कारण हो सकता है। वास्तव में आचार्यों ने परकीया नायिका की भी एक मर्यादा बोध दी है।

पर-पुरुष-प्रेम के प्रकट हो जाने पर कोई स्त्री या तो अपने कृत्य को सदा के लिए त्याग कर अपनी स्थिति साध कर लेती है, अथवा दृढतापूर्वक उसी निंदित मार्ग पर खुले आम चलती रहती है। दूसरी स्थिति में आने पर उस स्त्री का और भी नैतिक पतन हो सकता है, जिसके परिणाम स्वरूप वह एक ही उपपत्ति से सतुष्ट न होकर अनेक पुरुषों की ओर भी आकर्षित हो सकती है। इस अवस्था वाली कामासक्ता व्यभिचारिणी स्त्री को 'कुलटा' नायिका कहा गया है। कुलटा में परकीयत्व की चरम सीमा और उसका भयानक रूप दिखलाया गया है।

अधिकांश आचार्यों ने परकीया के जिन छै भेदों का उल्लेख किया है, उत्क्रमवद्ध विवेचन हो चुका। हमारा मत है कि 'लक्षिता' से 'कुलटा' की स्थिति तक पहुँचने के लिए एक भेद की और आवश्यकता है, जो परकीया की मध्यवर्ती अवस्था को प्रकट कर सके। लक्षिता की स्थिति में परकीया का पर-पुरुष प्रेम प्रकट हो जाने पर कभी-कभी वह उसे छोड़ने में भी अपने को असमर्थ पाती है। उस समय वह शांत भाव से धैर्य पूर्वक लोकापवाद को सहन करती रहती है। ब्रजभाषा के अनेक कवियों ने परकीया की इस असाधारण अवस्था का बड़ा मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। परकीया प्रेम की इस दृढता और अनन्यता की मुक्त कंठ से सराहना करनी पड़ती है। रसखान आदि प्रेमी भक्त कवियों ने श्री कृष्ण के प्रति गोपियों की ऐसी ही अनन्य भक्ति का कथन किया है। इस अवस्था की परकीया नायिका

‘लक्षिता’ के बाद कुलटा’ नहीं हो सकती । लक्षिता के बाद की अवस्था को प्रकट करने के लिए परकीया के एक नवीन भेद की आवश्यकता है । दास ने परकीया प्रकरण के आरंभ से ‘प्रगल्भा’ और ‘धीरा’ नामक दो भेदों का कथन करते हुए धीरा की मनोदशा का ऐसा ही वर्णन किया है । इसलिए परकीया के इस नवीन भेद का नाम ‘धीरा’ या ‘दृढानुरागिनी’ रखा जा सकता है । इस भेद का कथन परकीया के भेदों में लक्षिता के पश्चात् होना चाहिए ।

परकीया के क्रमवद्ध कथन के लिए मुदिता से लक्षिता तक के भेदों का उल्लेख किया जा चुका है । लक्षिता से कुलटा की कड़ी मिलाने के लिए एक नवीन भेद की आवश्यकता भी बतलायी जा चुकी है; किंतु यह आवश्यक नहीं है कि परकीयत्व की अंतिम अवस्था कुलटा ही हो । परकीया का प्रेम किसी एक उप-पति से होता है । इसके लिए वह परकीयत्व की समस्त अवस्थाओं में होती हुई भी कुलटापन से अपने को बचा सकती है । कुलटा का संबंध अनेक पुरुषों से होता है; इसलिए एक ओर उसमें परकीयत्व की चरम सीमा है, तो दूसरी ओर परकीया के भेदों की मौलिक परंपरा से भिन्नता भी है । वास्तव में कुलटापन अतृप्त वासनाजन्य मनोवृत्ति का कुफल है ।

परकीया के पश्चात् ‘सामान्या’ नायिका का कथन होता है । ब्रजभाषा कवियों ने इस नायिका का कोई भेद नहीं लिखा है, इसलिए उसके क्रम का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है । नायिकाभेद के सैकड़ों कवियों में केवल रसखीन ही एक ऐसा व्यक्ति है, जिसने सामान्या के भेदों का भी कथन किया है; किंतु हम उसके क्रम पर विचार करना अनावश्यक समझते हैं ।

— — — — —

ब्रजभाषा-नायिकाभेद का काव्य-सौन्दर्य



नायिकाभेद के काव्य-कौशल की परख—

ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद काव्यवद् विवेचन है। ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवियों ने इस विषय का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए भी अपना मुख्य लक्ष्य अपनी काव्य-कला के प्रदर्शन की ओर रखा है। नायिकाभेद की रचनाओं में कवियों के काव्य-कौशल का परमोत्कृष्ट रूप दिखलायी देता है। यदि ब्रजभाषा साहित्य का सर्व श्रेष्ठ काव्य-सौन्दर्य देखना है, तो वह नायिकाभेद की रचनाओं में ही दिखलायी देगा। जो लोग मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के रूप में नायिकाभेद का महत्व स्वीकार नहीं करते, वे भी उसके अनुपम काव्य-सौन्दर्य की मुक्त कंठ से सराहना करते हैं। नायिकाभेद का काव्य-सौन्दर्य वास्तव में प्रशंसा की वस्तु है। इस विषय के वर्णन में कवियों की भाव-व्यजना, कमनीय कल्पना, सराहनीय सहृदयता और प्रखर प्रतिभा का अपूर्व प्रदर्शन हुआ है।

ब्रजभाषा-नायिकाभेद के काव्य-सौन्दर्य की परख के लिए उपयुक्त छंदों के चुनाव का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है। इस विषय का कोई भी छंद उठा लीजिये, उसमें कोई न कोई विशिष्ट साहित्यिक गुण अवश्य मिलेगा, और उसका काव्य-सौन्दर्य सहृदय एवं रसिक जनों को मुग्ध कर देगा। यहाँ ~~परन्तु~~ स्थानाभाव से इस विषय के थोड़े ही छंद दिये जावेगें, किंतु उनके रसास्वादन से ही पाठकों को ब्रजभाषा-नायिकाभेद के अनुपम काव्य-सौन्दर्य का आभास मिल जावेगा।

नायिका का चमत्कारपूर्ण कथन—

नायिकाभेद के आचार्यों की दृष्टि में नायिका शृंगार रस का मूर्तिमान स्वरूप है। इसी दृष्टिकोण से उन्होंने नायिका और उसके विभिन्न भेदों का कथन किया है। नायिका की परिभाषा करते हुए उन्होंने बतलाया है कि जिस रमणी के अवलोकन मात्र से चित्त में शृंगार रस का संचार हो, उसे नायिका कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार कवियों ने नायिका के उदाहरण

स्वरूप जिन छंदों की रचना की है, उनमें नायिका का बड़ा ही चमत्कारपूर्ण कथन किया गया है।

महाकवि मतिराम ने नायिका के स्वाभाविक सौन्दर्य का अनोखा वर्णन किया है। इस संबंध में उनका निम्न लिखित छंद इतना प्रसिद्ध है कि नायिका के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण के लिए प्रायः उसे ही उपस्थित किया जाता है—

कुंदन कौ रंग फाँकौ लगै, भूलकै ऐसी अंगन चारु गुराई।

आँखिन मैं अलसानि, चित्तान में मजु विलासन की सरसाई ॥

को बिन मोल बिकात नहीं, 'मतिराम' लहै मुसकानि मिठाई।

ज्यो-ज्यो निहारिऐ नेरे ह्वै नैननि, त्याँ-त्यौं खरी निकरै-सी निकाई ॥

उसके अंगों के सुंदर गोरेपन की झलक से कुंदन का रंग भी फीका लगता है। उसकी आँखों में आलस्य और चितवन में अच्छे विलासों की सरसता है। उसकी मुसकान रूपी मिठाई के लेने पर ऐसा कौन है, जो स्वयं बिना मूल्य न बिक जावे ! साधारणतः किसी वस्तु का मूल्य देने से वह ग्राहक को बेच दी जाती है, किंतु उसके मुसकान की ऐसी अद्भुत मिठाई है, जिसके लिए स्वयं ग्राहक को ही बिकना पड़ता है, और वह भी बिना मूल्य ! यहाँ प्रत्येक देखने वाले पर उसके सौन्दर्य का प्रभाव बतलाते हुए नायिका की सर्वमान्य परिभाषा की पुष्टि की गयी है। नायिका को जितना निकट से देखा जाता है, उसका सौन्दर्य उतना ही खरा अर्थात् सच्चा या पक्का निकलता सा ज्ञात होता है। प्रायः बहुत सी वस्तुएँ दूर से देखने पर अच्छी मालूम होती हैं, किंतु निकट से देखने पर उनकी पोल खुल जाती है, पर उक्त नायिका को जितना ही अधिक निकट से देखा जाता है, उसकी सुंदरता उतनी ही बढ़ती हुई दिखलाई देती है।

इस छंद में नायिका के साज-शृंगार और उसकी तड़क-भड़क का वर्णन न होकर उसके स्वाभाविक सौन्दर्य का कथन किया गया है। नायिकाभेद के कवियों ने नायिका की तड़क-भड़क का भी बड़ा आकर्षक वर्णन किया है। महाकवि देव की इस नायिका को देखिये—

जगमगी जंतिन जराऊ माने-मोतिन की, चंद मुख-मंडल पै मंडित किनारी सी।

बैदी वर बीर नगरीर नग-दीरन की, 'देव' भूमकन में भूमक भरि भारी सी ॥

अंग-अंग उमझौ! परत रूप-रंग, नव जीवन अनूपम उज्यासन उजारी सी।

डगर-डगर बगरावति अगर अंग, जगर-मगर आपु आवति दिवारी सी ॥

उस नायिका के चद्रमा सदृश मुख मंडल पर साड़ी की मणि-मोतियों से खचित किनारी जगमगा रही है। उसके मस्तक की बैदी का हीरा और भी भारी 'झूमक' पैदा कर रहा है। उसके प्रत्येक अंग से अनुपम रूप, रंग और नवयौवन उमड़ा पैड़ता है। इस प्रकार मार्ग को अपने अंगों की सुगंध से सुवासित करती हुई वह साक्षात् दीपावली के समान जगर-मगर करती हुई चली आ रही है।

नायिका को स्नान कराने के लिए आई हुई नायन उसके अंगों की अपार शोभा को देखते ही किस प्रकार उबटन का कार्य भूल कर भौचक सी खड़ी रह जाती है, इसे निम्न छंद में देखिये—

आई हुती अनह्वावन नायन सौधे लिए वोह सीधे सुभायनि ।
कंचुकी छोरि घरी उबटवे को, ई'गुर से अंग की सुखदायनि ॥
'देव' सुरूप की रासि निहारति, पोंय ते सीस लो, सीस ते पोंयनि ।
हू रही ठौरई ठाडी ठगा-सी, हँमै कर ठोडी दिये ठकुरायनि ॥

नायन सीधे स्वभाव से नायिका को स्नान कराने के लिए आई है। 'ईगुर' के समान अंग वाली नायिका ने सुगंधित द्रव्य का उबटना कराने के लिए जैसे ही अपनी आँगी उतार कर रखी कि उसके खुले हुए अंगों की अपार शोभा के कारण नायन उसे ऊपर से नीचे तक देखती रह गयी। वह उबटना करना भूल कर आश्चर्य-चकित सी उसी स्थान पर खड़ी की खड़ी रह गयी। उसकी इस विचित्र दशा पर सीधे स्वभाव से हँसती हुई नायिका हाथ पर ढोडी रख कर सोचने लगी कि आखिर इस नायन को हो क्या गया है।

नायिका के अपूर्व रूप-लावण्य पर नायन का हतसंज्ञक होना और उस पर नायिका की माधुर्यमयी सरल स्वाभाविक चैष्टा का कैसा अद्भुत चित्र खींचा गया है। कविवर पद्माकर ने होली खेल कर आने वाली नायिका का दूसरा आकर्षक चित्र खींचा है—

आई खेलि होरी घरै नवलकिसोरी कहूँ, बोरी गई रंग में सुगंधनि झकोरै है ।
कहै 'पदमाकर' इकंत चलि चौकी चढि, हारन के बारन ते फद-बंद छोरै है ॥
घाँघरे की धूमनि सु ऊरुन दुबीचै दाबि, आँगा हू उतारि सुकुमारि मुख मोरै है ।
दतनि अवर दाब, दूनरि भई सी चापि, चौवर-पचौवर कै चूनरि निचोरै है ॥

नायिका कहीं पर होली खेल कर घर वापिस आती है। वह रंग में शरा-बोर है, उसके सब कपड़े भीग गये हैं और उसके केश उसके हारों में उलझ

गये हैं। वह घर के एकान्त स्थान पर जाकर और चौकी पर चढ़ कर हारो में से केशों को सुलझा रही है। वह अपने घूमदार घाँघरे को जाँघो के बीच में दाब कर और मुख को मोड़ कर अपनी आँगी उतार रही है। इसके साथ ही वह दाँतो से होठ दाबती हुई आँर झुकने के कारण कमान की तरह दुहैरा होती हुई अपनी भीगी चूँदरी को चार-चार, पाँच-पाँच तह में निचोड़ रही है। कैसा वास्तविक चित्र है !

नायिका का नख-शिख—

नायिका के रूप-लावण्य का विविध रूप से कथन करने के लिए कवियों ने उसके प्रत्येक अंग का पृथक्-पृथक् वर्णन किया है। यह वर्णन नायिका के चरणों के नखों में लेकर उसकी चोटी तक का किया जाता है, जिसके कारण वह 'नख-शिख वर्णन' के नाम से विख्यात है। ब्रजभाषा काव्य में नख-शिख का प्रचुर साहित्य है। इसमें नायिका के प्रत्येक अंग का वर्णन करते हुए कवियों ने अपनी सूक्ष्म कल्पना और नाजुक ख्याली का अद्भुत परिचय दिया है।

'चंद्रमा को प्रति दिन घटते-बढ़ते देख कर एक कवि कल्पना के सहारे नायिका के अनुपम मुखचंद का इस प्रकार वर्णन करता है—

आनंद कौ कद, वृषभानुजा कौ मुखचंद लोला ही ते मोहन के मानस को चोरै है ।
दृजौ तैनौ रचिवे को चाहत बिरंचि नित, ससि को बनावै, अजों मन को न मोरै है ॥
फेरत है सान आसमान पै चढ़ाय, फेर पानिप चढाइने को वारिय में बोरै है ।
राधिका के आनन कौ जोट न विलोकै, विवि टक-टक तोरै पुन टक-टक जोरै है ॥

राधिका के मुख के समान दूसरा मुख बनाने के लिए ब्रह्मा प्रति दिन चंद्रमा पर अपनी कारीगरी का प्रयोग करता है। वह चंद्रमा पर शान फेरने के लिए उसे आसमान पर चढ़ाता है और उस पर 'पानी' चढ़ाने के लिए उसे समुद्र में डुबाता है ! फिर भी वह उसे राधिका के मुख के समान नहीं बना पाता। तब वह प्रति दिन चंद्रमा में तनिक-तनिक सी वृद्धि अथवा कमी करता हुआ उसे राधिका के मुख के समान बनाने की चेष्टा करता रहता है।

चंद्रमा के उदय-अस्त और घटा-बढ़ी की अन्योक्ति के बहाने नायिका के मुख की अनुपम शोभा का कैसा विचित्र कथन है ! प्रति दिन की निरंतर चेष्टा के बाद स्वयं ब्रह्मा भी उसके मुख के समान दूसरा मुख नहीं बना पाता। एक दूसरा कवि उसके निर्माण की सामग्री जुटाने में समस्त संसार के वैभव की लूट करा देता है ! देखिये—

कोमलता कंज ते, गुनाब ते सुगंध लेके, चंद ते प्रकाश लेके उदित उजेरौ है ।
रूप रति आनन ते, चातुरी सुजानन ते, नीर ले निमानन ते कौतुक निवेरौ है ॥
'ठाकुर' कहत यो मसालौ विप्र कारीगर रचना निहारि जन होत चित चेरौ है ।
कचन कौ रंग लै, मवाद लै सुग कौ, बसुवा को मुख लूटि कै बनायौ मुख तेरौ है ॥

ब्रह्मा जैसे कुशल कारीगर ने नायिका के मुख निर्माणार्थ जो मसाला तैयार किया था, उसकी सामग्री का व्यौरा सुनिये । कमल की कोमलता, गुलाब की सुगंध, चंद्रमा का प्रकाश, रति का रूप, सज्जनो की चतुरता, मोने का रंग और अमृत का स्वाद लेकर जो मसाला बनाया गया, उससे ब्रह्मा ने नायिका के मुख की रचना की । जब समस्त जगत् के सुख लूट हो गयी, तब कहाँ नायिका का मुख बन सका ।

नायिका के प्रत्येक अंग का वर्णन करते हुए कवियों ने जिन अद्भुत सूक्तियों का कथन किया है, उनका प्रथार्थ परिचय नख-शिख के प्रभावलोकन द्वारा ही हो सकता है । यहाँ पर स्थानाभाव से नख-शिख विषयक छंदों को उद्धृत करना संभव नहीं है ।

स्वकीया नायिका—

नायिकाभेद की सर्वश्रेष्ठ नायिका स्वकीया है । जो विवाहिता स्त्री मन-वचन और कर्म से सदा अपने पति के अनुकूल रहे और स्वप्न में भी पर-पुरुष की ओर आकर्षित न हो, उसे स्वकीया नायिका कहते हैं । स्वकीया लज्जावती, पतिप्राणा, सुशीला, नम्र स्वभाव वाली और पति के परिवार वालों के प्रति विनय एवं आदर का भाव रखने वाली स्त्री होती है । स्वकीया से गृहस्थ की शोभा है ।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी ने इसी प्रकार की एक स्वकीया नायिका का कथन किया है । सास-जेठानियों की आज्ञा में रहना, ननद के अनुकूल रहना, दासियों तक से तीखी बात न कहना, सबका सम्मान करना, पति की कुप्रवृत्ति के लिए भी उसे दोष न देना और सौतेलों को आशीष देती हुई उनके सौभाग्य की कामना करते रहना स्वकीया का स्वाभाविक धर्म है—

सामु जठानिन सो दबनी रहै, लीने रहै रख त्यो ननदी कौ ।
दामिन सो सतराति नही, 'हरिचंद' करै सनमान सर्भा कौ ॥
पाय को दन्दिन जानि न दूषत, चागुनों चाउ बहै वा लाली कौ ।
सौतिन हूँ का असास सुहाग, भरे कर आपने मेदुर टीकौ ॥

ग्वाल कवि ने एक आदर्श स्वकीया का इस प्रकार उल्लेख किया है—

प्रात ही प्रातम के पग छवै करि, सासु जेठानिन के परै पायन ।
 छभहौ न छ्वावत है गुरु-लोगन, देख्या न आनन जाकौ लुगायन ॥
 त्यो कवि 'ग्वाल' करै गृह-कारज, साजी रहै निज सील के भायन ।
 है कुल-रीतन की सरसायन, पीहर-सासुर की सुखदायन ॥

स्वकीया नायिका पति, सास और जेठानियों के प्रति आदर और नम्रता का भाव रखती है। वह इतनी सुशीला और लज्जावती होती है कि घर के बड़े-बूढ़े ही नहीं, बल्कि साधारण स्त्रियों के सामने भी वह अपनी स्वाभाविक लज्जा का परित्याग नहीं करती। गृहस्थ के कार्यों में दत्तचित्त रह कर कुल-रीति का पालन करती हुई वह पीहर और ससुराल दोनों ही पक्ष वालों को सुख देती है।

स्वकीया नायिका का उत्कृष्ट रूप उत्तमा नायिका के उदाहरण में मिलता है। नायिकाभेद के आचार्यों ने स्वकीया, परकीया एवं सामान्या से पृथक् गुणानुसार वर्ग के अंतर्गत उत्तमा, मध्यमा और अधमा नायिकाओं का कथन किया है, किंतु उनका सामंजस्य करते हुए स्वकीया को उत्तमा, परकीया को मध्यमा और सामान्या को अधमा नायिका कहा जा सकता है।

उत्तमा नायिका प्रत्येक दशा में पति के सुख में ही अपना सुख मानती है, यही आदर्श स्वकीया का है। सेवक कवि का कथन है कि उत्तमा नायिका पति के आने से भी सुखी है और उसके न आने से भी सुखी। उसका नायक कहीं भी रहे, वह सुहागिन तो है ही ! यदि नायक को किसी अन्य नायिका के पास रहने में ही सुख मिलता है, तो उस स्थिति में भी वह सुखी है, क्योंकि नायक को प्रत्येक दशा में सुख पहुँचाना उसका धर्म है ! उसकी अनन्य पति-भक्ति और उसके उत्कृष्ट आत्मोत्सर्ग को देखिये—

आए सुख पावती, न आए सुख पावती है, हिय की बात कइ 'सेवक' जतावती ।
 कहूँ रहौ कान्हू जू सुहागिन कहावती है, चाहती है यही और बात न बनावती ॥
 जाके सुख पाये सुख पावौ तुम प्यारे लाल, वाहू सुख दाजिए न यामे भरभावती ।
 जामै सुख पावौ तुम सोई हम करें, याते हम तो तिहारे सुख पावौ सुख पावती ॥

नायिका के ऐसे ही आत्मोत्सर्ग का कथन निम्न लिखित छंद में भी किया गया है। नायिका अपने सैलानी नायक से कहती है—'तुम चाहे अनेक नायिकाओं में रमते रहो, किंतु मेरे लिए तो केवल एक तुम ही सब

कुछ हो; इसी लिए तुमसे प्रार्थना है कि सब-कुछ करते हुए भी अपने हाथ से लगायी हुई इस प्रेम-लता का भी ज़रा ख्याल रखना । यदि तुमको किसी और के होकर रहने में ही सुख मिलता है, तो उसी के सही ! मैं तो केवल यह चाहती हूँ कि तुम सुखी रहो, आनंद पूर्वक रहो; चाहें किसी के होकर रहो—

हमको तुम एक, अनेक तुम्हें, उनहीं के विवेक बनाय बहौ ।
 झूत आस तिहारी, तिहारी उतै, बिभिचारी के नैम सबै निबहौ ॥
 मन भावै 'ममारख' सोई करौ, अनुराग-लता जिन बोइ दहौ ।
 धनस्गाम मुखो रहौ आनंद सौ, तुम नीके रहौ, किनहीं के रहौ ॥

शेखर कवि ने निम्न लिखित छंद में एक ऐसी पति-प्रेमिका का अपूर्व कथन किया है, जिसका पति किसी अन्य स्त्री के साथ रमण करने के उपरान्त निर्लज्जता पूर्वक रति-चिह्नो को धारण करता हुआ नायिका के पास आया है । उसकी इस विचित्र दशा को देख कर उसे डाटना-फटकारना तो दूर रहा । बल्कि उसने सहेलियों से भी आगे बढ़ कर उसका आदर पूर्वक स्वागत किया । उसके रति-चिह्न किमी की दृष्टि में न पड़ जाँय, इसलिए वह उन्हें अपने शरीर से छिपाने लगी और उसके धूलि-धूसरित पैरों को प्रेम पूर्वक अपने अचल के छोर से पोंछने लगी । कैसी मार्मिक एवं हृदय-द्रावक अनन्यता है—

रस में विवस हूँ के 'सेखर' विताई रात,
 लागे रति-चिह्न चारु अगन अछेह सों ।
 परत न सूखे पग, आलस बलित बेस,
 आवत विलोकि और भौमती के गेह सों ॥
 आदर सो उठिकै सहेलिन सो आगै जाय,
 लागे उर-दागन दुराए निज देह सों ।
 धूर भरे पातम के चरन-सरोज प्यारी,
 पोछै निज अंचल के छोरन सनेह सों ॥

मुग्धा—

आयुक्रम के अनुसार स्वकीया नायिका के मुग्धा, मध्या और प्रौढा नामक तीन भेद होते हैं । इन भेदों में उत्तरोत्तर लज्जा की न्यूनता और काम की अधिकता दिखलाई जाती है । जिस नायिका के तन में नवयौवन का

अपनी शारीरिक और मानसिक अवस्था में अपूर्व आनन्ददायक और विचित्र परिवर्तन का अनुभव करती हुई भी उसका कारण नहीं समझ पाती है।

एक बाला दुःसहिन अपने प्रियतम के साथ आँख-मिचौनी खेल रही है। जब नायक खेल में नायिका की आँखें बन्द करता है, तो उसके स्पर्श-सुख के कारण नायिका की बे-जानकारी में भी उसे कामोद्दीपन होने लगता है, जिसके फल स्वरूप नायिका के नेत्रों में सात्विक अश्रु आ जाते हैं। अबोध नायिका को इसका वास्तविक कारण ज्ञात नहीं होता है। वह समझती है कि नायक अपने हाथों में कपूर लगा कर उसकी आँखें बन्द करता है, जिसके कारण उसकी आँखों से पानी बहने लगता है। नायिका यही शिकायत करती हुई नायक के साथ खेलने को मना कर रही है—

लाल ! तिहारे मग में, खेले खेल बलाय ।

मूँदत मेरे नैन हो, करन कपूर लगाय ॥

इसी प्रकार की एक अज्ञातयौवना नायिका अपने नायक के साथ अन्य दिनो की भाँति आँख-मिचौनी खेलने गयी थी। खेल में नायक के शरीर का स्पर्श होने से नायिका को कामोद्दीपन हुआ, जिसके कारण उसे कंप, स्वेद और रोमांच हो आया। नायिका के लिए आज यह नयी बात थी, क्यों कि ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। वह इसका कारण न समझती हुई अपनी सखी से इस नवीन घटना की आश्चर्य पूर्वक चर्चा कर रही है।

खेलन चोर-मिहीचर्नी आजु, गई हुता पाछिने द्यौम की नाई ।

आली ! कहा कहौ एक भई, 'मतिराम' नई यह बान तहाँई ॥

एकहि भौन दुऐ इक सगहि, अंग सो अग खुवायो कन्हाई ।

कप छुआँ, घन स्वेद बज्यौ तन रोम उठे, अँखियों भगि आई ॥

जब मुग्धा नायिका को अपने यौवन का ज्ञान होने लगता है, तब वह ज्ञात यौवना' कहलाती है। यौवन-आगमन के कारण नायिका का कटि-प्रदेश क्षीण हो रहा है और उसकी चितवन में वक्रता आ गयी है। उभरे हुए उरोजो पर से अंचल हट जाने पर वह लज्जा का अनुभव करने लगती है। बाल्यावस्था के खेल छोड़ कर अब वह सथानी सखियों के संपर्क में रहने लगी है। दो-एक दिन से तो वह अपने पति का नाम सुनते ही झिपनी और मुबत्ती हुई मुसकाने भी लगी है—

छटिकै कटि रंचक छीन भई, गति नैननि कां तिरछानि लगी ।
 'ससिनाथ' कहै, उर ऊपर ते अँचरा उधरे ते लजान लगी ॥
 लरकारि के खेल पछेल कळूक, मयाने सखीन परायन लगी ।
 पिय नाम मुनै तिय द्यौसक ते, दुरिकै-दुरिकै मुसकयान लगी ॥

मध्या—

मुग्धत्व की अवस्था के उपरांत जब नायिका में लज्जा की कुछ न्यूनता और काम की कुछ अधिकता होने लगती है, तब वह मध्या कहलाती है। मध्या में लज्जा और काम दोनों समान रूप से होते हैं। मध्या नायिका के कथन में कवियों ने लज्जा और काम के संघर्ष का अद्भुत वर्णन किया है।

नायिका अपने प्रियतम का भली भौंति मुख देखना चाहती है, किंतु उसकी अँखि संकोच वश उसकी मनोभिलाषा को पूर्ण नहीं कर पाती है। उसका मन चाहता है कि वह नायक से कुछ बातचीत करे, किंतु लज्जा वश उसका मुख कुछ कहने के लिए खुलता ही नहीं है। उसकी दाहे प्रियतम से भेट करने को फड़कती हैं, किंतु वह जिह्वा से 'नहीं-नहीं' कहने को बाध है। इस प्रकार काम और संकोच दोनों के बीच में आज उसकी ऐसी शोचनीय दशा हो गयी है, जैसी दो राजाओं की प्रजा की होती है—

देख्यौ चहै पिय कौ मुख, पै अँखियाँ न करे जिय की अभिलाखा ।
 चाहति 'संभु' कहै मन मे, बलिअँन सो सो नहिं जाति है भाखी ॥
 भेटिबे को फेरकै भुज, पै कहि जाँम ते जाइ नहीं-नहीं भाखी ।
 काम संकोच दुहून वहु बलि, आज दुराज-प्रजा करि राखी ॥

वह नायिका अपने प्रियतम को बिना ओट किये देखना भी चाहती है और उसे घूँघट खोलते भी नहीं बनता है। वह अपने पति का संग छोड़ना भी नहीं चाहती और संकोच वश काम-क्रीड़ा भी नहीं कर सकती। वह बात करना चाहती है, पर कर नहीं पाती, किंतु उससे बिना बोले भी नहीं रहा जाता। इस प्रकार उस नायिका का मन हिंडोले की भौंति लज्जा और काम के बीच में झूल रहा है—

पेख्यौ चहै पिय को विन ओट, बनै न कळू विन घूँघट खोलै ।
 भावै न सग छुट्यौ पति कौ, समुचै, न करै कछु काम-कलोलै ॥
 चाहति बात कह्यौ, न कह्यौ, पर जात रह्यौ न रहै विन बोलै ।
 झूलत है मन प्रान-पियारी कौ, लाज-मनोज के बीच हिंडोलै ॥

प्रौढ़ा—

मध्या की अवस्था के उपरांत जब नायिका में लज्जा की भावना और भी कम हो जाती है, तब वह निस्सकोच भाव से अपने प्रियतम के साथ केलि-क्रीडा में सलग्न होने लगती है। प्रौढ़ा में लज्जा की न्यूनता एव काम की अधिकता होनी है और वह रति-कला में परम प्रवीण होती है। प्रौढ़ा के दो भेद रतिप्रीता और आनन्दसंमोहा में उसकी रतिप्रियता और केलि-क्रीडा जनित आनन्द में निमग्न होने की अवस्था का वर्णन किया जाता है।

कोक-कला में निपुण और शोक को दूर करने वाली प्रौढ़ा नायिका अपने प्रियतम के साथ रात्रि भर आनन्द-विहार करने के कारण कामदेव के आसो को भूल गयी है। उसी समय आकाश में प्रातःकालीन ऊषा की अश्रुणिमा देख कर उसे अत्यंत व्यथा होने लगी। उसे स्मरण हुआ कि दिन निकलने पर उसे नायक से पृथक् होने का दुःख सहन करना पड़ेगा। इसके लिए उसने एक उपाय किया। उसने शीत की वायु से बचने के बहाने दरवाजों के परदों की डोरियाँ खोल दी। परदों के गिराने से उसका यह अभिप्राय था कि नायक को प्रातःकाल होने का ज्ञान न होगा और इस प्रकार वह उसके शीघ्र वियोग के कष्ट से बच सकेगी—

कोक की कलन बारी, शोक की दलन,
गिसि कीन्ही सब बाते घाते माँति गरदन की ।

आनन्द-मग्न सो 'प्रवीन बेनी' प्यारे पास,
भूलि गई विपदा मनोज करदन की ॥

बिलखी बिकल ऐसी नभ में ललाई लखि,
आवन सुरति लागी दिन-दरदन की ।

शीत सो सभीत सी समार के बहाने गोरि,
छोरि दीन्ही डोरी बेग दौरि परदन की ॥

धीरादि भेद—

मध्या और प्रौढ़ा के अंतर्गत निज पति को अन्य स्त्री पर आसक्त जान कर कुपित होने वाली नायिका के धीरा, अधीरा और धीराधीरा नामक तीन भेद होते हैं। गुस्स कोप करने वाली नायिका को धीरा, प्रकट कोप करने वाली को अधीरा और कुछ गुस्स एव कुछ प्रकट कोप करने वाली को धीराधीरा कहते

है। धीरा नायिका हृदय में कुपित होते हुए भी प्रकट रूप से अपना रोष प्रकट नहीं करती है, वरन् व्यंग्योक्ति अथवा केलि-कला के प्रति उदासीनता द्वारा अपनी बिभ्रता प्रकट करती है। अधीरा नायिका प्रकट रूप से नायक को फट-कारती है। धीराधीरा रोदन एवं मान प्रदर्शन द्वारा अपना कोप प्रकट करती है।

कोई नायक रात्रि भर कहीं रम कर प्रातः काल अपनी नायिका के पास आया है। रात्रि-जागरण के कारण उसके नेत्र लाल हो रहे हैं। वह कुछ भ्रमपता हुआ नायिका की ओर भली भाँति देवता नहीं है। नायिका उसकी करतूत समझ कर हृदय में दुखी है, किंतु ऊपर से व्यंग्योक्ति द्वारा उसके मन की अरुणिमा का मजाक उठा रही है।

नायिका कहती है—हे सुख देने वाले वनरदाम ! ऐसी रुखाई क्यों कर रह हो, ज़रा मेरी ओर दृष्टि तो कीजिये। कमल, गुलाब और गुलाल का अरुणिमा की भी ऐसी शोभा नहीं होती, जैसी आज आपके नेत्रों की हो रही है। धन्य है उस रगरंजन की चतुरता, जिसने ऐसा गहरा रंग लगाया है। हे लाल ! सच-सच बतलाइये, आपने इन नेत्रों की ऐसी बढ़िया रंगाई के लिए क्या दिया है ? मध्याधीरा का कैसा अच्छा उदाहरण है—

क्यों घनभयाम अब दु-चित्तें भाए, मां तन दीठि करो मुखदाई ।
कज-गुलाल की अरुनाई न लाल गुलालन की सरसाई ॥
पानेहु में इतनी गहिरा रंग, यनि है रगरंजन की चतुराई ।
माँची करो इन नेननि-रंग की, दीन्ही कहा तुम लाल । रंगाई ॥

अपने नायक की दिन-रात की हरकत से नायिका अत्यंत दुखी है। वह प्रायः अश्रु-पात किया करती है। कभी कभी वह मान भी कर बैठती है। एक दिन पर-छी संसर्ग के चिह्न देख कर नायिका अपने नायक से मारन कर बैठी और अपने नेत्रों से अश्रु-पात करने लगी। नायक उसे मनाने की चेष्टा करने लगा। इस पर नायिका कहती है—मेरे अश्रुओं का देख कर आप मुझे मानिनी कैसे कह रहे हैं ? आँखों से पानी तो बहता ही रहता है, यह तो आँखों का स्वाभाविक धर्म है। आप भी तो मध्या-सवेरे मेरी आँखों से पानी बहते देखते ही हैं, आज यह कोई नयी बात तो है नहीं ! इस हृदय में भी इतने घाव हो गये हैं कि उनको कहा नहीं जा सकता। हे लाल ! ज़रा विचारिये तो सही, जिसकी आँखों से सदा पानी बहता रहता है और जिसके हृदय में अनेक छिद्र हो गये हैं, वहाँ मान टिक कैसे सकता है ! नेत्रों के जल से वह

वह न जायगा और हृदय के अनेक छिद्रों में होकर वह निकल न जायगा । आप व्यर्थ ही मुझे मानिना-मानिनी कह कर अपनी बकवाद से मेरे जी को जला रहे हो । नायिका के अश्रुपात और उसकी नरम-गरम उक्तियों के कारण यह धीराधीरा का अच्छा उदाहरण है—

आँखिन के जल की जु है रीति, सवाँ तुम सौँभ-हू-भोर निहारत ।
तैं 'द्विजदेव' जू क्यों कहि जाय, परे छत जे हिय को करे आरत ॥
बात बिचारिवे की यह लाल ! कहा बकवाद कै मो तन जारत ।
मान रहैगौ किनै बलि जाउँ, सो मानिनी ' मानिनी ' काहि पुकारत ॥

किसी अन्य स्त्री से संसर्ग करने के बाद जब नायक नायिका के पास आता है, तो वह उसका रग-डंग देख कर आपे से बाहर हो जाती है । वह क्रोधावेश में कटु शब्दों द्वारा नायक को फटकारती है । नायिका कहती है—‘आज आप किसके पास चले आये, मालूम होता है कि आप मकान भूल कर इधर आ निकले हैं ! अपनी डगमगाती चाल, आनन्द-थकित देह, ढीली पाग और नेत्रों की अरुणिमा पर भी आपको लज्जा नहीं आती; आप बहुत अच्छी पढ़ी पढ़े हैं ! हे ब्रजराज ! अब कोई और उपाय करने की आवश्यकता नहीं है । जाइये, जाइये, जहाँ इच्छा हो वहीं जाइये ! मैं अब भली भाँति समझ गयी कि ‘घर की मिथ्री फीकी लागै, चोरी कौ गुड़ मीठौ’ वाली कहावत बिल्कुल सच्ची है ।’ ग्वाल कवि ने नायिका के प्रकट कोप और उसकी कटूक्तियों का कैसा जोरदार वर्णन किया है—

आए पास कौन के हौ, भूले कौन भौन के हौ,
डगमग गौन के हौ, देह मौज-माँची है ।
पाग पंच ढीले भए, द्रग उनमीले भए,
तऊ न लजीले भए, पाठी भली बाँची है ॥
‘ग्वाल’ कवि और न उपाय ब्रजराज अब,
जाउ-जाउ जहाँ चाउ, मै तौ यह जाँची है ।
घर की जो मिसरी सो फीकी सी लगन लागै,
मीठौ गुड़ चोरी काँ, कहन यह साँची है ॥

परकीया—

पर-पुरुष से प्रीति करने वाली स्त्री परकीया नायिका कहलाती है ।
ब्रजभाषा-कवियों ने, परकीया की दयनीय दशा, वेदनामयी परिस्थिति और

उसके प्रेमोन्माद का बड़ा ही मर्मस्पर्शी कथन किया है। रूप के लालच में जो स्त्रियाँ पर-पुरुष से प्रेम करने लगती हैं, उनके हृदय की तपन, कसक और निराशा का ऐसा करुणापूर्ण कथन किया गया है, जिसे पढ़ कर किसी को भी इस मार्ग पर चलने का साहस नहीं होना चाहिए।

राजा शंभुनाथ ने दही बेचने वाली एक ऐसी ग्वालिनी का कथन किया है, जो प्रेम-कंकरी का कलेजे में घाव लिए तड़फड़ा रही है। वह कहती है— 'सास ने मुझमें दही बेच आने को कहा। हाय ! वह कैसी कुवर्षी थी, जब दुःखदायी ब्रह्मा ने मुझसे सास के उक्त कथन पर 'हाँ' करा ली। दही बेचने जाते समय मुझे उस तग रास्ते में तमाल वृक्ष के नीचे खड़े हुए गोपाल मिले। उन्होंने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से मुझे ताका और शैतानी करते हुए मेरे तन पर कंकरी फेंक कर मारी। उस कंकरी को मैंने अपने हाथ से रोक लिया था; पर न जाने वही कंकरी मेरे कलेजे में कैसे गढ़ गयी ! देखिये—

सास कह्यौ दधि बेचन को, सु दर्ई दुखदाई कहाँ ते भौ हाँ करी ।
मोहि मिले 'नृपसभु' गोपाल, तमाल तरै वो गैल जो साँकरी ॥
मो तन ताकि बडी अँखियाँ तें, काँकरी लै फिर मो तन घाँकरी ।
काँकरी ओढि लई कर तें, पै करैजै कहाँ लौ गई गढि काँकरी ॥

पर-पुरुष-प्रेम के फंदे में फँसी हुई एक परकीया नायिका अपनी दुखड़ा इस प्रकार रो रही है। वह कहती है—'मेरे प्राण रात-दिन घुटते रहते हैं और मेरी दुखिया आँखों से रात-दिन भरना सा भरता रहता है। मेरे अंतस्तल में प्रियतम की याद पेंसलियों की टीस की भाँति कसकती रहती है। चारों ओर लोग मुझ पर चबाब करते हुए हँस रहे हैं। ऐसे प्रेम की फाँसी में पड़ने की अपेक्षा तो मरना ही भला है।' वनानंद कहते हैं—

रैन-दिना घुटिवाँ करें प्राण, भरें अँखियाँ दुखियाँ भरना सी ।
प्रीतम की सुधि अंतर मैं, कसकै सखि ! ज्यो पेंसुरीनि में गॉसी ॥
चौचैद चार चबाइन के चहुँ ओर मचै, विरचै करि हाँसी ।
यों मरियै भलयै कहि क्यों सु परो जनि कोऊ सनेह की फाँसी ॥

ऐसी ही एक दूसरी नायिका की करुण कहानी सुनिये। वह कहती है— 'उनकी छवि रूपी पिंजरे में बंद मेरे खंजन रूपी नेत्र फड़फड़ा रहे हैं। उनको किसी प्रकार भी स्थिरता प्राप्त नहीं होती है। जब से मैंने उनकी सुंदर

मुसकान देखी है, तभी से कुल की लज्जा भी छूट गयी। मेरी सब देह चित्र की लिखी सी जड़ वत् हो गयी है और मेरे मुख से शब्द तक नहीं निकलता है। हाथ, मैं क्या करूँ ! मेरी ऐसी दशा हो गयी है कि जहाँ भी जाती हूँ, वहीं सब लोग चिह्ना उठते हैं, देखो यह पगली आ रही है—

खजन नैन फँदै छवि-पिंजरा, नाहिं रहे थिर कैसेउ माई ।
 छूटि गई कुल-कानि सखी, 'रसखान' लखी मुसिकानि सुहाई ॥
 चित्र लिखी सी भई सब देह, न बैन कहुँ, मुख दीनि दुहाई ।
 कैसे करौ, जित जाउँ तितै, सब बोलि उठै जे बाविर आई ॥

इस प्रकार के प्रेम का भयंकर परिणाम सब जानते हैं, किंतु फिर भी उससे बचना बड़ा कठिन है। जो स्त्रियाँ दुर्भाग्य से इस मार्ग पर चल पड़ी हैं, उनको सीधे मार्ग पर खाना तो और भी कठिन है। ऐसी ही एक नायिका की उक्ति उसकी सखी के प्रति सुनिये। वह कहती है—'लोक की सब चालों को मैं भी जानती हूँ, मुझे यह सब क्या बतला रही हो ! तुम तो मेरी सखी कहलाती हो, इसलिए तुमको वही काम करना चाहिए, जिसमें मेरा हित बनता हो। हे सजनी ! तुम्हारे समझाने से क्या लाभ है, जब मेरा मन ही मेरे हाथ में नहीं है'—

हम हूँ सम जानती लोक की चालनि, क्यों इतनी बतरावती हो ।
 हित जामै हनारौ बनै सो करो, सखिअँ तुम मेरी कहावती हो ॥
 'हरिचंद जू' जामै न लाभ कछु, हमै बातनि क्यों बहरावती हो ।
 सजनी ! मन हाथ हमारे नहीं, तुम कौन कों वा सुभावती हो ॥

एक और परकीया नायिका कहाती है—'ब्रज की गलियों में फिरने के लिए मुरुपे पहले ही बड़े-बूढ़ों ने मना किया था, किंतु मेरी कुछ ऐसी बुद्धि हुई कि मैंने उनका भी कहा नहीं माना। अब तुम भी मुझे क्या समझाती हो; विधना ने मेरे हाथ में जो लिखा था, वही हुआ है। हे सखी ! अब तो उस मनमोहन के हाथ में अपनी लोक-लज्जा देकर बदले में बदनामी ले ली है !' हनुमान द्वारा इस निराश परकीया का चित्रण देखिये—

ब्रज-विधिन में फिरिबे के लिये, गुरु-लोगन हूँ मिलि कीन्ही खई ।
 पर मान्यौ नहीं उन हूँ काँ कहाँ, जिय ऐसी कछु मति आनि ठई ॥
 तुम हूँ अब का समुभावती हौ, विधि नैं 'हनुमान' लिखी सो भई ।
 अब तो मनमोहन हाथ सखी ! कुल-कानि दई, बदनामी लई ॥

जब परकीया नायिका लोक-लज्जा और कुल-मर्यादा की परवा न कर प्रेम-मार्ग में बहुत आगे बढ़ जाती है, और वहाँ से वापिस आने में अपने को असमर्थ पाती है, तब उसे हितकारिणी सखी-सहेलियों की शिचा भी बुरी लगती है और वह डके की चोट अपने प्रेम की घोषणा करती हुई कहती है—संसार चाहे पसंद करे या न करे, पर मुझे तो यही कार्य करना है !

ठाकुर कवि की परकीया नायिका दृढ़ता पूर्वक कहती है—“अजी ! मैं कुराह पर चली हूँ, तो मुझे चलने दो, तुम औरों को तो कुराह पर चलने से रोको । मैं अपने प्रेम को छिपाती नहीं हूँ, तुम सब सुन लो; मैं गला फाड़ कर कहने को तैयार हूँ कि मैंने गोपाल से प्रेम किया है । मुझे जो अच्छा लगा, वह मैंने किया । मेरा यह कृत्य तुम्हें अच्छा लगे तो ठीक और अच्छा न लगे तो ठीक ।” कैसी अद्भुत दृढ़ता है—

हम एक कुराह चली तौ चली, हटकौ इन्है ए ना कुराह चलै ।

इहि तौ बलि आपुनौ सूझती है, प्रन पालिए सोई, जो पालै पलै ॥

कवि ‘ठाकुर’ प्रीति करी है गुपाल सो, टेरै कहौ, सुनौ ऊँचे गलै ।

हमै नीकी लगी सो करी हमनै, तुम्है नीकी लगौ, न लगौ तौ भलै ॥

गर्विता—

अपने प्रियतम के प्रेम अथवा अपने रूप का गर्व करने वाली नायिका को गर्विता कहते हैं । ‘दास’ ने एक प्रेम-गर्विता नायिका का अद्भुत चित्र खींचा है । नायिका की विविध प्रकार की सेवा के लिए नायन आयी है, किंतु उसे करने के लिए कोई कार्य ही नहीं है । प्रेमानुरक्त नायक ने स्वयं ही सब प्रकार की सेवा-चाकरी कर डाली है ! नायक के इस अनौचित्य-कथन के बहाने नायिका अपने प्रति उसके प्रेम का गर्व कर रही है । वह नायन से कहती है—जब नायक ‘मेरे स्नान का समय देखता है, तब साज-शृंगार की आवश्यक सामग्री लेकर पहले से ही आगे आकर बैठ जाता है । ‘तुम नायक हो, यह कार्य तुम्हारे करने योग्य नहीं है’—ऐसा कह कर मैं कितना समझाती हूँ, किंतु उसकी समझ में आता ही नहीं है । यहाँ तक कि मेरे मना करने पर भी वह अपने हाथ से ही मेरे पैरों में महावर भी लगा देता है । क्या करूँ नायन ! तुमसे महावर लगवाने की मेरी बड़ी इच्छा है, किंतु अपने नायक के कारण लाचार हूँ ।’ इस प्रेमगर्विता नायिका का अनोखा शब्द-चित्र देखिये—

न्धान-समै जब मेरौ लखै, तब साज तै बैठत आनि अगाऊँ ।
नायक हौ, जे न राउरे लायक, यो कहि हौ कितनौ समझाऊँ ॥
'दास' कहा कहौ पै निज हाथई देन, न हौ हूँ सम्हारन पाऊँ ।
मोय तौ माय महा उर मे, जो मटाउर नाइन ! तोसों दिवाऊँ ॥

नायिका अपने रूप का गर्व करती हुई कहती है—अरे, इस भोरे ने तो मुझे परेशान कर डाला ! 'आम्र-वृक्ष की रसीली मजरी को छोड़ कर, सरस गुलाब के पुष्पो मे से निकल कर और सुंदर कमलों के बन का किनारा परित्याग कर वह इसी ओर गूजता हुआ आ रहा है । हे सखी ! तेरो शपथ पूर्वक कहती हूँ, वह मेरे मुख की सुगंध के सहारे गूँज-गूँज कर अभी यहाँ धूम मचा देगा । उससे बचने के लिए मैं भूल कर भी घर से बाहर नहीं निकलूँगी । क्या करूँ मैं तो इस पागल अमर से ऊब गई हूँ ।' हरिऔध जो ने अमर की शिकायत के बहाने नायिका के रूप-गर्व का कैसा अनोखा वर्णन किया है—

छोरि-छोरि आम की रसीली मजरीन काहि

निकसि गुलाब के प्रसून रमवारे सैं ।

गुजरत याही ओर देख वह आवतु है,

अति कमनाय कज-बन के किनारे मे ॥

'हरिऔध' की सौं, आय अब ही मचै है धूम,

गूँजि-गूँजि आनन-सुवास के सहारे से ।

भूलि अब भौन ते न बाहर कड़ाँगी कबौ,

ऊँचि हौ गई री, या मतिद मतवारे से ॥

एक दूसरी रूपगर्विता की उक्ति सुनिये । प्रातःकाल हो गया है । नायिका अँगड़ाई लेती हुई और अपने अंगों की सुगंध के भूकोरो से भूमंडल को सुवासित करती हुई उठी है । स्नानार्थ सरोवर पर जाने की तैयारी हो रही है । उसी समय अपने अनुपम रूप को देख कर नायिका के दृष्टिकोण से गर्व का आभास होने लगा । उसने अपने प्रियतम से कहा कि मैं सरोवर पर स्नान करने नहीं जाऊँगी । सरोवर पर न जाने का कारण भी विचित्र था । नायिका ने सोचा कि उसके चंद्रमा सदृश मुख को

देख कर सरोवर के फूले हुए कमल बुलहला जावेगे । व्यंग्यार्थ से रूपगर्विता नायिका का कैसा सुंदर वर्णन है—

रग घने पति-प्रेम सने, सब रैन गने, मन मैन हिलोरन ।

अंगन मोरति भोर उठा, छिति पूरति अंग-सुगंध भकोरन ॥

रूप अनूप निहारि-निहारि, गुमान जनाय कलौ दग-कोरन ।

नदकिमोर अहो चितचोर, न जाउं मै न्हान सरोवर ओरन ॥

अन्यसंभोगदुःखिता—

अन्य स्त्री के तन पर अपने प्रियतम के प्रीति-चिह्न देख कर दुःखित होने वाली नायिका को अन्यसंभोगदुःखिता कहा जाता है । नायिका ने अपनी एक सखी को अपने प्रियतम के पास उसे बुलाने के लिए अथवा कोई संदेशा देने के लिए भेजा है । उस सखी ने नायिका का प्रिय कार्य तो नहीं किया, वरन् स्थल ही उक्त नायक के प्रेम में फँस गयी ! नायिका सखी के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है, उधर वह विश्वासघातिनी सखी नायक के साथ सुखोपभोग कर रही है । जब वह सखी नायिका के पास वापिस गयी तो उसके रंग-दग से वह सब बातें जान गयी । नायिका अपनी सखी के इस कृत्य से हृदय में अत्यंत दुःखित है, किंतु ऊपर से व्यंग-वाणों की वर्षा करती हुई उसे लज्जित कर देती है ।

नायिका कहती है—अरी सखी ! यह तुझे क्या हो गया है ? 'तू उदास सी दिखलायी देती है और तेरे चेहरे पर पीलापन छा गया है । तुझको अपने-पराये की भी सुब नहीं है । तू कहना कुछ और चाहती है, किंतु तेरे मुँह से निकलता कुछ और है । मैं देखती हूँ कि तेरी हालत आज पागलों की सी हो रही है । मुझ पर बज्र पड़े, हाय ! मैंने क्यों तुझे वहाँ भेज दिया, जिसके कारण तुझ पर उस जुल्फो वाले की नज़र लग गयी ! ज़रा स्थिर होकर तो बैठ; मैं नजर दूर करने के लिए तुझ पर राई-नौन वारती हूँ । अरी, तू तो मेरी बालपन की सहेली है, तेरी इस दशा पर मेरा चिंतित होना स्वाभाविक ही है !

कैसी व्यंग्योक्ति है ! बालपन की साथिन कह कर तो मानों उस पर सैकड़ों घड़े पानी डाल दिया । अपनी बालपन की सहेली के साथ भी तुम्हें विश्वासघात करते हुए लज्जा नहीं आयी—

एक स्वाधीनपतिका नायिका अपने नायक से रुह रही है—‘जब आपने मेरे अंगों में अंगराग लगाया, तब तो मैंने आपको नहीं रोका, किंतु मैं अब आपसे अपने पोंवों में महदी नहीं लगवाऊँगी।’ भला, एक पतिव्रता नायिका पति से अपने पैर कैसे छुवा सकती है—

अंगराग औरै अँगन करत, कलू वरजा न ।

पै, महदी न दिवाय हौ, तुम सो पगन प्रवान ॥

एक दूसरी स्वाधीनपतिका अपने नायक को महावर लगाते देख कर प्रेम विह्वल होती हुई इस अनुचित कार्य से उसे रोक रही है। ‘नायक ने नायिका की वेणी को फूलों से गूथ दिया और उसके मरतक पर कस्तूरी की काली बेदी लगादी। फिर उसने नायिका को नाना भोंति के आभूषण पहनाये और अपने ही हाथ से हित पूर्वक उसे पान का बीड़ा भी खिलाया। इसके बाद प्रेम के वशीभूत नायक ने नायिका के सुंदर चरणों में महावर लगाना चाहा। अब तक नायिका चुप थी, किंतु जब उसने नायक द्वारा यह अनुचित कृत्य होते देखा, तो उसने नायक के महावर वाले हाथ को अपने हाथों में लेकर चूम लिया और फिर उसे आँखों से लगा कर कहने लगी— हे प्राणनाथ ! ऐसा अनुचित कार्य न कीजिये।’ आर्य लखना तो अपने को पति की दासी समझती है, फिर शृंगार-विहार में भी वह अपने पति से कैसे पैर छुवा सकती है—

फूलन सो बाल की बनाय गुही बैनी लाल,

भाल दई बैदी मृग-मद की अस्ति है ।

भोंति-भोंति भूषन बनाए ब्रजभूषन,

मु बारी निज कर सो खवाई करि हित है ॥

हैं कै रस-वस जब दीवे को मढ़ाउर के,

‘सेनापति’ लाल गद्दौ चरन ललित है ।

चूमि हाथ नाह के लगाय रही आँखिन सो,

पढ़े प्राणनाथ ! यह अति अनुचित है ॥

बासकसज्जा—

अपने प्रियतम से मिलने के लिए साज-शृंगार और सभोग-सामग्री एकत्रित करने वाली नायिका बासकसज्जा कहलाती है। मुग्धा बासकसज्जा स्वाभाविक मंकोच के कारण स्वयं तैयारी नहीं कहती, बल्कि यह कार्य

उसकी सखियों को करना पड़ता है। ग्वाल कवि एक सुग्धा बासकसज्जा का वर्णन करते हुए लिखते हैं—‘कुंजो से अपने प्रियतम के आने का समर्थ जान कर नायिका ने सुनहरी किनारी की सुंदर माडी पहन ली। उसकी सखियों ने आनंददायक सुंदर सेज को बिछा दिया। लज्जित नायिका किंवाडो की ओट में होकर सखियों का यह कृत्य देखने लगी। वह नायिका ऐसी सुंदर है कि चंद्रमा का प्रकाश उसे देख कर पराजित होता है और बेचारी बिजली उसकी चमक से प्रतिस्पर्धा करती हुई दिखलाई देती है। नींद की खुमारी के कारण नायिका की आँखें झपने लगी हैं, तब भी वह बाला अपने प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है—

कुंज ते कत की तयारी आयवे का जानि,
धारी जरतारी, कोंर कलित किनारी की
सखिन सुवारी मेज, मेज मजु मोजकारी,
लखत लजारी होत ओट मे किंवारी की ॥

‘ग्वाल’ कवि चंद की उज्यारी लखि हारी ताहि,
बीजुका बिचारी सर करै चमकारी की।
आँख झपकारी, चढी नींद की खुमारी भारी,
तऊ वैस बारी वाट जोवै बनवारी की ॥

अब एक मध्या बासकसज्जा का शब्द-चित्र देखिये। नायिका ने सुख-मेज सजा कर शृंगार किया और सुगंध से सुवासित केशों को गुँथा। फिर चुनी हुई लाल चूनरी पहनी, जिससे उसका वेश और भी शोभायमान हो गया। प्रियतम से भेंट करने को उसका वक्षस्थल उमड़ा पड़ता है, जिसे वह हँसती हुई छिपाने की चेष्टा करती है। आनंदोल्लास के उभार से उसकी आँगी की तनी बार-बार खुल जाती थी, जिसे वह नायिका बार-बार कस कर बाँध रही थी। वक्षस्थल के उभार और उसे छिपाने की चेष्टा के कारण नायिका में काम और सकोच दोनों समान रूप से विद्यमान हैं इसलिए यह छंद मध्या बासकसज्जा का अच्छा उदाहरण है—

सुख-सेजहिं साजि, सिंगार सजे, गुँदे बाग सुगव सबै बसिकै।
चुनि चूनरी लाल खरी पहिरी, कवि ‘देव’ मुवेस रह्यो लसिकै ॥
पिय भेटिये को उमरी छतिया, सु छिपावनि हेरि हियौ हँसिकै।
अँगिया की तनी खुलि जाति घनी, मु बना फिर बावनि है कसिकै ॥

उत्कण्ठिता—

कलि-स्थान में नायक की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने वाली नायिका उत्कण्ठिता कहलाती है। एक सुगंधा उत्कण्ठिता नायिका अपने प्रियतम के आगमन में विलंब होते देख कर अत्यंत व्याकुल हो रही है। 'वह लज्जावश अपनी सखियों से भी इस विषय में पूछ-ताछ नहीं कर सकती है। वह मन ही मन ऐसा विचार करने लगी कि या तो मेरे प्रियतम को किसी ने मोहित कर लिया है, अथवा उस सुकुमार को किसी ने कुपित कर दिया है, इसीलिए उसके आने में विलंब हो रहा है। वह उसके न आने का कोई निश्चित कारण नहीं जान पाती और संकोच वश किसी से पूछ भी नहीं सकती, तब वह अपने मन से ही पूछती है। वह कहती है—हे मेरे मन ! तू तो सदैव मेरे प्रियतम के पास रहता है, फिर तू क्यों नहीं बतलाता है कि आज उनको क्यों विलंब हो रहा है। इसी चिन्ता में वह नायिका पीली पड़ती हुई पतझड़ में लवंग की डाली के समान शोभा विहीन हो गयी है,' प्रिय-आगमन की उत्सुकता का मन ही मन चिन्तन करने से और सखियों से भी तत्संबंधी वार्त्ता करने में संकोच होने से उत्कण्ठिता नायिका का सुगंधत्व सूचित होता है—

लाज ते बूमि सखी हूँ सकैं न, बिचारति सी कछु आई बिचारि है ।
कैं तौ रिमाय लयौ कहूँ काहूँ, खिभायौ कतौ अति ही सुकुमार है ॥
रे मन ! तू तौ रहै प्रिय-पास, कहै किन काहे ते कीन्हीं अबार है ।
प्यारी हूँ पीरी गई इहि सोच, मनो पनभार लवंग की डार है ॥

सोमनाथ कवि एक मध्या उत्कण्ठिता का इस प्रकार कथन करते हैं। नायक की प्रतीक्षा करते हुए नायिका को इतना विलंब होगया कि 'चंद्रमा आधे आकाश में चढ़ आया और चारों ओर घोर सन्नाटा छा गया। उस समय वह प्रेम से इतनी विह्वल हो रही थी कि इतनी रात्रि हो जाने पर भी उसकी आँखों में नींद की खुमारी नहीं थी। वह सोचने लगी कि मेरे प्रियतम आज घर की याद भूल गये, अथवा कहीं रमनीली बातों में रम गये। वह नायिका संकोच वश नीची गर्दन किये हुए सखियों से पूछती है—वे कैसे नहीं आये; अब क्या करना चाहिए।' लज्जा और प्रेम का समान कथन होने से यह मध्या उत्कण्ठिता नायिका का अच्छा उदाहरण है—

आधे आकाश में आयौ ससी, चुपचाप चहुँ दिशि माँझ भई अति ।
नीद सो नाँहि भुक्कैं अखियाँ, 'ससिनाथ' सनेह विहाल करी माते ॥
भूलि गए घर की सुधि कै, कि कहूँ रस-बातन में दिरमे पति ।
क्यों नहिँ आए, कहा करिए, तिय नार नबाय सखान सो वृभक्ति ॥

अभिसारिका—

कामार्च होकर स्वयं नायक के पास जाने वाली नायिका को अभिसारिका कहते हैं। नंददास कवि ने एक मध्या अभिसारिका का इस प्रकार वर्णन किया है—‘हरिण के समान नेत्रों वाली अनुपम नायिका ने नख से शिखा तक शृंगार किया और अपने अंगों में अंगराग लगाया। वह स्वर्ण-लता सी नायिका नाना प्रकार के रम्योत्तम मनोरथ करती हुई अकेली क्रीड़ा-स्थान को जाने लगी। वह चंद्रमा के समान मुख वाली शयनागार की ओर इस प्रकार धीरे-धीरे जा रही है, जैसे कोई चोर चोरी करने के लिए जा रहा हो। उसके एक पैर को कामदेव ने सीढ़ी पर मज्जबूती से पकड़ा हुआ है, तो दूसरे पैर को लज्जा ने भूमि पर कस कर जकड़ा हुआ है। अर्थात् कामदेव तो नायिका को आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करता है, किंतु लज्जा उसके आगे बढ़ने में बाधक हो रही है।’ मध्या अभिसारिका का कैसा स्पष्ट कथन है—

कीन्हो है निगार नख-सिख लौ कुरग-नैनी,

अगना अनूप अंगराग अंग घसिकै ।

कंचन की बेली मी अकेली चली केलि-भोन,

करिके मनोरथ रमीले रम रसिकै ॥

मद-मद चोरी मी करन जात चदमुखी,

‘नंददाम’ कांठे के समीप गई लसिकै ।

एक पाँय सीढ़ी पै मनोज मज्जवत गटे,

एक पाँय भूतल पै लाज गहे कसिकै ॥

इसी प्रकार की मध्या अभिसारिका का मतिराम ने भी सुंदर कथन किया है—‘यौवन-मद के कारण मग्न हाथी के समान नायिका मंद गति से प्रियतम के क्रीड़ा-भवन की ओर जा रही है। स्नेह रूपी महावत उसे आगे चलने की ओर प्रेरित करता है, किंतु लज्जा रूपी पैरो का लंगर उसके आगे बढ़ने में बाधक हो रहा है’—

यौवन-मद गज मद गति, चली बाल पिय-गेह ।

पगनि लाज-आँदू परी, चञ्चा महावत नेह ॥

अब एक कृष्णाभिसारिका का वर्णन सुनिये। रात्रि के अंधकार में अपने को छिपाती हुई प्रियतम के पास जाने वाली नायिका कृष्णाभिसारिका कहलाती है। ‘आकाश श्याम हो रहा है, रात्रि अंधकारमयी है, भयावनी

इस हिसाब से छिद्र किया जाता था कि वह एक घटे में पानी से भर जाने पर डूब जाता था, तब घटा बजाने वाला घडियाल पर चोट लगा कर घटा बजाता था। नायिका ने नायक के कपोल पर पर-स्त्री के अञ्जन का दाग देख कर घड़ी का सकेत करते हुए उसमें पूछा है कि आखिर वह नायिका कब तक आपके प्रेमाश्रुत का पान करती रहेगी और मेरा हृदय कब तक ईर्ष्या की चोट सहता रहेगा ! उसने 'बिहारी' संबोधन द्वारा भी नायक की बिहार-वृत्ति परकटाक्ष किया है—

आज लौ मोन गद्यौड हुतौ, सुनि कै सिगरौ गुन-ग्राम तिहारौ ।
पे 'डि'नदेव' जू सँचा कहौ, अब जोबत हू जिय जाय न जारौ ॥
वृन्ता तातै बिहारी ! तुम्है, किन मोहै कपोल करै कजरारौ ।
पी है घटी रम कौ लौ लला, अरु घाइ महै घरयार बिचारौ ॥

एक नायिका अपने नायक की अस्तव्यस्त दशा और उसके मस्तक पर महावर का चिह्न देख कर उसे पर-स्त्री-संसर्ग का दोष मानत हुई व्यंग्य वचनो द्वारा उसमें कह रही है—'आपका मन उधर अटका हुआ है, इसीलिए आपके पैर सीधे नहीं पड़ रहे हैं। जल्दी उठ कर आने के कारण ही आपके अंग अलसाए हुए हैं। आपकी रंगराती आँखें अनुपम रूप की चोरी कर रही हैं। वाह, खूब अच्छा रूप देखा है ! हे प्रिय ! अब आपने हमसे तो हँस कर बोलना छाड़ ही दिया और सब प्रकार उम्मी के हाथों में बिक गये ! जिसका अनुराग आप अपने मस्तक पर धारण किए हुए आये हो, वही आपके वचनो से स्वतः प्रकट हो रही है, अब मना करने से क्या लाभ !' नायक के मस्तक पर पर-स्त्री के महावर-चिह्न को उक्त स्त्री के अनुराग की उपमा दी गयी है। वचनो द्वारा प्रकट होने का यह अभिप्राय है कि उक्त स्त्री का नाम अनायास आपके मुख से निकला पड़ता है—

उतई है मन, याते सूये न परत पग, अंग अरसात भुरहरै उठि आए हौ ।
रँगमगी अखियाँ अनूप रूप चौरै लेत, 'सोमनाथ' आछै यहि रूप लखि पाए हौ ॥
हम सौं तौ विहसि विलोकिवौ विमारयौ पिय ! सबै बिधि उनई के हाथन बिकाए हौ ।
काहे कौ नटत, वेई बैनन प्रकट होत, अनुराग जिनकौ लिलार बरि आए हौ ॥

कलहांतरिता —

अपने नायक का अपमान कर पुन पश्चात्ताप करने वाली नायिका को कलहांतरिता कहते हैं। एक कलहांतरिता नायिका के पश्चात्ताप की कहानी

सुनिये । वह कहती है—‘लज्जा के कारण मैं कभी छिप कर न बैठती और न घूँघट का बनावटी परदा करती; मैं भय का परित्याग कर कोपपूर्वक अपने हाथ को कभी न खींचती और दृष्टि बचाती हुई हठ पूर्वक कभी पीठ मोड़ कर भी न बैठती, मैं अपने प्रिय के साथ सुग्व पूर्वक शयन करती और इस सुहाग की रात में रोने की अपेक्षा हित पूर्वक अपने हृदय की दाह को शांत करती । हाय ! यदि मैं जानती कि प्रिय-मिलन का इतना सुख होता है, तो मुझे इतना दुःख क्यों सहन करता पड़ता’—

लाज के अठोंट कै-कै बैठती न ओट दें-दे,
घूँघट को काहे को कपट पट तानती ।
डागि देनी डर, कर ऐचती न कोप करि
दीठि चोरि, पीठ मोरि है न हठ ठानती ॥
‘देव’ सुख मोवती, न रोवती सुहाग रैन,
मेढ ताप ही ते, आपर्ह्या ते हित मानती ।
हाय ' हाय ' काहे को तितेक दुख देखती,
जो पीतमै मिलै कौ मैं इनेक सुख जानती ॥

गच्छत्पतिका—

जिसका प्रियतम परदेश जा रहा हो, उस नायिका को गच्छत्पतिका कहते हैं । ग्वाल कवि ने एक सुगंधा गच्छत्पतिका का बड़ा सुंदर कथन किया है—सुगंधा नायिका अपने पति के परदेश जाने के समाचार को सुन कर अत्यंत दुःखित है, किंतु वह अपने आंतरिक परिताप को लज्जावश किसी पर प्रकट नहीं कर सकती है । प्रिय वियोग की आशंका स्वरूप उसका पीत मुख, मलीन कांति, सखियों से बिछुड़ना और उनसे बेकार लड बैठना गर्दन को नीचा कर लेना, कोठरी में छिप कर बैठ जाना, सास को देखते ही किनारा-कशी करना और लाजवंती के पौधे की तरह सिकुड़ जाना आदि चेष्टाओं से उसकी मनोगत व्यथा का भली भाँति ज्ञान हो जाता है । छंद डम प्रकार है—

उग गई बात पिय पर-पुर जायवे की,
मुर गई, जुर गई, बिरहागि पुर गई ।
उग गई ही जो खेल उमंग सो डुर गई,
फुर गई पीर सुख, दुति है अउर गई ॥

‘ग्वाल’ कवि अलि सों बिछुरि गई, लरि गई,
 नार हू निदुरि गई, नैन सों निचुरि गई ।
 दुरि गई कोठरी में, मुरि गई सामैं तकि, “
 जुर गई लाज, लाजवंतो मी मिकुरि गई ॥

मतिराम ने भी एक मुग्धा गच्छत्पतिका का बड़ा सुन्दर कथन किया है। किसी मुग्धा नायिका की सखी परदेश जाने के लिए इच्छुक किसी नायक से कह रही है—‘जिस दिन से तुमने परदेश जाने की चर्चा की है, उसी दिन से उसका मुख पीला पड़ गया है। उसने सुन्दर वस्त्राभूषण का धारण करना और पान खाना छोड़ दिया है। उसने सखियों के साथ खेलना और उनके साथ हँसी-मज़ाक करना भी छोड़ दिया है। हे लाल ! ऐसी रमणीय ऋतु में उम स्नेहमयी प्रियतमा को छोड़ कर तुम परदेश जा रहे हो, इसमें तुम्हारी क्या बड़ाई है ! तुम्हारे वियोग का आशका से उस बाला की नींद हराम हो गयी है और वह रात-दिन रोती रहती है। यदि कोई उससे इसका कारण पूछता है, तो वह लज्जा वश वास्तविक बात को न बतलाती हुई यह कह देती है कि उसे मातृ-गृह की याद आ गयी है—

जा दिन ने चलिबे की चर्चा चलाई तुम,
 ता दिन ने वाके पियराई तन छाई है ।
 कहै ‘मतिराम’ छोड़े भूषन, बसन, पान,
 सखिन मो खेलनि हँसनि बिमराई है ॥
 आई रितु सुरभ मुहाई, प्रीति वाके चित,
 गेसे मैं चला, का लाल ’ राउरी बडाई है ।
 सोवत न रेन-दिन, रोवत रहत बाल
 बूझे ते कहत, माइके की मुवि आई है ॥

प्रांषितपतिका—

अपने प्रियतम के वियोग में दुःखित विरहणी नायिका को प्रोषितपतिका कहते हैं। प्रोषितपतिका की करुण कहानी लिखने में कवियों ने कलम तोड़ दी है। सुकवि वनानन्द एक ऐसी विरहणी नायिका का कथन करते हैं, जो बहुत दिनों से अपने प्राणों को बलपूर्वक रोकती हुई, अतनः निराश होकर प्राणों के द्वारा ही संदेश भेजने की बाध्य होती है ! नायिका कहती है—

बहुत दिनों की अवधि को समाप्त-प्राय देख कर मेरे प्राण उड़ जाने को तैयार होते हैं, किन्तु मैं प्रियतम के आगमन का संदेशा कह-कह कर उनको खुशामद पूर्वक रोक रही हूँ। इन सूझी बातों पर अविश्वास करते हुए अखिर वह उदास होकर अब घेरे से भी नहीं घिरते है। अब मेरे प्राण चल कर होठों पर आ गये हैं और अब संदेशा लेकर प्रियतम के पास जाना ही चाहते है।' विरहणी की कैसी निराशापूर्ण उक्ति है—

बहुत दिनानि की अवधि आम-पास परे,
खरे अक्षरनि भरे है उडि जान कौं
कहि-कहि आन संदेसा मन भावन कौं,
गहि-गहि राखन हो दै-दै मनमान कौं।
झूठी बलिदान के पथान ते उदास हूँ कै,
अन न पिरत 'वनआनंद' निदान को
अवर लगे है आनि, करकै पथान प्रान,
चाहन चलन ये संदेसा लै मुजान कौं॥

एक विरहणी नायिका अपने प्रियतम के साथ आनंद-विहार के दिनों का स्मरण करती हुई व्यथित हृदय से कह रही है—'जिस स्थल पर नाना प्रकार के विहार किये थे, वहाँ पर बैठ कर अब कंकरी चुनने का ही काम रह गया है! जिस ज़िह्वा में उनके साथ नाना प्रकार की रसपूर्ण बातें की थी, उसी ज़िह्वा से अब उनके चरित्रों का कथन किया जाता है। जिन कुजों में अनेक प्रकार की केलि-क्रीड़ाएँ की थी, वहाँ उनके वियोग में अब अपना सिर धुना जाता है। जहाँ वे प्रियतम सदा अपने नेत्रों में बसा करते थे, वहाँ अब कानों द्वारा उनकी कंवल कहानी सुनी जाती है।' दिनों के हेर-फेर का कैसा मर्मस्पर्शी कथन किया गया है—

जा थल कान्हे विहार अनेकन, ता थल कोंकरी बैठि चुन्यौ करै।
जा रसना सो करी बहु बातन, ता रसना सो चरित्र सुन्यौ करै॥
'आलम' जौन से कुजन ने कग केलि, तहाँ अब मीस बुन्यौ करै।
नैनन मे जे सदा रहते, तिनका अब कान कहानी सुन्यौ करै॥

प्रियतम के वियोग में विरहणी नायिकाएँ रात-दिन रोती रहती है। उनकी आँखों में नींद का नाम भी नहीं है। वे रात भर जागती हुई आकाश के तारे गिना करती है। ऐसी ही वियोगिनी नायिकाओं का हरिश्चौध जी ने इस प्रकार कथन किया है—'इस कुपूत चंद्रमा को देखते ही हमारा सब समाप्त है'

जाता है। हम अपने नेत्रों के तारों से आकाश के इन तारागण की पक्तियों को परोया करती है। महान् दुःख के कारण हमारी आखें ज़रा भी नहीं लगती हैं और न क्षण भर के लिए हमें नींद आती है। हम उनके पत्रों को पढ़-पढ़कर सारी रात छाती पकड़ कर रोया करती हैं'—

तखिकै या कपूत कलानिधि कों, सिगरौ कल आपुनौ खोवती है ।
नभ के इन तारन की अबली, निज नैन के ताग्न पोवती है ॥
'हरिऔध' न आँख लगै कबहूँ, दुख जों पल हू नहि सोवती है ।
पतियाँ पठिकै सिगरी रतियाँ, पकरै छतियाँ हम रोती है ॥

विरहणी नायिका को सुखदायक ऋतु और उसकी आनंददायक वस्तुएँ भी घोर दुःख का कारण बन जाती हैं। यहाँ पर एक ऐसी नायिका का कथन किया जाता है, जो किसी प्रकार अपने विरह के दिन काट रही थी। अब बसंत के आगमन से तो उसका जीवन और भी सकट में पड़ गया है ! उसकी सखी इसका प्रबंध करती हुई कहती है—'अरी, ज़रा शिकारियों से कह दे कि वे इस बाग में कोकिलों को न आने दें। ज़रा भवन के झरोखों को भी बंद करदे, ताकि मलय'पर्वत की सुगंधित पवन यहाँ पर आकर छा न जाय। उसके प्रियतम के आये बिना बसंत-आगमन का समाचार उसे कोई सुना न दे। यदि तुम इस नायिका को जोवित रखना चाहते हो, तो ग्राम का कोई व्यक्ति धमार का गायन न करे।' वाह, कैसी अनोखी व्यवस्था की जा रही है—

दे कहि बीर ! सिकारिन कों, इति बाग न कोकिल आवन पावै ।
मूँदि झरोखनि मंदिर के, मलयानिल आइ न छावन पावै ॥
आए बिना 'रघुनाथ', बसंत कौ ऐबाँ न कोऊ सुगवन पावै ।
'ग्यारी को चाहौ जिवाझौ, बमार तौ गाँब कौ कोऊ न गवन पावै ॥

वर्षा ऋतु तो विरहणी नायिकाओं के लिए और भी सकट उपस्थित कर देती है। एक वियोगिनी नायिका वर्षा ऋतु के आते ही अत्यंत व्याकुल होती हुई अपनी सहेली से कह रही है—'हे सखी ! वर्षा ऋतु आ गयी, किंतु मेरे प्राण-प्यारे अभी तक नहीं आये। इसलिए इन बादलों को मना कर दे कि वे गरजें नहीं, इन मेढ़कों को हटा दे, ताकि वे बक-बक कर कानों को न फोड़ें और इन पिकों को भी फटकार दे, ताकि वे अपना शब्द न

सुनावें ! मैं तो विग्रह-व्यथा से व्याकुल हुई जा रही हूँ, इसलिये इस बिजली को भी रोक दे कि वह चमक कर मेरे हृदय के टुकड़े न करे । जब तक मेरे प्रियतम घर पर न आ जावें, तब तक ऐसा प्रबंध कर कि परीहा गा न सके, मोर शोर न मचा सके और बादल आकाश में घुमड न सकें ।’

वर्षा ऋतु वियोगनियों के लिए ऐसी ही दुःखदायी है—

आई रितु पावस, न आण प्रान-भारे, याते—

मेघन बरजि आली । गरजनि लावै ना ।

दादुर हटकि बक-बक कै न फोरै कान,

पिकन फटकि मोहि सबद सुनावै ना ॥

विरह विथा ते हौ तौ व्याकुल भई हो ‘देव’,

चपला चमकि चित-चिनगी उडावै ना ।

चातक न गावै, मोर सोर ना मचावै,

घन घुमडि न ढावै, जौ लौं लाल घर आवे ना ॥

वर्षा ऋतु में वियोगाग्नि से दग्ध एक गोपी उद्धव से कह रही है — ‘मेह के बरसते ही समस्त अंगों में स्नेह उमड़ने लगता है, उस समय देह जवासे की तरह झुलसने लगती है ! यमुना के तटवर्ती कदंबों पर भोराओ ने अपना अड्डा बना लिया है । हे उद्धव ! तुम इस गड़बड़ी से मोहन को परिचित कर देना और उनसे कहना कि ब्रज का सुंदर निवास-स्थान अब अग्नि का अबसा हो गया है ! यह पापी परीहा जल-पान का प्यासा नहीं है, बल्कि किसी व्यथित वियोगिनी के प्राणों का प्यासा मालूम होता है ।’ पद्माकर के काव्य-मौन्दर्य को देखिये—

बरसत मेह, नेह मरसत अंग-अंग,

भरमत देह जैमे जरत जबासों है ।

कहै पदमाकर ’ कलिंदा के कदंबन पै,

मधुपन कीनों आय महत मवासों है ॥

ऊबौ ! यह ऊधम जताय दाजो मोहम को,

ब्रज कौ मुवासों, भयौ अग्निनि-अबा सों है ।

पानकी परीहा जल-पान कौ न प्यासो,

काहू विथित वियोगिन के प्रानन कौ प्यासों है ॥

एक विरहणी नायिका पहिले ही वियोगाग्नि में जल रही थी, अब वर्षा ऋतु के आते ही कामाग्नि ने उसे और भी जलाना आरंभ कर दिया । उस समय वह कामदेव को सबोधन करती हुई कहती है—‘यह पापी पूर्णदा बार-बार ‘पिउ-पिउ’ कह कर सहज स्वभाव से ही आग लगा रहा है, और पलास वृक्ष की डालों से पुष्प अंगों के समान झड़ रहे हैं । इनके अतिरिक्त मैं तो वैसे ही वियोग की अग्नि में झुलस रही हूँ; अरे पागल कामदेव ! अब तू क्यों विष डाल रहा है ? तू तो स्वयं जलने का दुःख भली भाँति जानता है, फिर इन जले हुए अंगों को अब और क्यों जला रहा है?—

पाउ-पीउ पातकी पपीटा करै बार-बार,
सहज सुभायन ही पावक पसारै हे ।

पाइन पलास के प्रसूननि-अंगारनि सो,
लसि-लसि डारनि अंगारनि से भारै है ॥

‘भुवनेस’ ऐसिए परी ती बिरहानल मे,
बावरे अनंग ! अंग विष क्यों वगारै है ।

आपु तौ जरे कौ दुख जानत भली ही भाति,
काहे जरे अंगनि कौ फेरि अब जारै है ॥

एक वियोगिनी नायिका अपने आँसुओं को मेघ द्वारा अपने निर्मोही प्रेमी के पास भेज रही है । वह मेघ की खुशामद करती हुई कह रही है—‘तुम तो परोपकार के निमित्त ही अपनी देह को धारण किये हुए फिरते हो, इस प्रकार तुम यथार्थ रूप में परजन्य हो । तुम समुद्र के जल को अमृत के समान कर देते हो और तुम सब प्रकार से सज्जनता प्रकट किया करते हो । तुम प्राणीमात्र को जीवन देने वाले हो; इसलिए अपने हृदय में कुछ मेरे दुःख के लिए भी स्थान दो । उस निर्मोही के आँगन में कभी मेरे आँसुओं को भी लेजा कर बरसा दो ।’ विरहणी के प्रेमाश्रुओं की वर्षा के लिए घनानंद का निम्न लिखित छंद देखिए—

पर-काजहिं देह कों वारै फिरौ, परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ ।

निधि-नार सुखा के समान करौ, सब ही त्रिवि सज्जनता सरसौ ॥

‘घनआनंद’ जीवन दायक हौ, कछु मेरिउ पीर हिएँ परसौ ।

कबहू वा बिसासी सुजान के आँगन, मो आँसुआँ कों लै बरसौ ॥

अपने निर्मोही प्रेमी के प्रति एक दूसरी वियोगिनी की उक्ति सुनिये ।
 'वह कहती है—'मेरे हृदय में तुम्हारी सीधी नज़र का चाह सदा बनी रही,
 मगर तुम तो सदैव बातें भी टेढ़ी करते रहे । तुम मुझसे कभी हँस कर न बोले,
 और सदा दूर से मेरे मन को ललचाते रहे । हाय, तुम्हारा कैसा स्वभाव हो
 गया है कि तुम्हारे हृदय में जरा भी दया नहीं आती है । हे प्यारे ! तुमने पहिले
 ही कौन सा सुख दिया है, जिसके बदले में मुझको इस प्रकार मता रहे हो ।'
 भारतेन्दु हरिश्चंद्र के कथण हृदय के उद्गार सुनिये—

जिय मूखी चितौन की साव रही सदा बातन में अनखाय रहे ।
 हँसिकै 'हरिचंद्र' न बोलै कबौ, मन दूर ही सों ललचाय रहे ॥
 नहिँ नैक दया उर आवत क्यों, करिकै कहा ऐसे सुभाय रहे ।
 सुख कोन मौ प्यारे ! दियौ पहलै, जिहि के बदले यो मताय रहे ॥

आगतपत्तिका—

अपने प्रियतम के आगमन पर प्रसन्न होने वाली नायिका आगतपत्तिका कहलाती है । पति-वियोग से दुखित विरहणी नायिका शकुन मनाती हुई अपने प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है । उसी समय उसकी बाँई भुजा फड़कने लगती है । स्त्रियों के बाँए अंगों का फड़कना शुभ माना गया है । बाँई भुजा के फड़कने से नायिका अपने प्रियतम के आगमन का अनुमान करती है और प्रसन्नता पूर्वक उक्त भुजा को यह पुरस्कार देना चाहती है कि वह पहिले उसी के द्वारा प्रियतम से भेंट करेगी । साधारणतया बाँए अंगों से भेंट करना शिष्टाचार के विरुद्ध है, किंतु जो भुजा उसके प्रियतम के आगमन की सूचना दे रही है, उसको पुरस्कार तो मिलना ही चाहिए । नायिका कहती है—'हे मेरी बाँई भुजा ! जो तेरे फड़कने से मेरे जीवन-सर्वस्व प्रियतम मिलेंगे, तों दाहिनी भुजा को दूर रख कर मैं पहिले तेरे द्वारा ही उनसे भेंट करूँगी ।' महाकवि बिहारीलाल का अद्भुत काव्य-चमत्कार निम्न लिखित दोहा में देखिये—

बाम बाहु फरकत मिलै, जो हरि जीवन—मूरि ।
 तौ तोहा सों भेटि हौ, राखि दाहिनी दूरि ॥

एक दूसरी नायिका विशिष्ट दशा में कौवे के बोलने से प्रिय-आगमन का शकुन मनाती हुई कौवे से कह रही है—'तेरे पाँवों के लिए पैजनी बनवा कर तेरी चौंच सोने से मँदवा दूँगी, अपने हाथ पर तुझे बैठा कर रुचि पूर्वक तेरे

एक मित्र हम सो अस गुन्यौ ।
 मै नायिकाभेद नहिं सुन्यो ॥
 जब लग इनके भेद न जानै ।
 जब लग प्रेम-तन्त्र न पहिचानै ॥

बिन जानै ये भेद सब, प्रेम न परचै होय ।
 चरनहीन ऊँचे अचल, चढत न देख्यौ कोय ॥

— ‘रस-मंजरी’

★

‘कला में हृदय की भावुकता ही नहीं होता, उनमें मस्तिष्क का कार्य-कलाप भी होता है। दोनों के राहचर्य से ही कला पूर्णता को प्राप्त होती है। नायिकाभेद की कविता में यथा स्थान दोनों का समुचित विकास देखा जाता है, इसलिए उसकी दृष्टि कला की दृष्टि में बहुत ही उच्च कोटि की पायी जाती है।’

— ‘रस-कलस’

★

“काव्य-कला की दृष्टि में नायिकाभेद संबंधिनी कविताएँ अति उत्कृष्ट समझी जा सकती हैं, क्योंकि उनमें मनोभावों की बड़ा सुंदर और स्वाभाविक व्याख्या की गयी है। रमणीयता और रमात्मकता स्पष्ट दिखाई देती है। हृदगत भाव बड़ा गूढ़ी में चुने हुए शब्दों में व्यक्त किये गये हैं। दाम्भ्य में ये कविताएँ सार्थक संगीत हैं।”

“नायिकाभेद संबंधिनी कविताएँ बड़ी आकर्षक और हृदय को स्पर्श करने वाली प्रतीत होंगी। उनमें मस्तिष्क और हृदय दोनों की सूक्ष्म भावनाओं के दर्शन होंगे। प्रतिभाशाली कवियों की ललित लेखना से निकली हुई मोहक मधुरिमा पाठक पर अपना अमिट प्रभाव अंकित किये बिना नहीं रहता। आवश्यकता केवल सहृदयता या रुचिजन्यता का है।”

— ‘रस-रत्नाकर’

प्रथम परिच्छेद

नायिका और उसका वर्गीकरण

★

नायिका—निरूपण

नायिका—जिस रमणी को देखते ही चित्त में शृंगार रस का संचार हो, उसे नायिका कहते हैं† ।

लाज भरी, भाग भरी, सुंदर सुहाग भरी,
राग भरी, रति में पिघा की सुखदाइका ।
लाजै रति-रूप खरी, सीख भरी सौगुने है,
गुन-गान-आगरी करत हाइ-भाइका ॥
‘भौन’ कवि कहत बिलोकत ही जासु अंग,
प्रगटे अनग रस-रासि उपजाइका ।
बैव मन भाइका, मनोरथ सहाइका,
सु चित-चोप चाइका, बखानै ताहि नायिका ॥१॥

★

जासु की दीपति दीप ते सौ गुनी, दामिनी-कुंदन-केसर आइका ।
काम की खानि, सदा मृदु बानि, सनेह छकी, छित में छवि छाइका ॥
अंग अनूपम को बरनै, सब अंगन प्रीतम कों सुख दाइका ।
मानो रची छवि-मूरति मोहिनी, ‘श्रीधर’ ऐसी बखानत नाइका ॥२॥

† रस-सिंगार कौ भाव उर उपजत जाहि निहारि ।
ताही को कवि नाइका, बग्नत विविध विचारि ॥

—“ जगद्विनोद ”

उपजत जाहि विलोकि कै, चित्त बीच रस-भाव ।
ताहि बखानत नाइका जे प्रवीन कविराव ॥

—“ रसरज ”,

डोलत समीर लक लहकै समूल अंग,
 फूल से दुकूलन सुगंध बिधुरयो परै ।
 इंदु सौ बदन, मद हॉसी सुधाबिदु
 अरबिदु ज्यो मुदित मकरदन मुरचौ परै ॥
 ललित लिलार लम भलक अलक-भार,
 मग मे धरत पग-जाबक घुरचौ परै ।
 'देव' मनि-नूपुर परम-पद दूपर है,
 भू पर अनूप रंग-रूप निचुरचौ परै ॥३॥

★

भलकै अति सुंदर आनन गोरे, छुके दग राजत काननि छुवै ।
 हंसि बोलनि में छुवि फूलन की, बरषा उर ऊपर जाति है छुवै ॥
 लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जल जावलि द्रै ।
 अंग-अंग तरंग उठै दुति की, परि है मनो रूप अबै धर चवै ॥४॥

★

कुदन कौ रंग फीकौ लगै, भलकै अस अंगन चारु गुराई ।
 आँखिन मे अलसानि चितौनि मे, मजु बिलासन की सरसाई ॥
 को बिन मोल बिकात नही, 'मतिराम' लहै मुसकानि मिठाई ।
 ज्यों-ज्यों निहारिऐ नेरे है नैननि, त्यों-त्यों खरी निखरै सी निकाई ॥५॥

★

चपक सौ तन, नैन सरोज से, इंदु सौ आनन, जोति सबाई ।
 बिंब से ओठ, लसै तिलफूल सौ, नासिका-स्वॉस-सुवास सोहाई ॥
 बाहै मृनाल सी 'बैनी प्रवीन', उरोज उत्तंगन यो छुवि छाई ।
 ज्यों-ज्यों बिलोकिऐ जू प्रति अंगन, त्यों-त्यों लगै अति सुंदरताई ॥६॥

★

लाजनि लपेठी, चितवनि भेद-भाय भरी,
 लसित ललित लोल चख तिरछानि मे ।
 छुवि कौ सदन गोरी बदन, रुचिर भालि,
 रस निचुरत मीठी मृदु मुसिक्यानि मे ॥
 दसन-दमक फँलि हियै मोती-माल होत,
 पिय सो लड़कि प्रेम पगी बतरानि मे ।
 आनंद की निधि जग-भगति छबीली बाल,
 अंगनि अनंग-रग दुरि मुरजानि में ॥ ७ ॥

सुंदर सुरंग नैन सोभित अनंग-रंग,
 अंग-अंग फैलत तरंग परिमल के ।
 बारन के० भार सुकुमार की लचत लंक,
 राजै परजक पर भीतर महल के ॥
 कहै 'पदमाकर' बिलोकि जन रीझै जाहि,
 अंबर अमल के सकल जल-थल के ।
 कोमल कमल के, गुलाबन के दल के, सु-
 जात गडि पॉयन बिछौना मखमल के ॥८॥

★

दीठ के परे ते गात-मंजुता मल्लीन होति,
 देखै अंग दलकहि दल सतदल के ।
 कोमल कमल-सेज हू पै ना लहति कल,
 भारी लगै बसन अमोल मलमल के ॥
 'हरिऔध' हरा पहिराए बपु-कंप होत,
 पॉयन मे गडहि बिछौने मखमल के ।
 कुसुम छुए ते रंग हाथन कौ मैलौ होत,
 छिपत छपाकर छबीली-छवि छलके ॥ ९ ॥

★

दुरि है क्यों भूषन बसन दुति जोबन की,
 देह दू की जोति होति द्यौस ऐसी राति है ।
 नाहक सुबास लागै है है कैसी 'केसव', सु-
 भामती की बास भौर-भीर फारै खाति है ॥
 देखि तेरी सूरति की मूरति बिसूरति हूँ,
 लालन के दग देखिबे को ललचाति है ।
 चालि है क्यो चदमुखी कुचन के भार भए,
 कचन के भार ही लचकि लंक जाति है ॥ १०॥

★

घोंघरे भीन सो, सारी महीन सो, पीन नितंबन भार उठै सचि ।
 बास सुबास सिंगार सिंगारनि, बोझनि उपर बोझ उठै मचि ॥
 स्वेद चबले मुख चंद तें चवै. डग डैक धरै महि फूलन सों पचि ।
 जात है पंकज-बारि-बयारि सो, वा सुकुमारि कौ लंक लला । लचि ॥ ११॥

चरन धरै न भूमि विहरै तहाँई जहाँ,
 फूले-फूले फूलन बिछायौ परजंठ है ।
 भार के डरनि सुकुमार चारु अंगन मे,
 करत न अंगराग कुंकुम कौ पक है ॥
 कहै 'मतिराम' देखि बालापन बीच आयौ,
 आतप मलीन होत बदन मयक है ।
 कैसे वह बाल लाल ! बाहरैं बिजन आवै,
 बिजन-बयारि लागैं लचकति लक है ॥ १० ॥

★

जाबक कं भार पग धरति धरा पै मंद,
 गंध-भार कुचन परी है छूटि अलकै ।
 'द्विजदेव' तैसिए विचित्र बरुनी के भार,
 आधे-आधे दृगन परी हैं अध पलकै ॥
 ऐसी छवि देखि अंग-अंग की अपार, बार-
 बार लोल लोचन सु कौन के न ललकै ।
 पानिप के भारन सँभारति न गात, लंक-
 लचि-लचि जाति कच-भारन के हलकै ॥ १३ ॥

★

चंदन चहल चोबा चाँदनी चाँदोवा चारु,
 धनौ धनसार घोरि सीच महबूबी के ।
 अतर उसीर सीर सौरभ गुलाब नीर,
 गजब गुजारैं अंग अजब अजूबी के ॥
 फेरन फबत फैली फूलन फरस तामै,
 फूल सी फबी है बाल सुंदर सुखूबी के ।
 बिसद बिताने ताने तामै तहखाने बीच,
 बैठी खसखाने मे खजाने खोलि खूबी के ॥ १४ ॥

★

चित्त चोहि अब्रू कहैं कितने, छवि छीनी गयंदन की टटकी ।
 कवि केते कहैं निज बुद्धि उदै, यहि सीखी मरालन की मटकी ॥
 'द्विजदेव' जू ऐसे कुतरकन में, सबकी मति यौही फिरै भटकी ।
 वह मंद चलै किन भोरी भट्ट !, पग लाखन की अँखियाँ अटकी ॥ १५ ॥

जोबन उजारी प्यारी बैठी रंग राबटी में,
 मुख की मरीची सो दरीची बीच भलकै ।
 'भूधर' लुकवि मोहै सोहै मन मोहै खरी,
 खजन सी अखैं, मन-रंजन सी पलकै ॥
 मीसफूल बैना बैदी बीर अरु बंदन की,
 चंदन की चरचा की चारु छवि छलकै ।
 कोर वारी चनरी, चकोर वारी चितवनि,
 मोर वारी बेसरि, मरोर वारी अलकै ॥ १६ ॥

★

रात पिय चाँदनी बिलोकिये को रनवास,
 सिगरी बुलाई मोद मंदिर में भरिगौ ।
 'रघुनाथ' ता समै की सोभा कौ समाज देखि,
 रीझि रह्यौ मोपै न बखान कछु करिगौ ॥
 घूँघट खुलति ही दुलहैया के आनन ते,
 दस हू दिसान मे प्रकास ऐसौ भरिगौ ।
 दरिगौ गुमान सब सौतिन के जी कौ भट्ट ।
 तारन समेत तारापति फीकौ पगिगौ ॥ १७ ॥

★

कातकी के छौस कहुँ आइ न्हाइवे कों वह,
 गोपिन के संग जऊ नैसुक लुकी रही ।
 'द्विजदेव' दीह-द्वार ही तें घाट-बाट लागि,
 खासी चंद्रिका सी तऊ फैली विधु की रही ॥
 घेरि वार-पार लो तमासे-हित ताही समै,
 भारी भीर लोगन की ऐसिए भुकी रही ।
 आली ! उत आज वृषभानुजा विलोकिये को,
 भानु-तनया हू घरी द्वैक लो लुकी रही ॥ १८ ॥

★

आई हुती अनह्वावन नायन, सौधे लिए वोह सोधे सुभायनि ।
 कचुकी छोरि धरी उबटैवे को, ईंगुर से अँग की सुखदायनि ॥
 'देव' सुरूप की रासि निहारति, पाँय ते सीस लो, सीस तें पाँयनि ।
 ह्वै रही ठौरई ठाढ़ी ठगी सी, हँसै कर ठोड़ी दिऐ ठकुरायनि ॥ १९ ॥

थोगिणै ब्रैस, विसाल लसै कुच, टेढ़ी चितौनि, पै सूधी चलै पथ ।
 कौवरे अग, करेरे कुचावृत, लाज-लची गुन ऊँचे मनोरथ ॥
 अक लग्यौ उमग्यौ उर 'देव', सु बोलै हरै गरुड सी गिरा लथ ।
 नैन बडे-बडे नैसुक अंजन, मोती बडे-बडे नैसुक सी नथ ॥२०॥

★

बास बगारती, ढारती नेह, दुरी घन मे छनभा सी सुभायन ।
 त्यो ललचौड़े लचाडकै नैन, मचाइ विनोद चितै तिरछायन ॥
 कौन धौ, का घर जाति चली, 'द्विजदेव' लखौ किन चित के चायन ।
 घेर कौ घोंघरौ घूटन लो, सिर ओढनी बैजनी, पैजनी पाँयन ॥२१॥

★

सुथरे सन्हारे बार सैदुर सो मोंग भरि,
 सीसफूल-जोति सब जोतिन सो आगरी ।
 सारीपे किनारी जरतारी, भाल रोरी आड,
 बिंदिया जरख रही भौहन सो लागरी ॥
 बडे नैन, छोटी नथ, गोरे मुख पान रचै,
 भँहदी चुँवति 'दयानिधि' अनुरागरी ।
 गरब गहेली, छवि पाँयन सों पेली, हेली-
 देखि अलबेली या नकेली कौ सुहागरी ॥२२॥

★

चालि निकाई लखै बिलखै अचि, पंगु मरालनि भाल बिसूरति ।
 पाय परै न परै परि पायस, चीत रसै थरसै न कछूरति ॥
 घूँघट बीच मरोचिनि की रुचि. कोटिक चंदन कौ मद चूरति ।
 लाजन सो लपटी 'घनआनंद', साजन के हिय मे हित पूरति ॥२३॥

★

पीछे परबीनै बीनै संग की सहेली आगें,
 भार उर-भूषन डगर डारे छोरि-छोरि ।
 मोरै मुख मोरन त्यो, चौकति चकोरन त्यो,
 भौरन की भीर ओर हेरै मुख मोरि-मोरि ॥
 एक कर आली कर ऊपर धरै ही, हरै-
 हरै पग धरै 'देव' चलै चित चोरि चोरि ।
 दूजे हाथ साथ लै सुनावत बचन,
 राजहंसन चुगावति मुक्त-माल तोरि-नोरि ॥२४॥

फटक-सिलानि सों सुधारयौ सुधा मंदिर,
 उदधि दधि की सी उँमगाई अधिकै अमंद ।
 बाहर ते भीतर लो भीति न दिखाई देत,
 छीर के से फैन फैली चाँदनी फरसबंद ॥
 तारा सी तरुनि, तामै ठाडी फिलमिल होत,
 मोतिन की जोति मिल्यौ मल्लिका कौ मकरंद ।
 आरसी से अंबर मे आभा सी उज्यारी ठाडी,
 प्यारी राधिका कौ प्रतिबिंब सौ लगत चंद ॥२५॥

★

मदन-तुका सी, किधौ राजै कुंदका सी, मानो—
 कुंद-कलिका सी, मानो जोराहू बिकासी है ।
 गाँसी भरी हॉसी, मुख बाँसी मोह फॉसी, मद—
 जोबन उजासी नेह दिए की सी खासी है ॥
 जाकी रति दासी, रस-रासी है रमा सी कोक,
 कहै तिलोत्तमा सी रूप-सारन प्रकासी है ।
 काम की लता सी, चपला सी, कवि 'नाथ' किधौ,
 चपक-लता सी, चारु चंद-चंद्रिका सी है ॥२६॥

★

जगमगी जोतिन जराऊ मनि-मोतिन की,
 चंद-मुख मडल पै मंडित किनारी सी ।
 बैड़ी, बर बीर नगहीर नग, हीरन की,
 'देव' भूमकन मे भूमक भरि भारी सी ॥
 अग-अग उमरयौ परत रूप-रंग, नव—
 जोबन अनूपम उज्यासन उजारी सी ।
 डगर-डगर बगरावति अग-अंग,
 जगर-मगर आपु आवति दिवारी सी ॥२७॥

★

कौहर, कौल, जपा-दल विद्रुम, का इतनी जो बँधूक मे कोति है ।
 रोचन, रोरी, रची मेहदी, 'नृप संभु' कहै मुकता सम पोति है ॥
 पाँच धरै ठरै ईगुर सौ, तिन मे मनि-पायल की घनी जोति है ।
 हाथ द्वै-तीन लो चारि हू ओर ते, चाँदनी चूनरि के रंग होति है ॥२८॥

पीत रंग सारी गोरे अंग मिल गई 'देव',
 श्रीफल-उरोज-आभा, आभा सो अधिक सी ।
 अलकनि छलकनि जल-बूदन की,
 बिना बैनीबदन बदन-सोभा विकसी ॥
 तजि-तजि कुज-गुंज ऊपर भ्रमर गुंज,
 गुंजरत मजु रब बोलै बाल पिक-सी ।
 नीबी उसकाइ नैक, नैन न हसाइ-हंसि,
 मसिमुखी सकुचि सरोबरि तें निकसी ॥२६॥

★

आई खेलि होगी घरे नबल किसोरी कहं,
 बोरी गई रंग मे सुगयनि भरोरै है ।
 कहं 'पदमाकर' इकंत चलि चौकी चढ़ि,
 हारन के बागन ते फद-बद छोरे है ॥
 घोंघरे की घूमनि सु ऊरुन दुबीचै दाबि,
 अँगो हू उतारि सुकुमारि मुख मोरै है ।
 दतनि अधर दाबि, दूनरि भई सी चापि
 चौवर-पचौवर कै चूनरि निचोरै है ॥३०॥

★

तीर पर तरनि-तनूजा के तमाल तरै,
 तीज की तेयारी तकि आई अखियान में ।
 कहं 'पदमाकर' सो उमगि उमग उठी,
 मेहदी सुरंग की तरंग अखियान मे ॥
 प्रेम-रंग बोरी गोरी नबल किसोरी भोरी,
 कूलत हिडोरे सो सुहाई अखियान मे ।
 काम कूलै उर मे, उरोजन मे दाम कूलै,
 म्याम कूलै प्यारी की अनयारी अखियान मे ॥३१॥

★

जाहिरै जागत सी जमुना, जब बूझै, बहै, उमहै वह बैनी ।
 त्यों 'पदमाकर' हीर के हारन, गंग-तरंगन कौ सुख दैनी ॥
 पौन के रंग सो रंगि जाति सी, भौतिई भौति सरस्वती मैनी ।
 पैरै जहाँ जहाँ वह बाल, तहाँ-तहाँ ताल में होत त्रिवैनी ॥३२॥

ब्राग बिलोकन आई इतै, वह प्यारी कलिंद-सुता के किनारे ।
 सो 'द्विजदेव' कहा कहिए, बिपरीत जो देखति मो दग हारे ॥
 केतकी-चंपक-जाति-जपा, जग भेद प्रसूनन के जे निहारे ।
 ते सिंगरे मिसि पातन के, छवि वाही सो माँगत हाथ पसारे ॥३३॥

★

चंद बिलोकन बाल ब्रनी, सु बिसाल अटा पै चढ़ी चपला सी ।
 आनन चंद समान उयौ, दुति दामिन सी चहुँ ओर प्रकासी ॥
 चौकि उठे तिथि के सब लोग रु, पंडित सो भगरै ब्रजवासी ।
 जोतिस आवत है न तु-हैं, लखौ चाँधि है आबु, कै पूरनमासी ॥३४॥

★

जब-जब चढ़ति अटानि दिन, चंदमुखी वह बाम ।
 तब-तब घर-घर धरति हैं, दीप बारि सब गाम† ॥३५॥

★

सहज सहेलिन सो जु तिय, विहँसि-विहँसि बतराति ।
 सरद चंद की चाँदनी, मंद परति सी जाति ॥३६॥

★

लिखन बैठि जाकी सबहि, गहि-गहि गरब गरूर ।
 भए न केने जगत के, चतुर चितेरे कूर- ॥३७॥

★

भूषन-भार सँभारि है, क्यों यह तन सुकुमार ।
 सूधे पाँय न धर परत, सोभा ही के भार- ॥३८॥

★

(नायिका के १६ शृंगार)

प्रथम सकल सुचि, मंजन अमल बास,
 जावक, सुदेस केस-पास कौ सम्हारिवौ ।
 अ गराग, भूषन, विविध मुखबास-राग
 कज्जल ललिन लोल लोचन निहारिवौ ॥
 बोलन, हँसन, मृदु चलन, चितौनि चारु,
 पल-पल पतिव्रत प्रन परिपालिवौ ।
 ' केसौदास ' सो बिलास करहु कुँवरि राधे,
 इहि बिधि सोरहै सिंगारन सिंगारिवौ ॥३९॥

नायिकाओं का वर्गीकरण

नायिकाभेद के आचार्यों ने विविध दृष्टियों से नायिकाओं का वर्गीकरण किया है। महाकवि देव ने इसका सबसे अधिक विस्तार किया है। उनके मतानुसार नायिकाओं के आठ प्रमुख भेद होते हैं। इन आठों प्रमुख भेदों के अनेक अंतर्भेद होते हैं।

मुख्य रूप से नायिकाओं को ५ वर्गों में विभाजित किया जाता है—

१. जाति-अनुसार, २. धर्म-अनुसार, ३. दशा-अनुसार,
४. अवस्था-अनुसार और ५. गुण-अनुसार।

† आठ भेद नाइका के, बरनत हैं कवि मंत।

भेद भेद-प्रति होत है, अंतरभेद अनंत ॥

जाति, कर्म, गुण, देस अरु, काल, वयक्रम जान।

प्रकृति, सत्व नाइका के, आठौं भेद बखान ॥

—“रसविलास”

‡ महाकवि देव के मतानुसार नायिकाओं के ८ वर्ग होते हैं—जाति, कर्म, गुण, देश, काल, वयक्रम, प्रकृति और सत्व। इनका विवरण इस प्रकार है—

(१) जाति-अनुसार ४ प्रकार की—१. पद्मिनी, २. चित्रिनी, ३. शशिनी, ४. हस्तिनी।

(२) कर्मानुसार ३ प्रकार की—१. स्वकीया, २. परकीया, ३. सामान्या।

(३) गुणानुसार ३ प्रकार की—सत्, रज, तम तीनों गुणों के अनुसार क्रमशः १. उत्तमा, २. मध्यमा और ३. अधमा।

(४) देशानुसार अनेक प्रकार की—जैसे मध्य देश बधू, मगध बधू, कोशल बधू, उत्कल बधू, कलिंग बधू, कामरु बधू, बग बधू आदि।

(५) कालानुसार ८ प्रकार की—१. नवयुवा, २. कलहातरिता, ३. अभिसारिका, ४. विप्रलब्धा, ५. खंडिता, ६. उत्कंडिता, ७. वामकमजा, ८. प्रोषितपतिका।

(६) वयक्रम के अनुसार ३ प्रकार की—१. मुग्धा, २. मध्या, ३. प्रगल्भा।

(७) प्रकृति के अनुसार ३ प्रकार की—१. कफ, २. वात, ३. पित्त।

(८) सत्वानुसार ६ प्रकार की—१. देव, २. किन्नर, ३. गन्धर्व, ४. यक्ष, ५. नर, ६. पिशाच, ७. नाग, ८. कपि, ९. काक आदि।

द्वितीय परिच्छेद

जाति-अनुसार नायिकाएँ



जाति-अनुसार वर्ग के अंतर्गत ४ प्रकार की नायिकाएँ होती हैं—

१. पद्मिनी, २. चित्रिनी, ३. शंखिनी और ४. हस्तिनी

पद्मिनी—अति सुकुमार, लज्जावती, बुद्धिमती, उदारमना, प्रसन्नवदना, स्वर्ण की सी कांति वाली, पद्म की सी गंध वाली, सर्वांग सुंदरी रमणी को पद्मिनी नायिका कहते हैं।

सुबरन-रंग सुकुमारि सबै भामिन के,

अगन उछाह की लहर लहरी रहति ।

भूषन-बसन चारु दसन हैंसन अरु,

नैननि मे प्रेम-रस-प्यास गहरी रहति ॥

‘सोमनाथ’ ग्यारे अलि भामरी भरति रहै,

चहुँधा चकोरन की चौकी ठहरी रहति ।

सरद कौ चंद कैसे कहौ मुख-चंद सम,

छहूँ रितु जाकी छवि छटा छहरी रहति ॥४०॥



सरद के वारिद में इंदु सी लसत ‘देव’,

सुंदर बदन चौदनी सौ चारु चीर है ।

सौंधौ सुधाबिंदु मकरंद सी मुक्त-माल,

लिपित मनोज तन-मंजरी सरिर है ॥

सिल भरी, सबज, सलौनी, सृदु सुसकानि

राजै राजहस गति गुननि गहीर है ।

वेरी चहुँ ओरन ते मोरन की भीर भारी,

मोरन की भीर मे चकोरन की भीर है ॥४१॥

† सुंदर, सहज सुगंध तन, कनक-बरन, सृदु हास ।

रिस, भोजन, रति अति तनिक, यह पद्मिनी बिलास ॥

चित्रिनी—नृत्य, गान, चित्रकला, परिहास आदि में रुचि रखने वाली, चंचल प्रकृति की अल्प लज्जाशीला सुंदरी रमणी को चित्रिनी नायिका कहते हैं† ।

देखी न परत 'देव' देखिवे की परी बान,
 देखि-देखि दूती दिख-साध उपजत है ।
 सरद उदित इंदु बिंद-सी लसत लखै,
 मुदित मुखारबिंद इंदिरा लजत है ॥
 अदभुत ऊख सी, पिऊख सी, मधुर बानि,
 सुनि-सुनि खबननि भूख सी भजत है ।
 मंत्रो करथौ मैं पर तत्री करथौ बैन, पर-
 बिना तार तत्री जीभ जंत्री सी बजत है ॥४२॥

★

गाइ, बजाइ, दिखाइ छवि, भरति हिये में जोति ।
 चलि कबूतरी सी तिया, नैन-पूतरी होति‡ ॥४३॥

★

हैं रहै कमल कमलाकर कमलमुखी,
 फूलनि में फूलिकै खरीपे खिलि जाति है ।
 चित्रनि में चित्र ते विचित्र होति चित्रिनी,
 अनूप चित्रसारी के सरूप हिलि जाति है ॥
 दीपनि समीप दीप-मिखा हैं न पैये 'देव',
 चंदमुखी चोदनी महल मिलि जाति है ।
 द्यौस हू न दीसै सीसमंदिर में सुंदरी
 प्रकास प्रतिबिंबन प्रभा में मिलि जाति है ॥४४॥

† चित्त गीत-कविता रुचै, अचल चित्त, चल दृष्टि ।
 बहिरति रति अति सुरति जल, मुख सुगंध की दृष्टि ॥
 बिरल रोम तन, मदन-गृह, भावत सकल सुवास ।
 मित्र-चित्र-प्रिय चित्रिनी, जानहु केसवदास ॥

—“रसिकप्रिया”

‡ हरिऔध

शखिनी—निर्लज्ज, निःशंक, क्षमारहित, कोपसहित, अधीर
स्वभाव वाली, कृशांगिनी और तीक्ष्ण वचनो वाली सुंदरी-स्त्री को
शखिनी नायिका कहते हैं ।

लाल लसै नख-दंत-कपोल, प्रवाल से ओठनि ऐंठि लचावति ।
भौहन-भाव सुभाव बताइकै, बातन ही सब गात नचावति ॥
औचकई चुटुकीन बजाइ कै, गाइ कै प्यारे कौ प्रेम पचावति ।
रुसि रहै कब हू रिसि कै, कब हू रमनी रस-रंग रचावति ॥४५॥

★

सनख हियौ लखि लाल कौ, यह मन होत संदेह ।
नखन खोदि चाहति कियौ, लालन के हिय गोह ॥ ४६ ॥

★

लाल दुकूल सजै रुचि सो, सब ही सो निसंक न लाज रही गहै ।
और की औरहि बात कहै, 'ससिनाथ' कितौ समुझाइ सखी कहै ॥
पौछत स्वेदन अंगनि तें, सु अनग-कला अति ही चित मे चहै ।
जानि परै न कछु उर की, निसि-वासर बाम की भौह चढ़ी रहै ॥४७॥

★

अनख करति, तनिकै चलति, लजति न नैकौ बाल ।
देखि निलजता आप ही, सलज बनत है लाल' ॥४८॥

★

कोप भरी लघु गुप्त परी, उर बात चलै तरु डार-सी डोलै ।
काम छरी-सी लगै उछरी सी, फिरै मछरी सी सुभाव बिलोलै ॥
भौह चढी, कुटिलै अँखिआँ, अति तीखी कटाछिन चित न खोलै ।
प्यारे सो रुसि रहै बिन दोस, बिना रिस-रोस रिसानी सी डोलै ॥४९॥

† निलज, सलज, तन रोम अति, नख-छत सो नित प्रीति ।

लाल दुकूल, न संक चित, यहि सखिनी की रीति ॥

—“रसपीयूषनिधि”

* हरिश्चंद्र

हस्तिनी—कटु भाषिणी, नाटे कद की और अत्यंत लोमयुक्त स्थूले शरीर वाली, गज-गामिनी कामिनी को हस्तिनी नायिका कहते हैं।

गुलगुली गोल मखतूल की सी गैदुआ,
गडै न गुडी जी मे जऊ करत दिठाई सी ।
चोर की सी गठरी छुटै न छतियाँ ते,
मुख लागत अधियारे हू मे लागत मिठाई सी ॥
भूखे को सौ भोजन, न भूखत सवाद भलौ,
नैक हूँ उमैठै नए नेह की इठाई सी ।
सुरत संजोग कौ नही न करै निसि-दिन,
भोग की गुप्त गुपचुप की मिठाई सी ॥ ५० ॥

★

रंगनि मोटी गोरटी, जोवन-मद पँडति ।
सखिन संग गज-गामिनी, चली ठवनि सों जाति ॥ ५१ ॥

★

रोस-रुखाई भरी अँखियाँ, रस राखै नही सखिअँन सों ढीठै ।
भोजन भूरि भरी मदनजुर. भूरे से बारनि बानि अनीठै ॥
चंचल चित्त छकी मद सों, छिन एक न छाती ते छाडति ईठै ।
काम कै घात अघाति नहीं, दिन-रात नही रति-रंग उबीठै ॥ ५२ ॥

★

नख-सिख-भारीपन भग्यौ. रंग-रूप अललाम ।
नाहि काम हू तें सरत, काम-भरी कौ काम* ॥ ५३ ॥

† थूल चरन कर, अवर. कटि भारी कुच, भुज, जानु ।

ठिंगनी, बहु भोजन-गमन, हस्तिनि तिय पहिचानु ॥

—“भवानीविलास”

* हरिऔध

तृतीय परिच्छेद धर्मानुसार नायिकाएँ



नायिका के धर्मानुसार वर्ग के अंतर्गत ३ प्रकार की नायिकाएँ होती हैं—१. स्वकीया, २. परकीया और ३. सामान्या ।

सर्वांगपूर्ण नायिका में ८ गुण होते हैं, जिनके कारण वह अष्टांगवती नायिका कहलाती है—१. यौवन, २. रूप, ३. गुण, ४. शील, ५. प्रेम, ६. कुल, ७. वैभव और ८. भूषण† ।

महाकवि देव ने स्वकीया को ही अष्टांगवती नायिका माना है* । वास्तव में स्वकीया नायिका में ही समस्त गुणों का विकास हो सकता है । इस वर्ग की अन्य नायिकाएँ—परकीया और सामान्या में उपर्युक्त सभी गुण नहीं हो सकते हैं । परकीया में अन्य गुण हो सकते हैं, किंतु उसमें 'कुल' का अभाव होता है । सामान्या में शील, कुल, प्रेम आदि सद्गुणों का सर्वथा अभाव होता है‡ । वह अपने रूप और गुणों की मोहिनी डाल कर और कृत्रिम प्रेम दिखला कर धनी युवकों को अपने चंगुल में फँसाती हुई उनके धन को बटोरा करती है ।

† जा कामिनि में देखिए, पूरन आठौ अंग ।

ताहि बखानै नाइका, त्रिभुवन मोहन रंग ॥

पहिलै जोवन, रूप, गुन, सील, प्रेम पहिचानि ।

कुल, वैभव, भूषन बहुरि, आठौ अंग बखानि ॥—महाकवि देव

* भूषन, जोवन, रूप, गुन, विभव सील, कुल, प्रेम ।

आठौ अंग सुकियाहि के, परकिय बिन कुल-नेम ॥

मामान्या बिन सील, कुल, प्रेम, विभौ पहिचानि ।

भूषन, जोवन, रूप, गुन, सहित उत्तमा जान ॥—'भवानी-त्रिलास'

‡ रूप, गुन, जोवन और सील, कुल, प्रेम, विभौ,

भूषन जो आठौ अंग सुकिया के जानिए ।

एक कुल ईन परकीया अंग सात,

कुल, सील, प्रेम विभौ बिन मामान्या बखानिए ॥

—“सुख-सागर-तरंग”

स्वकीया नायिका

स्वकीया—जो विवाहिता स्त्री मन, वचन और कर्म से सदा अपने पति के अनुकूल रहे और पर-पुरुष की ओर भूल कर भी आकर्षित न हो, उसे स्वकीया नायिका कहते हैं† ।

मध्य कालीन राजा-महाराजाओं के अंतःपुर में विवाहिता स्त्रियों के अतिरिक्त कुछ 'भोगभामिनी' (रखेली) हुआ करती थीं। उनको भी नायिकाभेद के आचार्यों ने स्वकीया ही माना है* ।

(अष्टांगवती नायिका)

सुंदर जोवन, रूप अनूप, महा गुण-ग्यान की रासि रची तू ।
सीलभरी कुल-लोक उज्यारी है, नागरि पूरन प्रेम-पची तू ॥
भाग की भौन, सुहाग सो भूषित भूमि की भूपन, सौची सची तू ।
आठहु अग तरंगित रंग, सबै रुचि संचि विरंचि रची तू ॥२४॥

★

सील भरी बोलति सुसील बानी सब ही सो,
‘देव’ गुरु-जनन की लाज जो लची रही ॥
कोमल कपोल पर दीसै हृदी सी दुति,
चूनी सी सकुचि मुसुकानि मे मची रही ॥
लालन की लाली अँखियन मे दिखाई देत,
अंतर अनंतर ही प्रेम सो पची रही ।
कुँदरि किमोरी मुख मोरी करै सखिन सो,
चोरा-चोरी चित्त गति रोरी सी रची रही ॥२५॥

† जाके तन, मन, वचन करि, निज नायक सो प्रीति ।

विमुख मद्रा पर-पुरुष सो, सो दुक्या की राति ॥

—‘भावविलास’

श्रामानिन के भौन जो, भोग-भामिनी और ।

तिन हूँ सुकियाहु मे, गनै हूकवि सिरमौर ॥

—‘शृंगारनिर्णय’

सील सखील सखौनी सुहागिनि, सो कहै भामिनि भौहन ऐंठी ।
गोतिन में गुन-ग्यान तुला चढ़ि, सौतिन में अभिमान अमैठी ॥
'देव' पतिव्रत पाटी पढ़ी, न कढ़ी कबहू पिय के हिय पैठी ।
लज करै गुरु लोगन में, अरु काज करै घर में घर बैठी ॥५६॥

★

सासु जेठानिन सो दबती रहै, लीने रहै रुख यो ननदी कौ ।
दासिन सो सतरात नही, 'हरिचंद' करै सनमान सभी कौ ॥
पीय को दच्छिन जानि न दूसत, चौगुनौ चाव बढ़ै वा लली कौ ।
सौतिन हू कौ असीसै सुहाग, भरै कर आपने सेंदुर-टीकौ ॥५७॥

★

भाब भर्यौ सिगरे ब्रज सोर, सराहत तेरेइ सील सुभाइन ।
दुःख हेरात सिरात हियौ, गहिरात चितैवे कौ चित्त चबाइन ॥
परी अहो ठकुराइन मेरी, सु चेरी हौं तेरी, परौं इन पाँइन ।
सौतिन हू की अँखिअँ सुख पावती, तो मुख देखि सखी सुखदाइन ॥५८॥

★

बचना सुधा सी, बसुधा सी त्यों सहनसील,
चंद की कला सी ऐसी सोभा मरसति है ।
कुल की कला सी, सील-सिंधु कमला सी,
गुरु-लोगन की दासी सी, न सेवा अरसति है ॥
नजर निचोहैं कहूँ हेरत न सौहै 'बैनी',
सदा पतिव्रतन के पौड़ परसति है ।
सुखद सु लाभ भरी, पति-अनुराग भरी,
भाग भरी भामिनी भलाइ दरसत है ॥५९॥

★

दीप सम दीपति उदीपत अनूप, निज-
रूप के सरूप-रति रूपहि हरति है ।
कहै 'परताप' करि मजन सरस मन-
रंजन पिया के दग अंजन धरति है ॥
ताही समैं दूती दिखरायौ आनि भौरि लिखि,
निरखि उदास हूँ उसाननि भरति है ।
सारस-बिलोचनि विचार चित्त चेत,
राजहंसन के बंस की सिपारस करत है ॥६०॥

कवि 'देव' हर्षे बिछिआनु बजाइ, लजाइ रहै पग डोलनि पै ।
गुरु-दीठि बचाइ लचाइ कै लोचन, सोचनि सो मुख खोलनि पै ॥
हँसि हौस भरे अनुकूल बिलोकनि, लाल के लोल कपोलनि पै ।
बलि हो बलिहारी हौ बार हजारन, बाल की कोमल बोलनि पै ॥६१॥

★

प्रेम सु सेवन मे गुरु-लोगनि देविन देवन के सम एरी ।
'बेनि प्रवीन' लसै अधरानि मे, कोमल बोल सँकोच सनेरी ॥
प्रीतम मे सुख प्रीति सराहिऐ, कै गुन-सील-सुभाइ घनेरी ।
को सिय तेरी कहै उपमा, तिय तोसी तुही, तिहुँ लोक उजेरी ॥६२॥

★

पूजती और सबै बनिता, तिनके मन में अति प्रीति सुहाति है ।
कौन की सीख धरी मन मे, चलि कै बलि काहै नजीक न जानि है ॥
औसर या बरसायत कौ, वर सायत ऐसी न और लखाति है ।
कौन सुभाव री तेरौ परचौ, बर पूजत काहै हिउँ सकुचाति है ॥६३॥

★

सारद सी मनि-मंदिर मे, नख ते सिख लों सुषमा रही फेलि है ।
मंद हँसी 'लछिराम' सु ओठ लों, रोस न सापने हू मन मेलि है ॥
प्रीतम के रुख राखिवे को, गिरजा सो लई बरदान सकेलि है ।
भाग भरी, अनुराग ठरी, पट भीतर मानों सोहाग की बेलि है ॥६४॥

★

देखति नैन की कोरन लो, अधरानि ही में मुसक्यानि कौ थानौ ।
बोखति बोख सो कंठ ही में, चखतै पग पै न कहूँ अहरानौ ॥
'सुंदर' रोष नहीं सपने अरु, जो भयौ तौ मन ही मे बिलानौ ।
मैं बसुधाए सुधाई सबै, पर याकी सुधाई सुधाई है मानौ ॥६५॥

★

(स्वकीया के १२ आभूषण)

सील और लाज मिठास बतान मे, तैसी द्वाइ स्वधर्म मयूखन ।
साधुता और पतिव्रत नैम, मिताई सबै सों, न काहू कौ दूषन ॥
तैसी बिनै औ अचार डिमा, गुरु लोगन सेइवे कौ बिन दूखन ।
पई तियान के तीरथ से, सुख-कारति कारी हैं द्वादस भूषन ॥६६॥

स्वकीया नायिका के भेद—

व्यक्रम से स्वकीया नायिका के निम्न लिखित ३ भेद होते हैं ‡—

१-मुग्धा, २-मध्या, ३-प्रौढा ।

‡ (१) देव और दास आदि कई आचार्यों ने मुग्धा, मध्या और प्रौढा नायिकाओं को स्वकीया के भेद न मान कर व्यक्रम के अनुसार नायिकाओं के पृथक् वर्ग के अंतर्गत माना है और इन तीनों नायिकाओं को परकीया और सामान्या में भी लिखा है । यथा—

प्रथम सुकीया, पुनि परकीया, इक सामान्य बखानी तीया ।

ते पुनि तीनि-तीनि परकार, मुग्धा, मध्या, प्रौढ बिहार ॥

—नंददास कृत 'रसमंजरी'

किंतु केशवदास, चिंतामणि, मतिराम, रसलीन और पद्माकर आदि ने मुग्धा, मध्या और प्रौढा नायिकाओं को स्वकीया के ही भेद माने हैं । नायिकाओं के अविकाश कवियों को यही मत मान्य है ।

(२) देव ने स्वकीया के अश भेद से ५ भेद किये हैं और व्यक्रमानुसार उनको इस प्रकार विभाजित किया है —

१—देवी (७ वर्ष)

२—देव गंधर्वी (१४ वर्ष)

३—गंधर्वी (२१ वर्ष)

४—गंधर्व मानुषी (२८ वर्ष)

५—मानुषी (३५ वर्ष) .

इनमें देवी को पूज्य, देव-गंधर्वी, गंधर्वी और गंधर्व-मानुषी को भोग-विलास योग्य तथा मानुषी को कुलधर्म एवं संतान सुखार्थ लिखा है । देव के मतानुसार ३५ वर्ष तक की स्त्री तरुणी कहलाती है ।

—“भावनी विलास”

(३) दास ने स्वकीया नायिका के ३ भेद किये हैं—

१-पतिव्रता, २-उद्धारिज, ३-माधुर्ज ।

(४) रसलीन ने स्वकीया और परकीया के ३ भेद और किये हैं, जो सच से निराले हैं । यथा—

१. कामवती, २. अनुरागिनी, ३. प्रेमासक्ता ।

मुग्धा—जिसके शरीर में नव यौवन का संचार हो रहा हो, ऐसी लज्जाशीला किशोरी को मुग्धा नायिका कहते हैं[†] ।

ए अलि ! जा बलि के अधरान में, आनि चढ़ी कछु माधुरई सी ।
ज्यों 'पदमाकर' माधुरी त्यो कुच, दोउन की बढ़ती उनई सी ॥
ज्यो कुच त्यो ही नितंब बढे कछु, ज्यो ही नितंब त्यो चातुरई सी ।
जानी न ऐसी चढा-चढ़ि में, केहिधौ कटि बीच ही लूट लई सी ॥६७॥

★

धीरी भई जाति गति, नीरी भई जाति मति,
पीरी भाई जाति ज्योति, दीपक ज्यों रतियाँ ।
'मनसुख' सौनी जाति, लंक लैं बिलौनी जाति,
त्रिबली मिलौनी सात रोमन की पतियाँ ॥
बैस सरसानी जाति, काम-सर सानी जाति,
सुधा सरसानी जाति, सानी जाति बतियाँ ।
बढ़ी जाति अँलियाँ, सु मढ़ी जाति मैं बस,
चढ़ी जाति भौ है, कित कही जाति अँलियाँ ॥६८॥

★

सिसुताई अजौ न गई तन तें, तऊ जोबन-जोति बटोरै लगी ।
सुनिकै चरचा 'हरिचंद' की कान कछुक दै, भौंह मरोरै लगी ॥
बचि सासु जेठानिन सों, पिय तें दुरि धूँघटि में दग जोरै लगी ।
दुलही उलही सब अगन ते, दिन द्वै ते पिऊष निचोरै लगी ॥६९॥

★

लीन नितंबन नें गुरुता कटि की, कटि नें तिनकी कृसताई ।
रोमन बैनन की रिजुता लई. बैनन रोमन की कुटिलाई ॥
पाँथन नैनन मंद गती गहि, नैनन पाँथन की चपलाई ।
यों गुन-आगरि नागरि-अंगन, आपस में हठि लूटि मचाई ॥७०॥

† अभिनव जोबन-आगमन, जाके तन में होइ ।

ताको मुग्धा कहत है, कवि-कोविद सब कोइ ॥

—“रसराज”

तिय तन अरुन दिनेस उदयौ है आनि,
 साँझ सिसुताई के तिमिर सब भागे हैं ।
 फैलि रही अंबर मे चहूँ ओर अरुनाई,
 फूल नैन कंज मकरंद रस-पागे हैं ॥
 'उदैनाथ' कंत के मनोरथ हू पथै चले,
 चित चतुराई तजि आरस को जागे हैं ।
 रूप के सरोवर मे नाह-नैन न्हान लागे
 सौतिन के मान तेऊ दान होन लागे हैं ॥ ७१ ॥

*

दौरि चली कुसुम-चरन सुकुमारताई,
 चरन चले है गरुबाई के पथन को ।
 गरुबाई छितियाँ को, छितियाँ उँचाई को,
 उँचाई चोज रममय बास अरथन को ॥
 कहै 'हरिकेस' सिसुताई के चलाचले मे,
 कहा कहौं चलौ चित लाज के सथन को ।
 लाज चली आँखिन को, आँखि चली कानन को,
 कान चले चौकत से चाले के कथन को ॥ ७२ ॥

मनोहर अंग की भूटी रची, सिसुताई जराई अनंग-कलार ।
 मनै कवि 'संभु' यों देह-सी दीपति, ज्वाला अंगार-से लाल के हार ॥
 बड़े सिर बार यो धूम की धार, धरयो तर भाजन नाभि सुधार ।
 रुमावलि कंचन-कुंभ-उरोजनि तें, मनो चवै चली आसब-धार ॥ ७३ ॥

*

ज्यो-ज्यो होत भृकुटी कुटिल धनु ऐनमैन,
 त्यो-त्यो मृग नैन लखि कानन परात हैं ।
 ज्यो-ज्यो उरसिज अनुसरै हर मूरति लो,
 त्यो-त्यो मनसिज-बान गुन मे समात है ॥
 ज्यो-ज्यो 'नीलकंठ' कटि सिंह छीन होत त्यो-त्यो,
 जंघन गयंद पीनता को सरसात हैं ।
 ज्यों-ज्यों मुख होत बिधु भाई की झकोर झल,
 त्यों-त्यो हरि-लोचन चकोर होत जात हैं ॥ ७४ ॥

बिछुरन लागे बालपन के अग्रानप,
 सखीन सों सग्रानप की बतियाँ गढ़ै लगी ।
 दग लागे तिरछे, चलन पग मद लागी,
 उर मे कलूक उकसन सी चढ़ै लगी ॥
 अंगन मे आई तरुनाई की भलक,
 लरिकआई अब देह ते हरै-हरै कढ़ै लगी ।
 होन लागी कटि अब छटिकै छला सी,
 द्वैज चंद की कला सी दिन-दीपति बढै लगी ॥७५॥

★

देखत प्रीतम को दुरिहु, दग कज ये पावें निकास बनेरौ ।
 त्यो कुच कोकन के जुग सावक, चाहे 'कुमार' सकास बसेरौ ॥
 जाबक सौ रंग, सौति के नैन चख्यौ घट तेरौ अग्रान अंधेरौ ।
 गातन कैवें दुरायौ है जात, प्रभात सौ जोबन रूप-उजेरौ ॥७६॥

★

थापति सी चातुरी, सरापति सी लक, अरु
 आपति सी पारति अरी अग्रानपन मे ।
 कहै 'पदमाकर' सु ओप दरसावत सी,
 लावत सी नैसुक उचाई उरजन मे ॥
 लाजहि बुलावति सी, सखिन रिभावत सी,
 नावति सी प्रीति अति प्रीतम के उर मे ।
 आँखिन असीसत सी, दीसति सी मंद-मंद,
 आवति चली यो तरुनाई तिय-तन में ॥७७॥

★

ढरकन चंद-मुख मंद मुसकानि सुधा,
 बाढी रस आनंद की चोप चखियाँ में ।
 तंग होत आँगी ज्यों-ज्यों उरज उतंग होत,
 प्रगटी अनग काथा कंज-पखियाँ मे ॥
 अंग-अंग फैलत तरंग नव जोबन की,
 छकी सी निहारति नवेली सखियाँ में ।
 कटि कूसताई औ नितंब पीनताई छाई,
 पाँथ धिरताई, चंचलाई आँखियाँ मे ॥७८॥

फरकन लागीं आँख ढरकन कानन लौं,
 हरकन लागीं लाज पलकें सुचैनी की ।
 भर लाग्यौ परन उरोजन मे 'रघुनाथ'
 राजी रोमराजी भांति कल अलि-सैनी की ॥
 कटि लागीं घटन, पटन लागीं मुख-सोभा,
 अटन सुबास लागीं आस स्वाँस पैनी की ।
 अंगन मे दुति चारु सौने सी जगन लागीं,
 एड़िन लगन लागीं बैनी मृगनैनी की ॥७६॥

*

मृगन की, मीनन की चंचलाई चखन मे,
 मोतिन की, हीरन की जोति है रदन मे ।
 ओठन में आई है मिठाई सब सिमिट कै,
 दाख मे, न ऊख में, न स्वाद सरदन मे ॥
 महाकवि 'बालम' के खुले हैं विसाल भाग,
 रातो दिन राजति मसाल सी सदन में ।
 बिधना गुलाब कौ सौ अरक उतारि मानो,
 चंद की निकाई राखी प्यारी के बदन में ॥८०॥

नि

आनन मे मुसिकानि सुहावनी, बंकुरता अँखियाँ छई है ।
 बैन खुले, मुकुले उरजात, जकी हिय की गति कौन ठई है ॥
 'दास' प्रभा उछरै सब अंग, सुरग सुबासता केलि मई है ।
 चंदमुखी तन पाय नवीनौ, भई तरुनाई अनंदमई है ॥८१॥

*

नवल वधू-तन तरनई, नई रही है छाई ।
 दै चसमा चख चतुरई लघु सिसुता लखि जाई* ॥ ८२ ॥
 अभिनव जोबन-जोति सों, जगमग होत बिलास ।
 सिय के तन पानिप बढ़ै, पिय के नैनन प्यासा ॥ ८३ ॥
 सौतिन-मुख निसि कमल मे पिय-चख भए चकोर ।
 गुरुजन-मन सागर भए, लखि दुखहिन मुख ओर† ॥ ८४ ॥

* कृपाराम † मतिराम ‡ रसलीन

(वय-संधि मुग्धा नायिका*)

जल मे दुरी है, जैसे कमल की कलिका द्वै,
 उरजन ऐसे दीन्ही सरुचि दिखाई सी ।
 गग' कवि साँझ सी सोहाई तरुनाई आई,
 लरकाई माँझ कछु मैं न लखि पाई सी ॥
 स्यामा कौ सखौनौ तन, तामे दिन द्वैक माँझ,
 फिरी ही चहत मनमथ की दुहाई सी ।
 सीसी मे सखिल जैसे, सुमन पराग तैसैं,
 सिसुता में झलकति जोबन की झौंई सी ॥८५॥

*

अंग मिल्यौ चतुरंग चमू दोऊ, द्वै नद संग तरंग ज्यो ठाढ़्यौ ।
 हैं उमँगें उर ज्यों उरज्यौ, दुरजौ दुर जोग दुहूँ सर काढ़्यौ ॥
 देव' दुहूँ दिसि दौरि दुहूँ की, दुहूँ कौ धिवाद बराबर बाढ़्यौ ।
 जोवन धाड़ पर्यौ तन में, पकर्यौ मनो बालपन्यौ गढ़ गाढ्यौ ॥८६॥

*

कीती लरिकाई न, झलक तरुनाई आई,
 निरखै सुहाई अग औरैं औप अति है ।
 तुला चल संक्रमन की सी दिन राति कौ उ-
 घटि-बढ़ि है न संधि ठीक ठहरति है ॥
 दरस कौ अत ज्यो उजेरौ न अधेरौ पाख,
 'सोमनाथ' उपमा प्रमान परसति है ।
 दोऊ बैस-संधि मे छबीली प्रानप्यारी वह,
 अरुन उदै की कंज-कली सी लसति है ॥८७॥

*

खिझवति, हँसति, लजाति पुन, चितवति, चमकति हाल ।
 सिसुता जोबन की झलक, भरे बधू-तन ख्यालां ॥८८॥

* देव आदि कुछ आचार्यों ने मुग्धा नायिका का सूक्ष्म विवेचन करते हुए उसका 'वयसंधि' नामक एक और भेद लिखा है। शैशव के प्रस्थान और यौवन-अङ्गमन के संधि-काल वाली नायिका को 'वयसंधि' कहते हैं। यथा—

“लरिकाई-तरुनाई की संधि जहाँ ठहराई ॥”

† कृपाराम

(१) अज्ञात यौवना—जिस मुग्धा नायिका को अपने यौवन-
आगमन का ज्ञान न हो, ऐसी अवस्था वाली किशोरी को
अज्ञात यौवना कहते हैं ।

खेलन चोर-मिहीचनी आजु, गई हुती पाड़िले घौस की नाई ।
आली ! कहा कहौ एक भई, 'मतिराम' नई यह बात तहाँई ॥
एकहि भौन दुरे इक सगहि, अंग सों अंग छुवायौ कन्हाई ।
कंप छुट्यौ, घन स्वेद बढ्यौ, तन रोम उठे, अँखियाँ भरि आई ॥८१॥

★

द्वार गई तहँ मेह मिल्यौ, हरि कामरी ओढै हुत्यौ उत वैसौ ।
आतुर आई कै अंग छपाइ, बचाइ कै मोहि गयौ जस लै सौ ॥
'दास' न ऐसी लख्यौ कबहुँ सु अचंभौ भयौ वहि औसर जैसौ ।
सेद बढ्यौ त्यो लग्यौ तन-कंपन, रौम उठ्यौ यह कारन कैसौ ॥८०॥

★

'कोलिल कूक सुनै उमँगै मन, और सुभाउ भयौ अब ही कौ ।
फूले लता-दुम कुंज सुहात, लगै अलि-गुजन भावतौ जी कौ ॥
कारन कौन भयौ सजनी ! यह, खेल लगे गुडियान कौ फीकौ ।
काहे तें साँवरौ अँग छबीलौ, लगै दिन द्वैक ते नैनन नीकौ ॥८१॥

★

नैकौ सुहाति न, जाति गडी, उर पीर बडी, गहि गाढ़ी गडी क्यो ।
खैची खयून खरी खरकै नहि, नीठि खुलै खुभि डीठि घसी क्यो ॥
'देव' कहा कहौ तोसो, जु मोसों, तैं आज करी बिन काज हँसौ क्यो ।
गाँठीऐ तोरि तनी छिनु छोरि दै, छातीऐ कंचुकी ऐचि कसी क्यो ॥८२॥

† जब यौवन का आगमन, जानि परत नहि जाहि ।

सो अज्ञात यौवन तिया, भाषत सुकवि सराहि ॥ —“जगद्विनोद”

सखि जब सर-स्नान लै जाही । फूले अमलन कमलन माँही ॥
पौछै डारति रोम की धारा । मानति बाल सिबाल की डारा ॥
चंचल नैन चलत जब कौने । सरद-कमल-दल हू तैं लौने ॥
तिनिहि सबन बिच पकरयौ चहै । अंबुज-दल से लागै, कहै ॥
इहि प्रकार बरमै छवि-मुवा । जो अग्यात जोबना मुग्धा ॥

—नंददास कृत “रसमजरी”

कारे चीकने हैं कछु काहै केस आपु ही तें,
 बढि-बढि बिथुरि छवा लो लागे छलकन ।
 बार-बार बदन बिलोकन लगी है सौति,
 औरै तौर सौरभ समूह लागे हलकन ॥
 कौन धौ बलाय बसी अंग मे हमारे, हमे
 देखिबे को कान्ह 'हनुमान' लागे ललकन ।
 जंघ लागी सटन, घटन लागी लक, औ
 बदन लागी आखे री नितब लागे दलकन ॥ ६३ ॥

*

कैसीधौं निकाई मरसाई नन मेरे, मोहि
 हेरे बिन, एरी ! हरि लागे अब अहकन ।
 गति गरुवानी, मति औरै मरसानी कछु,
 कैमै नैन कानन लौ लागे बीर ! बहकन ॥
 पीर होत उर में, न धीर धरघौ जात मोपै,
 कौन हेत लागी 'हनुमान' लक लहकन ।
 आहि-आहि कै कै उठै कांपि-कांपि सौत काहै,
 चाहि-चाहि मो मुख चकोर लागे चहकन ॥ ६४ ॥

*

बबा सामुहे में चुप साधै रहैं, भलौ भाई कौ संग निहोरत हैं ।
 'लझिराम' सुरंग सजे पटुका, सिरपेच को बाँधत-झोरत हैं ॥
 चलैं संग हमारे न खेलिबे को, कर को छिपें भोंहै मरोरत है ।
 ए कहाँ रहैं भगभी ! बतइदैं तू, जो हमैं लखि यो मुख मोरत हैं ॥ ६५ ॥

*

सखि तैहू हुतौ निसि देखत ही, जिन पै वै भई ही निछावरियाँ ।
 तिन पानि गह्यौ हुतौ मेरौ तबै, सब गाइ उठी ब्रज गाँवरियाँ ॥
 असुआँ भरि आवत मेरे अजौं, सुमिरैं उनकी पग पाँवरियाँ ।
 कहि को हैं हमारे वे कौन लगैं, जिनके सँग खेली ही भाँवरियाँ ॥ ६६ ॥

*

काल्हई गूँथि बबा कि सौं मै, गजमोतिन की पहिरी अति आला ।
 आई कहाँ तें इहाँ पुखराज कौ, संग गई थमुना तट बाला ॥
 न्हात उत्तारी हौ 'बेनीप्रवीन', हँसै सुनि बैनन नैन रसाला ।
 जानति ना अँग की बदली, सब सों बदली-बदली कहै माला ॥ ६७ ॥

जैसिए बताइ दई, अंगन नपाइ दई,
 तैसिए बनाइ दई, कौन चल छैहों मै ।
 गिरिहै सो जाँचि लीजै, बूटिन सु बाँचि लीजै,
 बाँचि लीजै 'सेवक' लिखे कौ न दुरैहो मै ॥
 एहो ठकुराइन ! जनाइ ना मुहुँ को भेद,
 संग की खेलाइन उरहानौ न लैहो मै ।
 घाँघरे की अटनि बही सो फेर देउ, तासो
 कंचुकी की घटनि सु पूरी करि दैहो मै ॥ १८ ॥

★

अति चाह भरी जमुना-जल को, बरजे पर हू नित ऐवौ करै ।
 सखि की सुख-सीख सुने न कछु, अपनी कहिकै मुसकैवौ करै ॥
 दुति दूनी बढ़ाय 'गुलाब' जबै, गुरुलोगन ते न रुकैवौ करै ।
 नबनागरि रूप उजागरि सो, भरि गागरि क्यों टरकैवौ करै ॥ १९ ॥

★

आज सुभाइन ही गई बाग, विलोकि प्रसून की पाँति रही पंगि ।
 ताही समै तहँ आए गुपाल, तिन्हैं लखि औरौ गयौ हियरौ ठगि ॥
 पै 'द्विजदेव' न जानि परचौ धौ, कहा तिहिँ काल परे अँसुआँ जगि ।
 तू जो कहै सखि ! लौनों सरूप, सो मो अँखियान मे लौनी गई लगि ॥ १०० ॥

★

फूली कुंज-क्यारिन मे मालती मयंक लसी,
 पगन मे लिऐ दुति चंपकन लीनी क्यों ।
 संग की सहेलिन की कटि जो निहारि देखौ,
 मेरी दिन-राति जाति होति कटि छीनी क्यों ॥
 'ग्वाल' कवि चुंबक अचानक दबाइ हार,
 माल कों मिलाइ पै सुवास-रस-भीनी क्यों ।
 देखि नथुनी मे रज राजत दुनी में बीर !
 मेरी नथुनी में चुनी तीन पोहि दीनी क्यों ॥ १०१ ॥

★

अधर परसि मीठी भई, दई हाथ तें डारि ।
 लावति दतुअनि ऊख की, नोखी खिजमतिगारि ॥ १०२ ॥

† गागर में अपने नेत्रों के प्रतिविम्ब को मञ्जुलियाँ समझ कर उसके जल को डाल देने से व्यंग्यार्थ द्वारा 'अज्ञात गौवना' है । ५ बिहारी

(२) ज्ञात यौवना—जब सुग्धा नायिका को अपने यौवन का ज्ञान होने लगता है, तब उसे ज्ञात यौवना कहते हैं* ।

छटिकै कटि रंचक छीन भई, गति नैननि की तिरछान लगी ।
‘ससिनाथ’ कहै उर ऊपर ते, अँचरा उवरे ते लज्जान लगी ॥
लरिकार्ई के खेलि पड़ेलि कळूक, सयानि सखीन पत्न्यान लगी ।
पिय-नाम सुनै तिय द्यौसक तें, दुरिकै-मुरिकै मुसक्यान लगी ॥१०३॥

★

आनन मिकोर गुडिआनन के खेलन तें
सौरभ लगाइ चढ़ि चौकी पै बिभाती है ।
बारन को प्यारी अति प्यार ते सुधारि,
हिण्-हारन के धारन की प्रीति सरसाती है ॥
कहै ‘हनुमान’ सखियों ते दुराइ,
अँखियों कों नचैवै, लै मुकुर मुसकाती है ।
सु भरे सुबासन ते बासन बनाइ चारु,
उभरे उरोजन को हेरि हरासाती है ॥१०४॥

★

नापत ही अँगुरीन मों बामग, बीतौ बनी न बनाय कै हारी ।
न्यो कह ‘भानु’ कसी कितनी, पर होत है आपहि सो अविकारी ॥
री सजनी ! कुच औ कटि की, बढ़ती-घटती लखि बात विचारी ।
कचुकी मेरी भई बलि-संपति, द्रोपति-सारी सी सारी हनारी ॥१०५॥

★

खेलत संग कुमारन के, सुकुमारि कळू सकुची जिय माँही ।
काम-कला प्रगटी अँग-अँग, बिलोकि हँसी अपनी परछाँही ॥
‘ब्रह्म’ भनै न रहै उर अंचल, नू छिन-ही-छिन डंपत काँही ।
डारति हौ सिव के सिर अंबर, ए तौ दिगबर राखत नाँही ॥ १०६ ॥

★

इतै-उतै सकुचत चितै, चलत डुलावति बाँह ।
दीठि बचाय सखीन की, छिनक निहारति छाँह † ॥ १०७ ॥

* निज तन यौवन—आगमन, जानि परत है जाहि ।

कवि-कोविद सब कहत हैं, ज्ञात यौवना ताहि ॥—“रसरज”

† मतिराम ।

फरकै लगिं खंजन सी अँखियाँ, भरि भायन भौहै मरोरै लगि ।
 अँगिराइ कछु अँगिया की तनी, छवि छाकि छिनौ छिन छोरे लगि ॥
 बलि जैवै परै 'द्विजराज' कहै, मन मौज मनोज हिलोर लगि ।
 बतिथॉन मे आनंद घोरै लगि, दिन द्वै तें पियूष निचोरै लगि ॥१०८॥

★

अब तौ तिथ बैठि इकंत सखीन सो, कोक-कथानि बिथोरै लगि ।
 सुनि सौतिन के गुन की चरचा, 'द्विजजू' तिथ भौह मरोरै लगि ॥
 नैनदी औ जिठानि सो दुरिकै, रति-भौन मे जा, तन तोरै लगि ।
 अभिलाष भरे पिय-खौननि मे, दिन द्वै ते पियूष निचोरै लगि ॥१०९॥

★

खेलन कौ रम छोंडि दियौ, दिन द्वैक तें राति कहाँ बसती हौ ।
 'मंडन' अंग सम्हारन को नित चदन केसरि लै घसती हौ ॥
 छाती निहारि-निहारि कछु, अपनी अँगिआ की तनी कसती हौ ।
 तो तन कौ अचरा उधरौ, कहौ मो तन ताकि कहाँ हँसती हौ ॥११०॥

★

पौरि तें दौरि परै लरिकानि ते, त्यो कहि कानि कछु बहरावै ।
 तगरी दै-दै सब ही सो हँसै अरु, गारी दै-दै अँसुआँ दहगावै ॥
 आली के अंग अबीर लपेटति, दूरि दुरै न कहूँ ठहरावै ।
 औरन के अचरा झकझोरि कै, झीन पटा अपनौ झहरावै ॥१११॥

★

चाव सो चटक रचि-रचि कै रुचिर चीर,
 रुचि सो पहिरि कै बिनोद बरसति जाति ।
 कसि-कसि कंचुकी विमल बँगला मे बैठि,
 सौतिन के सकल सुहाग करषति जाति ॥
 निरखि-निरखि कर पौँइन की लागी 'हनु-
 मान' तरुनाई की निकाई परखति जाति ।
 बेरि-बेरि सुकुर बिलोकति धरति फेर,
 आंचर उघारि हेरि-हेरि हरषति जाति ॥ ११२ ॥

★

करि चंदन की खौरि, दै बदन बैदी भाल ।
 दरप भरी दिन द्वैक तें, दरपन देखति बाल ॥ ११३ ॥

ज्ञात यौवना के भेद

ज्ञात यौवना मुग्धा नायिका के दो भेद होते हैं ॥—

(१) नबोढ़ा, (२) विश्रब्ध नबोढ़ा ।

नबोढ़ा—भय और लज्जा के कारण जो नव विवाहिता नायिका रति के प्रति अरुचि प्रकट करे, उसे नबोढ़ा कहते हैं ॥

राजि रहीं उलही छवि सां दुलही दुरि देखत हो फुलबारी ।
त्यो ' पदमाकर ' बोलै, हँसै, हुलसै, बिलसै मुखचंद उज्यारी ॥
ऐसे समय कहूँ चातक की धुनि, कान परी डरपी वह प्यारी ।
चौकि चकी-चमकी चित मे, चुप हूँ रही चचल अचल बारी ॥११४॥

★

साथ सखी के नई दुलही को, भयौ हरि को हियौ हेरि हिमचल ।
आइ गए ' मतिराम ' तहाँ घर, जानि इकत अनद ते चचल ॥
देखत ही नंदलाल को, बाल के पूरि रहे अंसुअँन दगचल ।
बात कही न गई, सु रहीं गहि, हाथ दुहूँ सो महेली कौ अंचल ॥११५॥

★

ननदीन्ह कौ भावै प्रसंग नहीं, उत सासु के सग लजाति सी है ।
अथये दिन के मन ही मन 'भानु', सु कजमुखी सकुचाति सी है ॥
सखियाँ कहूँ आवे नजीक, भरे अँखियाँ तुरतै भरमाति सी है ।
पिय-अक की कौन कहै नवला, परजक लखै जफि जाति सी है ॥११६॥

★

ज्यो-ज्यो परसत लाल तन, त्यो-त्यो राखति गोइ ।
नवल बधू डर-लाज ते, इंदुबधू सी होइ ॥११७॥

★

करि चतुरैया चाहत पकरन बौह ।
छुवै नहिँ सकत छइलबा पै तनु छौह ॥११८॥

॥ दाम ने 'शृंगार निर्णय' में इन दो भेदों के अतिरिक्त एक तीसरा भेद 'अविश्रब्ध नबोढ़ा' भी लिखा है ।

§ मुग्धा जो भय-लाज युत, रति न चहत पति संग ।

ताहि नबोढ़ा कहत है, जो प्रबान रम रग ॥

—“रसराज”

§ मतिराम १ हरिऔध

विश्रब्ध नबोड़ा—भय और लज्जा का भाव कुछ कम होने पर जब विवाहित नायिका निज पति की ओर किंचित आकर्षित हो, तब उसे विश्रब्ध नबोड़ा कहते हैं।

प्रीतम को गुन जानै नहीं, तब हू सुनि नाम लज्जान लगी है ।
कानन को 'हरिऔध' कही रस की बतिया हू सुहान लगी है ॥
राखनि काम को चाव नहीं, तऊ काम की ऐसी सु बान लगी है ।
सक समेत मयक-मुखी, पिय मजुल अक मे जान लगी है ॥११६॥

★

जाहि न चाह कछू रति की सु कछू पति का पतियान लगी है ।
न्यो 'पदमाकर' आनन मे रुचि, कानन भौह कमान लगी है ॥
देति पिया न छुनै छतियों, बतियों मे तौ मुखबान लगी है ।
प्रीतमै पान खवाइवे को, परजंक के पास लौ जान लगी है ॥१२०॥

★

केलि की रैन अधाने नहीं, दिन ही मे लला पुनि घात लगाई ।
प्यास लगी कोऊ पानी है जाइयो, भीतर बैठि कै बात सुनाई ॥
जिठानी पठाई गई दुलही, हँसि हेरि हरै 'मतिराम' ह्लाई ।
कान्ह के बोल पै कान दियौ नहीं, गेह की देहरी पै धरि आई ॥१२१॥

★

कान्ह चतुराई करि द्वार में बिछाई सेज,
जानि मनि-मंदिर मे मनभाई बाम को ।
'कालिदास' रसिकाई जानि कै चुपाइ रहे,
आई जब सुंदरि सिधाई निज धाम को ॥
चंचल चतुर छुरकायल छबीली बाम
अंचल छुवै ब दीनौ रयाम अभिराम को ।
पाठी पग धरि गई, चेटक सौ करि गई,
नटी लौ उछरि गई, छरि गई स्याम को ॥१२२॥

★

चौंकति चकित बनति बिहँसि, बितरति बहु आनद ।
चंदमुखी अब चाव सो, चितवति पिय मुखचंद* ॥१२३॥

§ पति की कछु परतीत उर, धरे नबोड़ा नारि ।

सो विश्रब्ध नबोड़ा तिय, बरनत विवृष्ट विचारि ॥

* हरिऔध

—“जगद्विनोद”

मध्या नायिका

(२) मध्या—जिस नायिका मे लज्जा और काम दोनो समान रूप से हैं, उसे मध्या कहते हैं* ।

देख्यौ चहै पिय कौ मुख, पै अंखियों न करै जिय की अभिलाखी ।
चाहति 'संभु' कहै मन मे, बतिआँन सो सो नहि जाति है भाखी ॥
भेटिवे कों फरकै भुज, पै कहि जीभ ते जाइ नहीं—नहीं भाखी ।
काम सँकोच दुहुँन बहू बलि, आज दुराज-प्रजा करि राखी ॥१२४॥

★

लाज बिलोकन देत नहीं, रतिराज बिलोकन ही की दई मति ।
लाज कहै मिलिऐ न कहूँ, रतिराज कहै हित सो मिलिऐ पति ॥
लाजहु की रतिराजहु की, कहै 'तोप' कछु कहि जाति नहीं गति ।
लाज तिहारिऐ सौँद करो, वह बाल भई है दुराज की रैबति ॥१२५॥

★

मदन-लाज बस तिय-नयन, देखत बनत इकंत ।
इतै-उतै खिचवत फिरै, ज्यो दुनारि के कंत† ॥१२६॥

(१) मध्या सो, जामै दुहुँ, लज्जा मदन समान ।

—“भाषाभूषण”

(२) मतिराम और पद्माकर ने मध्या का कोई भेद नहीं लिखा है । दास ने परकीया मध्या लिखी है ।

(३) केशवदास और चिंतामणि ने मध्या के ४ भेद किये हैं —

१—आरूढ यौवना, २—प्रगल्भ वचना,
३ प्रादुर्भूत मनोभवा, ४—सुरति विचित्रा ।

(४) देव ने भी निम्न लिखित चार भेद किये हैं और उनको वयक्रमानुसार इस प्रकार विभाजित किया है—

१—रूढ यौवना (१७ वर्ष)
२—प्रादुर्भूत मनोभवा (१८ वर्ष)
३—प्रगल्भ वचना (१९ वर्ष)
४—विचित्र सुरता (२० वर्ष)

(५) रसलीन ने निम्न लिखित ४ भेद किये हैं—

१—उन्नत यौवना, २—उन्नत कामा,
३—प्रगल्भ वचना ४—सुरति विचित्रा ।

रसलीन ने 'लघुलज्जा' नामक एक अन्य भेद का भी कवन किया है ।

† पद्माकर

पीतम सोहै हँसोहै चितै, सुख दै पट तें मुख खोलन लागी ।
 नींद हितू न उनीदिऐ नैनन, चैन न चित्त कखोलन लागी ॥
 लाज हिलोरि-हिलोरि हियौ, बँधि प्रेम की डोरि सो डोलन लागी ।
 बालम कौ मन मोल लै बाल, अमोल सुबोलन बोलन लागी ॥१२७॥

★

सौने की सी बेली अति सुंदर नबेली बाल,
 ठाडी ही अकेली अलबेली द्वार मँहियाँ ।
 'मतिराम' अँखियाँ सुधा सी बरसा सी भई,
 गई जब दीठि वाके मुखचंद पहियाँ ॥
 नैक नेरे जाइ करि, बातन लगाइ करि,
 कछु मन पाइ, हरि बाकी गही बहियाँ ।
 सैननि चरच गई, गौननि थकित भई,
 नैनन में चाह करै, बैनन मे नहियाँ ॥ १२८ ॥

★

आई जु चाले गुपाल घरै, ब्रजबाल बिसाल मृनाल सी बोंही ।
 त्यो 'पदमाकर' सुरति में रति, छूवै न सकै कितहूँ परछाँही ॥
 सोभित संभु मनो उर ऊपर, मौज मनोभव की मन मोंही ।
 लाज बिराजि रही अँखियाँ न मे, प्रान मे कान्ह जुबान मे नाँही ॥१२९॥

★

लखना लजीली उर काम ही ते कीली,
 नीली सारी में लसै ज्यो घटा कारी बिच दामिनी ।
 कहै 'ब्रजचंद' हुती संग मे सहेलिन के,
 हेरति हँसति बतराति हस-गामिनी ॥
 तौ लौ तहाँ गेह मे सु नाह आयौ नेह भरौ,
 बैठ गयौ, ताकों लखि बैठि गई भामिनी ।
 कत हेरै सोंहैं, तब अंत हेरै इंदुमुखी,
 अंत हेरै कत, तौ न अंत हेरै कामिनी ॥१३०॥

★

विधि कौनहु बासर ही बितवै, मन नाह की चाह लगी है नई ।
 कवि 'भानु' सजाय समेटति सेज, सजावति फेर सुगंध भई ॥
 कभु दीप-कपूर जरावै बुझाई कै, फेर जरावत रंग रई ।
 परि लाज-मनोज के मोह तिया, जुग चुंबक बीच की लोह भई ॥१३१॥

बैठी हुती सखिअन मे बाल, बडी अखिअन मे अजन लाइके ।
 चारु कपोलन पै छिटकी अलकै, छवि देत हुती छहराइ कै ॥
 बात रसीली सुनाइ रसै 'हरिऔध' हँसे, इतने हि मे आइके ।
 नार नवाइ सकाइ रही, मुसकाइ रही, दग मोरि लजाइ कै ॥ १३२ ॥

*

मुख सो लगत मुख सों है न करत रख.
 लाज-काम समता बपुख मे पगी रहै ।
 रति के बिलास उर अंतर बसावै,
 पै प्रकास न करत रंग प्रेम के रंगी रहै ॥
 केलि-कथा कत कहै उत्तर न देत ताको,
 झूठे नैन मँदूँ हौस सुने की जगी रहै ।
 प्यारे को जगौँ है जानि, पौढे पट तानि-तानि,
 लगी रहै उर जौलौ पलक लगी रहै ॥ १३३ ॥

*

पेख्यौ चहै पिय को बिन ओट. बनै न कछु बिन धूँघट खोलै ।
 भावै न सग छुट्याँ पति को, सकुचै, न करै कछु काम-कलोलै ॥
 चाहति बात कह्यौ, न कह्यौ, पर जात रह्यौ न रहै अनबोलै ।
 झूलत ह्वै मन प्रान-पियारी को, लाज-मनोज के बीच हिंडोलै ॥ १३४ ॥

*

बैठी सीस-मदिर में सुदरि सचार ही की,
 मँदूँ कै किंवार 'देव' छवि सो छक्ति है ।
 पीत पट, मुकुट, लकुट, बनमाल धरि,
 भेस करि पी को प्रतिविब मे तक्ति है ॥
 होति न निमंक उर अंक भरि भेटिबे को,
 भुजनि पसारति, समेटति, जक्ति है ॥
 चौकति, चकति, उचकति, चितवति चहुँ,
 झूमि ललचाति, मुख चूमि ना सकति है ॥ १३५ ॥

*

देखत बनै न देखिबौ, अनदेखै अकुलाहि ।
 इन दुखियाँ अखियान को, सुख सिरज्यौ ही नाहि ॥ १३६ ॥

प्रौढ़ा नायिका

(३) प्रौढ़ा—जिस नायिका मे लज्जा न्यून और काम अधिक हो तथा जो रति-कला मे परम प्रवीण हो, उसे प्रौढ़ा कहते हैं* ।

केसरिया निज सारी रंगै, लखि केसरि खौरि गुपाल के गातनि ।
‘दास’ चितै चित कुंजबिहारी, बिछावति सेज नए तर-पातनि ॥
आवत जानि कै आपने भौन, मिलै पहिले लै बिरी अबदातनि ।
बीतै बिचारते भामनी कौ दिन, भामते की मनभावती बातनि ॥१३७॥

*

देखी है गुपाल एक गोपिका अनूप रूप,
सौने तें सखौनी बास सौधे तें सुहाई है ।
सोभाई सुभाव अवतार लियौ घनस्याम,
किधौ दामिनी के काम कामिनी ह्वै आई है ॥
देवी कोऊ दानवी न, मानवी न होइ ऐसी ।
भानवी न हाव-भाव भारती पठाई है ।
‘केसौदास’ सब सुख-साधन की सिद्धि जे,
मेरे जान मैं ही सो मैंनका की जाई है ॥१३८॥

*

केलि मे केतिक कौतुक कै, रस हास-हुलास बिलासनि सोहै ।
कोमल नाद कथा रस-बादन, काम-कला करिकै मन मोहै ॥
छेदि कटाक्ष की कोरनि सों, गुन सो पति कौ मन-मानिक पोहै ।
जानति तू रति की सिगरी गति, तो सी बधू रति-कोविद को है ॥१३९॥

*

प्रानप्रिया मन भावन सग, अनंग-नरंगनि रंग पसारे ।
सारी निसा ‘मतिराम’ मनोहर, केलि के पुंज हजार उधारे ॥
होत प्रभात चलयौ चहै प्रीतम, सुंदरि के हिय मे दुख भारे ।
चंद्र सौ आनन, दीप सी दीपति, स्थाम सरोज से नैन निहारे ॥१४०॥

* केलि-कला मे चतुर अति, प्रीतम सो अति प्रीति ।

लाज तजै है मदन-बस, प्रौढ़ा का यह रीति ॥

—“कविकुलकल्पतरु”

प्रौढा के भेद

प्रौढा नायिका के दो भेद होते हैं—

१—रति प्रीता, २—आनन्द संमोहिता ।

(१) रतिप्रीता—जो प्रौढा नायिका पति के साथ रति-केलि में अत्यंत रुचि प्रदर्शित करे, उसे 'रतिप्रीता' कहते हैं ।

दीपक—जोति मलीन भई, मनि-भूषन—जोति की आँतुरियाँ हैं ।
 'दास' न कौल-कली बिकसी, निज मेरी गई मिलि आँतुरियाँ हैं ॥
 सीरी लगै मुकताबलि तेज, कपूर की धूरनि सों पुरियाँ है ।
 पौढे रहौ पट ओढै इती निसि, बोलै नही चिरियाँ चुरियाँ है ॥१४१॥

★

केसर रंग चुकै जगही, तब लैकर ताही में नीर मिलावै ।
 धूम पटात सी जानत ही, तब लाल के गाल गुलाल लगावै ॥
 'माखन' गारि कै, गीतन गाइकै, गेंद चलाइ कै, बाद बढ़ावै ।
 छाँड़ि कै लाडिली होरी कौ औसर, जान घरै छिन एक न आवै ॥१४२॥

‡ (१) मतिराम और दास ने प्रौढा का कोई भेद नहीं लिखा है । दास ने परकाया प्रौढा लिखी है ।

(२) केशवदास ने प्रौढा के निम्न लिखित ४ भेद किये हैं—

१—समस्त रस कोविदा, २—विचित्र विभ्रमा,
 ३—आश्रमति, ४—लुब्धापति ।

(३) धितामणि ने प्रौढा के निम्न लिखित चार भेद किये हैं—

१—प्रौढ़ यौवना प्रगल्भा, २—मदनमत्ता,
 ३—रतिप्रीतिमती, ४—सुरति मोद परवशा ।

(४) देव ने भी प्रायः इन्हीं चारों भेदों को निम्न लिखित नामों से मान कर उनको व्यक्कमानुसार इस प्रकार विभाजित किया है—

१—लुब्धापति (२१ वर्ष) २—रति कोविदा (२२ वर्ष)
 ३—आकाता (२३ वर्ष) ४—सविभ्रमा (२४ वर्ष)

(५) रसलीन ने 'रतिप्रिया' और 'आन दातिसंमोहा' के अतिरिक्त निम्न लिखित भेदों को भी लिखा है—

१—उद्धट यौवना, २—मदनमत्ता, ३—लुब्धापति, ४—रतिकोविदा ।

प्रियतम संग रति—रमन में, रुचि राखै अत्यंत ।

ताहि रतिःप्रीता कहत, जे कवि बुद्धि अनंत ॥ —“साहित्यसागर”

'कोक की कलन वारी, सोक की दलन,
 निसि कीन्ही सब बाते घाते सौति गरदन की ।
 आनंद-मगन सो 'प्रवीन वेनी' प्यारे पाम,
 भूलि गई बिपदा मनोज-करदन की ॥
 बिलखी विकल ऐसी नभ में ललाई लखि,
 आवन सुरति लागी दिन-दरदन की ।
 सीत सों सभित सी, समीर के बहाने गोरि,
 छोरि दीन्हीं डोरी वेग दौरि परदन की ॥ १४३ ॥

★

'लै पट पीतम के पहिरै पहिराय पिरें चुनि चूनरी खासी ।
 त्यों 'पदमाकर' साँझ ही तें, सिगरी निसि केलि-कला परगासी ॥
 फूलत फूल गुलाबन के, चटकाहट चौकि चली चपला सी ।
 कान्ह के काननि आँगुरी नाड, रही लपटाइ लबंग-लता सी ॥ १४४ ॥

★

'अरसोंहै नैन करि, सरसोंहैं मुसकराति,
 त्यों-त्यों अकुलाति ज्यो-ज्यो होत आली प्रात री ।
 दोऊ वे परसपर पीवत अधर-रस,
 चूमि-चूमि चटकीलौ मुख-जलजात री ॥
 भनत 'कबिंद' भरि-भरि अंक है निसंक,
 नेह भरं फिरि-फिरि दोऊ बतरात री ।
 बिछुर न करत दुहूँ के गात ही ते दुवौ,
 लपटि-लपटि जात, नैक न अघात री ॥ १४५ ॥

★

आज रतिराज 'प्रेम' प्यारे नंदनद मोहि,
 मिले बड भागनि ते, सुंदर अनंदकंद ।
 कोक की कलानि मो रिझावो, औ बुझावो ताप—
 हीतम कौ, प्रीतम सो ठानि रति-केलि-फंद ॥
 जौलों हों न कहौ, तौलों जाइयो न रैन छोरि,
 चाँदनी मे मैं-चैन पाहौं, गाइ छंद-बंद ।
 चद द्विजराज ! तोसो कहौ कर जोरि-जोरि,
 भोर ना करैयो हो, चलिथो गति मंद-मद ॥ १४६ ॥

(२) आनंद संमोहिता—जो प्रौढ़ा नायिका अपने पति के रति-सुखजनित प्रेमानंद में सदा निमग्न रहे, उसे 'आनंद संमोहिता' कहते हैं ।

सीसफूल सरकि सुहावने लिलार लाग्यौ,
 लौमी लटै लटक परी हैं कटि-झाम पर ।
 'द्विजदेव' त्यों ही कछु दुलसि हिऐ तैं हेलि,
 फैलि गयौ राग मुख-पंकज ललाम पर ॥
 स्वेद-सीकरन सराबोर है सुरंग चीर,
 लाल दुति दै रही सु हीरन के दाम पर ।
 केलि-रस साने दोऊ, थकित बिकाने तऊ,
 हाँ की होत कुमुक, सु ना की धूम-धाम पर ॥१४७॥

*

'कुंदन की छरी आबनूस की छरी सो मिली,
 सौनजुही-माल क्रिधौ कुबलय-हार सो ।
 कैधौ चंद्र-चंद्रिका कलंक सों कलित भई,
 कैधौ रति ललित बलित भई मार सों ॥
 'कालिदास' मेघ माँहि दामिनी मिली है कैधौ,
 अनल की ज्वाल मिली कैधौ 'धूम-धार सो ।
 केलि समै कामिनी कन्हैया सों लपटि रही,
 कैधौ लपटानी है जुनहैया अंधकार सों ॥१४८॥

*

काम की कलान की कुसलता सो चारो जाम,
 सुरति-सुरस सों झकाइ-झकी पिय सो ।
 भई मोदमई, लई अंगन सिथिलतई,
 तऊ न अंग की उमंग घटै जिय सों ॥
 'गोकुल' कहत उमहत भाँति-भाँतिन सो,
 चाब चढ़े वैस के सुभाव सब तिय सों ।
 साँझ तें लै भोर लों निहारी मोद-मतवारी,
 नैकज न न्यारी होत भामते के हिय सों ॥१४९॥

१ प्रियतम-प्रीति-आनंद में, जिहि निमग्न मन होह ।

मोहै मय्यक् भाँति सो आनंदसंमोह ॥

—“साहित्यसागर”

मध्या-प्रौढा के धीरादि भेद

स्वकीया नायिका के अंतर्गत निज पति को अन्य स्त्री पर आसक्त जानकर कुपित होने वाली मध्या और प्रौढा नायिकाओं के धीरा, अधीरा और धीराधीरा नामक तीन भेद होते हैं § ।

गुप्त कोप करने वाली नायिका को धीरा, प्रकट रूप से कोप करने वाली को अधीरा और कुछ गुप्त एवं कुछ प्रकट कोप करने वाली नायिका को धीराधीरा कहते हैं ‡ । धीरा व्यंग्योक्ति और रति से उदासीनता द्वारा, अधीरा कटु वचन और ताड़ना द्वारा तथा धीराधीरा रुदन और उपालभ द्वारा अपना कोप प्रकट करती हैं ।

धीरादि नायिकाएँ ६ प्रकार की होती हैं —

- १-मध्याधीरा, २-मध्या अधीरा, ३-मध्या धीराधीरा,
४-प्रौढाधीरा, ५-प्रौढा अधीरा, ६-प्रौढा धीराधीरा ।

§ (१) संस्कृतसाहित्य के आधार पर कुछ कवियों ने धीरादि भेद को ज्येष्ठा-कनिष्ठा के अंतर्गत लिखा है । उनका मत है कि नायक जब ज्येष्ठा के पास से होकर कनिष्ठा के पास जाता है, तभी धीरादि भेदों की उत्पत्ति होती है ।

(२) केशवदास ने 'मध्या और प्रौढा के वर्णन के साथ-साथ धीरादि भेद लिखे हैं ।

(३) देव ने मान-भेद लिख कर उसी के अंतर्गत मध्या और प्रौढा के धीरादि भेदों को लिखा है ।

(४) दास ने खंडिता के अंतर्गत धीरादि भेद माने हैं ।

(५) चित्तामणि, मतिराम, रसलाल और पद्माकर आदि ने धीरादि भेद पृथक् कहकर मध्या और प्रौढा के अनुसार उनके ६ भेद किये हैं । यही मत अधिकांश कवियों को भा मान रहे हैं ।

‡ गोप कोप धीरा करै, प्रकट अधीरा कोप ।

लच्छन धीर अधीर को, कोप प्रकट औ गोप ॥ —“भाषाभूषण”

* वक् उक्ति पति सो कहै, मध्या धीरा नारि ।

धीरावार उराहनौ, वचन अधीरा गारि ॥

उदासीन अति कोप तें, पति सौ प्रौढा धीर ।

तजै अधीराधीर अरु, ताड़न करै अधीर ॥ —“भवानीविलास”

(१) मध्याधीरा—जो नायिका अपने पति को अन्य स्त्री पर आसक्त जान कर प्रकट रूप से उसका आदर करती हुई, व्यंगोक्ति द्वारा अपना कोप करे, उसे 'मध्याधीरा' कहते हैं* ।

गुंजरत भौरन के पुंजन निकुंजन ते-

आए हौ, भयौ हँ खम आवत औ जात कौ ।

आँखिन ते उलटी ललाई परै आलस की,

अंगन ते उँमगै थके लौ अगरात कौ ॥

भनत 'कविद' धाम ग्रीपम-दुपहरी की,

तीखन लग्यौ हे तन परिमित बात कौ ।

पंकज के पातन काँ पौन करौ प्रानाधारे !

पौढौ परजक पै, पसीना निटै गात कौ ॥ १५० ॥

*

क्यो घनस्याम ! अबै दु-चितै भए, मो तन दीठि करौ सुखदाई ।

कंज-गुलाबहु काँ अरुनाई, न लाल गुलालन की सरसाई ॥

एतेहु पै इतनौ गहिरौ रग, धनि हे रंगरेजिन की चतुराई ।

साँची कहौ इन नैननि-रंग की, दीन्ही कहा तुम लाल रंगाई ॥ १५१ ॥

*

भाल पै लाल गुलाल गुलाब सौ, गेरि गरै गजरा अलबेलाँ ।

यो बनि बानिक सो 'पदमाकर', आए जु खेलन फाग, तौ खेलौ ॥

पै इक या छवि देखिवे के लिऐ, मो बिनती कै न झोरिन झेलौ ।

रावरे रग रंगी अँखिआँन मे, ए बलबीर ! अबीर न मेलौ ॥ १५२ ॥

*

सोँझ ते चढ़ कलंक उयौ, मन मेरौ लै साथ रहे तुम न्यारे ।

बैठ बची मनि-मंदिर बीच, लगे तब दीप-प्रकास अँधारे ॥

प्रातहि पाइ सुधामय पारनौ, नैन-चकोर छके, भे सुखारे ।

क्यो न अनूप-कला प्रगटौ, अकलंक कलानिधि मोहन ध्यारे ॥ १५३ ॥

* कोप जनानै व्यंग सौ, तजै न पति-सनमान ।

मध्याधीरा कहत हैं, तामें सुकवि मुजान ॥

—“जगद्विनोद”

स्वारथ में रत हैं सब ही, परमारथ साधत नाहिंन कोऊ ।
 हैं परमारथ में रत लोय, 'गुलाब' कहै बिरलै जस जोऊ ॥
 जो परमारथ-स्वारथ हीन सु, आलस लोभित कीरति-खोऊ ।
 हौ तुम नीति-निधान लजा !, परमारथ, स्वाग्रथ साधत दोऊ ॥ १५४ ॥

★

मिलि-मिलि वृन्द गुलाब-परबिंदन के,
 कुंदन-कुमोदनि के मोद अनुकूले हौ ।
 कहूँ अनुकूले, कहूँ डोले हौ सुबास बस,
 कहूँ रस लोभ के सुभाय लागि भूले हौ ॥
 मौरभ सुजाति अधराति मालतीन मिलि,
 सरस सुहाग अनुराग अंग फूले हौ ।
 कैसे वह सेवन-सुगंध तजि सेवती कौ,
 कौन भ्रम बेखिन भँवर आज भूले हौ ॥ १५५ ॥

★

मिलि-मिलि मोद-वारी मुकुलित मल्लिका सो,
 कुज-पुंज क्यारिन कलोल करि फूले हौ ।
 पान के प्रकाम-रस आम-मंजरीन हू के,
 उर अभिराम कौ अराम उनमूले हौ ॥
 'हरिऔध' ठौर-ठौर भौर झुकि भूमि-भूमि,
 चूमि-चूमि कंज की कलीन को कबूले हौ ।
 तजि महमही मंजु मालती चमेलिन को,
 कौन भ्रम बेखिन भँवर आज भूले हौ ॥ १५६ ॥

★

मालती मंजु चमेलिन के, बन-बाग तें हेरि प्रसून मंगाए ।
 बैठि सहेखिन के गन मे, रुचि सों रचि भूषन-वेस बनाए ॥
 ताहि समैं मनभावन देखि, उठी गहि बाँह बिलोकि सुहाए ।
 प्यार सों प्रीतम के उर मे हँसि, गुंजन के गजरा पहिराए ॥ १५७ ॥

★

तडपै तड़िता चहुँ ओरन तें, छिति छाई समीरन की लहरैं ।
 मदमाते महा गिरि-सुंगन पै, गन मंजु मयूरन के कहैं ॥
 इनकी करनी बरनी न परै, सु गरूर-गुमानन सों गहरैं ।
 घन ये नभ-मंडल में छहरैं, वहरैं कहुँ जाइ, कहुँ ठहरैं ॥ १५८ ॥

तुम कहा करो, काहू काम ते अटक रहे.

तुहँ कहा दोम, सो तौ आपनोई भाग है ;
आए मेरे भौन बड़े भोर उठि प्यार ही तें.

अति हरबरन बनाइ दौंवी पाग है ॥
मेरे ही बिद्योग रहे जागति सकल रात,
गाति अलसात मेरी परम सुहाग है ।
मन ह की जानी प्रान-प्यारे 'मतिराम' यहै,
नैनन हू माहिं पाइयतु अनुराग है ॥ १५६ ॥

★

काहि न इकादासी ही, तारें कहूँ जागे आप,
जाप लागै कैधो काहू काम कें उमाहे सों ।
कैधों दिग भूल भूले, दुमरी न पायौ घर,
कैधो कहूँ दुमरी सुनत रहे लाहे सो ॥
'ग्वाल' कवि कैधो रहे चौसर के खेलन मे,
औसर बन्यौ न किधौ काहू मीत चाहे सो ।
मेरे प्रान-प्रान, स्याम परम सुजान सुनौ,
आज अलसान अँगरान कहाँ काहे सों ॥ १६० ॥

★

मगरजे हार बेसुमार बारूनी के बस,
आधे-आधे आँखर सु-एहू भाँति जपने ।
कहै 'पदमाकर' सु जैसिए रसीले अंग,
तैसिए सुगंध की झकोरन को भपने ॥
जैमे बनि आए आपु, तैसिए बनावौ मोहि,
मेरी अभिलाख लाख एहू भाँति धपने ।
लाल दग-कोरन मे मेरे नैन बोरौ लाल ।
कै तौ इन नैनन निचोरौ नैन अपने ॥ १६१ ॥

★

खोलि लई उत होरी भल्लै, यह फागुन मास विचार सोहाय्यौ ।
पाइए सो तौ बस्याइ कै औसर, यो रँग नीकौ तरा बगरायौ ॥
'माखन' भाग खुले जिनके, तिनके घर प्रीतम आपु ते आयौ ।
साँवरे गात गुलाल खुलौ, हम आपको देखत ही सुख पायौ ॥ १६२ ॥

(२) मध्या अधीरा—जो नायिका कटूक्ति द्वारा पति का अनादर करती हुई अपना कोप प्रकट करे, उसे 'मध्या अधीरा' कहते हैं* ।

'आए पास कौन के हौ, भूले कौन भौन के हौ,
डगमग गौन के हौ, देह मौज-माँची है ।
पाग-पेच ढीले भए, दग उनमीले भए,
तऊ न लजीले भए, पाठी भली बाँची है ॥
'गवाल' कवि और न उपाय ब्रजराज अब,
जाउ-जाउ जहाँ चाउ, मै तौ यह जाँची है ।
घर की जो मिसरी सो फीकी सी लगन लागै,
मीठी गुड़ चोरी कौ, कहन यह सौँची है ॥१६३॥

★

'भूले से, अमे से, काहि सोचत समे से,
अकुलाने से, बिकाने से, ठगे से ठीक ठाए हौ ।
कहै 'पदमाकर' सु गोरे रंग बोरे दग,
थोरे-थोरे अजब कुसुंभी करि लाए हौ ॥
आगें को धरत डग, पाछे को परत पग,
भोरई ते आजु कछु औरै छवि छाए हौ ।
कहाँ आए ? तेरे धाम, कौन काम ? घर जानि,
उहाँ जाऔ, कहाँ ? जहाँ मन धरि आए हौ ॥१६४॥

★

औरन के ढिँग ते न टरौ, नित बातन ही हमें राखत टारे ।
औरन के सँग राति बिताय, हमैं सुख देत हौ आन सकारे ॥
औरन सों तुम सौँचइ हौ, हम सों रहौ झूठई ब्यौत बिचारे ।
लागत औरन की छुतिथौ, तुम पाँयन लागत आन हमारे ॥१६५॥

* करै अनादर कंत कौ, प्रगट जनावै कोप ।

मध्य अधीरा नाइका, ताहि कहत करि चोप ॥

—“जगद्विनोद”

साँची कहाँ जाकी मानत सौँह जू, कौन के नेह रहे सरसे हौ ।
 रैन जगी अँखियाँ तगजी, बिरुमी अँग-अंगन सो परसे हौ ॥
 जैहौ जहाँ, मिले आप तहाँ, हनको इन बातन सों पर से हौ ।
 चंद हँकै किन हू सरसे, हमकों रवि हँकरिकै दरसे हौ ॥१६६॥

★

तन मे रहि आलस जैहै कहूँ, अँखियाँ ते नीद नहीं टरि है ।
 बनिहै न कछु तब प्यारी मिलें, जब बात चलै रस की अरि है ॥
 'रघुनाथ' कहाँ अँगरात, जँभात हौ, नाम न कोऊ तुम्हें धरि है ।
 पल मोय रहौ मुख गोय पिछौरी सो, फेरि तुम्है जगिबै परि है ॥१६७॥

★

'कोऊ नहीं बरजै 'मतिराम', रह्यौ जितडै, तितई मन भायौ ।
 काहे को सौँ हैं हजार करौ, तुम तौ कबहुँ अपराध न ठायौ ॥
 सोवन दीजै, न दीजै हमे दुख, यो ही कहाँ रसबाद बढ़ायौ ।
 मान रह्यौई नहीं मनमोहन ! मानिनी होइ, सो मानै मनायौ ॥१६८॥

★

नीकी नई निपुनाई करी, अँखियाँ को लागति है अति प्यारी ।
 भोरई भाग सों भाव भरी, यह आज भली करतुति निहारी ॥
 रीझि रही तजि खीझि सबै, 'हरिऔध' छुकी मति हेरि हमारी ।
 कौन सी बाल है लाल ! कहाँ, यह माल बिना-गुन गूथन हारी ॥१६९॥

★

भोरई भौन मे भावतौ आवत, प्यारी चितै कै इतै दग फेरे ।
 बाल बिलोकि कै लाल कह्यौ, कहु काहे तें लाल बिलोचन तेरे ?
 बोलि उठी सुनिकै तिय बोल, सु 'देव' कहै अति कोप करेरे ।
 काहु के रंग रंगे दग रावरे, रावरे रंग रंगे दग मेरे ॥१७०॥

★

लाल एक दग अगिन ते, जारि दियो सिव मैन ।
 करि लाए भो दहन कों, तुम ई पावक नैन § ॥ १७१ ॥

(३) मध्या धीराधीरा—जो नायिका सुख से अप्रिय वचन न कह कर रोदन द्वारा अपना कोप प्रकट करे, उसे 'मध्या धीराधीरा' कहने हैं ।

आजु कहा तजि बैठी हौ भूषन ? ऐसेहि, अंग कछु अरसीले ।
बोलत बोल रुखाई लिपुँ, 'मतिराम' सुने ते सनेह सुसीले ॥
कौन कहौ दुख प्रान-प्रिया ! अँसुअँन रहे भरि नैन लज्जीले ।
कौन तिन्हें दुख है, जिनके तुम से मनभावन छैल छबीले ॥ १७२ ॥

★

'देव जु पै चित चाहिए नाह, तौ नेह निवाहिए, देह मरघौ परै ।
ज्यो समुझाइ सुझाइए राह, अमारग ज्यो पग धोखै धरघौ परै ॥
नीके मे फीके ह्वै आँसु भरौ, कत ऊँची उसास, गरौ क्यौ भरघौ परै ।
रावरे रूप भरघौ अँखिअँन, भरघौ सु भरघौ, उमडघौ सु ढरघौ परै ॥ १७३ ॥

★

अँखिन के जल की जु है रीति, सदाँ तुम सँझ-हू-भोर निहारत ।
तैं 'द्विजदेव' जू क्यो कहि जाय, परे छत जे हिय को करें आरत ॥
बात बिचारिबे की यह लाख ! कहा बकबाद कै मो तन जारत ।
मान रहैगौ कितै बलि जाउँ, मो मानिनी-मानिनी काहि पुकारत ॥ १७४ ॥

★

भोर भय पै पधारे, कहा भयौ, मेरी सदाँ सुख ही की घरी है ।
परी कछु 'हरिऔध' करे, हमै तौ उनकी परतोति खरी है ॥
बूझि बिचारि कहै किन बाबरी ! बोचई मे कत जाति मरी है ।
साँबरे-प्रेम पसीबि परी, नहिँ मो अँखियाँ अँसुअँन भरी है ॥ १७५ ॥

★

तुम सों कीजै मान क्यो बहु नाहक मनरंज ।
बात कहत यो बाल के, भर आए दग-कज ॥ १७६ ॥

‡ धीर वचन कहि जो तिया, रोइ जनावै रोष ।

मध्या धीरार्था तिय, ताहि कहत निरदोष ॥

—“जगद्विनोद”

* मतिराम

(४) प्रौढ़ा धीरा—जो नायिका प्रकट रूप से अपने कोप का प्रदर्शन न कर, रति-कला से उदासीन रहे, उसे 'प्रौढ़ा धीरा' कहते हैं† ।

आवत देखि, लियौ उठि आगे है, आपु ही 'केसव' आसन दीनौ ।
आपु ही पाँइ पखारि भले जल, पानी कौ भाजन लाइ नबीनौ ॥
बीरी बनाइ कै आगे धरौ, जब बैहर को कर बीजन लीनौ ।
बॉह गही हरि ऐसे कही हंसि, मै तौ इनौ अपराध न कीनौ ॥१७७॥

*

वैसैई चितै कै मेरे चित को चुरावती हौ,
बोलत हौ वैसैई मधुर मृदु बानि सो ।
कवि 'मतिराम' अक भरत मयकमुखी,
वैसैई रहति गहि भुज-लतिकान सो ॥
चूमति कपोल, पान करत अधर-रस,
वैसैई निहारी रीति सकल-कलानि सो ।
कहा चतुराई ठानियत प्रानप्यारी, तेरौ—
मान जानियत रूखी मुख-मुसकानि सो ॥१७८॥

*

बोलत काहै न बोल सुनै, मधुरी बतियाँ मनमोहन भाखे ।
बोलै कहा, कछु चित मे है दुख, पित्त बढ़े कटु लागती दाखे ॥
ठाढे है लाल, बिलोकै न बाल क्यो, तेरी बिलोकनि को अभिलाखे ।
लाल भई बिन काजहि आउ ए, देखौ कहा, मेरी दूखती आँखे ॥१७९॥

*

कंचन-से गातन सखौनी रंग-राउटी मे,
हिल-मिल प्रेम रस बातनि पगति है ।
वचन विचित्र अति केलि के प्रसंगन के,
कानन सुनति, सब जामनि जगति है ॥
कहै 'परताप' उर अधिक उमगन ते,
मदन-तरंग अग-अंग उमगति है ।
है करि निसंक क्यो मयंकमुखी बाल,
परजंक पर जाति, पिय अंक न लगति है ॥१८०॥

† पिय सौं प्रगट न रिस करै, रति ते रहै उदास ।

प्रौढ़ा धीरा जानिगे, सो निज मुमनि विकास ॥—“रसरज”

जगर-मगर दुति दूनी केलि-मंदिर मे,
 बगर-वगर धूप अगर बगारधौ तू ।
 कहै 'पदमाकर' त्यों चंद तें चटकदार,
 चुंबन मे चारु मुखचंद अनुसारधौ तू ॥
 नैनन में, बैनन मे, रुखी और सैनन में,
 -जहाँ देखौ, तहाँ प्रेम पूरन पसारधौ तू ।
 छिपत छिपाएँ तऊ, छलन छबीली अब,
 उर लगिबे की बार हार न उतारधौ तू ॥१८१॥

*
 बहु नायक हौ, सब लायक हौ, सब प्यारिन के रस को लहिऐ ।
 'रथुनाथ' मनै नहि कीजै, तुन्है जिय बात जु है, सु सही कहिऐ ॥
 यह मोगति हौ पित्र प्यारे सदाँ, रुख देखिबे ही कौ हमे चहिऐ ।
 इतने के लिए इत आइये प्रात, रुचै जहाँ रात तहाँ रहिऐ ॥१८२॥

*
 कसर रग गुलाल भरे तन, होरी कों खेलन आए बिहारी ।
 राधिका बैठी सिंगार करै, तहाँ आइकै घालि दई पिचकारी ॥
 'माखन' ओट कै घूँघट कौ, कछु नैन चलाइ कै चोट निबारी ।
 जानि परधौ तब मान छबीली कौ, डीठि मिलै मुसुक्यात न प्यारी ॥१८३॥

*
 आवत ही बिकसों है मिली, अलसों है बिलोकि नही बदल्यौ रुख ।
 बैन हरै-हरै बोलि सुधा-मने, वैसई बाल दियौ पिय को सुख ॥
 पै रचै केलि-क्रिया 'हरिऔध' के, दावि सका नहीं अतर कौ दुख ।
 जोरन देति न कंचुकी के बंद, जोरन देत नही मुख मों मुख ॥१८४॥

*
 चितवनि रुखे दगनि की, हाँसां बिन मुसकानि ।
 मान जनायौ मानिनी, जानि लियौ पिय जानि† ॥१८५॥

*
 ढीली बाहन मो मिली, बोली कछू न बोल ।
 सुदरि मात्र जनाइ कै, लियौ प्रानपति मोल† ॥१८६॥

*
 याही ते हिय जानिगौ, मान हिये कौ लाल ।
 अरसीली ढीली मिलनि, मिली रसीली बाल§ ॥१८७॥

(५) प्रौढ़ा अधीरा—जो नायिका कटु भाषण और ताड़ना पूर्वक अपना रांप प्रकट करे, उसे 'प्रौढ़ा अधीरा' कहते हैं † ।

जाबक रंजित भाल किऐँ, मनभावन मामती-गेह सिधारे ।
दूरि तें भौह कमान चढ़ाइ कै, सुदरि नैन-कटाच्छ तें डारे ॥
आइकै बालम बाँह गही ढिंग, चंदमुखी भुकिकै झुझकारे ।
चंपक माल सी कोमल बाल सु, लाल चमेखी की माल सों मारे ॥१८८॥

★

'रोष करि पकरि परौस तें लियाई घरें,
पी को प्रानप्यारी भुजलतनि भरै-भरै ।
कहै 'पदमाकर' न ऐसौ दोष कीजो फेरि,
सखिन समीप यों सुनावति खरै-खरै ॥
प्यौ छल छपावै बात, हँसि बहिरावै तिय
गद्-गद् कंठ दग आँसुन झरै-झरै ।
ऐसी धन धन्य, धनी धन्य है सु ऐसौ जाहि-
फूल की छरी सों खरी हनति हरै-हरै ॥१८९॥

★

रोष कै काँपति क्यों इतनी, भला काहु की यो पत कोऊ उतारै ।
कौन सी चूक है ऐसी परी, सुख जो अजौ तू अपनौ न सगहारै ॥
ऐसी न लालिमा है अखियाँ की जो 'हरिऔध' पै आँखिन पारै ।
सूख सी सालति ऐसिए भूल, अरी पिय कों मति फूल सो मारै ॥१९०॥

★

खेल न खेलिए ऐसौ भद्र, सु परौसनि कोऊ कहूँ लखि लैहै ।
मानहु ना बरजी हमरी, अब काहे कों कोऊ सिखावन दैहै ॥
नंद कुमार महा सुकुमार, विचार कै फेरि हिए पछितैहै ।
घालिए ना, इन फूलन की पँखुरी कहूँ अंगनि मे गड़ि जैहै ॥१९१॥

★

पाग दुरी, पीरी खरी, पिय-मुख परी निहारि ।
फूल-छरी कर में धरी, अनख भरी झुझकारि ॥ १९२ ॥

† कलु तरजन, ताड़न कलु, करि जु जनावै रोष ।

प्रौढ़ अधीरा नाइका निरखि नाह को दोष ॥

—“जगद्विनोद”

(६) प्रौढ़ धीराधीरा—वक्रोक्ति तथा भय-प्रदर्शन द्वारा पति को दुःखित करने वाली और मान पूर्वक रति-कला से उदासीन रहने वाली नायिका को 'प्रौढ़ा धीराधीरा' कहते हैं* ।

बदन विचित्र बन्यौ प्रथमई ताकों जोइ,
 सोइ पलका पै रहौ नीके नही दरसौ ।
 करेंगी प्रतीत वेई, जासो हौ सरस तुम,
 'रघुनाथ' तासो ए बनाइ बातें बरसौ ॥
 सौंह करिवे कों अब पौंहन की ओर पानि,
 तुम जो चलावति हौ, बेर-बेर सर सौ ।
 मानौगे अनैसौ जो कहौंगी कछु, कछौ मानों,
 परैगौ अन्है नौ मोहि, मोहि मत परसौ ॥१६३॥

★

बनि आन बनाए नही बनि है, ढिंग आवौ नही खरे दूर रहौ ।
 अपने मन ही की करी तौ करी, कत काहु के बैन अनैसे सहौ ॥
 'हरिऔध' तुमैं हम जानती हैं, हक-नाहक ही हमकों न दहौ ।
 चले जाउ गुनाह भई सो भई, तुम नौह ! न वाह हमारी गहौ ॥१६४॥

★

आवतई न बिलोकी, न बोली, रही परजंकहि में तिय बैठी ।
 'बेनीप्रवीन' गए ढिंग भोरहिं, सौंहन खात तऊ नहिं देँठी ॥
 ज्यों परसे कुच कामिनि के, अपमाननि मानिनी कोप मे पैठी ।
 चेदी चितौनि, धरे अघरारद, लोचन लाल कै भौंह अमैठी ॥१६५॥

★

आए कहूँ अनत बिहार करि मंदिर में,
 सामुहै भूमकि छवि दामिनी की छोरै है ।
 आरस-बलित बागौ, मरगजी ढीली पाग,
 बदन प्रस्वेद भाल-भौहन के कोरै है ॥
 मरम खुल्यौ न अंग परसत मोहिनी कौ,
 'लछिराम' सान संग भौहन मरोरै है ।
 लोचन सुरंग हेरि बाल के सरोष मानौं,
 रंगसाज मदन मजीठ रंग बोरै है ॥१६६॥

* रति उदास है नाह कों, डर दिखावै बाम ।

प्रौढ़ अधीराधीर तिय, बरनत कवि मतिराम ॥

स्वकीया के अन्य भेद

ज्येष्ठा-कनिष्ठा—पति-प्रेम के परिमाणानुसार स्वकीया नायिका के ज्येष्ठा-कनिष्ठा नामक दो भेद और होते हैं। एक पुरुष की कई विवाहिता स्त्रियाँ होने पर, जिस पत्नी पर पति का अधिक प्रेम हो, उसे ज्येष्ठा और जिस पर न्यून हो, उसको कनिष्ठा कहते हैं।

स्पष्टीकरण—यहाँ पर अवस्था में बड़ी अथवा पूर्व विवाहिता पत्नी को ज्येष्ठा और अवस्था में छोटी अथवा बाद की विवाहिता पत्नी को कनिष्ठा नहीं समझनी चाहिये। कनिष्ठत्व और ज्येष्ठत्व का संबंध पति-प्रेम के न्यूनाधिक्य पर निर्भर है, वयक्रम अथवा विवाह-काल पर नहीं। प्रायः नव विवाहिता स्त्रियाँ ज्येष्ठा और पूर्व विवाहिता कनिष्ठा होती हैं।

(ज्येष्ठा)

हौऊँ हुती मर-संग, अंग-अंग रग-रंग,

भूषन-बसन आज गोपिन सँवारी री ।

महल सराइ में निहारत सबन तन,

ऊपर अटारी गए लाल गिरधारी री ॥

‘दास’ तिहि औसर पठाइ कै सहेली को,

अकेलीऐ बुलाई वृषभानु की दुलारी री ।

लाल-मन बूढ़िबे कौं देवसरि सोती भई,

सौतिन चुनौती भई, वाकी संत सारी री ॥ १६७ ॥

† (१) जासों पति अति हित करै, सुतिय ज्येष्ठा आहि ।

जासों घटि हित नाह कौं, कहै कनिष्ठा ताहि ॥

—“सुंदरशृंगार”

(२) केशवदास आदि कवियों ने ये भेद नहीं लिखे हैं ।

(३) चितामणि, मतिराम, देव, रसलीन, पद्माकर आदि कवियों ने ज्येष्ठा कनिष्ठा को पृथक्-पृथक् न लिख कर एक ही उदाहरण में दोनों को सम्मिलित कर दिया है ।

(४) दाम ने ज्येष्ठा-कनिष्ठा को पृथक्-पृथक् लिखा है और दक्षिण, शठ और धृष्ट नायक भेदानुसार उनके निम्न लिखित ६ भेद किये हैं—

१-दक्षिण की ज्येष्ठा, २-शठ की ज्येष्ठा ३-धृष्ट की ज्येष्ठा,

४-दक्षिण का कनिष्ठा, ५-शठ की कनिष्ठा ६-धृष्ट का कनिष्ठा ।

(कनिष्ठा)

नैनन को तरसैये कहाँ लौ, कहाँ लौँ हिग्यौ बिरहाग मे तैये ।
 एक घरी ना कहूँ कल पैये, कहाँ लगि प्रानन को कलपैये ॥
 आवै यहै अब 'दास' बिचार, सखी चल सौतिउ के घर जैये ।
 मान घटे तें कहा घटि है, जु पै प्रान-पियारे को देखन पैये ॥ ११८ ॥

*

रोज न आइये जो मनमोहन, तौ यह नैक मतौ सुनि लीजिये ।
 प्रान हमारे तुम्हारे अधीन, तुम्हे बिन देखैं सु कैसे कै जीजिये ॥
 'ठाकुर' लालन प्यारे सुनौ, बिनती इतनी पै अहो चित दाजिये ।
 दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, आठवें तौ भला आइवौ काजिये ॥ ११९ ॥

*

(ज्येष्ठा-कनिष्ठा)

खेतल फाग खिलार खरे, अनुराग भरे बड भाग कन्हाई ॥
 एकई भौन मे दोउन देखि कै, 'देव' करी इक चातुरताई ॥
 लाल गुलाल सो लीनी मुठी भरि, बाल के भाल की ओर चलाई ।
 वो दग मूँदि उतै चितइ, इन भैटी इतै बृषभान की जाई ॥ २०० ॥

*

दोऊ छवि छाजती छबीली मिलि आसन पै,
 जिनहिं बिलोक रह्यौ जात न जितै-जितै ।
 कहै 'पदमाकर' पिछौ हैं आइ आदर सों,
 छलिचा छबीलौ छैल बासर बितै-बितै ॥
 मूँदे तहाँ एक अलदेली के अनौखे दग,
 सु दग-मिचावनी के ख्यालनि हितै-हितै ।
 नैसुक नवाइ प्रीवा धन्य-धन्य दूसरी कों,
 औचक अचूक मुख चूमत चितै-चितै ॥ २०१ ॥

*

केलि के मंदिर बैठी दुतीं, दुइ प्रेम भरी, तहँ प्रीतम आयौ ।
 दोउन सों करिकै मधुरी बतियाँ, अपने ढिंग में बिठरायौ ॥
 'भानु' सुगंध सुंवाइवे के मिस, एक के नैन कपूर लगायौ ।
 मींजन जौलौं लगी तब लौँ हँसि, दूजी को आपुने अंक लगायौ ॥ २०२ ॥

परकीया नायिका

परकीया—जो नायिका पर-पुरुष से प्रीति करे, उसे परकीया कहते हैं ।

‘आखिन आगें न दात कढ़ै, न बड़ै उठि ओठनि तें मुसुकाहि है ।
रोस सुभाइ कटाच्छ के घाइन, पोंडि कौ आहट जात न जानि है ॥
‘दास’ न कोऊ कहैं कबहूँ कहै, कान्ह तें यातें कछु पहिचानि है ।
देखि परै दुनियाई मे दूजी न, तो सी तिया चतुराई की खानि है ॥२०३॥

★

ऐसेई चाहि चबाइ चहुँ कहि, एक की बात हठा-बखानी ।
झौस है-यातक सों चरचा, ब्रज मंगल में अति ही अधिकानी ॥
मो न कछु समुझै ‘द्विजदेव’, रही धौ कहा हिय में अब ठानी ।
वादि ही मोहिं दहै दिन-राति, सखी ! यह जारिवे जोग जवानी ॥२०४॥

★

वे बम मंत्र सदाँई रहैं, इनकें न है जंत्र, न मंत्र, न है मुनि ।
वे डसि भाजति एक ही बार, इन्हें नहिं तोष बिनाहिं डसै पुनि ॥
भेद चबाइन सों औ भुजंगन सों, ‘द्विजदेव’ रहै धौं कितौ गुनि ।
आखिन देखि डसैं वे कहूँ, सखि ! ए नित ही डसैं कानन सों मुनि ॥२०५॥

★

रैन-दिना छुटिबौ करें प्रान, झरैं अखियाँ दुखियाँ झरना सी ।
प्रीतम की सुवि अंतर मैं, कसकै सखि ! ज्यों पँसुरीनि में गाँसी ॥
चौचंद चार चबाइन के चहुँ ओर मचैं, विरचै करि हाँसी ।
बों मरियै भलयै कहि बयों, सु परौ जनि कोऊ सनेह की फाँसी ॥२०६॥

† (१) प्रेम करै पर-पुरुष सों, परकीया से जान ।

—“रसराज”

(२) निज पति-बंधन जो करै, पर-पति पै अनुराग ।

तासों परकीया कहै, कविवर सकल अदाग ॥

—“शृंगार दर्पण”

(३) केशवदास ने परकीया को पर-पुरुष-रत न कह कर परमब्रह्म परमात्मा की प्रिया कहा है—

सबतें पर परसिद्ध जो, ताकी प्रिया जु होय ।

परकीया तासौ कहै, परम पुराने लोय ॥ —“रसिकप्रिया”

जा दिन तें निरख्यौ नँदनंदन, कानि तजी घर-बंधन छूट्यौ ।
 चारु बिलोकनि कीनी सु नारि, सगहार गई मन मार नें लूट्यौ ॥
 सागर कों सरिता जिमि धाड़, न रोकी रहै, कुल कौ पुल टूट्यौ ।
 मत्त भयौ मन संग फिरै, 'रसखान' सरूप अमी-रस घूँट्यौ ॥२०७॥

★

लाज के लेप चढ़ाई कै अंग, पची सब सीख कौ मंत्र सुनाई कै ।
 गाढ़रू हैं ब्रज लोग थके, करि औषद बेसक सौँह दिवाई कै ॥
 ऊँचौ सों की 'रसखान' कहै, जिन चित्त धरौ हम ऐते उपाई कै ।
 कारे बिसारे को चाहै उतार्यौ, अरे बिस बाबरे ! राख लगाई कै ॥२०८॥

★

मेरौ सुभाव चितैवै को माइ री, लाल निहारि कै बसी बजाई ।
 वा दिन ते मोहि लागी ठगी री, लांग व हैं कोउ बाबरी आई ॥
 यों 'रसखान' धिर्यौ सिगरी ब्रज, जानत वै, कै मेरौ जियराई ।
 जो कोउ चाहै भर्खौ अपनौ, तौ सनेह न काहू सो कीजिए माई ॥२०९॥

★

छवि सों छबीलौ छैन आज भोर याही गैल,
 अति ही रँगिली भाँति औचक ही आइगौ ।
 चटक-मटक भरि लटक चलन नीकी,
 मृदु सुसक्यानि देखे, मो मन बिकाइगौ ॥
 प्रेम सों लपेटौ कोऊ निपट अनूठी तान,
 मो मन चिताइ गाड़ लोचन दुगाइगौ ।
 तब तें रही हौं धूमि, झूमि जकि बावरी हूँ,
 सुर की तरंगनि मे रंग बरसाइगौ ॥ २१० ॥

★

जाके लगै सोई ज नैं विथा, पर पीर मे कोउ उपहास करै ना ।
 'सागर' जो चुभि जात है चित्त में, कोटि उपाइ करौ पै टरै ना ॥
 नैकसी काँकरी जाके परै, सु तौ पीर तें नैकहु धीर धरै ना ।
 कैसै परै कल ए री भट्ट ! जब आँखि में आँख परै, निकरै ना ॥२११॥

★

का कहिए किहि सों कहिए, तन छीजत है, पै न छीजतु है ।
 तन कौ बिसराम अराम घनौ, करि दीजतु है, पै न दीजतु है ॥
 कवि 'ठाकुर' भोग-सँजोग सबै, सुख कीजतु है, पै न कीजतु है ।
 मनभावन प्यारे गोपाल बिना, जग जीजतु है, पै न जीजतु है ॥२१२॥

कबहूँ मिलिबौ, कबहूँ मिलिबौ, यह धीरज ही में धरैबौ करै ।
 उर तें कटि आवै गरै तें फिरै, मन की मन ही में मिरैबौ करै ॥
 कवि 'बोधा' ने चाव सरी कबहूँ, नित ही हरवा सौ हिरैबौ करै ।
 सहतेई बनै, कहते न बनै, मन ही मन पीर पिरैबौ करै ॥२१३॥

★

अति लोक की लाज समूह में घेरि कै, राखि थकी भव-संकट सों ।
 पल मे कुल-कानि की मेड नखी, नहिं रोकी रुकी, पल के पट सों ॥
 'रसखान' सों केनौ उचाटि रही, उचटो न सँकोच की औचट सों ।
 अलि कोटि कियौ, हटकी न रही, अटकी अँखियाँ लटकी लट सों ॥२१४॥

★

उनहीं के सनेहन सानी रहैं, उनहीं के जु नेह दिबानी रहैं ।
 उनहीं कीं सुनै न औ बैन त्यों सैन, सों चैन अनेकन ठानी रहैं ॥
 उनहीं संग डोलत मे 'रसखान', सबै सुख-सिंधु अवानी रहैं ।
 उनही बिन ज्यों जल मीन है मीन सी, आँखि मेरी अँसुआनी रहैं ॥२१५॥

★

नंद कौ नवेखौ अलबेखौ रंग छैल भरथौ,
 काल्हि मेरे द्वार है कै गावत इतै गयो ।
 बडे वाँके नैन, महा सोभा के सु ऐन आली !
 मृदु-सुसुक्क्याय मुरि, मो तन चितै गयो ॥
 तब तें न मेरे चित चैन कहूँ रंचक हू,
 धीरज न धरै, सो न जानै धौं कितै गयो ।
 नैकु ही मे मेरौ कछु मोपै न रहन पायो,
 औचक ही आइ भट्ट ! लूट सी वितै गयो ॥ २१६ ॥

★

'घेरी घिरी घर में न घरीक, सु कुंजन मे कहि काहि गनै री ।
 ठाडी अवेखी सहेखी सों रुठति, पाँइ अंगूठन भूमि खनै री ॥
 'देव' कहै कोऊ ल्यावै उन्है गहि, तौलौं घनी तरु छाँह तनै री ।
 आज लौं पावन, वा बनमाखी मिलै बिन, आली न मोहि बनै री ॥२१७॥

★

मोपै न मंत्र प्रयोग भयो कोउ, मोहि डस्यौ न मुअंगम कारौ ।
 भूत की बाधा न मोपै भई, नहिं बाबरी सौ भयो चित हमारौ ॥
 तू उपचार के ब्यौत करै कहा, जानै कहा 'हरिऔध' बेचारौ ।
 बान सी मारि गयो उर में, अरी बीर ! बड़ी-बड़ी आँखिन बारौ ॥२१८॥

करि मंत्रनि ठाडी हुती सुच सों अति, याज कलिदत्ता-कूज अली ।
 'द्विजदेव जू' ओचरु ताही समैं, तहाँ आँनि कडे कहुँ कान्ह छली ॥
 बिसरी सिगरी सुधि ता छिन तें, कछु ऐसिएँ डीठि की फाँसी घली ।
 कदी केसन के सुरभाइवे कों, मनमोहन सों उरभाइ चली ॥२१६॥

★

खंजन नैन फँदें छवि-पिंजर, नाहि रहै थिर कैसेउ माई ।
 छूटि गई कुल-कानि सखी, 'रसखान' लखी मुसिकानि सुहाई ॥
 चित्र लिखी सी भई सब देह, न बैन कद्वै, सुख दीन दुहाई ।
 कैसे करौ, जित जाउं तितें, सब बोलि उठै, जे बाबरी आई ॥२२०॥

★

कहिवे को दिथा, सुनिवे कों हँसी, को दया सुनि कै उर आनतु है ।
 अरु पीर घटै तजि धीर सखी ! दुख को नहीं कापै बखानतु है ॥
 कवि 'बोधा' कदे मे सबाद कहा, को हमारी कही पुनि मानतु है ।
 हमें पूरी लगी, कै अधूरी लगी, यह जीव हमारोई जानतु है ॥२२१॥

★

'सूखा सी, खर्मा सी, अमी व्याकुल सी बैठी कहा,
 नजर लगी है, तृन तोरि-तोरि नाख्यौ मैं ।
 'बैनी' कवि भोरई तें भोरी भई दौरति हौं,
 राज करौ जाइ, गृह-काज अभिलाख्यौ मैं ॥
 ललकै हमारौ जिय बोलै न विलोकै काहै,
 मुख अँखें मूँद रही, याते दीन भाख्यौ मै ।
 पलकैं उधारौं कैसैं, कदि जाइ आँखिन तें,
 सोर जिन करौ, चितचोर मूँदि राख्यौ मै ॥ २२२ ॥

★

जा जिय कौ दुख कासों कहौं, कहिवे कों न जीभइ डोलत डाही ।
 कौ लौं छिगाइएँ छातो के घाइन, होत चबाइन कें चित चाही ॥
 मेरी ही गैल लग्यौ रहै लंगरु, जो न लखौ, तौ मरौ छिन ताही ।
 लाज निबाहन मोहि परी, जे बैरिन लाज परै न निबाही ॥२२३॥

★

'चै हट कौ मिलिवौ तौ रह्यौ, मिलिवौ रह्यौ औचक साँझ सबेरौ ।
 और इती विनती तुमसों हरि, आइ अगीत-पछीन न घेरौ ॥
 'ठाकुर' जो मिलि जैए कहुँ मग, तौ जहँलौं इक ही टक हेरौ ।
 या ब्रज के ब्रजबासी सबै, बदनाम करै तुम्हरो अरु मेरौ ॥२२४॥

डगमगी डगनि धरनि छुवि ही के भार,
 ढरनि छुबीले ढर आछी बनमाल की ।
 सुंदर बदन पर कोटिन मदन बारों,
 चित चुभी चितवन लोचन विसाल की ॥
 काहू इहि गली अली ! निकस्यौ अचानक हूँ,
 कहा कहौ अटक मटक तिहि काल की ।
 भिजई हौ रोम-रोम आनंद के घन छाई,
 बसी मेरी आँखिन में आवनि गुपाल की ॥२२५॥

★

हाँसी भई सापनौ, अबा सी भई देह यह,
 दासी भई बैरिनें, बिसासी भई सखियाँ ।
 'द्विजदेव' त्यों ही कछु फूले-फूले किसुकन,
 ज्वाल-ज्वाल लागी सी चहुँघाँ दिसि लखियाँ ॥
 चोप चटवारौ चित चंचल चकोर मेरौ,
 कैसी करें बाबरी ! परिंद बिन पखियाँ ।
 जा छिन ते जाइ अति उँमगि अवाइ,
 मनमोहन सों हाय ! मिलि आई मेरी आँखियाँ ॥२२६॥

★

मोही मे रहत, रहै मोही सो उदास सदा,
 सीखत न सीख, तन सीख निरधारौ है ।
 चौकौ सौ, चकौ सौ कहूँ, जक सौ, जक्यौ सौ,
 कैहूँ पायन थक्यौ सौ, भौत-भौतिन निहारौ है ॥
 'ठाकुर' कहत चित चोज बारी बातन में,
 जानतु न हरि सों कहाँ धौ बोल हारौ है ।
 ऐसौ चित चतुर सयानौ सावधान मेरौ,
 परी ! इन आँखिन अयानौ करि डारौ है ॥२२७॥

★

पहिलैं बिन जाने पिछानैं बिना, मिलीं धाई कै आगे बिचारे बिना ।
 अपने सों जुटी है गई तुरतै, निज लाभ औ हाति बिचारे बिना ॥
 'हरिचंदजू' दोष सबै इनकौ, जो कियौ सब पूँछि हमारे बिना ।
 बरिआई ललौ इनकी उलटी, अब सेवहि आप निहारे बिना ॥२२८॥

धाड़कै आगे मिलीं पहिलै, तुम कौन सों पूछिकै, सो मोहिं भाखौ ।
 त्यो तुमहीं तजिकै सब लाज, केहि के कहै एतौ कियौ अभिलाखौ ॥
 काज बिगारि सबै अपनौ, 'हरिचंदजू' धीरज क्यों नहिं राखौ ।
 क्यों अब रोइके प्रान तजौ, अपने किए कौ फल क्यों नहिं चाखौ ॥२२६॥

★

हरि जू की गैल यह मेरी पौर अगवा सों,
 ह्यौ ह्यै कइयौ चाहैं मोहि काम घर कौ ।
 ताकौ घरहाँई दुखहाँई सोर पारती हैं,
 बास छोड दीजै, कै निकरिवौ डगर कौ ॥
 'ठाकुर' कहति हौ कराहिन भई हो सुनि,
 सकल उराहनों जु हैं रहौ अधर कौ ।
 घरी-पहर होइ तौ बचाए रहौ मेरी बीर !
 देहरी-दुआर-दुख आठ हू पहर कौ ॥२३०॥

★

लहि जीवन-मुरि कौ लाहु अली ! नै भली जुग चारि लौं जीवौ करें ।
 'द्विजदेवजू' त्यो हरखाइ हिणें, बर बैन-सुधा-मधु पीवौ करें ॥
 कछु घूँघट खोलि चितै हरि-ओरन, चौथ-ससी-दुति लीवौ करें ।
 हम तौ ब्रज कौ बसिवौई तज्यौ, अब चाव चवाइनें कीवौ करें ॥२३१॥

★

गोकुल के, कुल के, गली के, गोप गाँमन के,
 जौ लगि कछु कौ कछु भारत भनैं नहीं ।
 कहै 'पदमाकर' परौस पिछवारन के,
 द्वारन के दौरि गुन-औगुन गनैं नहीं ॥
 तौलौं चलि चातुर सहेली याहि कोऊ कहूँ,
 नीकै कें निचोरै ताहि करति मनैं नहीं ।
 'हौं तौ स्याम रग में चुराइ चित चोराचोर,
 बोरत तौ बोरयौ, पै निचोरत बनै नहीं ॥२३२॥

★

एक ही बार अयानपने महुँ, है गयौ सो, जु हुतौ कछु हौनों ।
 ताहु पै वा विष-बेलि सी मूरति, नाँहक पाइ, परौ फिरि रौनों ॥
 ब्रूमती बारहि बार तुम्हैं, 'द्विजदेव' कहौ न अहो दग दौनों ।
 पावक-पुंज पियौई हुतौ, फिरि चाख्यौ कहा हरि-रूप सलौनों ॥२३३॥

का कहिए कोई पीरक नॉहिनै, तातें हिए की जतैयत नॉही ।
भागन भेट भई कबहूँ, सु घरीक बिलौकै अछैयत नॉही ॥
'ठाकुर' या घेर चौचैद कौ डरु, तातें घरी-घरी ऐयत नॉही ।
भेंटन पैयत कैसें तिन्है, जिन्हें आँखिन देखत पैयत नॉही ॥२३४॥

★

देखि हमै सब आपसु में, जो कछु मन भावै मोई कहती है ।
ए घरहाई लुगाई सबै, निसि-धौस 'नेबाज' हमें दहती हैं ॥
बातें चबाइ भरी सुनिकै, रिस आवतु, पै चुप ह्वै रहती हैं ।
'कान्ह पियारे तिहारे लिऐ', सिगरे ब्रज कौ हँसिवौ सहती हैं ॥२३५॥

★

हम एक कुराह चली तौ चली, हटकौ इन्हें ए ना कुराह चलै ।
इहि तौ बलि आपुनौ सूझती हैं, प्रन पाखिए सोई, जो पालै पलै ॥
कवि 'ठाकुर' प्रीति करी है गुपाल सो, टेरै कहों, सुनौ ऊँचे गलै ।
'हमै नीक्री लगी सो करी हमनै, तुम्है नीक्री लगौ, न लगौ तौ भलै ॥२३६॥

★

ब्रज-ब्रीधिन में फिरिबे के लिऐ, गुरुखोगन हू मिलि कीन्ही खई ।
पर मान्यौ नही उन हूँ को कही, जिय ऐसी कछु मति आनि ठई ॥
तुम हू अब का समुझावती हौ, विधि ने 'हनूमान' लिखी सो भई ।
अब तौ मनमौहन हाथ सखी, कुल-कानि दई, बदनामी लई ॥२३७॥

★

प्रेम पगे जु रगे रँग साँवरे, मानै मनाइ न लाखचि नैना ।
धावत हैं उतही जित मौहन, रोकै रुकै नहि धूँघट ऐना ॥
कानन लों कल ना हियरे सखि ! प्रीति सों भीजि सुने मृदु बैना ।
ह्वै 'रसखान' मधू मखिआँ, अब नेह सु बंधन क्यों हु छुटै ना ॥२३८॥

★

हम हू सब जातनी लोक की चाखनि, क्यों इतनौ बतरावती हौ ।
हित जामैं हमारौ बनै सो करौ, सखियाँ तुम मेरी कहावती हौ ॥
'हरिचंदजू' जामैं न लाभ कछु, हमैं बातनि क्यों बहरावती हौ ।
सजनी ! मन हाथ हमारे नही, तुम कौन कों का समुझावती हौ ॥२३९॥

(दृढानुरागिनी परकीया)

जब ते दरसे मनमोहन जू, तब तैं अँखियाएँ लगी, सो लगी ।
 कुल कानि गई सखि ! वाही घरी, जब प्रेम के फंद पगी सो पगी ॥
 कहि 'ठाकुर' नेह के नेजन की, उर मे अनी आनि खगी सो खगी ।
 तुम गाँवरे, नाँवरे कोऊ धरौ, हम साँवरे-रंग रँगी सो रँगी ॥२४०॥

★

मधुरी सुसुवयानि मनोहर में, मति मेरी जु आनि ठगी सो ठगी ।
 गरुण-गहबीले गुलाब के पात से, गातन दीटि लगी सो लगी ॥
 सजनी ! यह नेह मई बतियाँ तैं, काम की जोति जगी सो जगी ।
 अब कोऊ कितौऊ कहै किन री, जु हौं स्याम के रंग रँगी सो रँगी ॥२४१॥

★

बावरी ! तू तौ बकै बहुतेरौ, लग्यौ नहिं तोहि कहूँ यह घाव री ।
 घाव री, घाइल जानत है, जिनकौ निसि-बासर प्रेम सुभाव री ॥
 भावरी भोजन, भौन न नीद, हिऐं उरफो वह मूरत साँवरी ।
 साँवरे रंग मे हौं तौ रँगी, न चढ़ै अब दूसरी रंग सो बावरी ॥२४२॥

★

जरि है कब लो बिरहा-भर ते, तिनके डर तैं कब लों डरि है ।
 'द्विजदेवजू' ए दुखहाई लुगाई, न या ब्रज तैं कितहूँ टरि है ॥
 जल-केलि में छूट छई सो छई, उर त्रास न याकौ कछु धरि है ।
 लखि मो मुख-चंद मे पंक लग्यौ, वे कलंक लगाइ कहा करि हैं ॥२४३॥

★

अब तौ जो भई सो भई, सो भई, हम वाही में आनंद लीवौ करें ।
 इन काननि की यह वानि परी, बतरानि-सुधा-मधु पीवौ करे ॥
 कवि 'राम' कहै अभिराम-सरूप, चितै चित वाही में दीवौ करें ।
 सखि हौं वा रँगीले के रंग रँगी, ए चबाइनें चौचंद कीवौ करें ॥२४४॥

★

जब रीझि-सबाद भरी अँखियाँ, तब रूप भलौ अरु पोच कहा ?
 अपने अँग व्याधि अगाधि उठी, तब वैदन ही सो सँकोच कहा ?
 स्स-रासि-मिलाप-सुधा अँचयौ, तब जाति औ पाँति कौ सोच कहा ?
 छकि लौंड़ी भई हित-डौंड़ी बजाइ, कनौड़ी भएँ, अब लोच कहा ? ॥२४५॥

परकीया नायिका भेद

परकीया नायिका के सर्व प्रथम दो भेद होते हैं—१-अनूढा, २-ऊढा ।

इनके उपरांत परकीया के अवस्थानुसार छै भेद और होते हैं*—

१-मुदिता, २-विदग्धा, ३-अनुशयना,
४-गुप्ता, ५-लज्जिता, ६-कुलटा ।

- (१) केशवदास ने ऊढा और अनूढा केवल दो भेद ही लिखे हैं ।
- (२) चिंतामणि और देव ने ऊढा के अंतर्गत पिञ्जले छै भेद लिखे हैं ।
- (३) दास ने पहले प्रगल्भा और धीरा नामक दो भेदों का कथन किया है । इनके उपरांत अनूढा और ऊढा का कथन कर उनके दो उपभेद उद्बुद्धा और उद्बोधिता लिखे हैं, फिर उद्बुद्धा के अनुरागिनी और प्रेमानुक्ता नामक दो उपभेदों का कथन किया है । दास ने उनके असाध्या, दुःखसाध्या और साध्या नामक तीन उपभेद और भी लिखे हैं । अवस्थानुसार छै भेदों में से उन्होंने विदग्धा, लज्जिता, मुदिता और अनुशयना इन ४ भेदों का कथन किया है । पाँचवें भेद गुप्ता को किया विदग्धा के अंतर्गत लिखा है, और छठे भेद कुलटा का उल्लेख नहीं किया है ।
- (४) रसलीन ने अनूढा और ऊढा दोनों के उद्बुद्धा और उद्बोधिता नामक दो-दो भेद किये हैं । इनके उपरांत उन्होंने असाध्या के ५ और सुखसाध्या के १० उपभेदों का कथन किया है । यथा—
असाध्या—१. समीता, २. गुरुजन समीता, ३. दूती वर्जिता, ४. अति-काता, ५. खल पृष्ठ ।
सुखसाध्या—१. वृद्ध बधू, २. बाल बधू, ३. नपुंसक बधू, ४. विधवा बधू, ५. गुनी बधू, ६. गुन रिक्छती, ७. सेवक बधू, ८. निरंकुश, ९. परतियासक्त पति की स्त्री, १०. अति रोंगी की स्त्री ।
- (५) मतिराम और पद्माकर ने उपर्युक्त दोनों भेदों को पृथक्-पृथक् लिखा है ।
- (६) परकीया के अवस्थानुसार छै भेदों का क्रम—गुप्ता, विदग्धा, लज्जिता, कुलटा, मुदिता और अनुशयना—प्रायः इसी प्रकार सभी आचार्यों ने लिखा है, किंतु इसका कोई वैज्ञानिक आधार ज्ञात नहीं होता, बल्कि परकीयत्व की अवस्था के अनुसार यह प्रचलित क्रम दूषित ज्ञात होता है । ऐसा अनुमान होता है कि परंपरा से चले आये हुए इस क्रम को सभी आचार्यों ने रुढ़ मान लिया है, किसी ने परकीयत्व के क्रमशः विकास पर दृष्टि रख कर उसका वैज्ञानिक क्रम स्थिर करने की चेष्टा नहीं की ।

अनूढ़ा—अविवाहित अवस्था में ही किसी पुरुष से प्रीति करने वाली नायिका को अनूढ़ा कहते हैं[‡]।

स्पष्टीकरण—प्रायः बाल्यावस्था से ही लड़के-लड़की खेल-कूद में एक दूसरे की ओर आकर्षित हो जाते हैं। उनके इस शुद्ध प्रेम की प्रतीक अनूढ़ा नायिका है। इसमें किसी प्रकार का दोषारोपण करना व्यर्थ है।

सिसिर के सीत में अनहाइ जमुना के तीर,
मूरति बनाइ धरै ध्यान बैठि गौरी में ।
माता वरदायनि हौ, दीन सुख-दायनि हौ,
गिरिजा गोखोइनि हौ पग पै निछौरी मैं ॥
'नदराम' दीजै वर, घर-वर नंदलाल,
मात-पितु मत्त घूमै भाग भरी भौरी में ।
आपुनै सुतंत्र हूँ कै बोलैं मनमौहन सों,
नूपुर पहिरि डोलैं नंदजू की पौरी में ॥२४६॥

*

खेल मिहीचिनि कौ मचायौ नंद-मंदिर में,
लुकिवे को कोठनि-अटारिनि में धँसि जाति ।
नूपुर की धुनि सुनि रीकत हैं महरेठी,
खोलति न याते जब-तब आपु गसि जाति ॥,
'रघुनाथ' दौरत में दामिनी-सी लसति है,
घाँघरी सों फँसति लखलखाति खसि जाति ।
वेरि-वेरि आनंद सों हिय में सनेह सनी,
वेर-वेर मौहन की ओर हेर हँसि जाति ॥२४७॥

‡ (१) अनव्याही पितु-गेह में, कै काहूँ सों नैह ।
ताही सों व्याहौ चहै, सो अनूढ़ मति-गेह ॥

—“रसिक विनोद”

(२) विन परनै तिय पुरुष सों, अनुरागी जो होइ ।
ताहि अनूढ़ा कहत हैं, कवि-कोविद सब कोइ ॥

—“शृंगार दर्पण”

(२) ऊढ़ा—अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से प्रेम करने वाली विवाहिता स्त्री को 'ऊढ़ा' कहते हैं* ।

स्पष्टीकरण—बाल्यावस्था से ही जिन लड़के-लड़कियों में परस्पर आकर्षण हो जाता है, उनका वयस्क होने पर विवाह-बंधन में बँधने की इच्छा रखना स्वाभाविक है । यदि संयोग वश उनका आपसमें विवाह होगया, तब तो वह पुराना आकर्षण सुखपूर्ण दाम्पत्य प्रेम में परिणित हो जाता है; किंतु जाति, कुल और समाज के बंधन के कारण प्रायः इस प्रकार के विवाह नहीं हो पाते, और इस विवशता के कारण वह बाल-स्वभावजनित आकर्षण भी समय पाकर स्वतः दूर हो जाता है^१ । कभी-कभी यह आकर्षण इतना अधिक होता है कि वह विवाह के पश्चात् भी बना रहता है और उस पुरुष की चाह स्त्री को सदा जलाया करती है । पुराने प्रेमी के अतिरिक्त उक्त स्त्री का आकर्षण विवाह के पश्चात् किसी अन्य पुरुष की ओर भी हो सकता है, किंतु कुल-धर्म और सामाजिक मर्यादा का विचार करती हुई वह अपने मन को सावधान करने की चेष्टा करती रहती है । इस प्रकार प्रेम और मर्यादा के अपार पारस्परिक में डूबती-उतरती हुई इन भिन्न-भिन्न स्थितियों की नायिकाओं को 'ऊढ़ा' कहते हैं ।

औचक दीठ परे कहुँ कान्हजू, तामैं कहै ननदी अनुरागी ।
 सो सुनि सासु रही मुख मोरि, जिठानी फिरै जिय मे रिस पागी ॥
 नीके निहारि कै देखे न आँखिन, हौं कबहुँ सँग रैन न जागी ।
 है पछितैवौ यही सजनी ! कै कलंक लग्यौ, पर अंक न लागी ॥२५॥

★

'मुख तें न मोहन की चरचा चलावै कहुँ,
 मनै-मन राखि हिय दीपक दिपावै है ।
 नैनन मे हूँ कै कोऊ नैक न पिछानै कान्ह,
 नीची करि दीठि सौति-मद कौ खपावै है ॥
 लोक-लाज अंबर की ओट धरि अंगन को,
 सबै गुरुलोगन के अम कों लिपावै है ।
 ऐसैं हित प्रीतम कौ चित में छिपावै, जैसैं-
 रंक बित पाइ कर, छिति मे छिपावै है ॥२६॥ *

* जो ब्याहं तिय और की, करत और सों प्रीति ।

ऊढ़ा तासों कहत हैं, हिऐं राखि रस-रोति ॥

‘समझीं न कछु अजहूँ हरि सो, ब्रज नैन नँचाइ-नँचाइ हँसै ।
 नित सास की सारी उसॉलनि सों, दिनई दिन माइ की कांति नसै ॥
 चहुँ ओर बबा की सो सोर सुनै, मन मेरेउ आवति रीस कसै ।
 पै कहा करौ वा ‘रसखान’ बिलोकि, हियौ दुलसै, दुलसै, दुलसै ॥२५६॥

★

‘बारिध विरहै बडी वेदन की बाडबागि,
 बडे-बडे बूडे, पार परे प्रेम-पुल ते ।
 छूटि गुन गस्वौ गरब गिरि गयौ दग,
 पवन तरंग बुद्धि नौउ नैक उल्लते ॥
 मेरे मन ! तेरी भूल, मरि हौं हिये के सुल,
 ‘देव’ तुन तूल तूल कीन्ही हौ अतुल ते ।
 भामते ते भोंडी करी, मानिन ते मोंडी करी,
 कौड़ी करी हीरा ते, कनौड़ी करी कुल ते ॥२५७॥

★

पाख हू न बीत्यौ चलि आएँ हमै पीहर ते,
 नीके कै न जानी सासु, नैनद, जिठानी है ।
 कहै ‘सिवराम’ ऐलै कैलै निबहैगी बीर !
 घर-घर झूठई चबाइ रीति ठानी है ॥
 कौन मिली आँखे-आँख, काकौ तन-मन मिल्यौ,
 कौनै काहि मोह्यौ, कौन काके मन मानी है ।
 ब्रज की बधून मिलि चौचंद मचार्यौ,
 हम कान हू सुनी न कहूँ कान्ह की कहानी है ॥२५८॥

★

बीर अधीर भई तो कहा, परी पीर भरी छुतियाँ अब चाँपनी ।
 प्रीति रतीक न जा ‘हरिऔध’ मे, ताकी प्रतीत करी, बनी पापिनी ॥ ।
 जा अपकीरति की बतियाँ, निज हाथन मोइ परी सखि धापनी ।
 मो पतिआन पै गाज परै पति-आन के हाथ गई पति आपनी २५९॥

★

कत चौक सीमंत की, बैठी गाँठ दुराइ ।
 देख परौसी को प्रिया, धूँघट मे मुसक्याइ ॥२६०॥
 निनु दिन सासु नैनदिआ, मुहि घर घेर ।
 सुनन न देत मुरलिया, ना धुनि टेर ॥२६१॥

(१) मुदिता—पर-पुरुष-मिलन विषयक मनोभिलाषा की अकस्मात् पूर्ति होने देख कर जो नायिका मुदित होती है, उसे मुदिता कहते हैं † ।

साँझ की कारी घटा घिरि आई, महा झर सों बरसै भरि सावन ।
घौरिऊ कारिए आई गई, सु रम्हाई कै, धाई कै लागी खुलावन ॥
माइ कह्यौ कोउ जाइ कहै किनि, मोहू सो आज कह्यौ उन आवन ।
यो सुनि आनंद ते उठि धाई अकेलिये बाल गुपाल बुलावन ॥२६२॥

*

बैठी यह सोच करि, सुंदरि सँकोच भरि,
कैसे के बिलौको हरि, करौ कौन छल-छंद ।
दूबरी भई है देह, कल न परत गोह,
सहित सनेह तौलौ बोली यो जिठानी-नंद ॥
आज दधि बेचन तू जाइ नदगाम मधि,
सुनत 'प्रबीन बेनी' उमग्यौ अनंद-कंद ।
कसि आई कंचुकी, उकसि आए दोऊ कुच,
गसि आई बहियाँ, सु फँसि आए मुजबंद ॥२६३॥

*

मौहन तें कछु औसन मे, 'मतिराम' बढ्यौ अनुराग सुहायौ ।
बैठी हुती तिय माइके मे, सुसरारि कौ काहू सँदेसौ सुनायौ ॥
नाह के व्याह की चाह सुनी, हिय माँहि उझाह जूबीली कें आयौ ।
पौढ़ि रही पट ओढ़ि अटा, दुख के मिस कै सुख बाल छिपायौ ॥२६४॥

*

द्वै दिन कौ पथ तीरथ न्हान कौ, लोग चलयौ मिलकै सिंगरौई ।
सासु बहू सो कह्यौ यों, रहौ घर, और रहै नहिं राखिए कोई ॥
सुंदरि आनंद सों उमगी, जे चाहत ही जु भयौ अब सोई ।
प्रेम सों पूरन दोऊ जने, घर आपु रही, कै रह्यौ नैनदोई ॥२६५॥

† (१) उहै बात बनि आई, जो चित चाहत होइ ।

तातें आनंदित महा, मुदिता कहिए सोइ ॥

—“शृंगार निर्णय”

(२) दाम ने मुदिता मे विदग्धत्व स्थापित कर 'मुदिता विदग्धा' का भी वर्णन किया है ।

नंद के न्यौती हौ भोर भट्ट ! कइौ राधे सों एक सखी सुख माही ।
 यो सुनिकै चुनि चीर भरचौ, सुपरचौ मुख, चोप चढ़ी चित चाही ॥
 सौंभहि तें मन माँझ मलीन त्यो, छीन न होत छपाकर छाही ।
 त्यों पलना हू लगै पल ना, उर आनंद की कलना कल नाही ॥२६६॥

★

गरबीली गोरटी लजीली अखिआँन बारी,
 लूटी सी फिरति छूटी सखिआँन संग ते ।
 कुंज-पुंज क्यों हूँ लखि पाई गुज-माल बारौ,
 जाकी सुघराई है सबाई सौं अनंग ते ॥
 'हरिऔध' हेरै भई बेसुध बिकी सी बाल,
 भाव-भंगी हूँ गई छगूनी भंग-रंग ते ।
 तरकत मैं की तरंग ते तनी के बंद,
 फरकत अंग अंग आनंद-उमंग तें ॥२६७॥

★

अब पीहर को दिबगानी चली, रही सासुल, सो अँधिरानी फिरै ।
 पति हूँ सिवरानी की जात चलयौ, दिन द्वैक ते दासी रूसानी फिरै ॥
 कवि 'गवाल' थों जानी तिया जब तें, तब तें छुतिया सियरानी फिरै ।
 तन ही तन फूलि समानी फिरै, मन ही मन में मुसिक्यानी फिरै ॥२६८॥

★

जा सँग नेह निरंतर हौ, अति हास-बिलासन मोद बढ़ायौ ।
 खेलत खेल 'गुलाब' कहै, नित ही नित चाह कियौ मन भायौ ॥
 सास रिसाति रही तबहूँ, कबहूँ सपनेहुँ न कोप जनायौ ।
 सो नँदनी ससुरारि सिधारत, कारन कौन बधूँ सुख पायौ ॥२६९॥

★

बधूँ रहै घर, हम चलेँ, चलत बात रसलीन ।
 भरकी कदली-पत्र लौ, हिय-कंचुकी नवीन* ॥ २७० ॥

★

परखि प्रेम बस पर पुरुष, हरषि रही मन मैं न ।
 तब लागि मुकि आई घटा अधिक अँधेरी रैन § ॥ २७१ ॥

★

बिछुरत रोवत दुहुँनि की, सखि ! ये बात लखे न ।
 दुख-अँसुआँ पिय-नैन में, सुख-अँसुआँ तिथ-नैन† ॥ २७२ ॥

(२) विदग्धा—चतुरता पूर्वक पर-पुरुषानुराग का संकेत करने वाली नायिका को 'विदग्धा' कहते हैं।

विदग्धा के २ भेद होते हैं—१. वचन विदग्धा, २. क्रिया विदग्धा।

१-वचन विदग्धा—जो नायिका वचनो की चतुरता से पर-पुरुषानुराग विषयक कार्य को सम्पन्न करना चाहे, उसे 'वचन विदग्धा' कहते हैं।

ठाडी बतरात इतरात ही परौसिन ते,
जैसी तिय दूसरी न पूरब-पछाँह मे ।
दीठि परि गपु तहाँ सुंदर सुजान कान्ह,
औचक ही प्रकट पुछति परछाँह मे ॥
'सोमनाथ' त्यों ही प्रानप्यारे को सुनाइ कह्यौ,
तिय ने सखी सो तरुनाई के उछाँह मे ।
बंसीबट निकट हमें तू मिलिथोरी काल्हि,
कातिक मैं न्हाऊँगी तरैयन की छाँह मे ॥ २७३ ॥

*

'जब लों घर कौ धनी आवै घरै, तब लों तौ कहूँ चित दैवौ करौ ।
'पदमाकर' जे बछरा अपने, बछरान के संग चरैवौ करौ ॥
अरु औरन के घर तें हम सो तुम, दूनी दुहावनी लैवौ करौ ।
नित साँझ सबेरै हमारी हहा हरि, गैया भला दुहि जैवौ करौ ॥ २७४ ॥

*

ननँद हठाई उन सोवत उठाई सास,
पेलि कै पठाई अघरातक अंध्यारेई ।
दैहौ ना बिठाई, हौ ही जाऊँगी पठाई तुमै,
उत वै हठीली हठ मोहीं सो पसारेई ॥
पीतंबर खोलौ, मुख देखिहौ तिहारौ नैक,
देखौ भोर भयौ जू बनैगौ पगु धारेई ।
चोखी जाति गैया, कोऊ और ना दुहैया 'देव',
देबर कन्हैया ! कहा सोवत सबारेई ॥ २७५ ॥

१ वचनन की रचनान सों, जो साधै निज काज ।

वचन विदग्धा नाइका, ताहि कहत कविराज ॥ —“जगद्विनोद”

यह लात चलावनी हाथ देया, हर एक को नाहिं छुहावनी है ।
 सुनी तेरी तरीफ मिलावनी की, हित तेरे सु माल पुहावनी है ॥
 कवि 'बवाल' चराइ लै आवनी ह्यौं, फिर बाँधनी पौरि सुहावनी है ।
 मनभावनी देहौं दुहावनी मैं, यह गाय तुहो पै दुहावनी है ॥ २७६ ॥

★

आई है निपट साँझ, गैया गई घर मोंझ,
 ह्यौं ते दौरि आई, कहै मेरौ काम कीजिए ।
 हौ तौ हो अकेली और दूसरौ न देखियत,
 बन की अध्यारी साँ अघिक भय भीजिए ॥
 कवि 'मतिराम' मनमौहन सो पुनि-पुनि,
 राधिका कहति बात साँची कै पतीजिए ।
 कब की हौं हेरति, न हेरै हरि पावत हौ,
 बछरा हिरान्यौ, सो हिराइ नैक दीजिए ॥ २७७ ॥

★

ननद जिठानी अनखानी रहे आठो जाम,
 बरबस बातन बनाइ आइ अरती ।
 रचि-रचि वचन अलीक बहु भाँतिन के,
 करि-करि अनख पिथा के कान भरती ॥
 कहै 'परताप' कैसे बसिए निकसिए क्यों,
 'मौन' गहि रहिए तऊ न नैक दरती ।
 निज-निज मंदिर मे साँझ ते सबेरे दीप,
 मेरे केलि मंदिर मे दीपकौ न धरती ॥ २७८ ॥

★

पास परिचारिका न कोऊ जो करै बयारि,
 महल टहल मेरी कहल मिटाउ रे ।
 'राब' कहै बात न सुहाती तेऊ हौंती करी,
 छाती तें छुवाइ अति आनंद बढ़ाउ रे ॥
 परे मीत पौन ! तू परसि मेरौ अंग आइ,
 तेरें इतें आइवे कों मेरें चित चाउ रे ।
 राखे बड़ी बेर तें किंबारि खोलि तेरे काज,
 परे मेरे मंदिर में मद-मंद आउ रे ॥ २७९ ॥

(स्वयंदूती†)

ननंद नितारी, सासु माझकै सिधारी,
 अहै रैन अधियारी भारी, सूक्त न कर है ।
 पीतम कौ गौन, 'कविगाज' न सुहात भौन,
 दारुन बहत पौन, लाग्यौ मेघ भर है ॥
 सग ना सहेली, बैस नबल, अकेली, तन—
 परी तलावेली महा, लाग्यौ मैन-सर है ।
 भई अधगत, मेरौ जियरा डरात,
 जागु-जागु रे बटोही ! इहाँ चोरन कौ डर है ॥ २८० ॥

★

मारग बीच पयोधर पेखि के, कौन कौ धीरज जो न गयौ है ।
 'भजनजू' नदिया बहै रूप की, नाउ नही, रवि हू अथयौ है ॥
 पथिक रैन बसौ इहि देस, भलौ तुमको उपदेस द्यौ है ।
 या मग बीच मिलै वह नीच, जो पाबक मे जरि प्रेत भयौ है ॥ २८१ ॥

★

पहो तुम को हौ, नैक घरै क्यों न रहौ,
 देखो 'चित्तमनि' बागन मे कौपै लहलही हैं ।
 तुमको धरम ह्वै है देब-अरचन-काज,
 सुंदरि चमेली की कली कछुक चही हैं ॥
 बाग में अँध्यारौ, डरु लागतु है जातैं उत,
 तातैं हौ कहति इहाँ जो लोग और, नही हैं ।
 कैपै करि जाउं फूल लैन हौ अकेली,
 हाँ तौ आछे-आछे फूलन की बेली फूल रही हैं ॥ २८२ ॥

★

धाम घरीक निबारिए, कलित ललित अलि पुंज ।
 जमुना तीर तमाख तरु, मिलत माखती कुंज ॥ २८३ ॥
 रे रँगिया ! करि रखियो, सकल रंग कौ साज ।
 साँझ परे हौं आइहों, स्याम बसन के काज* ॥ २८४ ॥

† 'स्वयंदूती' भी 'वचन विदग्धा' ही है; अंतर केवल इतना है कि वचन-विदग्धा अन्योक्ति द्वारा अस्पष्ट शब्दों में और स्वयंदूती कुछ स्पष्ट शब्दों में अपना अभिप्राय प्रकट करता है ।

‡ बिहारी * रसलीन ।

२-क्रिया विदग्धा—जो नायिका क्रिया की चतुरता से पर-पुरुषानुराग विषयक कार्य को सम्पन्न करना चाहे, उसे 'क्रिया विदग्धा' कहते हैं† ।

बैठी तिया गुरु-लोगन मे, रति तें अति सुदर रूप बिसेखी ।
आयो तहाँ 'मतिराम' सो जाँमैं, मनोभव तें बढि कांति उरेखी ॥
लोचन रूप पियौई चहै, अरु लाजनि जात नही छवि पेखी ।
नैन नबाइ रही हिय-माल मे, लाल की मूरति लाल में देखी ॥२८२॥

★

बैठी हुती गुरु मडली मे, मन में मनमौहन को ना बिसारति ।
त्यो 'नदरामजू' आइ गए बन ते, तहँ मोरपखा सिर धरत ॥
लाज ते पीठ दै बैठी बहू, पति-मातु की आँख ते आँख न टारत ।
सासु की नैनन को पुतरीन में, प्रीतम को प्रतिबिंब निहारत ॥२८६॥

★

बैठी तिया गुरु-लोगन मे, रति तें रमनीय-सी रूप सुहाई ।
आयो तहाँ मनमौहन त्यो, सय की अखिआँन उहै छवि छाई ॥
कैसेँ लखै पिय 'बैनी प्रबीन', नबीन स्नेह सँकोचि समाई ।
पीठ दै भामते को सजनी, सजनीन की दीठि सों दीठि लगाई ॥२८७॥

★

बजुल निकु जन में मंजुल महल मध्य,
मोतिन की आलरै किनारिन मे कुरबिंद ।
आइगे तहाँ ही 'पदमाकर' पियारे कान्ह,
आनि जुरे चौचँद चबाइन के बृंद-वृंद ॥
बैठी फिरि पूतरी अनूतरी फिरंग कैसी,
पीठ दै प्रवीनी दृग दृगन मिलै अनंद ।
आलै अबल्लोकि रही आइ रस-मदिर में,
इन्दीबर सुंदर गुबिंद को सुखारविंद ॥२८८॥

† जो तिय साथै काज निज, करि कछु क्रिया सुजान ।

क्रिया विदग्धा नाइका, ताहि लीजिये जान ॥

मनिमय मंदिर के आँगन अनौखी बाल,
 बैठी गुरु-लोगन मे सोभा सरसाइ कै ।
 गरक गुलाब-नीर, अरक उसीरन के,
 राखेउ औरन सुगंध बगराइ कै ॥
 कहे 'परताप' पिय नैन के इसारतनि,
 सारति जनाई मुख मृदु मुसक्याइ कै ।
 बोली नहिं बोल कछु, सुंदरि सुजान रही,
 पुंडरीक-सुमन सोहायौ दिखराइ कै ॥२८१॥

★

दोऊ अटान चढे 'पदमाकर', देखि दुहूँ को दुआँ छवि छाई ।
 न्यो ब्रजबालै गुपाल तहाँ, बनमाल तमालहिं की दरसाई ॥
 चंद्रमुखी चतुराई करी तब, ऐसी बछू अपने मन भाई ।
 अचल खेचि उरोजन ते, नंदलाल कों मालती-माल दिखाई ॥२८०॥

★

बैठी हुती ढिंग सास कें लाडिली ओढ़िकै मीनी नई अति सारी ।
 कंचन तें दुति देह की दूनी, जु चंद्रहि तें मुख चद्र उज्यारी ॥
 मौहन आए तहाँ 'रसिकेस' तिन्हें लखिकै पट धूँघट डारी ।
 देखि रही भरि नैनन सो, निज लाडिले के मुख की छवि प्यारी ॥२८१॥

★

पीछे आखिन के खड़ी, आयौ मदन गोपाल ।
 धूँघट भीने चीर मग, लखति अनोखी चाल † ॥ २८२ ॥

★

करि गुलाल सों धुंधरित, सकल ग्वालिनी ग्वाल ।
 रोरी-मीडन के सु मिस, गोरी गह्यौ गोपाल * ॥ २८३ ॥

★

न्हाइ, पहिरि पट, उठि कियौ, बैदी मिस परनाम ।
 दग चलाइ घर को चली, बिडा किए घनस्याम § ॥ २८४ ॥

★

बाहेर लैकै दियवा, बारन जाइ ।
 सासु-ननैद ढिंग पहुँचत, देति बुताइ† ॥ २८५ ॥

★

चढी अटारी बाम वह, कियौ प्रनाम अखोट ।
 तरुन किरन ते दगन कों, कर सरोज की ओट ‡ ॥ २८६ ॥

(३) अनुशयना—पर पुरुष से मिलने के स्थान अथवा अवसर को नष्ट होते देख कर, जो नायिका दुःखित होती है, उसे 'अनुशयना' कहते हैं* ।

अनुशयना के ३ भेद होते हैं—

१. प्रथम अनुशयना, २. द्वितीय अनुशयना ३. तृतीय अनुशयना ।

१-प्रथम अनुशयना—पर पुरुष-मिलन के संकेत स्थान को नष्ट होते देख कर जो नायिका दुःखित होती है, उसे 'प्रथम अनुशयना' कहते हैं ।

आई रितु पाबस अकास आठौ दिसन मे,
सोहत सरूप जलधरन की भीर कौ ।
'मतिराम' सुकवि कदंबन की बास जुत,
सरस बड़ावै रस परस समीर कौ ॥
भौन तें निकसि वृषभान की कुमारि देख्यौ,
ता समय सहेट कौ निकुंज गिरधौ तीर कौ ।
अगरि कै नैनन में नीर कौ प्रवाह बाढ्यौ,
देखत प्रवाह बाढ्यौ जमुना के नीर कौ ॥ २६७ ॥

* बिनसै ठौर सहेट का, आगे हाड न होइ ।

जाइ सकै न सहेट मे, अनुसयना है मोड ॥

—“भाषाभूषण”

† (१) दास ने इनका नामोल्लेख निम्न प्रकार से किया है—

१. केलिस्थान विनाशिता, २. भावी स्थान अभाव ३. संकोच निःप्राप्य ।
इनके अतिरिक्त उन्होंने “अनुशयना विदग्धा” नामक एक अन्य भेद का भी उल्लेख किया है ।

(२) रसलीन ने इनका नामोल्लेख क्रमशः इस प्रकार किया है—

१. स्थान विघटना, २. भावी स्थान साधन, ३. संकोच स्थलविनिष्टा ।

(३) चितानिधि और देव ने अनुशयना के भेद नहीं लिखे हैं ।

‡ केलि करै जहँ कंथ सों, सो थल मिट्यौ निहारि ।

कही, अनुसयना सु यो सोच करै वर नारि ॥

—“रसराज”

‘दासजू’ बाकी तौ द्वार की सूनी कुटी जरै, याते करै दुख थोरै ।
 भारी दुखारी अटारी चढी, उहै रोवै, हनै छुतिआँ, सिर फोरै ॥
 हाइ भरै, कहै लोगनि देखि, अरे निरदइ ! कोऊ पानी लै दौरै ।
 आग लगी लखि मालिनी के, लगी आग है ग्वालिनी के उर औरै ॥ २६८ ॥

*

रितु आई सुहाई नई वरषा, बढ्यौ मोद मयूरन के हिय कौ ।
 हरिआई चहुँ दिसि फैलि रही, अनुराग जगावत है जिय कौ ॥
 चढि ऊँचे अँटानि बिलोकै घटा, कर कंज सो हाथ गहै पिय कौ ।
 लखि कंज कलीन तड़ागन में, मुख मंजु मलीन भयौ तिय कौ ॥ २६९ ॥

*

जरि जाती उजारत ऊखन के, गिरि जाती सुनै सन की गतियाँ ।
 हरियारी सु क्यों रहती ‘द्विजदेव’, सुनै तृन सूखन की बतियाँ ॥
 रहि जाती सु क्यों वह प्रीति-लता, सहि जाती विथा कब धौ छुतियाँ ।
 पति राखती जो न दया करिकै, पति पूरी पलासन की पतियाँ ॥ ३०० ॥

*

गोरी गज-चाल की सुताल की तरफ चली,
 बगिया रसाल की हों छोरन के ख्याल की ।
 पचलरी लाल की औ मुकतामाल की,
 सुहावनि उताल की कहो का छवि जाल की ॥
 ‘ग्वाल कवि’ बरषा अकाल की कराल की ते,
 गढ़ी ग्राम पाल की, गिरी निरखि हाल की ।
 बेदन दुसाल की सी, मानो डसी ब्याल की सी,
 जारी हौ विसाल की सी, देखी दसा बाल की ॥ ३०१ ॥

*

गेदा गुलदाउदी गुलाब आबदार चारु,
 चंपक चमेलिन की न्यारी करी बारी मै ।
 हौसन बँधाइ रौस-रौसन की रौसैं जहाँ,
 सकल सिचाइ सीरे नीर हू सग्हारी मै ॥
 कहै ‘परताप’ जिन्हें दूसरे मुकाम राखि,
 दीन्हे प्रति जाम-जाम जन रखबारी मे ।
 मेरौ उर अधिक जरावन लग्यौ है कौन,
 आवन लग्यौ है नित मेरी फुलबारी में ॥ ३०२ ॥

द्वितीय अनुशयना—पर-पुरुष-मिलन के भविष्यत् संकेत स्थान के लिए चिंताकुल नायिका को 'द्वितीय अनुशयना' कहते हैं ।

‘बेखिन सों लपटाइ रही है, तमालन की अबली अति कारी ।
कोकिल, केकी, कपोतन के कुल, केलि करें जहाँ आनँद भारी ॥
सोच करै जिन, होउ सुखी, ‘मतिराम’ प्रवीन सबै नर-नारी ।
मजुल बंजुल कुंजन मे घनपुंज, सखी ! ससुरार तिहारी ॥ ३०३ ॥

*

झाय रही बहु फूलनि की रज, मानों मनोज बितान तने हैं ।
मीरे समीर सुधा हू तैं मौगुने, डोलत मद सुगंध सने हैं ॥
गुंजत पुज है भौरन के तहाँ, होत कपोत के घोस घने हैं ।
सोच कहा जु न ज्वार जमीं, ये तमाल के कुंज तौ वेई बने हैं ॥ ३०४ ॥

*

‘चालै क्यो न चंदमुखी चित मे सु चैन करि,
नित बन-बागन घनेरे अलि धूम रहे ।
कहै ‘पदमाकर’ मयूर मंजु नाँचत हैं,
चाब सौ चकोरिन-चकोर चूमि-चूमि रहे ॥
कदम, अनार, आम, अगर असोक थोक,
लबन समेत लौने-लौने ललि भूमि रहे ।
फूलि रहे, फलि रहे, फैल रहे, फबि रहे,
झपि रहे, झालि रहे, झुकि रहे, झूमि रहे ॥ ३०५ ॥

*

‘सन सूक्यौ, बीत्यौ बनौ, उखौ लई उखारि ।
हरी-हरी अरहर अजौ, धर धरहर हिय नारि ॥ ३०६ ॥

*

जनि मरु रोइ दुलहिया, करि मन ऊन ।
सघन-कुज ससुररिया, और घर सूना ॥ ३०७ ॥
केलि करे मधु मत्त जहँ, घन मधुपन के पुज ।
सोच न कर तुव सासुरे, सखी सघन बन-पुंज ॥ ३०८ ॥

† होनहार संकेत कौ, धरि अभाव उर माहि ।

दुखित होत जो, दूसरी कह अनुशयना ताहि ॥ —“जगद्विनोद”

* बिहारी † रहोम ‡ मतिराम

३-तृतीय अनुशयना—निश्चित सकेत स्थान पर किसी कारण वश न जा सकने से दुःखित होने वाली नायिका को 'तृतीय-अनुशयना' कहते हैं।

सुनि-सुनि आनँद भग्यो है सब ही के, तेरे—

क्यो मुख प्रमेद-बुँद मोती से छरकि परे ।

'सेवक' भनत हौ ही जान्यो, पै न जान्यो भेद,

खेद कैसे कै, ओठ-अधर फरकि परे ॥

तैसेई करेरे कुच कलस तरेरे त्यो ही,

तेरेंई तुरंत तनी तारऊ तरकि परे ।

साँसुरी न मान, जिय साँचरी कहै री, काहै—

बाँसुरी सुनत आँगी आँसुरी ढरकि परे ॥ ३०६ ॥

★

आपुने भीत परौसी सो सुंदरि, सुने चौबारे सहेट बखानी ।

ह्यो उन बोलि कपोत कै बानि, अठा पै आनि इसारत ठानी ॥

जागतु है भरता जे जानि, मनोज्ञ कै बान लगे थहरानी ।

आइ गयौ तन में परसेद, परी पति-संग खरी अकुलानी ॥ ३१० ॥

★

आप अग-अंग रग, रीझ भरी सखी संग,

बारिज बदन कटि लचकन बारि सी ।

बैठी पान खात ही सखी सो मुसकात ही,

सु बाँसुरी बजाई 'सेख' भौहन महा रसी ॥

चित चलयौ तानन को, आँखें चली कानन को,

चपलाई आनन को, रही ना सम्हार सी ।

लागी देह काँपन, रही न सुध आपन,

सु ढाँपन को देखै मुख, भूलि गई आरम्भी ॥ ३११ ॥

★

कल करील की कुंज तें, उठत अतर की बोड़ ।

भयौ तोहि भाभी ! कहा, उठी अचानक रोड़ ॥ ३१२ ॥

† जो तिय सुरति-सकेत को, रमन-गमन अनुमान ।

व्याकुल होतिषु, तीसरी अनुसयना पहिचान ॥ —“जगद्विनोद”

(४) गुप्ता—पर-पुरुष-प्रेम को छिपाने की चेष्टा करने वाली नायिका को 'गुप्ता' कहते हैं ।

इसके ३ भेद हैं—१. भूत गुप्ता, २ भविष्यत् गुप्ता, ३ वर्तमान गुप्ता ।

१—भूत गुप्ता—पर-पुरुष प्रेम-विषयक वीथी हुई घटना को छिपाने वाली नायिका 'भूत गुप्ता' कहलाती है ।

‘आली ! हो गई ही आज भूल बरसाने कहुँ,

ता पै तू परै है ‘पदमाकर’ तनैनी क्यों ।

ब्रज-बनिता वै बनितान पै रची है फाग,

तिनमे जु ऊबमिनि राधा मृगनैनी थो ॥

घोरि डारी केसरि, सु बेसरि बिलोरि डारी,

बोरि डारी चुनरि चुचात रंग-रैनी थो ।

मोहि झकझोरि डारी, कंचुकी मगेरि डारी,

नोरि डारी कसनि, बिथोरि डारी बैनी थो ॥३१३॥

★

‘जानि झुकाझुकी भेस छपाइ कै, गागरि लै घर ते निकरी ती ।

जानै कहाँ ते कबै केहि बेर ते, आइ जु रे जितै होरी धरी ती ॥

‘ठाकुर’ दौरि परे मोहि देखत, भाग बची जु कछु सु घरी ती ।

बीर ! जो द्वार न देउँ किंवार तौ, हौं दुरिहारन हाथ परी ती ॥३१४॥

★

‘तुम कैसे आई, मैं तौ दधि बेचि आवन ही,

नाहर निकसि आयौ बन बजमारे तें ।

चानें मैं न देखी, मै अचक भजी चपकी मी,

धँसी मै करीर की कुटी मे डर भारे तें ॥

‘गाल’ कवि बँदी गई, छरा फँस्यौ, आँगी चली,

छिदे ये कपोल, देखौ अति उरभारे ते ।

आम ही न जीवन की, राम ने बचाय राखी,

मरु कै बची हो सास ! धरम तिहारे तें ॥३१५॥

† जब तिय सुरति छिपावई, करि विदग्धता बाम ।

भूत, भविस, व्रतमान सो, गुप्ता ताको नाम ॥

—“शृंगार निर्णय”

२-भविष्यत् गुप्ता—पर-पुरुष प्रेम-विषयक होने वाली घटना को पहले से ही छिपाने की चेष्टा करने वाली नायिका 'भविष्यत् गुप्ता', कहलाती है† ।

आजु ते न जैहौ दधि बेचन, दुहाई खाउँ-

भैया की, कन्हैया उत ठाढ़ोई रहत है ।

कहै 'पद्माकर' त्यों साँकरी गली है अति,

इत-उत भाजिवे कौ दाउ ना लहत है ॥

दौरि दधि-दान-काज ऐसौ अमनैक तहाँ,

आली ! बनमाली आइ बहियाँ गहत है ।

भावौ सुदी चौथ कौ लख्यौ री मृग-अक या तें,

झूठक कलंक मोहिं लागिवौ चहत है ॥३१६॥

राति है अंधेरी फेरि द्वारन किंवार दैया,

हेरी बहु बेरी, वः राह अति बंक री ।

सासु ! तू पठावै लैन जामन सितावै अब

जाए बनि आवै, पर काँपत है अक री ॥

'बाल कवि' गैयन की भीर मोहि जैवो-ऐवौ,

दौरिकै उठैवौ पग लागत है मंक री ।

अँगियाँ मसकि जैहै, बिदुली खसकि जैहै,

तब तू दुखैहै देहै नाहक कलक री ॥३१७॥

† जति हौ गोरस बेचन को, ब्रज-बीथिन धूम मची चहुँघा ते ।

बाल गोपाल सबै अमनैक है, फागुन मे बचिहौब कहाँ ते ॥

छूँटि हू जो परी 'बेनीप्रवीन', कहूँ पट मे रँग की बरषा ते ।

नेह कै जोही पठावती है, करि है फिर नेह भरी बिषु-बाते ॥३१८॥

कींच भरी कल क्यारिन मे, सुक-सारिक ते न कछु भय पानौ ।

कटक-बेलि बिलासन मों, तर-जाल बितान जहाँ अरुभानौ ॥

सग न मोर सखी चलि है, निज हाथन ते चुनि नैम निभानौ ।

प्रात प्रसून गिरीम चढावन, आज भट्ट ! मोहि बागहि जानौ ॥३१९॥

† होनहार इत गोपात, यह अनुमानि ।

ज्यों बरषा सुख छाड, प्रीषम छानि ॥ —'नवरसतरंग'

३-वर्तमान गुप्ता—पर-पुरुष-प्रेम, विषयक उपस्थित घटना को छिपाने की चेष्टा करने वाली नायिका 'वर्तमान गुप्ता' कहलाती है।

'अब ही की है बात हौं न्हात हुती, अचका गहिरै पग जात भयौ ।
मोहि ग्राह अथाह को लै ही चल्यौ, मनमौहन दूरि ही तें चितयौ ॥
द्रुति दौरि कै पौरि कै 'दास' बरोरि कै, छोरि कै मोहि बचाइ लयौ ।
इन्है भेटती भेटिहौ तोहिं अली, भयौ आजु तौ मो अवतार नयौ ॥३२०॥

★

'अलि' हौ तौ गई जमुना जल को, सु कहा कहौ बीर । विपत्ति परी ।
घहराइ कै कारी घटा उनई, इतने ही मे गागरि सीस धरी ॥
रपथ्यौ पग घाट चढ्यौ न गयौ, कवि 'मडन' ह्वै कै बिहाल गिरी ।
विरजीवहि नंद कौ बारी अरी, गहि बाँह गुविंद नें ठाढ़ी करी ॥३२१॥

★

'गैद' मै न लई गिरिधर की तुम्हारी सौह,
योही रारि ठानति हमे न ऐसी भावती ।
छोडत न डीठ माइ लाडिलौ कियौ है जाह,
हँसती कहा हौ, दर्ई आइ न छुडावती ॥
फाँटि गई आँगी, छूटि गई चूग-चूर ह्वै कै,
लटि गई हौ तौ, नाँ तौ लालहि रिभावती ।
देखती जो और ऐसे, लेखती कहा धौ हिऐ,
भागन ते' भट्ट ! तुम जो न इते आवती ॥३२२॥

★

'जान्यौ न मै ललिता अली ताहि, जु सोवत माँहि गई करि हाँसी ।
लाए हिये नख केहरि के सम, मेरी तऊ नहीं नीद बिनासी ॥
लै गई अंबर 'बेनीप्रवीन', उठाइ लटी दुपटी दुखरासी ।
तोरि तनी, तन छोरि अभूषन, भूलि गई गल दैन को फाँसी ॥३२३॥

★

फागुन मास बडौ उतपात रहै, निसि-बासर नीद न आवै ।
आपस माँफि सबै नर-नारि, निरंतर चौगुन फाग रचावै ॥
जो कुल-नारि कहूँ सरमाइ दुरै, तबहु गुरु-नारि बतावै ।
या ब्रज मे यह रीति बुरी, घर मे धँसि लोग लुगाइन लावै ॥३२४॥

‡ करति सुरति परतच्छ सो, सब सो डारति गोइ ।

वर्तमान गुप्ता' सोई, अति प्रवीन निय होय ॥ —“रसिक विनोद”

(५) लक्षिता—जिस नायिका का पर-पुरुष-प्रेम सब पर प्रकट हो जावे, उसे 'लक्षिता' कहते हैं ।

चाख्यौ कै पियूष अभिलाख्यौ कै आनंद उर,
 भाख्यौ ना बनत 'ईस' औरै जो कपट मे ।
 धरत कहूँ कौँ पाँइ, परत कहूँ को जाइ
 करत कला तू भाइ जैसी नौही नट में ॥
 जान न दुराब तू अजानन दुराब भलै,
 मेरे जान आई आजु कारे की भपट मे ।
 कालिंदी के तीर तू अकेली तजि भीर बीर ।
 लैन गई नीर, भरि ल्याई नेह घट मे ॥३२५॥

★

'आई हौ पाँइ दिवाइ महावर, कुंजन तं कर कै सुख सेनी ।
 साँवरे आज सँवारयौ दै अंजन, नैनन को लख लाजत ऐनी ॥
 बात के ब्रूत ही 'मतिराम', कहा करिए यह भौह तनैनी ।
 मूँद न राखत प्रीति भट्ट ! यह गूँदी गुपाल के हाथ की बैनी ॥३२६॥

★

यह भीगि गई धौँ कितै अंगिया छुतियाँ धौँ कितै यहि रंग रंगी ।
 उबटै हू न छूटत दाग हहा ! कब की हौ छुडावती ठाडी ठगी ॥
 सुनि बात इती मुख नाइनि के, अति सूधी सयानपने सो पगी ।
 मुख मोरि उतै मुसुक्यानी लिया. इत नाइनि हू मुसुक्यानि लगी ॥३२७॥

(१) जहाँ प्रीति पर-पुरुष की, प्रगटित जग मे होइ ।

ताहि 'लक्षिता' कहत है, चिंतामनि कवि सोइ ॥

—“कविकुलकल्पतरु”

प्रीति लखाई होइ जिहि, ताहि लक्षिता जानि ।

—“बृहद् व्यंग्यार्थ चट्टिका”

(२) दाम ने लक्षिता के तीन भेद किये हैं:—

१-मुरति लक्षिता, २-हेतु लक्षिता, ३-वीरा ।

(३) रसलीन ने भी लक्षिता के तीन भेद किये हैं । उन्होंने तासरं भेद 'वीरा' को 'प्रकाश लक्षिता' नाम से लिखा है ।

काकरेजी कंचुकी सु केती कसि बाँधी तऊ,
 ग्यानत ही अंग-रंग भवकि सखी परै ।
 ओठनै अंगोछि लाली उठत अनूप ऐसी,
 ललित कपोल लोल दलित चखी परै ॥
 नूतन नवेली बेली फूलन सो गुह्री बैनी,
 नूतन चमेली-हार दलित नखी परै ।
 केती चतुराई सो दुराई प्रीति प्यारे की, पै-
 नैन करवाई जमुवाई सो लखी परै ॥३२८॥

★

भूली सी, अमी सी, चौकी, जकी सी, थकी सी गोपी,
 दुखी सी रहत कछु नोही सुधि देह की ।
 मोही सी लुभाई, कछु मोदक सी खाई,
 सदा बिसरी सी रहे, नैक खबरि न गेह की ॥
 रिस भरी रहै, कबौ फूली न सँमाति अंग,
 हँसि-हँसि कहै बात अधिक उमेह की ।
 पछे तें खिसानी होइ, ऊतर न आवै सोइ,
 जानी, हम जानीं है निसानी या मनेह की ॥३२९॥

★-

लेंकर सुवास-बारि विमल सुवासित कै,
 मंजन कियौ है तन अधिक उँमाहे ते ।
 केसर, कपूर, कसतूरी औ अतर लै कै,
 अगाराग, अगन लगायौ चित चाह ते ॥
 कहै 'परताप' साजि सकल सिंगार तन,
 भूषन-विभूषन सकल अवगाहे ते ।
 अब की निहारति हौं नैननि सो कंज नैन !
 बेसरि बनै न आज पहगति काहे ते ॥३३०॥

★

'सतरौही भौहन नही, दुरं दुरायां नेह ।
 होत नाम नेदलाख के, तो मृनाल सी देह' ॥३३१॥
 मोहि करत कत याबरी, किपे दुराब दुरै न ।
 कहे देत रंग रात के, रंग निचुग्त से नैन ॥३३२॥

(६) कुलटा—अनेक पुरुषों से प्रीति करने वाली कामान्ता
व्यभिचारिणी स्त्री को 'कुलटा' कहते हैं* ।

एकन बैनन ही ललचाइ, लचाए है एकन सैनन कै कै ।
है गुलचाइ नचाए लला, सु बचाए है ओठनि कौ रस लैकै ॥
एकहि भेटि दुहुँ भुज 'देव', हियो दग अजन रंग उन्है कै ॥
चचल नैनो दगचल मोरि, हँसै मुख रचक अंचल दैकै ॥३३३॥

अजन दै निकसै नित नैनन, मजन कै अति अग सँबारै ।
रूप गुमान भरी मग मे, पग ही के अंगूठा अनौट सुधारै ॥
जोबन के मद सो 'मतिराम' भई मतिवारिन लोग निहारै ।
जाति चली इहि भाँति गली, बिथुरी अलकै अँचरा न सँहारै ॥३३४॥

एक को भौह मरोरि लख्यौ, कह्यौ एक सो हाँ तुम तौ निरमोही ।
एक सो नैन मिलाइ कै बोली, लखौ नभ कारी घटा किमि साँही ॥
चाउ सो एक कों आइ गह्यौ, उमडे घन कों भर लावत जोही ।
एक सों भाख्यौ विलासिनि यों, किन भीजत आइ बचावत मोही ॥३३५॥

यो अलबेली अकेली कहूँ सुकुमार सिंगारनि कै चलै, कै चलै ।
त्यो 'पद्माकर' एकन के उर मे, रस-बीजन बवै चलै, बवै चलै ॥
एकन सो बतराइ कछु छिन, एकन कों मन लै चलै, लै चलै ।
एकन को तकि घुँघट में, मुख मोरि अनैखिन दै चलै, दै चलै ॥३३६॥

एक ब्रह्म मय सब जगत, ऐसे कहत जु वेद ।
कौन देत, को लेत सखि ! रति-सुख समुक्ति अमेदा† ॥३३७॥

जस मदमातल हथिया, हुमकत जाइ ।

चितवत छैल तरुनियाँ, मुँह सुसुकायाँ ॥३३८॥

* (१) निस-दिन जाकों रति-कथा, सदा काम सों काम ।

मात अनेकन सो रमै, कुलटा ताकौ नाम ॥

—“सुंदर शृंगार”

(२) दास ने कुलटा नायिका का उल्लेख नहीं किया है ।

(३) कुलटा और सामान्या दोनों ही अनेक नायकों से सबध रखती है । उनमें केवल इतना भेद है कि कुलटा का उद्देश्य काम-वासना को तृप्त करना होता है, जब कि सामान्या का धन प्राप्त करना ।

† कृपागम † रहीम

सामान्या नायिका

सामान्या—केवल धन के कारण पर-पुरुष से प्रेम का पाखंड करने वाली स्त्री को 'सामान्या' या 'गणिका' नायिका कहते हैं[†] ।

स्पष्टीकरण—नायिका के जिन आठ गुणों—'भूषण, जोवन, रूप, गुण, विभव, सील, कुल, प्रेम' का पहले वर्णन हो चुका है, उनमें से चार गुण—शील, कुल, प्रेम और विभव का सामान्या नायिका में सर्वथा अभाव होता है[‡], इसलिए कई मान्य आचार्यों ने सामान्या को उल्लेख योग्य नहीं माना है[§] । जिन आचार्यों ने उसका उल्लेख किया है, उन्होंने उसका विस्तार न करते हुए केवल उसका नाम मात्र लिख दिया है । उन्होंने उसके वर्णन में भी उसकी धन-लोलुपता और स्वार्थ बुद्धि को ही दिखलाया है^{||} ।

वास्तव में सामान्या स्त्री को नायक के रूप, गुण, प्रेम आदि से कोई प्रयोजन नहीं होता, वह तो अपने रूप और गुण की मोहिनी डाल कर धन पुरुषों के धन को लूटा करती है[‡] ।

† करै और सो रति-रमन, इक धन हा के हेत ।

गनिका ताहि बखानई, जो कवि मुरति निकेत ॥

—“जगद्गिनोद”

‡ सामान्या बिन सील, कुल प्रेम, बिभौ पहिचानि ।

—“भवानीविलास”

* केशवदास के अतिरिक्त दास जैसे मान्य आचार्य ने, जिन्होंने नायिकाभेद के विस्तार करने में अधिक रुचि दिखलायी है, सामान्या का नामोल्लेख नहीं किया है ।

§ देव ने नायिकाभेद का बड़ा विस्तार किया है, किंतु सामान्या का केवल नामोल्लेख मात्र किया है । मतिराम और पद्माकर ने भी सामान्या का केवल एक भेद लिख कर उसका संक्षिप्त कथन किया है ।

‡ नायिकाभेद के प्रधान आचार्यों में एक रसलान् हा ऐसा व्यक्ति है जिसने अपने सुप्रसिद्ध ‘रस प्रबोध’ में सामान्या नायिका के भेदों का भी कथन किया है । उनके मतानुसार सामान्या के चार भेद होते हैं—

१. स्वतंत्रा, २. जननी-अर्थात्, ३. नेमता, ४. प्रेम-दुःखिता ।

नॉनति है, गावति है, रीभक्ति, रिभावति है,
 लीये ही की घात, बात सुनति न विय की ।
 तन को सिगारै, नैन कज्जल सुधारै अति,
 बार-बार वारै प्रान, ऐसी रीति तिय की ॥
 'भूधर' सुकवि हेतु धन ही के बार-बधू,
 और न विचारै कछु, चाहै बात जिय की ।
 लाल चाहै जिय सो, कै बाल मेरे हिय लागै,
 बाल चाहै हिय सो, कै माल लीजै पिय की ॥२३६॥

*

मंद-मंद मीठे बैन बोलि मन औरै करै,
 नैन-सैन ही सों मैन जू कों उर थान है ।
 दीनता दिखावै हाव-भाव परिपाटी माँडि,
 रमन-प्रनाली मे प्रबीनता प्रदान दै ॥
 'हरिऔध' सुधा ही सी खबत कहै जो कबौं,
 प्रान-प्यारे मोकों मंजु माल मुकतान दै ।
 मान दै-दै सहित सनेह अपनावै,
 प्रान हरति अपान हू कों हंसि कर पान दै ॥२४०॥

*

'आलु मिले बहुतै दिन भामते, भेंटत भेंट कछु सुख भाखौ ।
 जे भुजभूषन मो भुज बाँधि, भुजा भरि कें अधरा-रस चाखौ ॥
 दीजिए मोइ उड़ाइ जरी-पट, कीजिए जू मन कौ अभिलाखौ ।
 'देव' हमै-तुमैं अंतर पारत, हार उतारि इतै धरि राखौ ॥२४१॥

*

लाए पाइल हौ भली, परी रहैगी पाँइ ।
 लाल ! दीजिए माल जो, राखौ हिय में लाइ ॥ २४२ ॥
 मुकत-माल लखि धनि कछौ, ए अजुगत है नाह ।
 गंग तिहारे उर बसै, सिव मेरे उर माह ॥ २४३ ॥
 पर हथ बसिए निरदई, धन-भोजन के चाह ।
 धनी प्रान पच्छीन को, हनत कुही लों धाइ ॥ २४४ ॥
 पिय के नित चित दैन लों, चित-हित बढ़त बनाइ ।
 हेम-नेम घटि जात ही, प्रेम-नेम घटि जाइ ॥ २४५ ॥

चतुर्थ परिच्छेद

दशानुसार नायिकाएँ



नायिकाओं की दशा-अनुसार उनके ३ भेद होते हैं*

१-गर्विता, २-अन्यसंभोगदुःखिता, ३-मानवती ।

(१) गर्विता—जो स्त्री अपने प्रियतम के प्रेम और अपने रूप का गर्व करे, उसे 'गर्विता' नायिका कहते हैं ।

'गर्विता' नायिका के दो भेद होते हैं†

१-प्रेम गर्विता, २-रूप गर्विता ।

* (१) केशवदास और पितामणि ने इन भेदों का कथन नहीं किया है ।

(२) दास ने इनको स्वतंत्र रूप से न लिखकर स्वर्णनृतिका के अंतर्गत गर्विता, प्रियलब्धा के अंतर्गत अन्यसंभोगदुःखिता और खडिता के अंतर्गत मानवती नायिकाओं का वर्णन किया है ।

(३) ये तीनों नायिकाएँ शुद्ध रूप से स्वकीया के अंतर्गत मध्या और प्रोढ़ा में ही बनती हैं । कुछ कवियों ने परकीया और सामान्या में भी इनका वर्णन किया है, जो अधिकांश आचार्यों के मतानुसार समीचीन नहीं हैं । कुछ कवियों ने खीचतान कर मुग्धा में भी इन भेदों का कथन किया है, जो सर्वथा अप्राप्त्य है ।

† (१) दास ने प्रेम गर्विता और रूप गर्विता के अतिरिक्त 'गुण गर्विता' का भी उल्लेख किया है ।

(२) रसलीन ने प्रेम गर्विता, वक्रोक्ति प्रेम गर्विता, रूप गर्विता, वक्रोक्ति रूप गर्विता, गुण गर्विता, वक्रोक्ति गुण गर्विता—इस प्रकार ६ भेदों का कथन किया है ।

(३) देव ने 'कुल गर्दिता' भी लिखी है ।

१-प्रेम गर्विता—अपने प्रियतम के प्रेम का गर्व करने वाली नायिका 'प्रेम गर्विता' कहलाती है† ।

मो बिन माइ न खाइ कछु, 'पदमाकर' त्यों भई भाभी अचेत है ।
बीरन आए लिवाइवे को, तिन की मृदु बानि हू मान न लेत है ॥
प्रीतम कों समझावति क्यो नहिं, ए सखि ! तू जु पै राखत हेत है ।
और तौ मोइ सबै सुख री, दुख री यहै माइके जान न देत है ॥३४६॥

★

सामुहै सुमन बरसाई सुघराई संग,
'लछिराम' रंग सारदा हू कौ रितै रहै ।
छाती मे लगाइ मूम-थाती सौ कमल-कर,
सुकुमारताई को सराहि दुचितै रहै ॥
अलक लँबाई, चारु चख चपलाई,
अवरान की ललाई पर हरष हितै रहै ।
माई ! मनमौहन, गोराई मुखमडल पै,
राई-नौन बागि घरी चारि कौं चितै रहै ॥३४७॥

★

आँखिन में पुतरी हू रहै, हियरा मे हरा हू सबै सुख लूटै ।
अंगन संग बलै अँगराग हू, जीव तें जीवनमूरि न फूटै ॥
'देवजू' प्यारे के न्यारेन पै गुन मो मन मानिक तें नहिं टूटै ।
और तिया सो ततौ बतियाँ करै, मो छनियाँ सो छिनौ जब छूटै ॥३४८॥

★

न्हान-समै जब मेरो लखै, तब साज लै बैठत आनि अगाऊँ ।
नाइक हौ, जे न राउरे लाइक, यो कहि हौ कितनौ समझाऊँ ॥
'दास' कहा कहैं पै निज हाथई देत, न हँहूँ सन्धारन पाऊँ ।
मोइ तौ साध महा उर में, जो महाउर नाइन ! तोसों दिवाऊँ ॥३४९॥

★

मंत्र और जत्रादि कछु, हौ नहिं जानति बीर ।
नैनद-पासु झूठै बक्ति, बधू परम मति वीर ॥३५०॥

† जाके पिय का प्रीति कौ, जिय मे होइ गुमान ।

प्रेम गर्विता नाहि कौ, सुंदर यहै बखान ॥

* कृपाराम

—“सुंदर शृंगार”

२-रूपगर्विता—जिस नायिका को अपने रूप का गर्व हो, उसे 'रूप गर्विता' कहते हैं† ।

अ ग-अ ग भूषन विभूषन विरचि जोति,
जोबन जवाहिर की जाहिर जगाई तै ।
चहचहे चोबा चारु चदन अरगजा औ,
अंगराग हेत कल केसर मंगाई तै ॥
कहै 'परताप' दुति देह की दुरंग होत,
सुरंग कुनुभी ऐसी चूनरी रंगाई तै ।
रीझि बारी पुरी सुनि सुंदरि सुजान बारी,
भाल क्यों न बैदी मृगमद की लगवाई ते ‡ ॥३५१॥

★

फूल घने चहुँ ओर सरोज, प्रसून महा बन कुंज न हेरै ।
नीर तरोवर के मँडरात न, जात सरोवर के नहिँ नेरै ॥
कागे, कुवेस, डराउने, कूर, दिखाइ परै दग साँझ-सबेरै ।
छाँडि सबै अरबिंद मलिद, रहै निसि-बासर मो घर घेरै ॥३५२॥

★

मेरौ मुख चाह एक चुनगी चुगत आगे,
आवै एक पीछे बैनी गहन के दाउ री ।
एकन के मासन उसास लैन पावत ना,
गुंजै आस-पास हौं न जानौ गुन-चाउ री ॥
तू तौ परी गौहन, कै बेगि चल मौहन पै,
मानि मेरी बात एती अधिक उपाय री ।
बाबरे चकोरन को, दई मारे मोरन को,
मंदमति भौरन कों दूर करि आउ री ॥३५३॥

† जाकेँ अपने रूप को, अति ही होइ गुमान ।

रूप गर्विता कहत है, ताको चतुर सुजान ॥

—“रसराज”

‡ नायिका अपनी सखी से कस्तूरी की काली बिंदी लगाने का आग्रह इसलिए करती है कि काले ढिठोना से उसके सुंदर रूप पर किसी की दृष्टि न लग सकेगी, इसलिए व्यंग्यार्थ से 'रूप गर्विता' है ।

छोरि-छोरि आम की रसीली मंजरीन काहिं,
 निकसि गुलाब के प्रसून रसबारे मे ।
 गुंजरत याही ओर देख वह आवतु है,
 अति कमनीय कंज-बन के किनारे में ॥
 'हरिऔध' की सौ आइ अबई मचैहै धूम,
 गूँजि-गूँजि आनन-सुबास के सहारे मे ।
 भूलि अब भौन ते न बाहर कदौगी कबौ,
 ऊबि हो गई री, या मलिद मनवारे मे ॥३५४॥

★

नैक जो हँसौं तो लाल माल होत हीरन की,
 नैक जो मुरौं तो मेरी नील मनि झलकी ।
 अजुरी भरी है मुख धोइवे को झारी लैकै,
 सखिन निहारी दुति राती होति जल की ॥
 जो मैं रचौं चार तो कुचील जुरे जोबन न,
 देखिवे को आँखे गुनधर हू की ललकी ।
 आँगन कदौं तो भौर भीरन अँधेरौ होत,
 पाँख जो धरौं तो मदि होत मखमल की ॥३५५॥

★

मंदिर की दुति यो दरसी, जनु रूप के पत्र अलेखन लागे ।
 हौं गई चाँदनी हेरन की, तहँ क्यों हूँ घरीक निमेष न लागे ॥
 डीठ परचौ नयौ कौतुक हूँ, 'ससिनाथ जू' यातें बडे खन लागे ।
 पीठि है चंद की ओर चकोर, सबै मिलि मो मुख देखन लागे ॥३५६॥

★

फूलन की माल मोसो कहत 'गुलाब' ऐसी,
 फूलन की माल मेलि राखत न क्यों गरै ।
 मेरे दग रोज ही बतावत सरोज ऐसे,
 लै-लै कै सरोज रोज मन मे न क्यों भरै ॥
 हो तो री न जैहौं आज पास बनमाली, योई—
 आइ प्रिय पास, पाँइ इतका न क्यों धरै ।
 मेरी मुख चंद सौ बतावै ब्रजचंद रोज,
 कहौ ब्रजचंदजू सों चंद देखिदौ करै ॥३५७॥

चौथ ते चकोर चारों ओर जान चंद्रमुखी.

रही बचि डरनि दसन-दुति दपा के ।

लील जाते बरही बिलोकि बैनी बनिता की,

गुही जो न होती तौ कुसुंभ सर कंपा के ॥

‘पूखौ’ कहै जो पै ढिग भौंह ना धनुष होते,

कोर कैसे छाँडते अधर बिंब भपा के ।

दाख के से भौर जे भलक जोति जोवन की,

चाटि जाते भौर, जो न होती रंग चंपा के ॥३५८॥

★

रंग घने पति-प्रेम सने, सब रैन गने मन मैन हिलोरन ।

अंगन मोरति भोर उठी, छिति पूरति अंग सुगंध भूकोरन ॥

रूप अनूप निहारि-निहारि, गुमान जनाइ कछौ दग-कोरन ।

नंदकिसोर अहो चितचोर, न जाउँ मै न्हान सरोबर ओरन ॥३५९॥

★

न्हातई न्हात तिहारई स्याम, कलिदि थो स्याम भई बहुतै है ।

धोखेड धोइ हौं यामैं कहूँ, तौ यहै रंग सारिन मे सरसै है ॥

साँबरे अंग कौ रंग कहूँ यह, मेरे सुअंगन मे लगि जैहै ।

छैल छबीले छुआगे जु मोहि, तौ गानन मेरे गुराई न रैहै ॥३६०॥

★

बरुनी के उधारत वे सिसिके, चहुँघों मुख-जोवती आलि चलैं ।

कनखैयन ताकि रहै नैनदी, वे बदी करि सौति कुचालि चलैं ॥

‘द्विजदेव’ इते पर बावरे लोग, सो डीठि जितै-तित डालि चलैं ।

बसिवौ तौ भयौ नित ही ब्रज मै, कब लौ अलि ! घूँघट घालि चलैं ॥३६१॥

★

चंद, अरबिद, बिंब, बिद्रुम, फनिंद, सुक,

कुंदन, गयद, कुंदकली निदरति है ।

चंपा, संपा, संपुट, कदलि ‘घनस्याम’ कहाँ

कुंकुम कौ अंगराग अंगना करति है ॥

केहरी, कपोत, पिक, पल्लव, कलिदी, घन,

दर कै निरखि दाखी छतिया बरति है ।

मेरे इन अंगन की नकल बनाई बिधि,

नकल बिलोकै मोहि न कल परति है ॥३६२॥

‡ सरोवर पर जाने से मुखचंद्र को देख कर फूटते हुए कमल संकुचित हो जावेगे, इसलिए व्यंग्यार्थ से ‘रूप गविता’ है ।

(२) अन्यसंभोगदुःखिता—अन्य स्त्री के तन पर अपने प्रियतम के प्रीति-चिह्न देख कर दुःखित होने वाली नायिका को 'अन्यसंभोगदुःखिता' कहते हैं ‡ ।

अखि दसे अघर सुगंध पाइ आनन कौ,
कानन में ऐसे चारु चरन चलाए हैं ।
फाटि गई कंचुकी लगे ते कंट कुजन के,
बैनी बरहीन खोली बार छवि छाए हैं ॥
बेग तैं गमन कीनो, धकधक होत सीनो,
ऊरध उसासै तन स्वेद सरसाए है ।
भली प्रीति पाली बनमाली के बुलाइवे को,
मेरे हेत आली ! बहुतेरे दुःख पाए है ॥३६३॥

★

कंटक ते अटक-अटक सब आप ही ते,
फटिगे बसन तिन्हैं नीके कै बनाइ लै ।
बैनी के बिचित्र बार हारन मे आय-आय,
अरुमे अनौखे तेतौ बैठि सुरभाइ लै ॥
कहै 'सिव' कवि दबि काहे कों रही है वाम !
वाम तैं पसीना बह्यौ, ताको सियराइ लै ।
बात कहिवे में नंदलाल की उताल कहा,
हाल तौ हरिन-नैनी हफनि मिटाइ लै ॥३६४॥

★

आई अनमनी हूँ बदन पिअराइं छाई,
सुधि न रही है कहुँ आपने-परारे की ।
कहति कछु है, मुख कइत कछु कौ कछु,
देखति हौं आज तेरी गति मतवारे की ॥
नैक थिर हूँ कै बैठि, राई-नौन बारौ तो पै,
तू तौ 'हनुमान' मेरी साथिन है बारे की ।
बजर परौ री मोपै, पठई कहाँ तैं, तहाँ—
नजर लगी री तोहि जुलफन वारे की ॥३६५॥

‡ प्रातम-प्रीति-प्रतीत जो, और तिया तन पाइ ।

दुखित होइ सो जानिए, अन्यसुरतदुखताइ ॥—'जगद्विनोद'

ल्याई बाटिका ही सों सिंगार हार जानती हौं,
 कटन कौ लाग्यौ है उरोजन मे घाव री ।
 दौरि-दौरि टहल कै महल ह्वै कै बादि ही,
 बिगार्यौ उर चंदन दगंजन बनाव री ॥
 तेरौ कहा दोष 'दास' बात जनि बूझि लीनी,
 आपनी ही सूझि तू तौ भरि आई भाव गी ।
 पीत पट वारे कौ बुलावन पठाई मैं तौ,
 पीत पट काहे को रंगाई ल्याई बावरी ॥३६६॥

पहिरै परोसिम को पहिलै-पहिल देखि,
 एहो 'रघुनाथ' छौंढि पास गुरु-तिय कौ ।
 घूँघट मे नैन-सैन दैकर लिवाइ गई,
 प्यारी चित्रसारी मे छिपाएँ कोप जिय कौ ॥
 आइ पास बैठि, लागी ब्रूफन अमैठि भौंह,
 साँची कहौ मोसो कै कपट दूर हिय कौ ।
 आई है कहाँ तें, को है, कौन तू कहावति है,
 कहाँ पायौ, कैसै पायौ हार मेरे पिय कौ ॥३६७॥

*

आई आज कित अकुलाई अलसाई प्रात,
 रीसै मति पृछै बात, रंग कित ढरिगौ ।
 सौने से या गात छुवै कै सौनौ भयौ आप,
 कै वे आतप प्रभात ही कौ प्रगत पसरिगौ ॥
 'हरीचंद' सौतिन की सुख-दुति छीनी कै,
 या आपनी बरन कहुँ पाइ धाइ ररिगौ ।
 नील पट तेरौ आज औरै रग भयौ काहै,
 मेरे जानि बिछुरि पिया ते पीरो परिगौ ॥३६८॥

*

तन स्वेद कढ्यौ, अति स्वाँस बढ्यौ, छिन ही छिन आइवे-जाइवे मे ।
 अरी ! मो हित तू बहु बिन्न भई, पिय मेरे को एनो मनाइवे मे ॥
 कृष्ण दोष न हौं सिर तेरे मढौं, अब का घनी बात बनाइवे मे ।
 सब तेरे ही जोग कियौ सखि ! तू, त्रुटि राखी न नेह निभाइवे मे ॥३६९॥

(३) मानवती—अपने प्रियतम को अन्य स्त्री की ओर आकर्षित जानकर, ईर्ष्या पूर्वक मान करने वाली नायिका 'मानवती' कहलाती है* ।

नाम कदचौ पिय के मुख तें तिय और कौ, सो सुनि कै उर ऐंठी ।
 'देवजू' ऊँहंसि सौ है करी, रिस की सिसकी भरि भौंह अमैठी ॥
 नीठऊ डीठि सो डीठि लगी, इत ईठ सों रूठि कै पीठ दे बैठी ।
 लीजिए बोलि हिण पद खोलि कै, सुंदरि मान के मंदिर पैठी ॥३७०॥

*

एकई रैन मिली पिय काँ तिय, दूसरी रैन खरी खरकौ हैं ।
 यों उत बालम बाल लखे कहुँ, सौतिन के ढिंग को ढरकौ हैं ॥
 लाज-लची मृगलोचनि कौ चित, सोच-सँकोच भयौ सरकौ है ।
 आँखिन तें खिसके अँसुओं रिस के, अधरा सिसके फरकौ है ॥३७१॥

* (१) लखि नायक-औगुन, करे जो इरषा करि मान ।

मानवती ताकों कहै, जे कवि बुद्धि-निमान ॥

—“रसिकविनोद”

(२) मानवती का मान तान प्रकार का होता है—१. लघु, २. मध्यम और ३. गुरु । अपने प्रियतम द्वारा पर-स्त्री की ओर देखने से 'लघु' मान होता है, जो हँसी-विनोद अथवा मनोरंजक बातों से दूर हो जाता है । अपने प्रियतम के मुख से पर-स्त्री की चर्चा आदर और प्रशंसा पूर्ण शब्दों में सुनने से 'मध्यम' मान होता है, जो प्रियतम द्वारा विनयपूर्ण वचन अथवा शपथ आदि से दूर हो जाता है; किंतु पर-स्त्री-गमन का विश्वास होने पर 'गुरु' मान होता है, जो प्रियतम द्वारा अन्य चेष्टाओं के विफल होने पर आश्विनता पूर्वक प्रियतम के पैर पकड़ने पर ही दूर होता है । यथा—

अपर तिया के दरस तें, नाम कदै तें जोइ ।

संगमादि करि, मान तें मानवती तिय होइ ॥

—“बृहद् व्यंग्याथचंद्रिका”

सहजै हाँसी-खेल मे, विनय-वचन सुनि कान ।

पॉय परै तिय के मिटै, लघु-मध्यम-गुरु मान ॥

—“भाषाभूषण”

मन ही मसूसि, मन-भामते सो रुसि,
 सखी-दासिन सो दूसि, रही रंभा भुकि भंभा सी ।
 आरसी महल, चित्रसारी सो चहल बिन,
 आनंद टहल 'देव' मंद विधि बंभा सी ॥
 मोचै, सुख मोचै, सुक-सारिका लचापै चौचै,
 रोचै न रुचिर बानि, मानि रही अभा सी ।
 संग कौ सकल अग आलस-उड़ाह भरघौ,
 ओज बिन सूझति सरोज-बन संभा सी ॥३७२॥

★

गहरी गुराई ते प्रथम चूर चामीकर,
 चंपक कें ऊपरि बहुरि पाँम रौप्यौ है ।
 तीसरै अखिल अरबिंद आभा बस करि,
 हँसै तडिता कों हाइ तोपद में तोप्यौ है ॥
 मनत 'कविंद' तेरे मान समैं सौतें कहा
 सुर-बनितान कौ गुमान जात लोप्यौ है ।
 आली ! आज मेरे जानि, ऐंठ भरी तेरौ मुख,
 भौं हैं तान सौं हैं री, कलानिधि पै कोप्यौ है ॥३७३॥

★

जोरत न दीठि रूसि बैठी हँसि पीठि दैकै,
 कौन यह 'देव' स्याम सामुनैं चहन दै ।
 जोबन नबेली अलबेली तू समुझि-सोच,
 सौतिन गुमान भरी बातें न कहन दै ॥
 ठाढ़ौ पिय पास, मन मिलिवे की आस धरै,
 ताहि रुख रुखौ ना बियोग तें दहन दै ।
 होय कै निसंक, भरि अंक मनमौहन को,
 आज रात मान कों अमानत रहन दै ॥३७४॥

★

बैठी कहा धरि मौन भट्ट !, रंगभौन तुम्हे बिन लागत सून्यौ ।
 चातक कों तुमही ररि 'देव', चकोर भयौ चिनुगी करि चून्यौ ॥
 साँझ सुहाग की मँझ उदै करि, सौत सरोजन कौ बन लून्यौ ।
 पाबस तें उठि कीजिए चैत, अमावस ते उठि कीजिए पून्यौ ॥३७५॥

राधे सुजान इतैं चित दै, हित में कित कीजत मान मरोर है ।
 माखन ते मन कौवरौ ह्वै यह, बानि न जानति कैसे कठोर हें ॥
 सौवरे सो मिलि सोहती जैसी, कहा कहिये कहिवे कौं न जोर है ।
 तेरौ पपीहा जु है 'घनआनद', है ब्रजचंद, पै तेरौ चकोर है ॥३७६॥

★

चकई बिछुरि मिली, तू न मिली मौहन सो,
 'मेख' कहै एतौ मान कीनौ क्यो अठान री ।
 अथये नछत्र-ससि, अथई न रीस तेरी,
 तू न भई मुदित, उदित भयौ भान री ॥
 तैं न खोख्यौ मुख, खिली पंकज की कली भली,
 तू न चली, चली निसि, भयौ है बिहान री ।
 कैसी बुद्धि-आगरी, न जानै हानि-लाभ री,
 भौ दीपक मलीन, न मलीन तेरौ मान री ॥३७७॥

★

ये घन घोर उठे चहुँ ओर, इन्हें लखि का करिहै रिस ह्वै तू ।
 सौति पै जाइ है जो 'कमलापति'. पाइ है छाँह छिनेक न छवै तू ॥
 जानि लई अश्र ही सिगरी, कलपैहै सु हाथ के हीर को खवै तू ।
 पाँय परे हू न माननी री, अश्र जा जनि ! ऐसी मिजाजिनि है तू ॥३७८॥

★

लोचन लहे कौ फल सफल हमारौ कर,
 ए री प्रानपति को सनेह-रम लीन कर ।
 तैई पाई परम निकाई की अवधि,
 वृषभान की किसोरी ! तू तौ एनी अरबीन कर ॥
 हा हा ! तू उधारि मुख, टारि पट धूँघट कौ,
 निज तन पानिप में पी कौ मन मीन कर ।
 कज-त्रवि छीन कर, ससि को मलीन कर,
 सौतिन को दीन कर, प्यारे को अश्रिन कर ॥३७९॥

★

न चली कछु लालची लोचन सों, हठ-मोचन कै चहिनोई परचौ ।
 'रतनाकर' बंक बिलोकनि-बानि, सहाए बिना सहिनोई परचौ ॥
 उत तैं वे गात छुबाइ चले, तब तौ प्रन को दहिनोई परचौ ।
 भरि आहि-कराहि सुनौ जू सुनौ, नंदलाल सों यों कहिनोई परचौ ॥३८०॥

अवस्थानुसार नायिकाएँ



नायिकाओं की अवस्था-अनुसार उनके दस भेद होते हैं †—

† (१) संस्कृत साहित्य के प्राचीन आचार्य भरतादि के मतानुसार केशवदाम ने निम्न लिखित आठ भेद लिखे हैं—

- १—स्वार्थनपतिका, २—उक्ता, ३—बासकसज्जा, ४—अभिसविता,
५—खंडिता, ६—प्रोषितपतिका, ७—विप्रलब्धा, ८—अभिसारिका ।

(२) चिंतामणि और देव ने भी यही आठ भेद माने हैं, किंतु उनके नाम केशवदास से भिन्न, आजकल के प्रचलित नामों के अनुसार हैं, जैसे उक्ता के स्थान पर उक्कठिता और अभिसविता के स्थान पर कलहातरिता ।

(३) दास ने भी आठ ही भेद माने हैं और उनको संयोग और वियोग शृंगार के अंतर्गत लिखा है, किंतु स्वार्थनपतिका के अंतर्गत गर्विता, बासकसज्जा में आगतपतिका, खंडिता में धोरादि भेद, मानिनी और लघु, मध्यम, गुरु मान लिख कर विप्रलब्धा के अंतर्गत अन्यसमोगदु खिता और प्रोषितभर्तृका के अंतर्गत प्रवत्स्यप्रेयसी, प्रोषितपतिका, आगच्छतपतिका और आगतपतिका का वर्णन किया है ।

(४) रुसलीन ने पहले 'अष्ट नायिका' के शीर्षक में आठ नायिकाएँ लिखी हैं । उनके उपरांत निम्न लिखित चार नायिकाओं का भी कथन किया है—

- १—गमध्यतपतिका, २—गच्छतपतिका, ३—आगमध्यतपतिका, ४—आगतपतिका ।

इनमें 'गच्छतपतिका' तो पूर्वोक्त अष्ट नायिकाओं में वर्णित 'प्रोषितपतिका' ही है, शेष तीन नायिकाएँ नवीन हैं । इस प्रकार उनकी कुल संख्या ११ हुई ।

(५) मतिराम और पद्माकर ने दस नायिकाओं का ही उल्लेख किया है । उन्होंने ग्यारहवाँ 'आगमध्यतपतिका' को नहीं लिखा है ।

(६) भिन्न-भिन्न आचार्यों ने अपनी-अपनी रीति-अनुसार आठ, दस और ग्यारह नायिकाओं का वर्णन कर उनको किसी निश्चित क्रम के अनुसार नहीं लिखा है । ऐसा ज्ञात होता है कि इन नायिकाओं की मनोदशा का अत्यंत सूक्ष्म विवेचन करते हुए भी उनका कोई वैज्ञानिक क्रम निश्चित करने की चेष्टा नहीं की गयी,

१-स्वाधीनपतिका, २-वासकसज्जा, ३-उत्कंठिता,
४-अभिसारिका, ५-विप्रलब्धा, ६-खांडिता, ७-कलहांतरिता,
८-प्रवत्स्यत्प्रेयसी, ९-प्रोषितपतिका, १०-आगतपतिका ।

उपर्युक्त दसों नायिकाओं में से प्रत्येक के १-मुग्धा, २-मध्या,
३-पौंडा, ४-परकीया और ५-सामान्या—उपभेद और होते हैं ।

इसीलिए चाहे जिस नायिका का आगे-पीछे उल्लेख कर दिया गया है । हमने इन नायिकाओं को जिस क्रम से रखा है, वह उनकी क्रमशः विकसित मनोदशा के अनुसार है, जिसका विस्तृत वर्णन गत पृष्ठों में किया गया है । हमारा यह क्रम नायिकाभेद के मान्य आचार्य 'रसलीन' से मिलता है । संभव है उनका ध्यान सबसे पहले ऐसा क्रम निर्धारित करने की ओर गया हो, यद्यपि उन्होंने अपने ग्रंथ में इसका कोई उल्लेख नहीं किया है । किसी निश्चित क्रम का विचार किये बिना अनायास ही ऐसे वैज्ञानिक क्रम के अनुसार नायिकाओं का कथन हो गया हो, ऐसा भी संभव ज्ञात नहीं होता, अतः यह मानना चाहिए कि रसलीन ने ही सर्व प्रथम इन नायिकाओं का क्रम निश्चित किया था, किंतु उनके परवर्ती आचार्यों ने फिर भी उनका अनुकरण नहीं किया । उदाहरणार्थ नायिकाभेद के परवर्ती प्रचलन विवेचनकर्त्ता पद्माकर ने रसलीन के सुंदर क्रम को न अपनाकर मतिराम के पुराने क्रम को ही पसंद किया है । नवीन शैला को आधुनिक पुस्तकों में भी इसका ध्यान नहीं रखा गया, इसीलिए 'हरिऔध' जी के 'रस-कलस' में भी वही पुराना क्रम दिखलाई देता है । आधुनिक पुस्तकों में पं० बिहारीलाल भट्ट कृत 'माहित्य सागर' का क्रम हो ठीक है, किंतु उक्त ग्रंथ की भूमिका में इस क्रम के आविष्कार का श्रेय भट्टजी को दिया गया है, वह ठीक नहीं है । हमारे विचार से यह श्रेय रसलीन को देना सर्वथा प्रमाण सिद्ध है ।

† (१) केशवदाम ने इन नायिकाओं के 'मुग्धा' आदि भेद न लिख कर, 'प्रच्छन्न' और 'प्रकाश' नामक दो-दो उपभेद लिखे हैं ।

(२) दास ने इनको केवल स्वकाया और परकाया में ही लिखा है । सामान्या नायिका तो उन्होंने मानी ही नहीं है, अतः उनके द्वारा इन नायिकाओं को सामान्या में कथन करने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता ।

(३) प्रायः सभी अन्य आचार्यों ने मुग्धा, मध्या, पौंडा, परकीया और सामान्या—इन पाँचों नायिकाओं में इनका कथन किया है ।

(४) हरिऔध जी ने भी सामान्या में इनका कथन नहीं किया है ।

(१) स्वाधीनपतिका—जिम नायिका का नायक सदा उसके वशीभूत रहे, उसे 'स्वाधीनपतिका' कहते हैं*—

मुग्धा स्वाधीनपतिका

आपुने हाथ सो देत महाबर, आपही बार सँवारत नीके ।
आपुन ही पहिरावत आनिकै, हार सँवारिकै मौरसिरी के ॥
हौं सखि ! लाजन जात मरी, 'मतिराम' सुभाब कहा कहौ पी के ।
लोग मिलै, घर घेर कहै. अबई ते ए चरे भए दुखही के ॥३८१॥

*

दिन-दिन दूनी दुति लखि लखचाने रहै,
दिन मे 'प्रवीनबैनी' चलै कछु बल ना ।
सौँझ ही महल पौहि पाइ मनभाई वह,
जाक बिन देखे ते परत कल पल ना ॥
अचल उधारि मुख चाहत सिंगारन कां,
राखति है चचल सो अचल अचल ना ।
अजन ललन लीने ललकत आँगुरीन,
पलक न खोलति है लाजनि ते ललना ॥ ३८२ ॥

*

केलि-कोठरी ते कहैं बाहिर घरीक हू न,
छोड खेल संग के सखान काँ दियौ है री ।
गेह के उचित जन हास-परिहास करे,
तऊ चित्त में न नैक सकुच छिर्यो हें री ।
परिपूर जोबन न भलक सरीर आई,
उर अब ही ते यहि भावहि लियौ है री ।
जा दिन तें आई गौनिहाई बाल, ता दिन ते,
सौँवरे सलौने पर टौना सौ कियौ है री ॥ ३८३ ॥

*

नहिं पराग नही मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल ।
अली कली ही सों बँध्यौ, आगे कौन हवाला ॥ ३८४ ॥

* केसव जाके गुन बँध्यौ, सदा रहै पति सग ।

'स्वाधीनपतिका' तामु कौं, बरनत प्रेम प्रसंग ॥

† बिहारी

—“रसिकप्रिया”

मध्या स्वाधीनपतिका

लै परजक धरै भरि अंक, निसंक ह्वै स्वावत प्रेम उपाइन ।
 चौकि परै तौ परै उर लागि, हिये सो हियौ अनुरागि सुभाइन ॥
 लाजत हौं लरजौ गहिरी, बरजौ गहिरी कहिरी किहि दाइन ।
 जागति जानि कहानी कहै, अरु सोवत 'देव' पलोडति पाँइन ॥३८५॥

★

जगमगे जोबन अनूप रूप तेरौ चाहि,
 रति ऐसी रंभा सी रमा सी बिसराइऐ ।
 देखिवे को प्रानप्यारी पास ठडौ प्रानप्यारौ,
 घूँघट उधारि नैक बदन दिखाइऐ ॥
 तेरे अंग-अंग मे मिठाई औ लुनाई भरी,
 'मतिराम' कहत प्रगट यह पाइऐ ।
 नायक के नैनन मे नाइऐ सुधा सी, सब-
 सौतिन के लोचननि लौन सौ लगाइऐ ॥ ३८६ ॥

★

सरसाए दुकूल सुगंध सो सानि, सबै रति मंदिर बास रह्यौ ।
 रंग-रंग के अंग अनूप सिंगार, सिंगार निहारि कै मोद लख्यौ ॥
 पुनि बीरी खबावत हू 'ससिनाथ', सुजान सो प्यारी कछु न कह्यौ ।
 जब लागन लागे महावर पाँइ, तबै मुसिक्याइ कै हाथ गह्यौ ॥३८७॥

★

वे तौ तजि मीतन को, गीतन कोहाँसी ख्याल,
 साँझ ही ललकि आवैं केलि के महल मे ।
 तू तौ इत लाजनि लपेटी बेटी बडेन की,
 कैसे कै सिंगारै अंग चहल-पहल मे ॥
 डारि राखे केसरि 'प्रवीनबेनी' मृगमद,
 अगर-तगर सार चंदन सहल मे ।
 जौलौ मनभावती न आवती, अनेक भोति,
 तौलौ लगे रहै लाल रावरी टहल मे ॥ ३८८ ॥

★

लाज मरौ गुरु-लोगन मे, इनके मन मे सु न आवत है धिन ।
 'देव' कहा कह्यौ, सेवक हू रहे, कैसेज कोउ चबाव करौ किन ॥
 चौर हुलावत, दावत पाँइ, खवासिन ठाडी हँसै बिसवासिन ।
 देव बधू-बर जोरी घनी, बरज्यौ री इन्हे, बरजोरी करै किन ॥३८९॥

इदीवर-नैनी इदु-मुखी सुधाबिंदु हास,
 इदिरा-सी सुंदरि गुबिंद चित चाह सी ।
 नैननि उनैसी लाज नैननि सुनैसी काज,
 चैननि उनैसी नाह सौहै कहूँ ना हँसी ॥
 प्रीति-भीति प्रगट, प्रतीत रीति गुपति,
 दिपति पति दीपति छिपति छुवि माह सी ।
 आगों-आगे आनन अनूप कौ उज्यारी रूप,
 पाछे-पाछे प्यारौ लग्यौ डोलै परछाँह सी ॥ ३६० ॥

★

ता छिन ते रहे औरनि भूल, सु भूली कदवन की परछाँही ।
 त्यो 'पदमाकर' मग सखान के, भूखि भुलाई कला अबगाही ॥
 जा छिन ते तू बसीकर मंत्र सी, मेलि सु कान्ह के कानन माँही ।
 दै गलबाही जु नौही करी, वो नौही गुपाल को भूलत नौही ॥ ३६१ ॥

★

लोचन लचाइ लचि लाजनि चलति त्यो-
 त्यो लाल लचे जात चित लागी ललचई है ।
 'देव' दग दोऊ भरि, हियौ भरि हौंसनि कै,
 मुजा भरि भाग-अनुराग भरि लई है ॥
 सौं हे सुखदानि नौ सुखद मुख देखि पल-
 आध, न अधात देखै, साध नित नई है ।
 धनि-धनि रूप, गुन साधन अनूप धन,
 या गृह-धनी को निधि कौ धन भई है ॥ ३६२ ॥

★

तेरिऐ कीरति कान सुनै, अरु तेरोई रूप सदा दग देखै ।
 तेरिऐ बात कहै रसना, अरु भूखि हू और की ओर न पेखै ॥
 तू जिय मे, हिय मे पिय के, पिय तो बिन जात घरी जुग लेखै ।
 जानि 'दिनेस' किये बस तै, कै भये हरि आपु ही हाथ की रेखै ॥ ३६३ ॥

★

आधे-आधे दगनि रति, आधे दगन सु लाज ।
 राधे आधे बचन कहि, सुबस किए ब्रजराज† ॥ ३६४ ॥

प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका

आपु ही पाँइन देत महावर, बैनी गुहै और बैनी डुलावै ।
 आपु ही बीरी बनाइ खबावै, अनेक बिलासन रीझि-रिझावै ॥
 तेरी सखी अरु आपने मित्र सों, तेरे ही प्रेम की बातें चलावै ।
 तो सी बिलोक मे को बड़ भागिनि, जो तिय यों पीय कौ बस पावै ॥३६५॥

*

मालिनी हूँ हरि माल गुहै, चितवै मुख, चेरि भयौ चितचाइनि ।
 पान खबावै खबासिनि हूँ कै, सबासिन हूँ सिखवै सुख भाइनि ॥
 बैदी दे 'देव' दिखाइ कै दर्पन, जाबक देत भयौ अब नाइनि ।
 प्रेम पगौ पिय पीत पिछौरी सो, प्यारी के पौछि पमारी-से पाँइनि ॥३६६॥

*

पीत पटी लौ कटी लपटी रहै, छैल छरी लौ खरी पकरी रहै ।
 कान्ह के कठ की कठी भई, बनमाख हूँ बाल हिण पसरी रहै ॥
 'देव जू' कान लरै लुरकी लौ, भई बँसुरी अधरान धरी रहै ।
 पाग ही पाग हूँ मूढ चढी, गहनौ सय ग्वाल गुपाल करी है ॥३६७॥

*

मँग सँवारत काँचई लै, कच-भार भिजावत अंग सँमेत हौ ।
 रोम उठावत कुंकुम लेइकै, 'दास' मिलाइ मनो लिऐ रेत हौ ॥
 बीरी खबावत, अंजन देत, बनावत आढ कँपौ बिन हेत हौ ।
 या सुघराई भरौसै क्यों दौरिकै, छोरि सखीन कौ काजर लेत हौ ॥३६८॥

*

फूलन सों बाल की बनाय गुहै बैनी लाल,
 भाल दई बैदी मृदमद की असति है ।
 भौंति-भौंति भूषन बनाए ब्रजभूषन,
 सु बीरी निज कर सो खवाई करि हित है ॥
 हूँ कै रस-बस जब दीवे कों महावर के,
 'सेनापति' लाल गह्यौ चरन ललित है ।
 चूमि हाथ नाह के, लगाइ रही आँखिन सो,
 एहो प्राननाथ ! यह अति अनुचित है ॥३६९॥

*

अंगराग औरै अँगन करत, कछु बरजी न ।
 पै मँहदी न दिवाइ हौ, तुम सों पगन प्रबीन ॥३७०॥

(२) बासकसज्जा—अपने प्रियतम का निश्चिन्त मिलन जानकर उससे मिलने के लिये साज-शृंगार और संभोग सामग्री एकत्रित करने वाली नायिका 'बासकसज्जा' कहलाती है ।

मुग्धा बासकसज्जा

सखिअँन सिंगार सिंगारे सबै, बिहँसे रति की दुति धारति है ।
मन मॉकि नई बतिअँ सुनिवे को; कलूक विनोद विचारति है ॥
'ससिनाथ' सुजान कौ आगम जानि, बनी फुँफदो का संहारति है ।
तिथ नार नबाइ बिहारति है, दुरिकै पिय-पथ निहारति है ॥४०७॥

★

कुजन ते कंत की तयारी आयवे की जानि,
धारी जरतारी, कोर कलित किनारी की ।
मखिन सुवारी सेज, मेज मजु मौजकारी,
लखत लजारी होत ओट में किवारी की ॥
'बाल' कवि चद की उज्यारी लखि हारी ताहि,
बीजुका बिचारी सर करै चमकारी की ।
आँख रूपकारी, चढी नीद की खुमारी भारी,
तऊ वैस वारी बाट जोवै बनवारी की ॥४०८॥

★

छूट्यौ डर भॉमती कौ जानि परद्यौ एरी भद्र ।
देखि चोराचोरी आज लागी है टहल मे ।
माइके की सखी सो मँगाइ फूल मालती के,
चादर सों ढाँपे छाइ तोसक पहल में ॥
'रघुनाथ' भॉमते कौ पानदान भर बीरी-
भरी, धरी पोथी कोऊ कथा की रहल मे ।
अतर गुलाब कौ छिरकि हेत सौरभ कै,
चहल-पहल कीन्हे रति के महल मे ॥४०९॥

★

हरूप गबन नबेलिया, दीठि बचाइ ।
पौढी जाइ पलँगिया, सेज बिछाई ॥ ४१० ॥

* पिय-आगमन जानि वर बाला । मुरति-सामग्री रचै रसाला ।
दूता पूछै, सखि सो हँसे । करै मनोरथ, बिकसे लसै ॥
नैननि निपट चटपटी लहिऐ । सो तिथ 'बासकसज्जा' कहिऐ ॥

† रहाम

—नंददास कृत "रसमजरी"

मध्या बासकसज्जा

खोलिकै कपाट दीन्हे अतर कपट रँग-
 राउटी मे ओट हूँ सुगध सुबटतई ।
 पौछति कपोलनि, अँगोछति उरोजनि,
 तिलोछति सुदेस केम चोबा चुबटतई ॥
 मैहदी रचाइ कर, पाँइनि महाउर दै,^०
 देखति कनैखनि सखीन खुबटतई ।
 केली सुख मंग की उमगनि अकेली 'देव',
 दिबस गँमावै अंग रंग उबटतई ॥४११॥

★

ग्वालन की रास ते, गऊन के निवास तेँ जु,
 ऐहँ अब कंत तंत आसते-ही-आसते ।
 ऐमै जिय भासतै जु लाज के खवास ते सु,
 कहै न खवास ते कि उठि जाउ पास ते ॥
 'ग्वाल' कवि काम के उकास ते, विकास ते जु,
 पलँग सुवास ते, सज्यौरी रतिवास ते ।
 आनन उजास ते, विकास ते, हुलास ते जु,
 बातन विलास ते, सु बैठी पिय-आस ते ॥४१२॥

★

सुख-सेजहिं साजि, सिगार सजे, गुहि बार सुगध सबै बसिकै ।
 चुनि चूनरी लाल खरी पहिरी, कवि 'देव' सुवेस रह्यौ लसिकै ॥
 पिय भेटिवे को उमही छतिआँ, सु छिपावति हेरि हियौ हँसिकै ।
 अँगिया की तनी खुलि जात घनी, सु बनी फिरि बँधति है कसिकै ॥४१३॥

★

झुकि-झुकि रूपकौ है पलन, फिरि-फिरि जुरि-जमुहाइ ।
 जानि पियागम नीद मिस, दी सब सखी उठाइ ॥ ४१४ ॥

★

लाल-मिलन-गुन तनु सजति, बाल बदन की जोति ।
 खिनक कमल सी मलिन, खिन अमल चद सी होति ॥ ४१५ ॥

★

सुभग बिछाय पलँगिया, अग सिंगार ।
 धितवति चौकि तरुनिआँ, दै दग द्वार ॥ ४१६ ॥

प्रौढ़ा वासकसज्जा

• बारनि धूपि अँगारिन धूपिकै, धूम अध्यारी पसारी महा है ।
आनन चद समान उगौ, मृदु मद हँसी जनो जोन्ह कहा है ॥
फैलि रही 'मतिराम' जहाँ-तहाँ, दीपनि दीपन की परभा है ।
लाल ! तिहारे मिलाप को बाल ने, आजु करी दिन ही मे निमा है ॥४१७

★

लाइ कै फुलेल करी कँवई सँवारि पाटी,
मोतिन सो पोइ आछे अग्र अलकन के ।

बडे-बडे नैन तैमे कठिन उरोज सोहै,
बीर मानो कुम कोटि सोभा लच्छन के ॥

उज्जल जुन्हाई मे बिछाइ सेज, कामिनी के—

उठत तरग, अग-अग ललकनि के ।

चित्र की सी लिखी प्यारी, प्रीतम की बाट हैरै,

एक टक पॉमरे पसारै पलकन के ॥ ४१८ ॥

★

सेज सजी औ सिंगार सजे, रचिकै रति-केलि काँ मंदिर नीकौ ।
आयौ हिऐ बढि चौगुनौ चाव ल्यो भाव भयौ सब जाहिर जी कौ ॥
आनन आन धर्यौ कर ऊपर, कौल मे मडल मानो मसी कौ ।
द्वार की ओर दिऐ दग दोऊ, निहारति प्यारी प्रिया मग पी कौ ॥४१९॥

★

पामरी के पॉमरे परे हैं पुर पौरि लागि,
घाम-घाम धूपनि के धूम धुनियत है ।

कस्तूरी, अतर-सार, चाँदा, रस घनसार,
दीपक हजारन अध्यार लुनियतु है ॥

मधुर मृदंग राग-रग के तरगन मे,
अग-अग गोपिन के गुन गुनियतु है ।

‘देव’ सुखसाज महाराज ब्रजराज आज,
राधिका के मदन सिधारे सुनियतु है ॥ ४२० ॥

★

चौसई में कल केलि-निकु ज कियौ मनि-मडित, सो मन भावै ।
‘सेखर’ सीचि सुगंधन सौ, मुकुतान की बंदनबार बंधावै ॥
सेज बिछाई कै बैठि रही, सब अंग उमंगन की छवि छावै ।
आवतई रजनी सजनीनि लगी पति-प्रीति की रीति सिखावै ॥४२१॥

परकीया बासकसज्जा

औधि आधी राति की दै, आपनौ बताइ गेह,
 देखि अभिलाखि मिलिवे को सुखदाइ के ।
 भूसि ही मे कैयौ डारि तोषक बिछौना कीन्हे,
 आप-पास धरि दीन्हे चौसर बनाइ के ॥
 पानी पान, अतर नजीक सब राखे लाइ,
 गुजरैटी 'रघुनाथ' औरौ चित्त चाइ के ।
 खोलि राखी खिरकी, बुझाइ राखे दीप, द्वार-
 लाइ राखे नैन, कान आहटे मे पौड़ के ॥४२२॥

★

सौंभ ही ते करि राखे सबै, करिवे के जे काज हुते रजनी के ।
 पौडि रही उमंगी अति ही, 'मतिराम' अनंद अमात न जी के ॥
 सोवत जानि कै लोग सबै, अधिकाने मिलाप मनोरथ पी के ।
 मेज तें बाल उठी हरुण, हरुण पट खोल दिए खिरकी के ॥४२३॥

★

मेला की बहार कर, इतई पधार कर,
 देहैं सुख सार कर, प्रीतम बिहार कर ।
 ऐसे जी बिचार कर, नैन सो रार कर,
 सासु सो उचार कर, माँदी हौ अपार कर ॥
 'ग्वाल' कवि पौरिऐ बुहार कर, चारु कर,
 साँकर उतार कर, मूदे से किवार कर ।
 पाइल उतार कर, दीपक निवार कर,
 मौनी सेज डार कर, बैठी दग द्वार कर ॥४२४॥

★

सामान्या बासकसज्जा

चंद माँ बदन, चद्रिका मी चारु सेत मारी,
 तैसिऐ गुलाई गसी उरज उतग की ।
 हेरि कै हिए कौ हार-हारिनी हरिन-नैनी,
 हेरै हिए हरषै सखी त्यों सैन सग की ॥
 भनत 'कबिद' सोहै बासक नबेली नारि,
 बाढ़ी चित्त चाइ, जाके आगम उमग की ।
 जगर-मगर बैठी सेज पै नगर-बाल,
 आली लाल मोहिवे को बाला ज्यो अनंग की ॥४२५॥

(३) उत्कंठिता—केलि स्थान में नायक की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा करने वाली नायिका को 'उत्कंठिता' कहते हैं ।

मुग्धा उत्कंठिता‡

बीत गई जुग जाम निसा, 'मतिराम' मिटी तम की सरसाई ।
जानति ही कहुँ और तिया सें, रहे रम मे रमिकें रसगई ॥
सोचत सेज परी यो नबेली, सहेली सो जान न बात सुनाई ।
~~चढ़ी~~ चढ्यौ उदयाचल पै, मुखचढ़ पै आन चढ़ी पियराई ॥४२६॥

★

जामिनि कौ पहिलौ जब जाम, बितीत भयौ, पिय गेह न आयौ ।
लाजन बोलि सकै न सखीन सों, बाम कौ काम-हियौ अकुलायौ ॥
यो मन बीच बिचारि करै, उन कैहू न मोहि वियोग दिखायौ ।
जानति हौ न कहा गति ह्वै, मेरे प्रानन कौ पति कै बिलमायौ ॥४२७॥

★

लाज ते बूझि सखी हू सकै न, बिचारति सी कछु एई विचारि है ।
कै तो रिझाय लयौ कहुँ काहु, खिझायौ कतौ अति ही सुकुमार है ॥
रे मन ! तू तौ रहै प्रिय-पास, कहै किन काहे ते कीन्हौ अवार है ।
प्यारी ह्वै पीरी गई इहि सोच, मनो पतझार लवंग की डार है ॥४२८॥

★

खरी दुपहरी, हरी भरी फरी कुंज मंजु,
गुज अलि-पुंजन की 'देव' हिऐ हरि जाति ।
सीर नद-नीर तरु तीरनि गहीर छाँड़,
सोवै परे पथिक पुकारै पिकी करि जाति ॥
ऐसे मे किसोरी भोरी कौ री कुम्हिलानौ मुख,
पंकज से पाँड़ धरा धीरज सो धरि जाति ।
सौ है धाम स्याम-मग हेरति हथेरी-ओट,
ऊँचे धाम बाम चढ़ि आवति उतरि जाति ॥४२९॥

* प्रिय सहेट आयौ नहीं, चिता मन में आने ।
सोच करै संताप सों, 'उत्कंठिता' बखानि ॥

—“भाषाभूषण”

‡ कुछ विद्वानों के विचारानुसार 'उत्कंठिता' का मुग्धा भेद नहीं होता है ।

ज्यो-ज्यों चलैं सजनी अपने घर, त्यो-त्यों मनो सुख-सिख मे पैठै ।
ज्यों-ज्यों वितीतति है रजनी, उठि त्यों-त्यो उनीदे से अंगनि ऐठै ॥
आवत बात न कोऊ हिऐ, चित कैसे नजै कुल-कानि अकैठै ।
ज्यों-ज्यों सुनै मग पाँइन की धुनि, सेज पै त्यो-त्यो लली उठि बैठै ॥ ३२० ॥

★

भोरी सी, भ्रमी सी, सखी, सुखी सी बिलोकै गैल,
बावरी सी मदन मसूसै मन मारि-मारि ।
'द्विज जू' कहत भई बिकल बिसूरै सुख,
रखवाए दूर रति-साज सब टारि-टारि ॥
लाजि ते न बोलिवौ कहति, बीती औधि जानि,
ऊबि-ऊबि भामती उसामै लेति हारि-हारि ।
हेरि चारौ ओर घेरे घन की घुमड, देत —
बड़ी-बड़ी आँखिन तें आँसू बँद डारि-डारि ॥ ४३१ ॥

★

कहा भयो आए न क्यो, मुख ते कहत न बैन ।
चित-चंचलता कहत है, चंचल-नैनी नैन † ॥ ४३२ ॥

★

मध्या उत्कंठिता

आधे अकास मे आयौ ससी, चुपचाप चहूँ दिसि माँझ भई अति ।
नीद सों नाहिं झुकै आँखियाँ, 'ससिनाथ' सनेह बिहाल करी मति ॥
भूलि गए घर की सुधि कै, कै कहुँ रस-बातन मे बिरमे पति ।
क्यो नहिं आए, कहा करिऐ, तिय नार नबाइ मखीन सो वृक्षति ॥ ४३३ ॥

★

पल्लंग बिछाए छाए फूलनि सों मन भाए,
हार मँगवाए धरवाए चंगेरन मे ।
सारी सरसावन किनारी बारी पैन्ही आइ,
भूषन जबाहिर के भूषे सब तन मे ॥
'रघुनाथ' भामतौ न आयौ केलि-मदिर मे,
बीती जाम जामिनी अधक आधिपन मे ।
कहति सँकोचति है मखी सो बुलाइवे को,
लोचति है भट्ट, बैठी सोचति है मन मे ॥ ४३४ ॥

प्रौढा उत्कण्ठिता

आए न 'देव' सु आन दसा भई, आनंद साहस की मति मँदी ।
 खंजन-नैनी उठी अकुलाह, धरै अगुरीन सुअंजन बूंदी ॥
 पौरि लौ दौरिकै देखौरी देखौ कहै कर दावै रहै पट फूँदी ।
 आली अंगोछत अग छुटी, गजमोतिन माँग छुटी अधग दी ॥४३५॥

*

काहू रूपवती मे रमे है लोभी आलसी हूँ,
 ललकत डोलै बोलै तजत सुभाए ना ।
 काहू सग सखिन के रग मढि रहे कैधौ,
 कैधौ उर उडिकै अनग-बान लाए ना ॥
 कौन असमंजस 'प्रवीनबेनी' याते और
 भोर होत आली ! नभ लाली तै बताए ना ।
 अथवत इंदु, अरबिंद बन बिकसत,
 गुजत मलिंद हैं, गुबिंद गोह आए ना ॥ ४३६ ॥

*

बार न देति किंवार अवार हूँ, तोसो मै बार हजार कही री ।
 फूल बिथोरि, दुकूलहि छोरि लै, भावति मोहि बयारि न सीरी ॥
 'देव' कहालौ गनौ उनके गुन, सीस धुनो, न सुनौ रंग रीरी ।
 डारि दै सौंधि, बिडारि दै चेरनि, गारी दै बोलै बगारि दै बीरी ॥४३७॥

*

कयो न आये कंत अलबेल मे अलेल मे हूँ,
 रहे रिस-रेल मे, कै बैठे भूप-मेल मे ।
 अमल अमेल मे, कै प्याखिन उमेल मे,
 कै रहे भुकि भेलि में, कै भूलों की भुमेल मे ॥
 'गवाल कवि' बाहन की पेल मे, पहेल मे,
 कै बातन उचेल में, कै इलम सफेल मे ।
 काहू मीत मेल मे, कै हितुन के हेल मे,
 कै चौसर के खेल मे, कै लागे कहूँ केल मे ॥ ४३८ ॥

*

नभ लाली, चाली निसा, चटकाली धुनि कीन ।
 रति पाली आली अनत, आए बनमाली ना ॥ ४३९ ॥

परकीया उत्कंठिता

भूलि गए इतकी सुधि कै, चित मे कछु औरहि बानि बसाई ।
खेलत बालन सग रहे हैं, किधौ 'ससिनाथ' लई निदुराई ॥
प्रीति करी कहूँ अंत किधौ, डरपे अपलोक ते लाल कन्हाई ;
क्यो नहिँ आए अजौ सजनी कहि, मोहि भई रजनी दुखदाई ॥ ४४० ॥

*

तनिकौ तिनकै खिरकै खरकौ, तिनके तन को ठहरैवौ करै ।
लखि बोलत बोल नमाल के डोलत, चाउ सों चौकि चितैवौ करै ॥
यह जानती पीतम आवहिगे अधरात लौ, ज्यो नित ऐवौ करै ।
अखिअन को 'दास' कहा, कहिए, बिन कारन ही अकुलैवौ करै ॥ ४४१ ॥

*

सकुची न सखीन सो, सौतिन सो, सपने हू न सासु की कान कहूँ ।
कुनवान की तीयन सो किहुँ भाति, डराए ते हौ न डरी कबहुँ ॥
कहि 'सु दर' नदकुमार लिऐ, तन कौ तनकौ नहि चैन कहूँ ।
हरि के हित मे तौ करी इतनी, हरि कीन्ही जु आए नही अजहुँ ॥ ४४२ ॥

*

फागुन मे का गुन बिचारि ना दिखाई देत,
एती बार लाई, उन कानन मे नॉई आउ ।
कहै 'पदमाकर' हितू जो हमारी है तौ,
हमारे कहे बीर ! उहि धाम लागि धाइ आउ ॥
जोरि जो धरी है बेदरद के दुआरे होरी,
मेरी बिरहागि की उलूकन लौ लाइ आउ ।
एरी ! इन नैननि के नीर मे अबीर घोरि,
बोरि पिचकारी चितचोर पै चलाई आउ ॥ ४४३ ॥

*

सामान्या उत्कंठिता

आवत बन्यौ न काहू काम को सिधार्यौ,
किधौ और बारबधू सो सनेह सरसाई की ।
परम विचित्र काहू मित्र ने सिम्बायौ किधौ,
मानी है अटक लोक-लाज अधिकाई की ॥
काहे ते न आयौ, सो न जानियत बात रच,
कहाँ लौ बडाई कीजै वाकी चतुराई की ।
खाली हाँ न आवतौ, कछु पै धन ल्यावतौ री,
योही गई रैन आली ! आजु की जुन्हाई की ॥ ४४४ ॥

(४) अभिसारिका—कामार्त्ता होकर स्वयं नायक के पास जाने वाली, अथवा उसे अपने पास बुलाने वाली नायिका 'अभिसारिका' कहलाती है† ।

मुग्धा अभिसारिका

किंकिनी छोरि छपाई कहुँ, कहुँ बाजनी पाइल पौंड तें नाई ।
 त्यों 'पदमाकर' पातहु के खरकै, कहुँ काँपि उठै लुवि छाई ॥
 लाजहि तें गडि जाति कहुँ, अडि जाति कहुँ, गज की गति भाई ।
 बैस की थोरी किमोरी हरै-हरै, या विधि नंदकिमोर पै आई ॥४४५॥

★

नीके न्हावाइ गुलाब के नीर, सरीर सिंगारे सखा बियनैं सब ।
 भीत भई हहरै हिय माँझ, कहौ यह रग लख्यौ पिय नैं कब ।
 लाख जिठानी की सौह सुनै, अति ही पतियारौ कियौ जिय ने जब ॥
 भौह चढाइ, मसूकरि कै, पति पास को पौंड दिखौ तिय ने तब ॥४४६॥

★

दाबि-दाबि डतन अधर छतबंत करै,
 आपने ही पाँइन कौ आहट सुनति खैन ।
 'द्विजदेव' लेति भरि गातन प्रसेद अलि,
 पातहु की खरक जु होती कहुँ काहू भौन ॥
 कंटकित होत अति उसमि उभासति तैं,
 सहज सुवासन सरीर मंजु लागै पौन ।
 पथ ही में कंत के जु होत यह हाल तौ पै,
 लाल की मिलनि ह्वै है बाल की दसा धौं कौन ॥४४७॥

★

चली अली नवलाहि लै, पिय पै साज सिंगार ।
 ज्यो मतग अडदार को, लिए जात गडदार ॥४४८॥

† केलि-हेतु पिय-यल गवन, करै विलक्षण कोइ ।
 पियहि बुलावै आपु यल, 'अभिसारिका' सु होइ ॥

—“हिततरंगिनी”

* मतिराम

मध्या अभिसारिका

कीन्हौ है सिंगार नख-सिख लौ कुरग-नैनी,
 अंगना अनूप अंगराग अंग घसिकै ।
 कचन की बेली सी अकेली चली केलि-भौन,
 करिकै मनोरथ रसीले रस रसिकै ॥
 मंद-मंद चोरी सी करन जात चदमुखी,
 'नददास' कोठे के समीप गई लसिकै ।
 एक पाँड़ सीढ़ी पै मनोज मजबूत गहै,
 एक पाँड़ भूतल पै लाज गहै कसिकै ॥४४६॥

★

चौर चिनोठिया चाइन सो, चुनिकै पहिरयाँ दुति चारु लसाति है ।
 ताहि निहारति ही सु भली विधि सौतिन की मुख-ज्योति बिलाति है ॥
 चाहति बूझौ सखीनि कछु रसरीति, हिण्-मन मॉफ लजाति है ।
 नाथ सुजान समीप को बाल, चलै ठठुकै, मुरकै मुसकाति है ॥४४७॥

★

पाइलनि डारै, कटि-किंकनी उतारै कढ़ं.
 हाथन ते मारि भीर टारति मल्लिक की ॥
 भूषन-चमक ते चमक लगै पाँड़न मे,
 'द्विजदेव' आँखिन बचाइ अलि-वृंद की ॥
 भौन ते दमकि दामिनी लो दुरै दूजे भोन,
 त्यागि गरबीली गति गौरव-गयंद की ।
 - या विधि ते जाति चली साँवरी उँमाहैं सखी,
 आज अई चाहै भाग उदित गुबिंद की ॥४४८॥

★

पैजनी-कंकन की झनकार सो, नासिका मोरि मरोरति भौहैं ।
 ठाढी रहै पग द्वैक चलै, सने स्वेद कपोल कछु उधरौहै ॥
 यो 'लक्ष्मिराम' सनेह के संगन, साँकरे मे परी प्यारी लजौहै ।
 छ्वाकि रह्यौ रस रंग अमी, मनमौहन ताकि रह्यौ तिरछौहैं ॥४४९॥

★

जोवन मद-गज मद गति, चली बाल पिय-नेह ।
 पगनि लाज आँदू परी, चढ्यौ महावत नेह ॥४५०॥
 पिय पहुँ जात लजाति बहु, लंक लचै बल खाति ।
 तजति उताइल भाव तिय, जो पाइल बज जाति ॥४५१॥

प्रौढ़ा अभिसारिका

सहज सुभाइन सो भामती सदेखिन मे,
 सोहत सरूप-रासि कंचन सौ गात है ।
 सकल सिंगार साज, सहित उमंग भरी,
 जोवन-तरंग सील सोभा सरसात है ॥
 गुरुजन गेह के सोवाय कै सिधारी थारी,
 बैठौ जहाँ 'सेखर' पियारौ सुखदात है ।
 बाढौ अति प्रेम कौ पयोनिवि अथाह,
 तामै लाज भरौ मदन-जहाज चली जात है ॥ ४५५ ॥

*

नौसत सिंगार साजि, कीन्हौ अभिसार जाउ
 जोवन-बहार रंग-रंग मरमत जात ।
 'लखिराम' तैसी भनकार पैजनी की,
 कर-ककन खनक चूरी चारु परसत जात ॥
 भरत प्रखेद, मुख चूनर सुरंग बीच,
 विहसत मन सारदा कौ तरसत जात ।
 दामिनी अमंद सौहैं बस रस फद चद,
 मानो लाल बादर मे मोती बरमत जात ॥ ४५६ ॥

*

घूँघर की घूम, कै सुकूम, कै जवाहिर,
 झिलमिल झालर की भूमि लो झुलत जात ।
 कहै 'पदमाकर' सुधाकर-मुखी के हीर-
 हारन मे तारन के तोम से तुलत जात ॥
 मद-मद मैकल मतग लौ चलैई भले
 भुजन समेत भुजभूषन डुलत जात ।
 घोंघरे झकोरन चहुँघा खोर-खोरन मे,
 खूब खसबोई के खजाने से खुलत जात ॥ ४५७ ॥

*

सजि सिंगार सेजहि चली, बाल प्राणपति प्राण ।
 चढत अटारी की सिढी, भई कोस परमान* ॥ ४५८ ॥
 जेठ-दुपहरी मे बधू, तजि गुरुजन की लाज ।
 सीरे तहखाने गई, सुनि सोए जदुराज† ॥ ४५९ ॥

परकीया अभिसारिका

सूक्त न गात, बीत आई अधरात, अरु-
 सोए सब जानि गुरुजन जे बगर के ।
 छिपकै छबीली अभिसार को किंवार खोलि,
 छुटिगे सुगम चारु चदन अगर के ॥
 'देव' कहै भौर गुंजि आए कुंज-कुंजन सो,
 पूछि-पूछि पाछै परे पाहरू डगर के ।
 देवता कै दामिनी, मसाल किधौ जोति-ज्वाल,
 ऋगरे परत जागे सिंगरे नगर के ॥४६०॥

★

सोए लोग घर के, बगर के किंवार खोलि,
 जानि मन माँहि निज गई जुग जामिनी ।
 चुपचाप 'चोरा-चोरी' चौकत चकित चली,
 पीतम के पास चित चाह भरी भामिनी ॥
 पहुँचि सकेत के निकेत 'संसु' सोभा देति,
 ऐसी बन-बीथिन बिराज रही कामिनी ।
 चामीकर चोर जान्यौ, चपलता भौर जान्यौ,
 चद्रमा चकोर जान्यौ, मोर जान्यौ दामिनी ॥४६१॥

★

केतिकि चमेली चंपा कुटज कदंब मल्ली,
 आम कुल बकुल परागन सो नार्थी सी ।
 संका तें अर्बका प्रेम भंभानल सुकी भीनी,
 मनकै रसन, बलै नूपुर ससाधी सी ॥
 ऊषमा बिषम बिष मेख स्वेद बिटु चुबै,
 अधरन आबरे सुमन-सर साधी सी ।
 धूली मधु अंध अलिबंधुन मदध करि,
 आधी रात उमडी दुग्ध-धुधि आधी सी ॥४६२॥

★

कौन है तू ? कित जात चली बलि । बीती निसा अधरात प्रमानै ?
 हौं 'पदसाकर' भाँमती हों, मन भाँमते पै अबई मुहि जानै ॥
 तौ अलबेली अकेली डरै किन ? क्यों डरौ ? मेरी सहाइ कै लानै ।
 हैं सखि सग, मनोभव सौ भट, कान लौं बान-सरासन तानै ॥४६३॥

वृषभान-मंदिर ते सुंदरि अकेली कढ़ी,
 चढ़ी ज्यो अंधेरी अध ऊरधहि अधराति ।
 बाग लो बगर ही तैं आई बगरावति,
 अगर-सार कस्तूरी सुवास 'देव' सरसाति ॥
 भौर भहराने, लहराने बन-कुंज,
 हहराने प्रेत-पुज, छहराने छवि अधिकाति ।
 बोलैं बन-देवता निसंक कोऊ संको मति,
 कुँवरि मयकमुखी सकेत-सदन जाति ॥४६४॥

★

घटा घहराति, दिज्जु-छटा छहराति,
 आघी रात हहराति, कोटि कीट-रव रुज लौ ।
 हूकत उलूक बन कूकत फिरत, फेर—
 भूकत जु भैरौं-भूत, गावै अलि-पुज लौ ॥
 मिल्ली मुख मूंद तहाँ बीछीगन गूंद, बिष—
 व्याखन को रूंद कै मृनाखन के पुंज लौ ।
 जाई वृषभान की कन्हाई के सनेह-बस,
 आई उठि ऐसे मे अकेली केलि-कुंज लौ ॥४६५॥

★

सोभा पाई कुंज-भौन, जहुँ-तहुँ कीन्हौं गौन,
 सरस सुगंध पौन पाये मधुवन है ।
 बीथिन बिथोर, मुकताहल मराल पाये,
 आखिन दुसाल-साल पाये अनगन है ॥
 रैन पाई चौदनी फटक सी चटक रुख,
 सुख पाये पीतम 'प्रबीन बेनी' धनि है ।
 बैन पाये सारिका, पढ़न लागी कारिका सी,
 आई अभिसारिका, कै चारु चिंतामनि है ॥४६६॥

★

गोप अथाइन ते उठे, गोरज छाई गैल ।
 चलि बलि अलि अभिसार की, भली संभोखैं सैल† ॥४६७॥

परकीया अभिसारिका के भेद

परकीया अभिसारिका के तीन भेद होते हैं*—

१-शुक्लाभिसारिका, २-कृष्णाभिसारिका, ३-दिवाभिसारिका ।

शुक्लाभिसारिका

सजि ब्रजचंद पै चली यो मुख चंद जाकौ,
चंद-चाँदनी कौ मुख मद सौ करत जात ।
कहै 'पदमाकर' त्यां सहज सुगंध ही के—
पुंज, बन कुंजन मे कंज से भरत जात ॥
धरत जहाँई जहाँ, पग द्वै सु प्यारी तहाँ,
मंजुल मजीठ ही की माठ सी दुरत जात ।
हारन ते हीरे ढरैं, सारी के किनारन तें—
बारन ते मुकता हजारन भरत जात ॥४६८॥

★

कनक बरन बाल, नगन-जटित माल,
मोतिन की माल उर सोहै भली भाँति है ।
चदन चढ़ाएँ चारु, चंदमुखी चाँदनी सी,
निकसि अबास तें सिधारी मुसकाति है ॥
चूनरी विचित्र स्याम सजि कै 'ममारख जू',
ढाँपि नख-सिख लौं, अगिक सकुचाति है ।
चंद्र मे लपेटि कै, समेटि कै नछत्र मानो,
द्यौस को प्रनाम किएँ राति चली जाति है ॥४६९॥

★

जुबति जोन्ह मे मिल गई, नैक न परति लखाइ ।
सौंधे के डोरन लगी, अली चली मँग जाइ ॥ ४७० ॥

(१) केशवदास ने अभिसारिका के निम्न लिखित भेद लिखे हैं—

१-स्वकीया अभिसारिका, २-परकीया अभिसारिका, ३-सामान्या अभिसारिका
४-प्रेमाभिसारिका, ५-गर्वाभिसारिका, ६-कामाभिसारिका । उन्होंने पिछले
तीन भेदों में से प्रत्येक के प्रच्छन्न और प्रकाश नामक उपभेद भी लिखे हैं ।

(२) चिंतामणि ने इनके नाम निम्न प्रकार से लिखे हैं—

१-ज्योत्स्ना अभिसारिका, २-तमोभिसारिका, ३-दिव्याभिसारिका ।

कृष्णाभिसारिका

कारौ नभ, कारी निसि, कारीऐ डरारी घटा,
 झुकन बहत पौन आनंद कौ कद री ।
 'द्विजदेव' सौवरी सलौनी सजि स्यामजू पै,
 कीन्हौ अभिसार लखि पावस-अनंद री ॥
 नागरी गुनागरी सु कैसै डरै रैन-डर,
 जाके सग सोहै ए महायक अमंद री ।
 बाहन मनोरथ, उमाहैं सगवारी सखी,
 मैन-मद सुभट, मसाल मुखचढ़ री ॥४७१॥

धूँध के घेर मे दवायौ मुख जेर करि,
 दसन उजेरे को दवायौ रद-छद सो ।
 बाजनू विभूपन दबाए गति मंद करि,
 मँहक दबाई बन-कुंजन की हृद सो ॥
 आहट को 'सेवक' दबाऊँ कौन भौति कैसै,
 घेरयौ भौर भीतर अँधेरौ करि नद सो ।
 गहने जवाहिर के दाबे पट अबरी मे,
 सबरी अराति दुति दाबी मृग-मद सो ॥४७२॥

सजल जलद-घन उमडि धुमडि आए,
 तैसिए अँधेरी घेरी सूकत न संग कौ ।
 प्यारी बनवारी पै सिधारी पनवारी माँहि,
 सालें उर बान पंचवान के निषंग कौ ॥
 पाँइ तरै दब्यौ अहि, अहि रखौ पाँइ गहि,
 कह्यौ न परत जहाँ कौतुक भुजंग कौ ।
 लिऐ लोह-लगर ज्यो सौँकर सहित छुट्यौ,
 जात है मतग मानो नृपति अनंग कौ ॥४७३॥

सघन कुंज-घन, घन तिमिर, अधिक अँधेरी राति ।
 तऊ न दुरिहै स्याम यह, दीप-सिखा सी जाति † ॥४७४॥

स्याम बसन मे स्याम निसि, दुरी न तिय की देह ।
 पहुँचाई चहुँ ओर विरि, भौर-भीर पिय-गेह* ॥४७५॥

दिवाभिसारिका

दिन को किंवार खोलि, कीन्हौ अभिसार,
 पै न जानि परी काहँ, कहाँ जाति चली छल सी ।
 कहै 'पदमाकर' न नॉकरी निकोरै, जाहि-
 काँकरी पगन लगै पंकज के दल सी ॥
 कामद सौ कानन, कपूर ऐसी धूरि लगै,
 पर से पहार, नदी लागति है नल सी ।
 वाम चाँदनी सी लगै, चद सौ लगत रवि,
 मग मखनूख सौ, मही हू मखमल सी ॥ ४७६ ॥

★

केसर-रग रँगै पट धारि, चली वृषभानु-लली विमला सी ।
 ग्रीष्म मे जुग जाम गए दिन, दीप दवानल काम-कला सी ॥
 घाम छली कर पावक सी, अमली कर कौल-कली, कमला सी ।
 होयन-क्रोयन से लखती भय, होयन मे चलती चपला सी ॥ ४७७ ॥

★

ग्रीष्म-रितु की दुपहरी, चली बाल बन-कुंज ।
 अंग-लपट तीझन लुएँ, मलय-पवन के पुंज ॥ ४७८ ॥

★

दूर करन कामिनि चली, मदन जनित संताप ।
 तप-रितु तीखे तपन के, ताप कौ न गिनि ताप ॥ ४७९ ॥

★

सामान्या अभिसारिका

कुंदन से अंग, साजे बसन सुरंग सदा,
 घरऊ में घरनी पै चरन घरघौ ना मै ।
 अतर-तमोर बिन ठहरी घरी ना सखी ।
 नैक सुसक्याइ कौन हियरा हरघौ ना मै ॥
 'सोमनाथ' प्यारे पै चली यो बतरात बात,
 पन ऐसौ काहू संग अबलौ करघौ ना मै ।
 टेढ़ी अलकनि सो लपेटि मन प्रीतम कौ,
 ह्याउँगी जराब जरे सुंदर तरघौना मै ॥ ४८० ॥

(५) विप्रलब्धा—केलि-स्थान पर नायक को न पाकर व्याकुल होन वाली नायिका 'विप्रलब्धा' कहलाती है* ।

मुग्धा विप्रलब्धा

हैं रसलीन प्रवीन सखी बस, नाह सो नेह नबीन सँजोयौ ।
छुवावै न छॉह, छिपी चित चाह, सु दूती की वाँह उठै मगु जोयौ ॥
'देव' सँवेत मिले न इतै पै, चित मे सोच-सँकोच समोयौ ।
लाज कस्यौ हियरा उकस्यौ, कछु चाहै हँस्यौ, कछु आवत रोयौ ॥४८१॥

*

खेल कौ बहानों के सहेलिन के संग बाल,
आई केलि-मदिर लौ सुंदर मजेज पर ।
कहै 'पद्माकर' तहाँ न पिय पायौ तिय,
त्यो ही तन तै रही, तमीपति के तेज पर ॥
बादत बिथा की कथा काहू सो कछु न कही,
लचकि लता लौ गई, लाज बारी लेज पर ।
बीरी परी बिथुरि, कपोलन पै पीरी परी,
धीरी परी, धाड़ गिरी, सीरी परी सेज पर ॥४८२॥

*

खेलि हैं लाल के सग चखौ, कहिकै उर में मति औरई ठानी ।
यों बहिकाइ के नेह बढाइ, मयंकमुखी रति मंदिर-आनी ॥
हाँ न लखे 'ससिनाथ' सुजान, कलूक तही ठठकी ठकुरानी ।
है न सयान रती भर हू, अलबेखी तऊ हिय मे अकुलानी ॥४८३॥

*

ल्यवाई लिवाइ सखी सब साथ की, सौहन खाइ कै सुंदरि कोहै ।
कुंज के भीतर सूनौ चितै करि, बैठि रही है नवाइ कै भौहै ॥
लाल भई दुति कोयन की, चमकै पुतरी अति दीठि लजोहै ।
लंघित कंजन मध्य मनो, रस चाखत लोल मधुव्रत सोहै ॥४८४॥

*

मिलेउ न कंत सहेटवा, लखेउ डेराइ ।
भनियाँ कमल बदनियाँ, गइ कुगिहलाइ ॥ ४८५ ॥

* मिलन-आस कर जाइ तिय, मिलै न पिय संवेत ।

'विप्रलब्धा' सो जानिए, विरह-विकल बिन चेत ॥

मध्या विप्रलब्धा

स्वाइ गुरु लोगन कों, सौधे सो अन्हाइ, भूषे—
 भूषन जराइन क, पहिरे बसन वर ।
 मद-मद दावै पाँइ, आइ केलि म देर मे,
 घूँघट मे हेरत उछाह भरी लाज भर ॥
 'द्विज जू' बिलोक सूनी सेज है चकित रही,
 चारो ओर चाहति मृगी सी भूरी भरी डर ।
 ऐसी भई विकल बिसूरि बिथा, बाढी, जैसे—
 पथिक निदाघ कौ पियासौ देखै सूखौ सर ॥ ४८६ ॥

★

प्रानप्यारी आखिनि, प्रवान प्यारी प्रीतम की,
 तानि न्यारी मिलन निकुंज-गोह मन में ।
 साज सोहै खील मे, समान सोहै सजी संग,
 लाज सोहै सरस, विलास सोहै तन मे ॥
 आस भरी 'सेखर' हुलास भरी देखी तहाँ,
 सेज परी सूनी हैं अचेत परी छन मे ।
 नीर छायाँ नैनन, अधीर छायाँ बैनन मे,
 पीर छाई अंगन, समीर छायाँ बन मे ॥ ४८७ ॥

★

रात कौ तमासौ सुनौ, सोए गुरुजन जब,
 कीन्हे अभिसार तब साधिकै रमल सौ ।
 'रघुनाथ' मन मे मनोरथ की सिद्धि जानै,
 नूपुर बजन लागे पाँइ मे दमल सौ ॥
 केलि के महल बीच प्यारे सो न भेट भई,
 ऐसी दसा भई मनो खायौ है अमल सौ ।
 भोर के समै कौ ऐसौ प्यारी कौ बदन रखाँ,
 एरी भू ! फेर भयौ साँझ के कमल सौ ॥ ४८८ ॥

★

मौज मे आई इतै 'लछिराम', लग्यौ मन साँबरौ आनंद कद मे ।
 सूनौ संकेत निहारतई, परछौ साँबरौ आनन घूँघट बद मे ॥
 बोलिवे कौ अभिलाख रचै, पै न बोलै कछु दुख-राखि दुचंद में ।
 हूँ रही रैन-सरोज सी प्यारी, परी मनो लाज-मनोज के फंद में ॥ ४८९ ॥

प्रौढ़ा विप्रलब्धा

सकल सिंगार साज, संग लै सहेलिन को,

सुंदरि मिलन चली आनंद के कंद को ।

कवि 'मतिराम' मग करत मनोरथनि,

पेख्यौ परजक पै न प्यारे नंदन को ॥

नेह तें लगी है देह दाहन, दहत गेह,

बाग को बिलोकि द्रुम-बेलिन के बृंद को ।

चंद को हँसत तब आयौ मुखचंद

अब चंद लाग्यो हँसाने तिया के मुखचंद को ॥ ४१० ॥

★

उज्जल सरद-चंद-वंदिका अमंद हुनि,

त्रिविध समीर की झकोर आनि फहरै ।

मुकता अनंद मकरंद के से बिंदु चारु,

बदनारविंद की छबीली छटा दहरै ॥

साजि रंग-रंगनि के सुंदर सिंगार प्यारी,

गई केलि-धाम दूजी जामिनी की पहरै ।

पेखि परजक नंदन बिन 'सोमनाथ',

लागी अंग उठनि मुजंग की सी लहरै ॥ ४११ ॥

★

चउपटी चाह अग उपटे अनंग करी,

रंग-रा टी तें काम-नट की कुमारी सी ।

कवि 'लखिराम' राज-हंसनि सो मद-मद,

पाम प्रकासमान चाँदनी सँवारी सी ॥

नागरि निकुंज में न हेर्यौ ब्रजचंद,

मुख रख पै सहेली भई आँखें गतनारी सी ।

भौहन मोरनि, विथोरति मुकुत-हार,

छोरति छरा के बद, राप-मद डारी सी ॥ ४१२ ॥

★

जोबन-मदमाती चली, सजि सब अंग सिंगार ।

सूनाँ थल विष सों लख्यौ, विरह अनल की झार ॥ ४१३ ॥

परकीया विप्लव

कैसी ही लगन, जामें लगन लगाई तुम,
 प्रेम की पगनि के परेखे हिरे कम्के ।
 बेतिकौ छपाइ के रपाय उपजाइ प्यारे ।
 तुम ते मिलाप के बढाए चोप चम्के ॥
 अनन 'कबिद' हमै कुज में बुलाइ करि,
 बसे कित जाय, दुख देकर अचम के ।
 पगन में छाले परे, नौधिवे को नाले परे,
 तऊ लाल ! लाले परे, राउरे दरम के ॥ ४६४ ॥

४

*

काले परे कोम, चलि-चलि थकि गए पोंड,
 सुख के कसाले परे, ताले परे नस के ।
 रोइ-रोइ नैनन में हाले परे, जाले परे,
 मदन के पाले परे प्रान परबस के ॥
 'हरिचंद' अगउ हबाले परे रोगन के,
 सोगन के भाले परे तन बल खुख के ।
 पगन में छाले परे, नौधिवे को नाले परे,
 तऊ लाल ! लाले परे, राउरे दरस के ॥ ४६५ ॥

*

गजन सु गुंज लग्यौ, तैसौ पौन-पुज लग्यौ,
 दोष-मनि कुंज लग्यौ गुजन मो गजि कै ।
 कहै 'पदमाकर' न खोज लग्यौ ख्यालन कौ,
 घालन मनोज लग्यौ, बीर ! तीर मजि कै ॥
 मूखन सु बिब लग्यौ, दूषन कदंब लग्यौ,
 मोहि न बिलब लग्यौ, आई गेह तजि कै ।
 मीजन मयक लग्यौ, मीतऊ न अंक लग्यौ,
 पक लग्यौ पाँइनि, कलक लग्यौ बजि कै ॥ ४६६ ॥

*

सुनि के धुनि यो चित में हुलसी, उत जेणें घने सुख पावने री ।
 ढिग आनि लग्यौ उनकी उलटी, कहूँ ताल, कहूँ सुग गावने री ॥
 कहि 'ठाकुर' भूल सु नैनन की, तिनसो कहा नेह बढावने री ।
 चल दूर भट्ट ! हौ वृथा भटकी, लगे दूर के डोल सुहावने री ॥ ४६७ ॥

लीवे को चली ती बहू भौंतिन कौ चैन बन,
 ऊँची कै भुजान भरि अंचल लिपाई लाज ।
 छीवे को चली ती वह पानिप-भरौई तन,
 छ्वाड़-छ्वाड़ आई हियो पावक वियोग-साज ॥
 भभरि रही सी अभिलाषा मत ही की मन,
 'द्विजदेव' की सौ कछु भूलि हू भयौ न काज ।
 पीवे कों चली ती ब्रजचंद कौ अमद हास,
 पाइ चली प्यारी विष-विरह विथा कों आज ॥ ४६८ ॥

*

प्यारी सँकेत मिधारी सखी सँग, स्याम के काँध-सँदेसिन कै सुख ।
 मूनौ उतै रँगभौन चितै, चित मौन रही, चकि चौकि चहुँ रुख ॥
 एकई बार रही जकि उषों कि त्यो, भौहन तानिकै मानि महा दुख ।
 'देव' कछू रद बीरी दै बोरी, सुहाय की हाथ, रही मुख की मुख ॥ ४६९ ॥

*

सामान्या विप्रलब्धा

निसि अधियारी, तऊ प्यारी परबीन, चढि—
 माल के मनोरथ के रथ पै चली गई ।
 कहै 'पदमाकर' तहाँ न मनमौहन सो—
 भेट भई, सटक सहेत तें अली गई ॥
 चदन सों, चाँदनी सों, चंद सों, चमेलिन सों,
 और बन-बेलिन के दलन दली गई ।
 आई हुती छैल के छलै को छल-छदन सो,
 छैल तौ छल्यौ न, आप छैल सों छली गई ॥ ४७० ॥

*

माजि कै सिंगार चली साँझई कमलनैनी,
 ग्वाड़ कै अमल, बिदा होइ गुरुजन तें ।
 मंगल सहेलिन की अबली अनौखी प्यारी,
 लीवैई की घात जात पूछति सबनि तें ॥
 कहै 'हनुमान' कुँज-भौन मे मिल्यौ न लाल,
 हालई मे जीती गई बाल वा अतन ते ।
 हीन भई धन तें, बिहीन भई पन तें,
 सु डीन भई तन ते, मलीन भई मन ते ॥ ४७१ ॥

(६) खंडिता—रात्रि में कहीं रम कर प्रात काल आने वाले अपने नायक के तन पर पर-छी-ससर्ग के चिह्न देखकर ईर्ष्या करने वाली नायिका को 'खंडिता' कहते हैं ।

• सुग्या खडिता

बेंठी परजंक पै नवेली निरसक जहाँ,
जागी जोति जाहर, जबाहर की जागँ ज्यो ।
कहे 'पदमाकर' कहूँ तैं नंदनंदन हू,
औचकई आइ अलसाइ प्रेम पागो यो ॥
भूपकोहै पलक पिया के पीक-लीक लखि,
भुकि भहराइ हू न नैक अनुरागै त्यो !
वैसेई मयकमुखी लागत न अक हुती,
देखिकै कलंक अब पुरी ! अक लागै क्यों ॥ ५०० ॥

★

निसि अंत हैं आए प्रभात भएँ, गति पौड़न औरई पाइ लई ।
'समिनाथ' उनीदी भुकै अखिआँ, पगिया उन पेरी बनाइ लई ॥
रति-चिह्नन पूछति जानि-सुजान, हँसी मिस बाल मुलाइ लई ।
कर चाब अमोल कपोलन चूमि, भुजा भरि कंठ लगाइ लई ॥ ५०३ ॥

† (१) नाम पर निसि जाइ कहूँ, प्रात मिलै पति आई ।

नारि 'खडिता' सौति के, चिह्न लखै बिलखाइ ॥

—“रसविलास”

(२) अनत रमे रति-चिन्ह लखि, प्रातम के सुभ गात ।

दुखित होइ सो 'खडिता', बरनत मति अबदात ॥

—“शृ गारनिर्णय”

(३) वारादि भेद और खडिता में अंतर करना कड़ा कठिन है । नायिकाभेद के बड़े-बड़े आचार्यों के उदाहरण भी तत्संबंधी मत-भेद से खाली नहीं हैं । कदाचित् इसीलिए दास ने खडिता के अंतर्गत वारादि भेद का कथन कर इस बखेबे को ही दूर करने की चेष्टा की थी, किंतु उनका यह मत प्रचलित नहीं हुआ और दोनों प्रकार की नायिकाओं का पूर्ववत् पृथक्-पृथक् ही वर्णन होता रहा । खंडिता और वारादि भेद के सूक्ष्म अंतर का उल्लेख गत पृष्ठों में विस्तार पूर्वक किया जा चुका है । दास ने 'मानिनी' और मान-भेद का उल्लेख भी खंडिता के अंतर्गत किया है ।

मध्या खडिता

आए रति मान काहू बाम सो प्रभात घर
 पीक की बिराज रही लीक लौनी दग-कोर ।
 अजन अधर देखि जाबक लिलार, भए-
 बाल के सु नैन महा लाल रग मराधोर ॥
 'गोकुल' लग्नति, कछु कहति न आनन सो,
 लाज लखना को आनि गही दौरि बरजोरि ।
 अनख सो भरी, पीठ दैकै बैठी भौमते सो,
 करति मही मे रेखा, चाहति सखी की ओर ॥ ५०३ ॥

जाबक लिलार, ओठ अंजन की^{*} लीक सोहै,
 बैद्यन अलीक लोक-लीक न बिसारिए ।
 कवि 'मतिराम' छाती नख-छन जगमगै,
 दगमगै पग सूधे मग मे न धारिए ॥
 कमरै उधारत हौ पलक पलक यातै,
 पलका पै पौढ खम राति कौ निवारिए ।
 अटपटे बैन, कछु बात न कहत बनै,
 लटपटे पेच सिर पाग के सुधारिए ॥ ५०४ ॥

भोर दग लाल भएँ, लाल घर आए, भाल-
 जाबक लग्यौरी, ओठ अजन के दागे री ।
 पेच अलबेले, हार उबटे नबेले, छाकि-
 छाकि रमरेले करि, केलि अनुरागे री ॥
 घूमि-घूमि परै, सोभ भूमै पग धरै, भूमि-
 भूमि बतरात, पर प्यारी प्रेम पागे री ।
 नाखि न सकति, उर राखि न सकति, बड़ी-
 ओखिन मे ओसुआँ भलमलान लागे री ॥ ५०५ ॥

भोर स्याम-सिर पै लखी,^{*} उहि ओढ़नी सुरग ।
 बरसति ओसू लाल दग, कातिन मनमुख संग ॥ ५०६ ॥
 अधर लग्यौ अंजनि निरखि, चितवति दग भर लेति ।
 उससि कछु चाहति कहन, लाज कहन नहिं देनि ॥ ५०७ ॥

पौढ़ा खडिता

उतई है मन, याते सूधे न परन पग,
 अग अरसात सुरहरै उठि आए हौ ।
 रँगमगी अखियों अनूप रूप चोरै लेत,
 'सोमनाथ' आछै यहि रूप लखि पाण हौ ॥
 हम सो तौ बिहसि बिलोकिगौ बिसारद्यौ पिय,
 सवै यियि उनई क हाथन बिकाण हौ ।
 काहे कों नटत, वेई बैनन प्रकट होत,
 अनुराग जिनको लिलार भरि आए हौ ॥५०६॥

★

परचि गई हौ पेच-पाच वारे बैनन सो,
 परपच कीने मोहि मिलत सहारौ ना ।
 काट-छोट वारी बानि काटत करेजौ अजौ,
 कपट किए हू कूट बचन उचारौ ना ॥
 'हरिऔध' जाहु, जागि जामिनी बिताई जितै,
 जियरौ हू जाबक लिलार जाइ जारौ ना ।
 ढंग वारी साखिन पै डारौ ना हमारौ मन,
 रंग वारी आखिन कौ मोपै रग डारौ ना ॥५१०॥

★

मेरे नैन अंजन, तिहारे अधरन पर,
 सोभा देखि गुमर बढ़ायौ सब सखियों ।
 मेरे अधरन पै ललाई पीक लाल, तैसे-
 राउरे कपोल गोल नोखी लीक लखियों ॥
 कवि 'हरिजन' मेरे उर गुनमाल, तेरे-
 बिन गुनमाल-रेख देखि-देखि भुकिर्यौ ।
 देखौ लै मुकुर, दुति कौन की अधिक लाल ।
 मेरी लाल चूनरी, कै तेरी लाल अखियों ॥५११॥

★

पाबक सौ नैनन लग्यौ, जाबक लाग्यौ भाल ।
 मुकुर होउगे नैक मे, मुकुर बिलोकौ लाल ॥ ५१२ ॥

★

पान-प्रिया हिय मे बसै, नख-रेखा ससि भाल ।
 भलौ दिखायौ आनि ये, हरि ! हर-रूप रमाल ॥ ५१३ ॥

परकीया खडिता

कहूँ रति मानि आनि भौमती गली मे कट्यौ,
 भोर आज भौमती मो भेंट औचका भई ।
 नैन-सैन दैकै उन्हे बाहरई टाडौ कियौ,
 आपु कै चपल गति दहलीज मे गई ॥
 वहा कहौ भट्ट ! नखसिख लौ निरखि चिह्न,
 मन ही मे 'गुनाथ' ऐसी कोप सो तई ।
 सुख मो न कह्यो कलू हाथ की इमारति सो,
 गारी दैकै आपनी किवारी दोनों दै लई ॥५१४॥

★

प्राति रावरे सो करी, परम सुजान जानि,
 अब तौ अजान बनि मिलत सबेरे पै ।
 लछिराम' ताहू पै सुरंग ओढ़नी ले सीस,
 पीत पट देत गुजरैटिन के खेरे पै ॥
 सराबोर छलके प्रस्वेद-कन, लाज भाल,
 मदन मपाल वारी बदन-उजरे पै ।
 आपुने कलक सो कलंकिनी बनी हौ, लूटि-
 और हू को, धरति कलंक भिर मेरे पै ॥५१५॥

★

सामान्या खडिता

काम-कलोलनि मे अटक्यौ, सु बस्थौ निसि अंत वियोग निवारिकै ।
 प्रातहि आई गद्यौ अरसात, रुबै कुल-कानि की ओट उचारि कै ॥
 ए 'सखिनाथ जू' या छवि सों, निज पौरि निहारि रही मन गारि कै ।
 भौंह चढाइ कै बारबधू ने लियौ मुकता अबतंस उतारि कै ॥५१६॥

★

रमि रैन कहू अनतै बितई, सु कियौ इत आवन भोर ही को ।
 नहि छूटत छैल, छबीले लला !, जो सुभाव परथौ परि छोर ही को ॥
 हित मान है सो हन 'येनीप्रबीन', कहौ नित हे इत और ही को ।
 तरवा सहरावन मेरे चले, हरवा पहिराइ कै और ही को ॥५१७॥

★

मितवा ओठ कजरवा, जाबक भाल ।
 लिहेसि काढि बरिअइया, तकि मनि-माल * ॥ ५१८ ॥

(७) कलहांतरिता—अपने नायक का अपमान कर पुनः पश्चान्नाप करने वाली नायिका को ‘कलहांतरिता’ कहते हैं† ।

मुग्धा कलहांतरिता

साखिन—सँकोच, गुरु-पोच, मृगलोचनि—

रिसानी पिय सो, जु उन नैंक हैंसि छीयौ गात ।

‘देव’ वै सुभाइ मुमकाइ उठि गए,

उन सिमकि-मिमकि निसि खोई, रोय पायौ प्रात ॥

को जानैरी बीर । बिन बिरही बिरह-बिधा,

हाय-हाय करि पछिताए ना कछु सुहात ।

बड-बडे नैनन सों आँसू भरि-भरि ढरि,

गोरौ-गोरौ मुख आज ओरौ सौ बिलानौ जात ॥५१६॥

★

लाज के अटोट कै-कै बैठती न ओट दै-दै,

बूझत कौ काहे को कपट-पट तानती ।

डारि देती डर, कर ऐंचनी न कोप करि,

दीठि चोरि, पीठ मोरि हौं न हठ ठानती ॥

‘देव’ सुख सोवती, न रोवती सुहाग रैन,

मेठ ताप ही तें, आप ही तें हित मानती ।

हाय ! हाय !! काहे को तितेक दुख देखती,

जो पीतमै मिलै कौ, मै इतेक सुख जानती ॥५२०॥

★

आई गौने काहिह ही, सीखी कहाँ सयान ?

अब ही ते रूसन लगी, अब ही तें पछितान § ॥५२१॥

† (१) प्रथमहि पाय अनादर करै । पीछे ते पछितावै मरै ॥

मौस भरै कर अति संताप । अरुमै, मुरमै करै प्रलाप ॥

सोचति सीस धुनति जो लहिऐ । सो तिय ‘कलहांतरिता’ कहिए ॥

—नंददास कृत “रसमंजरी”

(२) प्रथम कछु अपमान कर पिय कौ, फिरि पछिताइ ।

‘कलहांतरिता’ नाइका, तहि कहत कविराइ ॥

—“जगद्विनोद”

मध्या वल्लहंरिता

हरि तौ मनुहार मनाइ गए, जिनपै जियरा रति बारति है ।
 'समिनाथ' मनोज की ज्वालनि सो, अब कु दन सौ तज जारति है ॥
 उठि लेटति सेज पै चंद्रमुखी, पछिताइ के पौरि निहारति है ।
 न कहै मुख ते दुख अंतर को, अंसु ग्रॉनि सो ओखि पखारति है ॥१२०॥

★

बैठी रति-मदिर मे सुंदरि बनाएँ वेप,
 जाके रूप मोहे रति-रूप हू निदरिगाँ ।
 आयौ तहाँ लाल, जासो बोली नहिं बाल नैक,
 ऐसौ कछु अकम् अवारौ आनि अरिगाँ ॥
 एते मोहि रुमि 'हनुमान' मनभावन गौ,
 लागी पछितान प्रेम-पुंज यो पमरिगाँ ।
 कानन ते पैठि हिऐ बस्यौ हौ जु मान, सोई—
 हाय ! इन ओखिन ते ओम् ह्वै निकरिगाँ ॥१२३॥

★

पोंयन आनि परे तौ परे रहे, केनी करी मनुहार सु हेली ।
 मान्यौ मनायौ न मैं 'मतिराम', गुमान मे ऐसी भई अलबेली ॥
 प्यारौ गयौ दुख मान कहूँ, अब कैसे रहूँ यहि राति अकेली ।
 आपते ल्याउ मनाय कन्हाई को, मेसौ न लीजियो नाम सहेली ॥१२४॥

★

प्रौढा कलहानरिता

ए अलि ! इकंत आइ पोंयन परे हे आइ,
 हौ न तब हेरी या गुमान बजमारे सो ।
 कहै 'पदमाकर' वेरू ठिगे, सु ऐपी भई—
 नैनन ते नीद गइ हाइ के दबारे सो ॥
 रैन-दिन चैन है न मैन है हमारे बस,
 ऐन मुख सूखत उमास अनुसारे सो ।
 प्रानन की हानि सी दिखान सी लगी है हाय !
 कौन गुन जानि मान कोन्हौ प्रान-प्यारे सो ॥१२५॥

★

बैरिनि जीभहिं काटि करौ, मन द्रोही को मीजिकै, मौन धरौंगी ।
 जानै को 'देव' कहा भयो मोहि, लरी कहै लोक मे, लाज मरौंगी ॥
 प्रानपती सुरू-पर्वस वै उनसो गुन-रूप को गर्व करौंगी ।
 अंजुलि जोरि, निहारि गरै परि, हौ हरिप्यारे के पोंय परौंगी ॥१२६॥

परकीया कलहांतरिता

आसु के आस, बिसारे सबै, उपहासन हू ते निसकिन हौं भई ।
 लीक-अलीक न जानी कछु, ठकुरानी कहाइ सु रंकिन हौं भई ॥
 जा 'ससिनाथ' सुजान के काज, तजे सुख-साज अलकिन हौं भई ।
 री ! तिन सो हित तोरि कै हाथ ! ब्रुथा ब्रज माँहि कलंकिन हौं भई ॥५२७॥

जाके लिऐं गुह काज तज्यौ, न सखी-सखिअँन की सीख सिखाई ।
 बैर कियौ सिगरे ब्रज गॉम सो, जाके लिऐं कुल-कानि गँमाई ॥
 जाके लिऐे घर-बाहर हू, 'मतिराम' रहे हँसि लोग-लुगाई ।
 ना हरि सो हित एकई बार, गँबारि मैं तोरति बार न लाई ॥५२८॥

प्रेम-समुद्र परचौ गहिरे, अभिमान के फैन रह्यौ गहि रे मन ।
 कोप-तरगनि ते बहि रे, अकुलाइ पुरारत क्यों बहिरे मन ।
 'देवजू' लाज-जहाज ते कूद, भज्यौ मुख मूँद अजौ रहि रे मन ।
 जोरत, तोरत प्रीति तुही, अब तेरी अनीत तुही सहि रे मन ॥५२९॥

जोरत हू सजनी बिपति, तोरत बिपति-समाज ।
 नेह कियौ बिन काज, पुनि तेह कियौ बिन काज* ॥ ५३० ॥

सामान्या कलहांतरिता

कंचन के परजंकन पै सु, निरंक हू आसव सग पियौ मैं ।
 दौलत जाकी जबाहिर के गहिने, सजि अग प्रकास कियौ मैं ॥
 जाके समान उदार अजौ, धनदाइक और लख्यौ न बियौ मैं ।
 हाथ ! कहा कहौ भूलि सखी, घर माँहि ते ताहि उठाइ दियौ मैं ॥५३१॥

ससकि-ससकि उठै कसकि-कसकि हिऐं,
 याही अपसोसन कहौ न भौन कौने सो ।

एक तान लागै मुकतान के अनेक, हार,
 बकसत राज, काज रूपे सो, न सौने सों ॥

भनत 'कविद' ऐसे नाह सो गुनाह बिना,
 कियौ मैं बिगारि, रारि टरै कौन टौने सो ।

ए री मो कुमति, तैनै कलह करायौ, अब-
 सुलह करावै कौन साँबरे सखौने सो ॥ ५३२ ॥

(८) प्रवत्स्यत्प्रेयसी—अपने प्रियतम के भविष्यत् वियोग की आशंका में दुःखित नायिका 'प्रवत्स्यत्प्रेयसी' कहलाती है ।

मुग्धा प्रवत्स्यत्प्रेयसी

जा दिन ते चलिबे की चरचा चलाई तुम,
ता दिन तें वाके पिअराई तन छाई है ।
कहै 'मतिराम' छोडे भूपन, बसन, पान,
सखिन सो खेलनि, हँसनि बिसराई है ॥
आई रितु सुरभ सुनाई, प्री ते वाके चित,
ऐसे मे चलौ, का लाल ! राउरी बडाई है ।
सोवत न रैन, दिन रोवत रहत बाल,
बूके ते कहत माइके की सुधि आई है ॥ ५३३ ॥

*

उर गई बात, पिय पर-पुर जाइवे की,
मुर गई, जुर गई, बिरहागि पुर गई ।
पुर गई ही जो खेल उमंग सो दुर गई,
फुर गई पीर मुख, दुति है अउर गई ॥
ग्वाल कवि' अलि सों बिछुरि गई, लरि गई,
नारि हू निहुरि गई, नैन सो निचुरि गई ।
दुरि गई कोठरी में, मुरि गई सासैं तकि,
जुरि गई लाज, लाजवती सी सिकुरि गई ॥ ५३४ ॥

*

सेज परी सफरी सी पलोटी, ज्यो-ज्यो घटा घन की गरजै री ।
त्यो 'पदमाकर' लाजनि तें, न कहै दुखही हिय की हरजै री ॥
आली कछु कौ कछु उपचार करै, पै न पाइ सकै मरजै री ।
जाहिं न ऐसे समैं मथुरै, यह कोऊ न कान्हर कों बरजै री ॥ ५३५ ॥

*

परिगा कान सखियबा, पिय कर गौन ।
बैठी कनक-पलंगिआ, होइ कै मौन ॥ ५३६ ॥

* होनहार पिय के विरह, विकल होइ जो बाल ।

ताहि 'प्रवच्छतिप्रेयसी', बरनत बुद्धि-बिसाल ॥

† रहीम

—“रसराज”

मध्या प्रवत्स्य-प्रेयसी

पी चलिबे की चली चरचा, सुनि चंदमुखी वितई दग-कोरन ।
पीरी परी तुरतै मुख पै, बिलखी अति ब्याकुल मैं-मरोरन ॥
को बरजै अलि ! कासो कहै, मन भूखत नेह ज्यो लाज भरोरन ।
मोती से पोड़ रहे अँसुआँ, न गिरै, न फिरै बरुनीन के कोरन ॥१३७॥

★

कल न परत, कहूँ ललन चलन कह्यौ,
दवा सौ दहै देह दहक दहक-दहक ।
लगी रहै हिलकी, हलक सूख्यौ, हालै हियौ,
'देव' कहै गरघौ भरघौ आवत गहक-गहक ॥
दीरघ उसाँसै लै-लै ससिमुखि सिसकति,
सुलप सलौनौ लक लहक लहक लहक ।
मानत न बरज्यौ, सु बारिज से नैनन ते-
बारि कौ प्रवाह बह्यौ आवत बहक-बहक ॥ १३८ ॥

★

गौने के द्यौस छै-सातक बीते न, चौथी कहा अबई चलि आई ।
लालन-बाल कैं ता छिन में, 'मतिराम' परी मुख पै पियराई ॥
तू न बहू कों पठाइ अली ! यह देख दुहूँ की प्रीति, सुहाई ।
रोए से, रोचन मोए से लोचन, सोए न सोचन रैन बिताई ॥१३९॥

★

पीतम चलत हलबली सी मची है गेह,
देह खलबली सी, तिया के त्यो रली सी है ।
दुति ही सखी सी, सरसी सी, सो खिसी सी भई,
सासु तैं टली सी, राखै नजर ढली सी है ॥
'गवाल कबि' विरहै बरी सी, चबरी सी,
जऊ चितवै चपी सी, तऊ चूसी सी छली सी है ।
मैंन की मली सी लाज लंगर दली सी दीसी,
हैम की थली सी, गइँ मुरझि कली सी है ॥ १४० ॥

★

नंद धरै वृषभान के भौन तैं, जान वझ्यौ हरि 'देव' सु हाँसुनि ।
ताई घरी तैं घरी पल लाज, घरी कैं घरी उघरी बतियाँ सुनि ॥
प्रात अरंभ ही खंभ लगी, निरदंभ निरंभ सम्हारै न साँसुनि ।
आढ़ी बडे खन की बरसै बडरी अँखिआँन बडे-बडे आँसुनि ॥१४१॥

प्रौढा प्रवत्स्यत्प्रेयसी

मान कै मुरी न, दसा दुसहै दुरी न,
 छिन एकौ बिछुरी न, रुठि हठि न हठाऊँगी ।
 पीठ देउ जीही को, न पी को पीठ देउ नैक,
 नीठ परदेस चले, डीठ न नठाऊँगी ॥
 प्रीतम सों प्रीति की प्रतीति मेरे और की न,
 प्रेम-पीठि बैठि भौंह ऐठि न बढाऊँगी ।
 प्रानपति प्रात ही पथान करौ चाहै 'देव',
 सेवा करिवे को सग प्रानन पठाऊँगी ॥ ५४२ ॥

★

सौ दिन कौ मारग, तहाँ को बेगि माँगी बिदा,
 प्यारे 'पद्माकर' प्रभात रात बीते पर ।
 सो सुनि पियारी पिय-गमन बराइवे को,
 आँसुनि अन्ह'इ बोली आसन सु तीते पर ॥
 बालम बिदेस तुम जात हौ तौ जाउ, पर-
 साँची कहि जाउ, कब ऐहौ भौन रीते पर ।
 पहर के भीतर, कै दुपहर ऊपर ही,
 तीसरे पहर, कैधौ साँझ'इ बितीते पर ॥ ५४३ ॥

★

जो पै कहौ रहिए' तौ प्रभुता प्रगट हंनि,
 'चलन' कहौ तौ हित-हानि नाँहि सहने ।
 भावै जो करहु' तौ उदास-भाव प्राननाथ !
 'साथ ही चलौ' तौ कैसे लोक-लाज बहने ॥
 सौह है तिहारी, नैक सुनौ ए हो प्रानप्यारे !
 चलै ही बनत, तो पै नाँही लाज रहने ।
 जैसिए सिखावौ सीख, तुम हौ सुजान पीथ,
 तुम हू चलत जैसी, जैसी मोहि कहने ॥ ५४४ ॥

★

रोकहि जो तौ अमंगल होइ, औ प्रेम नसै जो कहैं 'पिय जाइए' ।
 जो कहैं 'जाउ न' तौ प्रभुता, जो कछु न कहैं तौ सनेह नसाइए ॥
 जो 'हरिचंद' कहैं 'तुम्हरे बिन जी हैं न', तौ यह क्यो पतियाइए ।
 तासों पथान समैं तुम सों हम, का कहैं प्यारे ! यहै समुझाइए ॥ ५४५ ॥

परकीया प्रवत्स्यट्टेयमी

मोहन लला को सुन्यौ चलन बिदेस, भयौ-

बाल मोहनी को चित निपट उचाट मे ।

परी तलाबेली तन-मन मे, छुबीली राखै-

छिति पर छिनकु, छिनकु पाँव खाट मे ॥

प्रीतम नयन-कुबलयन को चद, घरी-

एक में चलैगौ 'मतिराम' जिहि बाट में ।

नागरि नबेली रूप आगरि अकेली, रीती-

गागरी लै ठाडी भई बाट ही के घाट मे ॥१४६॥

★

प्राणपिया कहूँ गमनत लहै । रहै पाद पिय सो इमि कहै ॥

पति-द्विजदेव-मेव सब तजी । रीति तजी, कुल-कान न लजी ॥

तितके फल जे नरक बताए । ते सब मो कहूँ जीवित आए ॥

तपन-जातना आई तन कों । कुभीपाक पराभव मन को ॥

महा घोर रौरव जु बतायौ । क्रोध-रूप ह्वै नैननि आयौ ॥

जु गति आहि पिय गमनत तोहि । क्यों न होहि ऐसी गति मोहि ॥

चलन कहत हैं कालि पिय, का करिहौ मेरी आलि ।

बिधना ऐलें करि कछु, जासे होइ न कालि ॥१४७॥

★

पहिलै अपनाइ सुजान सनेह सों, क्यों फिर नेद कों तोरिऐ जू ।

निरधार अधार है धार मँझार, दई गहि बाँह न बोरिऐ जू ॥

‘घनआनंद’ आपुने चातक को, गुन बाँधि कै मोह न छोरिऐ जू ।

रस प्याइ कै जाइ, बँधाइ कै आस, बिसास में ना बिष घोरिऐ जू ॥१४८॥

★

जो उर-भार नही भरसी, मृदु मालती-माल उहै मग नाखै ।

नेहवती जुवती ‘पद्माकर’, पानी न पान कछु अभिलाखै ॥

झाँकि झरोखे रही कब की, दबकी वह बाल मनै-मन भाखै ।

कोऊ न ऐसौ हितू हमरौ, जु परौसिन के पिय को गहि राखै ॥१४९॥

★

करी देह जो चीकनी, हरि नित लाइ सनेह ।

बिरह-अग्नि जरि छिनक मे, होन चहति अब खेह ॥१५०॥

चलन चहत प्रान-प्यारौ परदेस आली !
 आकुल हूँ हियरौ हमारौ सुधि लेखै ना ।
 चकि-चकि रहत चहुँकित चितै कै चित्त,
 बेदन बिबस हूँकै सुरति सरेखै ना ॥
 'हरिऔध' प्यारे संग करन पयान ही में,
 आपनी भलाई पापी प्रान हू परेखै ना ।
 बिलखि-बिलखि भरि-भरि बार-बार बारि,
 नैन हूँ निगोरे आज नैन भरि देखै ना ॥५५१॥

★

सामान्या प्रवत्स्प्रेयसी
 फाटि गयो हियरौ हमारौ ऐसे बैन सुनि,
 जाइहौ बिदेस ताहि लाख लाइ लाखै जाउ ।
 पौढि परजंक पै, उड़ाइ मोइ पीतपट,
 मेरे अधरान कौ पिऊष नैक चाखै जाउ ॥
 'नंदराम' जात हौ, बसंत कंत आवत है,
 मानिहौ न् औधि कौ अधार धाम भाखै जाउ ।
 राउरे बियोग मे बिहाल हूँहौ नदलाल,
 प्रान राखिवे को मनि-माल लाल राखै जाउ ॥५५२॥

★

कीबे को बिदेस-गौन, आए विदा हौन मोसो,
 'रघुनाथ' प्यारे सुनों कहति मैं नेति हौ ।
 मेरे इन लोगनि कौ काहु सौपे जाहु,
 लेइ इनकी खबरि, सब तुम्हे सौपे देति हौ ॥
 बैठौ, इक-दोइ तान जाजबंती सुनि लेहु,
 मेरे पै कृपा कै अब ही सुधि समेति हौ ।
 आये फेरि साहेब कौ मिलौ कै न मिलौ,
 है न जीव कौ भरोसौ, यातैं आजु गाणें लेति हौ ॥५५३॥

★

पीतम इक सुमरनियाँ, मोहिं दइ जाहु ।
 जेहि जप तोरि बिरहवा, करब निबाहु ‡ ॥ ५५४ ॥

★

पहिलै बित है आपनौ, जो कीनौ चित हाथ ।
 सो हित तोरि बिदेस कौ, कत चलियत अब नाथ ‡ ॥ ५५५ ॥

(६) प्रोषितपतिका—अपने प्रियतम के वियोग से दुःखित विरहिणी नायिका 'प्रापतपतिका' कहलाती है* ।

मुग्धा प्रोषितपतिका

जा दिन सो चले हैं बिदेस, भई ता दिन सो—

'रघुनाथ' ऐसी दया लाज भरी तिय की ।

भूख्यौ खान-पान, भूख्यौ पट-परधान, भूख्यौ—

सुनिवौ सहेलिन सो तान प्यारी जिय की ॥

दैकर किवारी चित्रसारी मे विलोकै गैल,

ठाडी खिरकी सो ओट करिकै सखिय की ।

पूजा करिवे को देवी-देव की मनौती करै,

नित सुगनौती धरै, आइवे को पिय की ॥१५६॥

★

मोंगि सिख नौ दिन की न्यौते गे गुबिद, तिय

सौ दिन समान छिन मानि अकुलावै है ।

कहे 'पदमाकर' छपाकर छपाकर ते,

बदन-छपाकर मलीन मुरझावै है ॥

ब्रूत जु कोऊ, कै 'कहा री भयौ तोहि', तब—

और ही की औरै कछु बेदन बतावै है ।

आँसू सकै मोचि न, सँकोच-बस आलिन मे,

उलही बिरह-बेलि, दुलही दुरावै है ॥१५७॥

★

बोलत न काहू सो, बिलोकति न काहू ओर,

बैठी दिन-रैन गुन गनत पिया के री ।

आवन की को कहै न पाती हू पठाई आलि ।

ऐसे कछु कान्ह भए कठिन हिया के री ॥

देखीं 'द्विज' मैं हूँ तौ वियोगिनि बिकल केतीं,

पै न ऐसै हाल हेरे काहू स्वकिया के री ।

सोचन-सँकोचन कै मोचन करै न आँसू,

रोचन से हैं रहे विलोचन तिया के री ॥१५८॥

* जाकौ पति देसांतर रहै । अति सताप बिरह-जुर सहै ॥

दुरबल तन, मन व्याकुल होई । 'प्रोषितपतिका' कहिए सोई ॥

मध्या प्रोषितपतिका

अब हूँ है कहा, अरबिद-मौ आनन इदु के हाथ । हवाले परचौ ।
 'पदमाकर' भाखै न भाखै बनै, जिय पेमे कलूक कसाले परचौ ॥
 इक मीन बिचारौ बिभ्यौ बनसी, पुनि जाल के जाइ दुमाले परचौ ।
 मन तो मनमोहन के सँग गौ, तन लाज-मनोज के पाले परचौ ॥५६॥

*

बिछुरे जहुनदन जा दिन ते, सखि ! ऐसौ कलू उदवेग परौ ।
 छिन एकौ न जाती सही तलफै, दुख एक के ठाँव अनेग परौ ॥
 कमकै 'द्विजदेवजू' ऐसी बही उर अतर मानौ परेग परौ ।
 मन तो मनमोहन के सग गौ, तन लाज-मनोज के नेग परौ ॥५६०॥

*

ऊबत हौं, डूबत हौं, टगत हौं, डोलत हौं,
 बोलत न काहें प्रीति-रीतिन रितै चले ।
 कहै 'पदमाकर' त्यो उससि उसासन सों,
 आँसू वै अपार आइ आँखिन इतै चले ॥
 आंधि ही के आगम लौं रहत बनै तौ रहौ,
 बीच ही क्यों बैरी ! बंध-बेदनि बितै चले ।
 परे मेरे प्रान ! प्रानप्यारे की चलाचलि मे,
 तब तौ चले न, अब चाहत कितै चले ॥५६१॥

*

जा दिन ते चरचा चहुँघाँ चलिवे की चली,
 उमसि उसास अति आतुर नितै चले ।
 प्रीतम प्रवास-साज साजे आसपास, लखि,
 आँसू इन आँखिन ते उँमहि इतै चले ॥
 'द्विजदेव' की सौ प्रिय-प्रीतम इते पै उठि,
 पगन चलाइ प्रीति-रीतिन रितै चले ।
 ऐसी चलाचलि मे न कीन्हौ कलू कौनि अब,
 रेरे मेरे प्रान ! तुम चाहत कितै चले ॥५६२॥

*

तिय-उसास पिय-विरह ते, उससि अधर लौ आइ ।
 कलू बाहर निकसति, कलूक भीतर को फिरि जाइ ‡ ॥५६३॥

आहि कै कराहि कौपि, कस तन बैठी आइ,
 • चाहत सँदेसौ कहिवे को, पै न कहि जात ।
 फेरि मसि-भाजन मँगायौ लिखिवे को कहु,
 चाहत कलम गहिवे को, पै न गहि जात ॥
 ऐते मे उमडि अँसुआन कौ प्रवाह बह्यौ,
 चाहै 'समु' थाह लहिवे को, पै न लहि जात ।
 दहि जात गात, बात बूझे हू न कहि जात,
 बहि जात, कागद, कलम हाथ रहि जात ॥ ५६४ ॥

*
 आहि कै कौपि कराहि उठी, दग अँसुन मोचि सँकोचि घरी द्वे ।
 लै कर कागद को री, लला लिखिवे कहँ बैठी वियोग-कथा स्वै ॥
 ऐसे मे आन कहूँ 'द्विजदेव', बसत-बयारि कही तितही है ।
 बात की बात मे बौरि लिया, अरु पीत है पाती परी कर तेँ चै ॥ ५६५ ॥

*
 आवति चला हँ यह विषम बयारि देखि,
 दवे-दवे पौडन किंवारनि तरजि दै ।
 कलिया कलकिनि को दै री समुझाइ,
 मधु-मौती मधु-पालिनि कुचालिनि तरजि दै ॥
 आज ब्रजगना के वियोग कौ दिवस, तातैं-
 हरै-हरै कीर बकबादिन हरजि दै ।
 पी-पी कै पुकारिवे को खोलैं ज्यो न जीहन,
 पपीहन के जूहन त्यों बावरी बरजि दै ॥ ५६६ ॥

*
 अमे-भूले मलिदनि देखि नितै, तन भूलि रहैं किन भामिनियाँ ।
 'द्विजदेव' जू डोली-लतान चितै, द्विऐ धीर धरै किमि कामिनियाँ ॥
 हरि हाइ ! विदेम मे जाइ बसे, तजि ऐसे समै गज-गामिनियाँ ।
 मन बौरै न क्यो सजनी ! अबतौ, बन बौरै बिसासिनि भामिनियाँ ॥ ५६७ ॥

*
 विरह घरी बीतत नही, जुग सम दिवस सिराहि ।
 सखियन को लखि कै, रुकन अँखिअन कौ जल नाहि ॥ ५६८ ॥

*
 बिदु लसत अँसुआन के, लाल भए दग-कोर ।
 देखै बिन पिय चंद-मुख, चिनगी चुगत चकोर ॥ ५६९ ॥

प्रौढ़ा प्रोषितपत्निका

बालम-बिरह जिन जान्यौ न जनम भरि,
 बरि-बरि उठै, ज्यो-ज्यो बरसै बरफ राति ।
 बीजन डुलावति सखी जन त्यों सीत हू मे,
 सौति के सराप तन-तापन तरफराति ॥
 'देव' कहै साँसनि ही अँसुआँ सुखान मुख,
 निकसै न बात, ऐसी मिसकी सरफराति ।
 लोटि-लोटि परति करौट खटपाटी लै-लै,
 सूखे जल सफरी ज्यो सेज पै फरफराति ॥ ५७० ॥

*

कचन मे आँच गई, चूनी चिनगारी भई,
 भूषन भए है सब दूषन, उतारि लै ।
 बालम बिदेस, ऐसी बैस, मैन लागी आग,
 बरि-बरि हियौ उठै, बिरह-बयारि लै ॥
 पुरी ! प्र-घर कित मँगन को जैहै आली !
 आँगन मे चदा ते अँगारी चार झारि लै ।
 साँझ भए भौन सभाबाती क्यों न देत आली !
 छाती तें छिवाइ दिया-बाती क्यों न बारि लै ॥ ५७१ ॥

*

थाकी गति अंगन की, मति परि गई मंद,
 सूख झँझरी सी हूँ कै देह लागी पियरान ।
 वावरी सी बुद्धि भई, हाँसी काहू छीन लई,
 सुख के समाज जित-तित लागे दूर जान ॥
 'हरीचंद' राउरे बिरह मे जग दुख मयौ-
 भयौ, कछु और होनहार लागे दिखरान ।
 नैन कुम्हिलान लागे, बैन हूँ अथान लागे,
 आओ प्राननाथ ! अब प्रान लागे मुरझान ॥ ५७२ ॥

*

लखि कै या कपूत कलानिधि कों, सिगरौ कल आपुनौ खोवती हैं ।
 नभ के इन तारन की अबली, निज नैन के तारन पोवती हैं ॥
 'हरिऔध' न आँख लगै कबहूँ, दुख सो पल हू नहि सोवती है ।
 पतिआँ पढ़ि कै सिगरी रतियाँ, पकरैं छतियाँ हम रोवती है ॥ ५७३ ॥

कारी कूर कोकिल कहाँ कौ बैर काढति री,
 कूकि-कूकि अब ही करेजौ किन कोरि लै ।
 पैड परे पापी ये कलापी निस द्यौस ज्यो ही,
 चातक घातक त्यो ही तुहूँ कान फोरि लै ॥
 'आनद के घन' प्रान-जीवन सुजान बिना,
 जानि के अकेली सब घेरौ दल जोरि लै ।
 जौलौ करै आवन, विनोद-बरमावन वे,
 तौलौ रे डरारे बजमारे घन घोरि ले ॥ १७१ ॥

★

धूमि कै चहुँघा धाइ आवै जलधर-धार,
 तडित-पनाके बाँके नभ मे पसरिगे ।
 'द्विजदेव' कालिंदी समीपन के, नीपन के,
 पात-पात जुगनु-जमातनि तें भरिगे ॥
 चातक, चकोर, मोर, दादुर सुभट जोर,
 निज-निज दाँव डाँव-डाँवन में अरिगे ।
 बिन जदुराइ अब कीजै कहा माइ हाइ !
 पावस महीप के चहुँघाँ घेरे परिगे ॥ १८० ॥

★

घहरि-घहरि घन ! सघन चहुँघाँ घेरि,
 छहरि-छहरि बिष-बूँद बरसावै ना ।
 'द्विजदेव' की सौँ अब चूकि मत दाँव अरे,
 पातकी पपीहा तू पिया की धुनि गावै ना ॥
 फेरि ऐसौ औसर न ऐहै तेरे हाथ अरे,
 मटक-मटक मोर सोर तू मचावै ना ।
 हौँ तौ बिन-प्रान, प्रान चाहति तज्यौई अब,
 कत नभचंद ! तू अकास चढ़ि धावै ना ॥ १८१ ॥

★

कैसेँ दु सीत के द्यौस टरे, बहुरै सुधि कीन्है सुधि हू बिसरैगी ।
 ग्रीष्म मे बहराइ कै राखी, इतौ कोऊ धीरज और धरैगी ॥
 आए न लाख अजौ कवि 'बीर', सु याकौ उपाइ कहा धौँ करैगी ।
 खाइ दरार रही छतियाँ, अब पानी परै अरराइ परैगी ॥ १८२ ॥

चचला चमकै चहुँ ओरन तें चाह भरी,
 चरजि गई ती, फेरि चरजन लागी री ।
 कहै 'पद्माकर' लबगन की लौनी लता,
 लरजि गई ती, फेरि लरजन लागी री ॥
 कैसेँ धरौ धीर बीर ! त्रिबिधि समीर तब,
 तरजि गई ती फेरि तरजन लागी री ।
 घुमडि घमंड-घटा-घन की घनेरी अवै,
 गरजि गई ती, फेरि गरजन लागी री ॥५८३॥

★

मेरे मन भावन न आए सखि ! साबन मे,
 ताबन लगी है, लता लरजि-लरजि कै ।
 बूढ़े कबौ रूढ़े, कबौ धारै हिय फारै दैया !
 बीजरी हू बारै, हारी बरजि-बरजि कै ॥
 'श्वाल कवि' चातकी परम पातकी सो मिलि,
 मोर हू करत सोर तरजि-तरजि कै ।
 गरजि गए जे घन, गरजि गए हैं भला,
 फेर ए कसाई आए गरजि-गरजि कै ॥५८४॥

★

सरद-ससी तें अघससी हूँ बची हौं, कवि-
 'चिंतामनि' तिमि हिमि-सिसिर रुमक ते ।
 मारत मरुके बची बधिक बसंत हू ते,
 पावक-प्रचार बची, ग्रीष्म-तमक तें ॥
 आयौ पापी पावस ये, प्रान अकुलान लाग्यौ,
 भयौ री असान घोर घन के वमक तें ।
 ताप तें तचौंगी, जो पै अमिय अचौंगी आली !
 अब ना बचौंगी चपलान की चमक तें ॥५८५॥

★

बन गाजन दै री चकोरन-मोरन, आज इन्हें गजिवौई परौ ।
 छिति छाजन दै री लबंग-लतान को, जौ पै तिन्हें छजिवौई परौ ॥
 सब आज लौ गाहक जाके हुते, वह स्वाँग हमें सजिवौई परौ ।
 प्रिय-प्रान के नेह लगालगी में, अब प्रान हमें तजिवौई परौ ॥५८६॥

पावस, प्रथम पिय ऐवे की अवधि सो जो,
 आवत ही आवैं तौ बुलाऊँ अति आदरनि ।
 नाही तौ न हील होन है री भील भावरनि,
 ग्रीषमहि राख, खाली भाख खल खादरनि ॥
 बीजुरी बरज, कहूँ मेघ न गरज, इन—
 गाज मारे मोर—मुख मोरि री निगादरनि ।
 कठ रोकि कोकिलनि, चौच नौचि चातकनि,
 दूर कर दादुर, बिदा कर री बादरनि ॥५८७॥

★

कैधौ मोर सोर तजि अनत गए री भाजि,
 कैधौ उत दादुर न बोलत हैं ए दर्द !
 कैधौ पिक—चातक बधिक काहू मारि डारे,
 कैधौ बक—पाँति उत अतगति है गई ॥
 'आलम' कहत आली आज हू न आए कत,
 कैधौ उत रीत बिपगीत बिधि ने छई ।
 मदन महीप की दुहाई फिरवै तें रही,
 जूझि गए मेघ, कैधौ बीजुरी सती भई ॥५८८॥

★

दूरि जदुराई 'सेनापति' सुखदाई देखौ,
 आई रितु पावस, न पाई प्रेम-पतियाँ ।
 धीर जलधर की सुनति धुनि, धरकी सु—
 दरकी सुहागिनि की छोह भरी छतियाँ ॥
 आई सुधि वर की, हिए मे आनि खरकी,
 सुमिरि प्रानप्यारी वह प्रीतम की बतियाँ ।
 बीती आँधि आवन की, लाल मनभावन की,
 डग भई बामन की सामन की रतियाँ ॥५८९॥

★

दे कहि बीर ! सिकारिन कों, इहि बाग न कोकिल आवन पावै ।
 मूँदि झरोखनि मंदिर के, मलयानिल आई न छावन पावै ॥
 आए बिना 'रघुनाथ', बसत कौ ऐवौ न कोऊ सुनावन पावै ।
 प्यारी कों चाहौ जिवाओ, धमार तौ गाँव की कोऊ न गावन पावै ॥५९०॥

लागत बसंत के सु पातीं लिखी पीतम कों,
 * प्यारी परबीन कै हमारी सुधि आनिवी ।
 कहै 'पदमाकर' इहाँ कौ यों हबाल, बिर—
 हानल की ज्वाल, सो दावानल तें मानिवी ॥
 उबकी उसासन कौ पूरौ परकास, सो तौ—
 निपट उदास पौन ही ते पहिचानिवी ।
 नैनन कौ ढंग सो अभग पिचकारिन तें,
 गातन कौ रग पोरे पातन ते जानिवी ॥५६१॥

★

कूक-कूक कोकिल चलाइ हैं अचूक चोट,
 पातकी पपीहा ए बिथा के गीत गाइ है ।
 'द्विजदेव' तैसैई सरस सुख पाए वायु,
 जम के पठाए छिति-छोर लागि छाइ हैं ॥
 ऊबौ ! देखि ऊधम इते पर पलासन कौ,
 बापुरी बियोगिनै सु कैसैं कल पाइ हैं ।
 ऐसे मधु मास के समागम-समैं में न जो,
 प्यारे मधुसूदन हमारे घर आइ है ॥५६२॥

★

मंजुल मलिद गुंजें मंजरीन मँजु-मंजु,
 मुदित सुरैली अलवेली डोलैं पात-पात ।
 तैसौई समीर सुभ सौभै कवि 'द्विजदेव',
 सरस असम-सर बेधत बियोगी-गात ॥
 चौथतीं चकोरनी चहुँघाँ चारु चाँदनीनि,
 चारघौं घाँई चतुर चकोर तें चहचहात ।
 धीर ना धरात, चित्त चौगुनौ पिरात आली ।
 कंत बिनु हाथ ! दिन ऐमैई सिरात जात ॥५६३॥

★

सोंधे की बास उसासहिं रोकत, चंदन दाहक गाहक जी कौ ।
 नैननि बैरी सो है री गुलाब, अबीर उड़ावत धीरज ही कौ ॥
 राग विराग, धमार थ्यो धार सी, लौटि परधौ ढंग यों सब ही कौ ।
 रंग रचावन जान बिना 'वनआनंद' लागत फागुन फीकौ ॥५६४॥

भूले-भूले भौर बन भौवरै भरेगे चहुँ,
 फूलि-फूलि बिंसुक जके से रहि जाइ है ।
 'द्विजदेव' की सौं वह कँजनि बिसारि कूर,
 कोकिल कलंकी ठौर-ठौर पछिताइ है ॥
 आवत दसंत के न ऐहै जो पै स्याम तौ पै,
 बाबरी ! बलाइ सौ, हमारे हू उपाइ है ।
 पी है पहिलेई ते हलाहल मँगाइ, या—
 कलानिधि की एकौ कला चलन न पाइ है ॥५१५॥

★

फूले घने तर-जाल विलोकि, हुते कछु सूधे सुभाइ ससे री ।
 आगि सी लागि पलासन देखि तज भय सो कहूँ भागि बचे री ॥
 छूटे संचान से ए अब तौ, 'द्विजदेव' चहुँ दिसि कोकिल बैरी ।
 हूँ है कहा मजनी ! अबधौ, बचिहै केहि भौति सो प्रान-पखेरी ॥५१६॥

★

सग सखी के गई अलबेली, महा सुख सो बन-बाग बिहारन ।
 बाढे वियोग विलास गए द्रव, देखत ही वै पलास की डारन ॥
 जानि बसंत औ कत बिदेस, सखी लगी बावरी-सी हूँ पुकारन ।
 चै चलि हैं चुरियाँ चलि आउ री, आँगुरियाँ जन लाउ अंगारन ॥५१७॥

★

किंसुक झार, कुसुमित डारि दै, झार बयारि बहै जो गँवारन ।
 आग लगी है कहूँ बिन काज, न मै हूँ सुनी-समुझी रितुरागन ॥
 तेरी सौं तोहि डरौ मैं 'मुबारक', सीरी करौ सखी पै जलधारन ।
 चै चलि है चुरियाँ चलि आउ री, आँगुरियाँ जन लाउ अंगारन ॥५१८॥

★

आथौ बसत दहंत सखी, घर आए न नाह, न पाए सँदेसे ।
 कोकिल कूँकि उठी चहुँ ओरि ते, हूँकि उठी हिय कूक सो लेसे ॥
 याही ते जीय डरै 'मधुसूदन', जाति नही बन वाही अँदेसे ।
 फूलि पलास रहे जित-ही-तित, लोहू भरे नख नाहर जैसे ॥५१९॥

★

झूरि से कौनै लए बन-बाग, ऐ कौनै जु आवन की हरिआई ।
 कोइल काहँ कराहति है बन, कौनै चहुँ दिसि धूरि उड़ाई ॥
 कैसी 'नरेस' बयारि बहै यह, कौन धौ कौन सो माहुर नाई ।
 हाथ ! न कोऊ नलास करै, ए पलासन कौनै दबारि लगाई ॥५२०॥

परकीया प्रोक्षितपतिका

कहा कहिए कहिये की नहीं, मग जोवत-जोवत ज्वै गयौ है ।
उन तोरत बार न लाई कछु, तन तें बृथा जोवन ख्वै गयौ है ॥
कहि 'ठाकुर' कूबरी के बस है, रस मे बिष बावरो ज्वै गयौ है ।
मनमौहन कौ हिलिवो-मिलिवो, दिन चाग्रिक चैत सौ ह्वै गयौ है ॥६०१॥

*

पर काजहिं देह को धारै फिरौ, परजन्य जथारथ है दरसौ ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ, सबई विधि सज्जनता सरसौ ॥
'घनआनंद' जीवनदाइक हौ, कछु मेरीउ पीर हिए परसौ ।
कबज वा बिसासी सुजान के आंगन, मां अंसुआन को लै बरसौ ॥६०२॥

*

ए रे बार पौन ! तेरौ चहुँ ओर गौन,
तो सौ और कौन, मनै ढरकौई बानि है ।
जगत के भ्रान, ओछे-बडे सो समान,
'घनआनंद' निधान सुख-दान दुखियान है ॥
रूप उजियारे, गुन वारे, वे सुजान प्यारे,
अब है अमोही बैठे पीठि पतियान है ।
बिरह-बिथा की सूरि, आँखिन मे राखौ पूरि,
धूरि तिन पाँइन की हा ! हा ! नेक आन है ॥६०३॥

*

वे बतियाँ छतियाँ लहकैं, दहकैं बिरहागिन की उर आँचै ।
वा बँसुरी कौ परचौ रसु री, इन कानन मौहन मंत्र से माँचै ॥
कौलगि ध्यान धरै मुनि लौ रहिए, कहिए गुन वेद से वाँचै ।
सूक्त ना सखि ! आन कछु, निसि-दोस वेई अँखिआन मे नाँचै ॥६०४॥

*

काऊ सो माई कहा कहिए, सहिए जु सोई 'रसखान' सहावै ।
नैम कहा, जब प्रेम कियौ, तब नाँचिए सोई, जो नाँच नचावै ॥
चाहत है हम और कहा मखि ! क्यो हू कहूँ पिय देखन पावै ।
चंगीय सो जु गुपाल रच्यौ, तो चलौ री, सबे मिलि चेर कहावै ॥६०५॥

*

जिन खोल सुबोल अमोल सबै, अंग केलि कलोलन मोल लिए ।
जिनको चित लालची लोचन रूप, अनूप पियूष सु पीय किए ॥
जिनके पद 'केसव' पानि हिए, सुख मानि सबे दुख दूर किए ।
तिनकौ संग फूटत ही फिट रे ! फटि कोटिक दूर भयौ न हिए ॥६०६॥

लगी अ तर मे, करै बाहर को, बिन जाहर कोऊ न मानतु है ।
 दुख औ सुख, हानि औ लाभ सबे, घर की कोउ बाहर भानतु है ॥
 कवि 'ठाकुर' आपनी चातुरी सो, सब ही सब भौति बखानतु ह ।
 पर बीर ! मिलै-बिछुरै की बिथा, मिलिके बिछुरै मोई जानतु है ॥६०७॥

*

बाढ्यौ करै दिनई छिनई-छिन, कोटि उपाउ करौ न बुझाई ।
 दाहत लाज, समाज-सुखै, गुरु की भय, नीद सबै सँग लाई ॥
 छीजत देहके सग मे प्रान हू, हा ! 'हरिचंद' करौ का उपाई ।
 क्यो हू बुझै नहिँ आँलू के नीरन, लालन ! कैसी दबारि लगाई ॥६०८॥

इन दुखियान को न चैन सपनेहु मिल्यौ
 तासो सदा व्वाकुल बिकल अकुलौयगी ।
 प्यारे 'हरिचंदजू' जी की बीती जानि औयि,
 प्रान चाहत चलै पै एतौ सग ना समौयगी ॥
 देख्यौ एक बार हू न नैन भरि तोहि, यापै-
 जौन-जौन लोक जै है, तहाँ पछितौयगी ।
 बिना प्रानप्यारे भए दरस तुम्हारे, हाय !
 मरे हू पै आँखै ए खुली ही रह जौयगी ॥ ६०९ ॥

*

ब्रजबासी बियोगिन के घर मे, जग झोंडि कै क्यो जनमाई हयै ।
 मिलिबौ बडी दूरि रह्यौ 'हरिचंद', दई इक नाम-धराई हमै ॥
 जग के सिगरे सुख सो ठगि कै, सहिवे को यही है जिवाई हमै ।
 केहि बैर सो हाय दई बिधिना ! दुख देखिवे ही को बनाई हमै ॥६१०॥

*

रोवै सदा नित की दुखियाँ, बलि ! ए आँखियाँ जिहि घौस सो लागी ।
 रूप दिखाओ इन्है कबहू, 'हरिचंदजू' जानि महा अनुरागी ॥
 मानि है औरन सो नहिँ ए, तुम रग रँगी, कुल-लाजहि त्यागी ।
 आँसुन कों अपने अँचरान सो, लालन ! पौछि करौ बढ भागी ॥६११॥

*

बरुनीन मे नैन सुकै-उभकै, मनो खजन प्रेम के जाले परे ।
 दिन औधि के कैलै गनौ सजनी ! अँगुरीन के पोरन छाले परे ॥
 कवि 'ठाकुर' ऐसौ कह्यो कहिये, निज प्रीति किए के कसाले परे ।
 जिन लालन चाह करी इतनी, तिनहँ देखिवे के अब लाले परे ॥६१२॥

अंतर हौ, किधौं अत रहौ, दग फारि फिरौं कै अभागिन भीरौ ।
 आगि जरौं अकि पानि परौ, अब कैसी करौ, हिय का विधि धीरौं ॥
 जो 'घनआनद' ऐसी रुची, तौ कहा बम है अहा ! प्राननि पीरौ ।
 पाऊँ कहाँ हरि हाथ ! तुम्हे, धरनी मे धँसौ, कै अकासहि चीरौ ॥६१३॥

★

जकि-जकि जात गात लेखनी लखत नैन,
 थकि-थकि जात पेखि पकज के पात री ।
 भरि-भरि आवे देह नेह क झकोर जोर,
 करि-करि आवत न क्यों हूँ मुख बात री ॥
 ए री मेरी बीर ! पीर बिरह-बिथा की अग,
 कैसे हू न काहू सो कलूक कहि जात री ।
 कीनै कहा राम ! काम बैरी की अकस मोहि,
 झूठै हू सजोग कौ न जोग दरमात री ॥६१४॥

★

लाखनि भाँति भरे अभिलाषनि, कै पल पाँवडे पंथ निहारे ।
 लाडिली आवनि लालसा लागि, न लागत है मन मे पन धारें ॥
 यो रस भीजे रहे 'घनआनद', रीके सुजान सुरूप तिहारे ।
 चायनि बावरे नैन कबै, अँसुआँनि सो रावरे पाँय पखारे ॥६१५॥

★

धूँधुरित धूरि धुरवाँन की सु छाई नभ,
 जलधर-धारा धरा परसन लागी री ।
 'द्विजदेव' हरी भरी ललित कढ़ारै त्यो,
 कदवन की डारै रस-बरसन लागी री ॥
 कालि ही ते देखि बन-बेलिन की बनक,
 नबेलिन की मति अति अरसन लागी री ।
 'बेगि लिखि पाती, वा सँघाती मनमौहन को,
 पावस-अवाती ब्रज दरसन लागी री ॥६१६॥

★

वा मुसकानि पे प्रान दियौ, जिय-जान दियौ वह तान पे प्यारी ।
 मान दियौ मन-मानिक के सग, वा मुख मजु पे जाँबन वारी ॥
 बातन की 'रसखान' पे री, तन ताहि दियौ नहिँ आनि विचारी ।
 सो मुख मोड़ि करी अब का, हहा लाल ! लै आज समाज मे खवारी ॥६१७॥

बहुत दिनानि की अवधि आस-पास परें,
 खरे अवधनि भरे है उडि जान कौं ।
 कहि-कहि आवन संदेसौ मन-भावन को,
 गहि-गहि राखत हौ दै-दै सनमान को ॥
 झूठी बतियान के पत्थान ते उदाम हैं कै,
 अब न धिरत 'घनआनंद' निदान को ।
 अधर लगे है आनि, करकै पयान प्रान,
 चाहत चलन ये सदेसौ लै सुजान को ॥६१८॥

★

अब मति दै री कान, कान्ह की बसीठिन पै,
 झूठे-झूठे प्रेम के पतौवन को फेरि दे ।
 उरझि रही ती जो अनेक पुरखा ते सोऊ,
 नाते की गिरह मूँदि नैननि निवेरि दै ॥
 मरन चाहति काहू छैल पै छबीली कोऊ,
 हाथन उँचाइ ब्रज-बीथिन में डेरि दै ।
 नेह री कहाँ कौ, जरि खेह री भई तौ मेरी,
 देह री उठाइ, बाकी देहरी पै गेरि दै ॥६१९॥

★

तेरी बाट हेरत हिराने औ पिराने पल,
 आके ये बिकल नैना ताहि नपि-नपि रे ।
 हिए मे उदेग-आगि लागि रही रात-द्यौस,
 तोहि को अराधौ, जोग साधौ तपि-तपि रे ॥
 जान 'घनआनंद' यों दुसह दुहेली दसा,
 बीच परि-परि प्रान पिये चपि-चपि रे ।
 जीव ते भई उदास, तऊ है मिखन आस,
 जीवहिं जिवाऊँ नाम तेरो जपि-जपि रे ॥६२०॥

★

राधे कही है कि तैं झुमियौ ब्रजनाथ ! कितैं अपराध किए मैं ।
 कानन तानन भूलत ना छिन, आँखिन रूप अनूप पिए मैं ॥
 आपने ओछे हिए में दुराइ, 'दयानिधि' देव बसाइ किए मैं ।
 हौं ही असाध बसो न कहूँ, पल आध अगाध तिहारे हिए मैं ॥६२१॥

तब तौ छवि पीवत जीवत हे, अब सोचनि लोचन जात जरे ।
हिन पोषकै लोष हु प्रान पले, बिललात महा दुख-दोष भरे ॥
'घनआनंद' मीत सुजान बिना, सब हाँ सुख-माज-समाज टरे ।
तब हार पहार से लागत हे, अब आनिकै बीच पहार परे ॥६२२॥

*

जा थल कीन्हे बिहार अनेकन, ता थल काँकरी बैठि चुन्यौ करै ।
जा रसना ते करी बहु बातन, ता रसना सौँ चरित्र गुन्यौ करै ॥
'आलम' जोन मे कुजन मे करी केलि, तहाँ अब सीस धुन्यौ करै ।
नैनन मे जे सदा रहते, तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ करै ॥६२३॥

*

जिय सूखी चितौन की साध रही, सदा बातन में अनखाइ रहे ।
हँसिकै 'हरिचंद' न बोले कबौ, मन दूर ही लो ललवाइ रहे ॥
नहिँ नैक दया उर आवत क्यों, करिकै कहा ऐसे सुभाइ रहे ।
सुख कौन मौ 'यारे' ! दियौ पहिलै, जेहि के बदले गो सताइ रहे ॥६२४॥

*

बाबरी हँ जाती बार-बार कहि वेदन को,
बिलखि-बिलखि जो बिहार-थल रोती ना ।
पीर उठै हियरौ हमारौ टूक-टूक होत,
ध्याइ प्राननाथ जो कसक निज खोती ना ॥
'हरिऔध' प्यारे के पधारि गए परदेस,
नैन नसि जात, जो सपन संग सोती ना ।
तन जरि जातौ, जो न असुअँ ढरत आली ।
प्रान कडि जातौ, जो प्रतीत उर होती ना ॥ ६२५ ॥

*

सामान्या प्रोषितपतिका

आवत अनेक और आवेगे घनेई, वैसौ-
कौन धौ रिखावेगौ, सुधा सी तान गावेगौ ।
'सोमनाथ' फूलन के गहने बनाइ चारु,
अंग सरसावेगौ, अतग उपजावेगौ ॥
रात परजक पै निसंक नित चाँदनी मे,
छतियाँ लगावेगौ, वियोगहि बुझावेगौ ।
सुख कौ दिवैया वह प्यारौ परदेसन तें,
फेर कब आवेगौ री सखि ! धन लावेगौ ॥ ६२६ ॥

(१०) आगतपतिका—अपने प्रियतम के आगमन पर प्रसन्न होने वाली नायिका 'आगतपतिका' कहलाती है* ।

सुग्धा आगतपतिका

चारक दिना तें रीति नई उनई है कछु,
कोन यह वेदन भई है तन-मई है ।
आँख बॉहि वार्ह लई फरक्नि-वानि दर्ई ।
कई घरी बीत जात येके ठीक ठई है ॥
'ग्वाल कवि' सुनई सखी ने सुगुनई सब,
आवई विदेस तें, बलम सुखदाई है ।
सुनत सिकुर गई, गरे सो निहुर गई,
तरे को नजर भई, रुप परि गई है ॥६४७॥

* (१) बहु दिन बितै बिदेस तें, जाऊँ आवै कत ।

'आगतपतिका' नाइका, ताहि कहत मतिवत ॥

—“रसिकविनोद”

- (२) केशवदास और वितामणि ने 'आगतपतिका' का कथन नहीं किया है ।
- (३) देव, दास और रसलीन ने अष्ट नायिकाओं में 'आगतपतिका' का उल्लेख न कर उसका पृथक् वर्णन किया है ।
- (४) दास ने संयोग शृंगार के अंतर्गत 'बासकपज्जा' में 'आगतपतिका' का उल्लेख किया है । यथा—

• पिय-आगम परदेस तें, 'आगतपतिका' भाउ ।

हे बासकपज्जाहि मे उहै, बढै चित चाउ ॥

—“शृंगारनिर्णय”

- (५) दास और रसलीन आदि कई आचार्यों ने 'आगतपतिका' से पृथक् 'आगमपतिका' का भी उल्लेख किया है । जिसका नायक आने वाला हो, उसे 'आगमपतिका' और जिसका नायक आ गया हो, उसे 'आगतपतिका' लिखा गया है, किंतु मतिराम, पद्माकर आदि ने दानो प्रकार की नायिकाओं को 'आगतपतिका' ही माना है ।

- (६) रसलीन ने 'आगतपतिका' के अंतर्गत 'संयोग गर्वित' भी लिखी है ।

आप, कही काहू आहू कहूँ ते, उही चितवै चित चाहि विसेखै ।
 आनंद के आँसुआँ दरकै, फरकै सु द्वियौ, सु कछु लखि लेखै ॥
 औचकई चित चौकि चहूँ दिसि, आगम सों उमगी अवरेखै ।
 घूँघट ओट किए दग-कोरन, द्वार की ओट दुरै-दुरै देखै ॥६२॥

रवि भूपन आहू अलीन के संग तें, सासु के पाम बिराजि गई ।
 मुखचंद-मऊपनि सो 'ससिनाथ', सबै घर मे छवि छाजि गई ॥
 इनकौ पति ऐहै सबार, मखी कछो, यो सुनि कै हिय लाजि गई ।
 सुख पाइकै, नार नबाइ तिया, मुसक्याइ कै भौन मे भाजि गई ॥६२॥

आयौ बिदेस ते प्रानपिया, 'मतिगम' अनद बढाइ अलेखै ।
 लोगन सो मिलि आँगन बैठि, घरी ही घरी सिंगरौ घर देखै ॥
 भीतर भौन के द्वार खरी, सुकुमार तिया तन कप बिसेखै ।
 घूँघट कौ पट ओट दिए, पट-ओट किए, पिय कौ मुख देखै ॥६३॥

मध्या आगतपत्तिका

दूरि भई कसिकै कवि 'वीर', जे जी मे तबै नटसाल सी साली ।
 मैन-बियोग तगीर कछौ, अबला यो लिखाइ संयोग-बिहाली ॥
 आवत ही बनमाली बिदेस ते, बाल की ओर लखै सब आली ।
 वा पिअराई मे आइकै आज, चढी कछु और ही भौति की लाली ॥६३॥

आँगन बैठी सुन्यौ पिय-प्रावन, चित करोखन मे लरक्यौ परै ।
 'देवजू' घूँघट के पट हू मे, सँमाति न फूल्यौ हियौ फरक्यौ परै ॥
 नैनन ते सुख के आँसुआँ मनो और मरोजन तें सरक्यौ परै ।
 मंद हँसै, दुति दत लसै, मुख सुंदर दाडिम सौ दरक्यौ परै ॥६३॥

नंदगाम ते आइगौ नदलला, लखि लाडिली ताहि रिझाइ रही ।
 मुख घूँघट घालि सकै नहि माइके, माइ के पीछें दुराइ रही ॥
 उचकै कुच-कोरन की 'पदमाकर', ऐसी कछु छवि छाइ रही ।
 ललचाइ रही, सकुचाइ रही, सिर नाइ रही, मुसक्याइ रही ॥६३॥

बिछुरै जिण सँकोच यह, मुख तें कहत न बैन ।
 दोऊ दौरि लागे हिउँ, किए निचौहैं नैन ॥ ६३४ ॥

चौथा चार तपतिष्ठा

लाख-बियोग की ताप, मलीन महा, दुति देह सु छीन तिष्ठा की ।
 पंकज-सौ मुख गौ मुग्धाइ, लगे लपटै ब्रिगहागि धिया की ॥
 तैसई आवत कान्ह सुने, हुलसी सु तनी तरकी अगिया की ।
 यो जगि जोति उठी तन की, उकसाइ दई मानौ बाति दिया की ॥६३५॥

★

आवन सुन्यौ है मनभावन कौ भामिनी,
 सु नैनन अनंद-आँसू ढरकि-ढरकि उठै ।
 'देव' दग दोऊ दौरि जाति द्वार देहरी लौ,
 केहरी सी साँसै खरी खरकि-खरकि उठै ॥
 दहलै करत, दहलै न हाथ-पाँइ,
 रगमहलै हू निहारि, तनी तरकि-तरकि उठै ।
 सरकि-सरकि सारी, दरकि-दरकि आँगी,
 आँचक उचौ हैं कुचि फरकि-फरकि उठै ॥ ६३६ ॥

★

ललित लज्जली आइ ललिता-बिसाखा हू सों,
 नैनन कों मूँदि कर सैनन करत फिरै ।
 आए ब्रजचंद चंद्रावलि के सुनाए सुनि,
 चंदमुखी धाइ प्रीति-पाँउडे धरति फिरै ॥
 'देव' ब्रज-देवी-देव-देवता मनाइ,
 मन ही मन निछावरि हूँ भौवरी भरत फिरै ।
 गोकुल-गुसाँइन कुँवरि ठकुराइन सो-
 गोपी-गोप-गाइन के पाँइन परति फिरै ॥ ६३७ ॥

★

धाई खोरि-खोरि ते बधाई पिय-आगम की,
 सुनि-सुनि कोरि-कोरि भौवरै भरति है ।
 मोरि-मोरि बदन निहारति बिहार-भूमि,
 धोरि-धोरि आनंद धरी-सी उघरति है ॥
 'देव' कर जोरि-जोरि बदन सुरन, गुर-
 लोगन के लोरि-लोरि पाँइन परति है ।
 तोरि-तोरि मंतिन के हार पूर चौकन,
 निछावरि कों छोरि-छोरि भषन धरति है ॥ ६३८ ॥

बादि ही चदन चारु घसै, घनसार घनों घिमि पक बनावत ।
बादि उसीर समीर चहै दिन-रैनि पुरैनि के पात बिछावत ॥
आप ही ताप मिटी 'द्विजदेव', सुदाघ-निदाघ की कौन कहावत ।
बावरी ! तू नहि जानति आजु, मयक लजावत मौहन आवत ॥६३६॥

★

आजु दिन कान्ह-आगमन के बधाए सुनि
छाए मग फूलनि, सुहाए थल-थल के ।
कहै 'पदमाकर' ल्यो आरती उतारिवे कों,
थारन मे दीप हीरा-हारन के छलके ॥
कंचन के कलस भराए भूरि पन्नन के,
ताने तु ग तोरन तहाँई भलाभल के ।
पौरि के दुबारे तें, लगाइ बेलि-मदिर लौ,
पदमिनी पाँवडे पसारे मखमल के ॥ ६४० ॥

★

हाई रही अबला-मन मे, धुरबान कौ धावन देख उदासी ।
'श्री हरिऔध' हू आए विदेस सों, आइ बही इतने हि में दासी ॥
आनंद के अँसुआँन बहे, अकुलाइ कै दौरि चली चपला सी ।
लाल के अंग-तमाल सों जाइ, रही लपटाइ लबंगलना सी ॥६४१॥

★

पैजनी गढ़ाय, चौंच सौने सों मदाय तैहों
कर पर लाय, पर रुचि सों सुधरि हौं ।
कहै कवि 'तोष' छिन अटक न लैहों कबौ,
कचन कटोरे अटा खीर भरि धरि हौं ॥
पु रे कारे काग ! तेरे सगुन सजोग आजु,
मेरे पति आवैं, तौ वचन ते न टरि हौं ।
करती करार, तौन पहिलै करौंगी सब,
आपने पिया को फिरि पाछै अंक भरि हौ ॥६४२॥

★

बाम बाहु फरकत मिलैं, जो हरि जीवन-मूरि ।
तौ तोई सों भेंटि हौ, राखि दाहिनी दूरौ ॥ ६४३ ॥

परकीया आगतपतिका

आली ! बहु बासर बिताए ध्यान धरि-धरि,
 तिनको सुफल नैन दरसन पावेंगे ।
 होत हैं री सगुन सुहावने प्रभात ही तैं,
 अंगन मे अधिक विनोद सरसावेगे ॥
 'सोमनाथ' हरै-हरै बतियाँ अनूठी कहि,
 गृह बिरहानल की तपनि बुझावेंगे ।
 सबही तैं प्यारे प्रान, प्रानन तैं प्यारे पति,
 पति हू ते प्यारे ब्रजपति आज आवेंगे ॥६४४॥

★

एकै चले रस-गोरस लै, अरु एकै चले मग फूल बिछावत ।
 त्यों 'पदमाकर' गावत गीत, सु एकै चले उर आनंद छावत ॥
 यों नंदनंद निहारिवे कों, नंदगाँव के लोग चले सब धावत ।
 आवत कान्ह बने बन ते, वर प्रान परे-से परौसिन पावत ॥६४५॥

★

सामान्या आगतपतिका

नागर विदेस मे बिताइ बहु द्यौस आयौ,
 नागरी के हिय मे हुलासन की खान की ।
 कवि 'मतिराम' अक भरत मयंकमुखी,
 नेहै सरसाइ मति मोही सुखदानि की ॥
 सु बरन बोलिकै बतावति है सुबरन,
 हीरन बतावति है छवि सुसकान की ।
 आँखिन ते आनंद के आँसू उमगाइ प्यारी,
 प्यारे कों दिवावति सुरति मुकतान की ॥६४६॥

★

उज्जल अनूप नीर न्हाइ कै नगर-नारि,
 पहरें दुकूल सरसानी रति-बेस तैं ।
 'सोमनाथ' कहै आछौ अतर लगायौ तैसौ,
 छहरी सुगंध चारु चंपक सुदेस ते ॥
 प्रातई ते और रसिकन कों जवाब दीनौ,
 हँसति कहत बात, निबरी कलेस तैं ।
 संक तजि सुंदरी बिछाएँ परजंक आजु,
 धन कौ दिवैया सुनि आवत विदेस तैं ॥६४७॥

गुणानुसार नायिकाएँ



नायिकाओं के गुणानुसार तीन भेद होते हैं—

१-उत्तमा, २-मध्यमा, ३-अधमा † ।

(१) उत्तमा नायिका—अपने प्रियतम का दांप जान कर भी रुष्ट न होने वाली और अपने प्रति उसका अहित देख कर भी उसका हित करने वाली नायिका को 'उत्तमा' कहते हैं* ।

जाकौ जावक सिर धर्यौ, प्यारे सहित सनेह ।

हमको अंजन उचित है, तिन चरनन की खेह ॥ ६४८ ॥

† (१) अनर्हित सो हित 'उत्तमा', मम सो मम 'मधि' जानि ।

'अधमा' हित हू सो न हित, तानो तिय पहिचानि ॥

—“रसविलास”

(२) 'उत्तम' मान बिहीन है, लघु-मध्यम 'मधि' मान ।

बिन उपराध करत है, 'अधम' नारि गुरु मान ॥

—“शृंगारनिर्णय”

(३) प्राय सभी आचार्यों ने अन्य नायिकाओं का कथन कर सब के अंत में गुणानुसार उत्तमादि नायिकाओं का वर्णन किया है किंतु 'हरिऔधजी' ने अपने आधुनिक ग्रंथ 'रस-कलस' में नायिकाभेद का वर्णन करते हुए आरम्भ में ही, केवल 'जाति अनुसार' वर्ग के उपगत इनका वर्णन 'प्रकृति अनुसार' वर्ग के अंतर्गत किया है । इसके साथ ही उत्तमा और मध्यमा के नवीन उपभेदों के रूप में 'देशप्रेमिका' आदि नवीनतम नायिकाएँ उनकी उद्भावनाएँ हैं ।

(१) पिय-औगुन लखि, सपनेउ रचइ न रोष ।

सुभग 'उत्तमा' तिय, तन-मन निरदोष ॥

— 'महेश्वरविलास’

(२) हरिऔध जी ने अपने 'रसकलस' में उत्तमा नायिका के अंतर्गत निम्न-लिखित नवीन नायिकाओं का कथन किया है —

- १-पति-प्रेमिका, २-परिवार-प्रेमिका, ३-जाति-प्रेमिका, ४-देश-प्रेमिका,
५-जन्मभूमि-प्रेमिका, ६-निजतानुगिनी ७-लोक-सेविका, ८-वर्म-प्रेमिका ।

हमकों तुम एक, अनेक तुम्है, उनहीं के विवेक बनाइ बहौ ।
 इत चाह निहारी बिहारी, उतै सरसाइ कै नेह सदा निबहौ ॥
 अब कीवौ 'सुबारक' सोई करौ, अनुराग-लता जिन बोइ दहौ ।
 वनस्याम ! सुखी रहौ आनंद सों, तुम नीके रहौ, उनही के रहौ ॥६४६॥

*

रस में विवस हूँ कै 'सेखर' बिताई रात,
 लागे रति-चिह्न चारु अंगन अछेह सो ।
 परत न सूखे पग, आलस-बलित बेस,
 आवत विलोकि और भाँमती के गेह सों ॥
 आदर सो उठिऊँ महेलिन सों आगें जाइ,
 लागे उर-दागन दुराए निज देह सो ।
 धूर भरे प्रीतम के चरन-सरोज प्यारी-
 पौछै निज अंचल के छोरन सनेह सो ॥ ६४७ ॥

*

केसरि सो उबड़ौ सब अंग, बडे मुकतान सों माँग सम्हारी ।
 चारु सुचंपक हार हिउँ, उर ओछे उरोजन की छवि न्यारी ॥
 हाथ सो हाथ गहँ कवि 'देव', सु साथ तिहारेई नाथ ! निहारी ।
 हा हा ! हमारी सौँ साँची कहौ, वह कौन ती छोहरी छीबर वारी ॥६४८॥

*

चंदमुख की ही बनी रहति चकोरिका है,
 मरस सनेह स्वाँति बूँद की है चातकी ।
 प्यारौ तन-कारौ करि राखति नयन-तारौ,
 बारति गोराई वा पै गोरे-गोरे गात की ॥
 'हरिऔध' औगुनी कौ औगुन हू गुन होत,
 देनि है कुबात हू को उपमा नबात की ।
 पात लों हिलति, पवि-पात सिर पै है होत,
 पातक-निरत पति हू को कहे पातकी ॥ ६४९ ॥

*

माथें महाबर पौँड कौ देखि, महाबर पाइ सुदर दुरी ए ।
 ओठन पै ठन वे अँखियों, पिय के हिय पैठ न पीक धुरी ए ॥
 संग ही संग बसौ उनके, अँग-अगन 'देव' तिहारें लुरी ए ।
 साथ में राखिए नाथ ! उन्हें, हम हाथ मे चाहतों चार लुरी ए ॥६५०॥

(२) मध्यमा नायिका -- अपने प्रियतम का हित देख कर उसके साथ हित और उसका दोष देखकर मान करने वाली नायिका का 'मध्यमा' कहते हैं ।

अरुन उदोत आयौ करिकै बिहार, हेरि-

उपक्यौ हिणु मे हार, हारे रँग रति के ।

मान ठानि बैठी, तानि भृकुटी कमान चारु,

लाल भए लोचन लजीले बक गति के ॥

'सेखर' समीप जाइ सकुचि सँभारे स्याम,

रग भरे बसन लली के प्रीति अति के ।

उमंगि अनंद अनुरागी अति प्रेम भरी,

लगी उर ललकि सलौनी प्रानपति के ॥ ६५४ ॥

★

साँझ समै घर आए गुगल, सो जाम के अंतर ही रतिया मे ।

भारी बिनोदन सों भभरी, 'द्विजदेवजू' जौ लौं रची बतिया मे ॥

काम की जोति जगी कलु बीच ही, भूलि गई सिगरी घतिया मे ।

जैसी हुती रही वैसी भरी सखि ! नेह-भरी बतियाँ छतिया मे ॥ ६५५ ॥

★

आयौ प्रानपति रात अनतैं बिताइ, बैठी-

भौहन चढ़ाई रंगी सुंदर सुहाग की ।

बानन बनाइ, परधौ प्यारी के चरन आइ,

छवि सो छिपाई लैल छवि रति-दाग की ।

छूटि गयौ मान, लगी आपुही सँवारन को,

खिरकी सुखि 'मतिराम' पिय-पाग की ॥

रिसई के आँसू रस-आँसू भए आँखिन मे,

रोष की ललाई, सो ललाई अनुराग की ॥ ६५६ ॥

§ (१) पिय-अपराध लखैं, सुनै, करै मान जो कोइ ।

पुनि हित करति सु हित करे, नारि 'मध्यमा' सोइ ॥

—“रसिकविनोद”

(२) 'हरिऔध जी' ने मध्यमा नायिका के दो भेद लिखे हैं—

१-व्यंग विदग्धा, २-मर्म पीडिता ।

(३) अधमा नायिका—अपने प्रियतम के हित करने पर भी उसके साथ मान करने वाली नायिका को 'अधमा' कहते हैं ।

हौ उरझाई रिझाईवे कों, रसरग-कवित्तन की धुनि छाई ।
 त्यों 'पदमाकर' साहस कै, कबहू न विषाद की बात सुनाई ॥
 सापनेहु न कियौ अपराध, सु आपुने हाथन सेज बिछाई ।
 त्यों परि पाँइ मनाई जऊ, तऊ पापिनि को कछु पीर न आई ॥६५७॥

*

आयौ है सयानपन, गयौ है अयान, तऊ—
 नित उठि मान करिवे की टेब पकरी ।
 घर-घर मानिनी है मानत मनाए ते वे,
 तेरी ऐसी रीति और काहू मे न जकरी ॥
 कवि 'मतिराम' कामरूप घनस्याम लाल,
 तेरे नैन-कोर ओर चाहै इक टक री ।
 हा हा कै निहोरे हू न हेरत हिरननैनी !
 काहे को करत हठ हारिल की लकरी ॥ ६५८ ॥

*

दबक्यौ रहै नाह गुनाह बिना, गुन गावै सदा मुख-आखर मे ।
 अति सज्जन, साधु महा मन कौ, जु बिना अपराध धरै भरमें ॥
 सपनेहु न आन-प्रिया सुमिरै, तब हू नहिं सेज मे नीकी रमे ।
 तरपै जिमि बिजुल सी पिय पै, भरपै झननाइ सबै घर में ॥६५९॥

*

रही पकरि पाटी, सु रिस भरै भौह, चित, नैन ।
 लखि सपने पिय आन-रति, जगतहु लगत हिउँ न^१ ॥ ६६० ॥

† तिय सो प्रीतम हित करै, तिय रिसाई बे-काज ।

सो वह 'अधमा नाइका', बरनत है कविराज ॥

—“सुंदर शृंगार”

* बिहारी

तृतीय
परिशिष्ट-खंड



“शृंगार रस के मुक्तक पद्य यद्यपि अधिकतर अलंकारों और नायिकाओं के उदाहरण-स्वरूप ही लिखे गये और यद्यपि लिखने का लक्ष्य भी अधिकतर आश्रय-दाताओं को प्रसन्न करना था, तथापि कुछ कवियों की कृति में शुद्ध प्रेम के ऐसे मरस छंद मिलते हैं, ऐसे सौन्दर्य की पवित्र विव्रति पाई जाती है कि मत्सरा यह विश्वास नहीं होता कि वे कवि शुद्ध आंतरिक प्रेरणा के आतिरिक्त अन्य किसी उद्देश से कविता करते थे। यह ठीक है कि अधिकांश कवियों ने सौन्दर्य को केवल उद्दीपन मान कर नायक-नायिका के रति-भाव की व्यञ्जना की है, पर कुछ कवि ऐसे भी हुए हैं, जिन्होंने रीति के प्रतिबंधों से बाहर जाकर स्वकीय सुंदर रीति से सौन्दर्य का वक्र मृष्टि की है, जो मनोमृगकारिणी है।

★

रीति-काल के कवियों का साहित्य में बड़ा स्थान है, इसकी परीक्षा कवित्व का दृष्टि से भी की जा सकती है, और आचार्यत्व की दृष्टि से भी। कवित्व की दृष्टि से परीक्षा करने में हमारा कसौटी ऐसी होनी चाहिए, जिस पर संसार भर के साहित्य को कस कर परख सके और उसके उत्कर्षाकर्ष का निर्णय कर सके। स्थायी साहित्य जीवन का चिरंतन समस्याओं का समाधान है। मनुष्य मात्र की मनोवृत्तियों, उनका आशाओं, आकांक्षाओं और उनके भावों, विचारों का वह अक्षय भांडार है। साहित्य की इस व्यापक भावना को हम समन्वयवाद कह सकते हैं।

इस साहित्यिक समन्वय में रीति-काल के शृंगारी कवियों का अलग स्थान है, यह पहले ही स्वीकार करना पड़ेगा। उन कवियों का लक्ष्य भक्त कवियों की भाँति कुछ विशिष्ट उच्च आदर्शों पर नहीं था, परंतु गार्हस्थिक जीवन के सुख-सौन्दर्य आदि पर उनकी दृष्टि टिकी थी और स्त्री-पुरुष के मधुर संबंध की ओर उनका ध्यान खिंचा था। कुछ कवियों ने प्रेम के सूक्ष्म तत्वों का निरूपण भी किया है, केवल विभाव, अनुभाव आदि का आतिशयोक्ति रूप खड़ा करके रस-निष्पत्ति की चेष्टा ही नहीं की है। ऐसे कवियों का स्थान सौन्दर्य-स्रष्टा मौलिक साहित्यकारों के बीच में चिरकाल तक रहेगा।

★

भाषा और छंद आदि की दृष्टि से भी रीति-काल के कवियों का प्रयत्न प्रशंसनीय ही कहा जायगा। ब्रजभाषा का जो साहित्यिक रूप निर्मित हुआ था, उसमें अनुभूयमान कोमलता और सुकुमारता उन्हीं कवियों के प्रयास का फल था।... शृंगार रस का पहला पकड़ कर गार्हस्थ्य जीवन के जैसे सुंदर और सुकुमार चित्र उन्हें उतारने थे, उसके उपयुक्त भाषा का स्वरूप स्थिर करना कवियों की प्रतिभा का परिचायक है। इसके कारण छंदों में भी अच्छी प्रौढ़ता और परिष्कृति आई है।”

—“हिंदी साहित्य”

परिशिष्ट

—१—

रहीम कृत 'नगर-शोभा' और देव कृत 'जाति-विलास' एवं 'रस विलास' ग्रंथों में अनेक जातियों एवं देशों की नायिकाओं का बड़ा अद्भुत वर्णन हुआ है। पाठकों के मनोरंजन के लिए इनका संकलन किया गया है।

१—अनेक जातियों की नायिकाएँ

[रहीम कृत 'नगर-शोभा' के अनुसार]

*

ब्राह्मणी

उत्तम जाती ब्राह्मणी, देखत चित्त लुभाय ।
परम पाप पल मे हरत, परसत वाके पाय ॥
परजापति परमेश्वरी, गगारूप समान ।
जाके अंग-तरंग मे, करत नैन असमान ॥ ६६१ ॥

खतरानी

रूप-रंग रति-राग मे, खतरानी इतरान ।
मानो रची बिरचि पचि, कुसुम कनक में सान ॥
पारस पाहन की मनो, धरै पूनरी अंग ।
क्यो न होइ कंचन वहु, जे बिलसै तिहि मंग ॥ ६६२ ॥

* "महाकवि देव जी ने 'जाति-विलास' में जिस रीति से बहुत सी जातियों की तथा देशों की स्त्रियों का वर्णन किया है, उसी रीति से 'नगर-शोभा' में भी अनेक जातियों की स्त्रियों का वर्णन बड़ी सुंदरता से किया गया है। भाव शृंगार का है। दोहे की शब्द-योजना से वर्णित स्त्री जाति तथा कर्म का मनोहर चित्र नेत्रों के सम्मुख आ जाता है। यह ग्रंथ रहीम के सैलानी स्वभाव का परिचायक है। यह अनुमान किया जा सकता है कि देवजी ने 'जाति-विलास' कदाचित् रहीम ने इस ग्रंथ को देख कर बनाया हो और रहीम को इस ग्रंथ की रचना अकबर के मीनाबाजार से सूझी हो।"

—“रहीम-रत्नावली”

जौहरनि

कबहुँ दिखावै जौहरनि, हँसि-हँसि मानक-लाज ।
 कबहुँ चख ते चवै परै, दूटि मुकुट की माल ॥
 जदपि नैननि ओट है, बिरह चोट बिन थाइ ।
 पिय-उर पीरा ना करै, हीरा सी गड़ि जाइ ॥ ६६३ ॥

कायस्थिन

कैथनि कथन न पारइ, प्रेम-कथा मुख बेन ।
 छाती ही पाती मनो, लिखै मैं की सेन ॥
 वरुनि बार लेखनि करं, मसि काजरि भरि खंड ।
 प्रेमाचर लिख नैन ते, पिय बाँचन की देइ ॥ ६६४ ॥

चितैरिन

चतुर चितैरनि चित हरै, चख खजन के भाइ ।
 द्वे आधौ करि डारइ, आधौ मुख दिखराइ ॥
 पलक न टारै बदन ते, पलक न मारै नित्र ।
 नैक न चित तें उतरै, ज्यो कागद मे चित्र ॥ ६६५ ॥

बरइन

सुरंग बरन बरनइ बनी, नैन खवाए पान ।
 निसि दिन फरै पान ज्यो, विरही जन के प्रान ॥
 पानी पीरी अति बनी, चंदन खौरै गात ।
 परसत बीरी अधर की, पीरी कै है जात ॥ ६६६ ॥

सुनारिन

परम रूप कचन बरन, सोभित नारि सुनारि ।
 मानों साँचे ढारि कै, बिधिना गढी सुनारि ॥
 रहसनि बहसनि मन हरै, घोर घोर तन लेहि ।
 औरन कौ चित चोरि कै, आपुन चित न देहि ॥ ६६७ ॥

बनियाँइन

बनियाँइन बनि आइकै, बैठि रूप की हाट ।
 पेम पेम तन हेरि कै, गरुवे तोरत बाट ॥
 गरब तराजू करत चख, भौह मोर सुसिक्खात ।
 डाँढ़ी मारत विरह की, चित चिता घटि जात ॥ ६६८ ॥

रगरेजिन

रँगरेजनि के सग मे, उठत अनग-तरग ।
 आनन ऊपर पायतु, सुरति अत के रंग ॥
 मारत नैन कुरंग तेँ, मो मन मार मरोर ।
 आपन अधर-सुरंग ते, कामी काढ़तु बोर ॥ ६६६ ॥

देहातिन

गति गरुर गयंद जिमि, गोरे बरन गँवार ।
 जाके परसत पाइऐ, घनवा की उनहार ॥
 घराँ भरौ धरि सीस पर, बिरही देखि लजाइ ।
 कृक कठ ते बाँधि कै, लेजू लै ज्यो जाइ ॥ ६७० ॥

कूजड़िन

भाटा बरन सु कौजरी, बेचै सोवा साग ।
 निलखु भई खेलत सदा, गारी दै-दै फाग ॥
 हरी भरी डलिया निरखि, जो कोई नियराति ।
 झूठे हू गारी सुनति, साँचे हू ललचाति ॥ ६७१ ॥

वनजारिन

वनजारी भुमकत चलत, जेहरि पहरै पाइ ।
 वाके जेहरि के सबद, बिरही हर जिय जाइ ॥
 और वनज व्योपार कौ, भाव बिचारै कौन ।
 लोइन लौने होत हैं, देखत वाकौ लौम ॥ ६७२ ॥

कुम्हारिन

बरबा के मोंठी भरे, कौरी बैस कुम्हार ।
 दै उलटे सरवा मनो, दीसत कुच उनहार ॥
 निरखि प्रान घट ज्यो रहै, क्यो मुख आवै वाक ।
 उर मानो आबा दहै, चित्त अमै जिमि चक ॥ ६७३ ॥

लुहारिन

बिरह-अग्नि निसि-दिन धवै, उठै चित्त चिनगार ।
 बिरही जियहि जरग कै, करत लुहार लुहार ॥
 राखत मो मन लोह-सम, पाग प्रेम घन टोर ।
 बिरह-अग्नि मे ताइकै, नैन नीर मे बोर ॥ ६७४ ॥

कलवारिन

कलवारी रस प्रेम कौ, नैननि भर-भर लेत ।
 जोवन-मद माँती फिरै, छाती छुवन न देत ॥
 नैनन प्याला फेरि कै, अधर गजक जब देत ।
 मतवारे की मनि हरै, जो चाहै सो लेत ॥ ६७५ ॥

गूजरी

परम ऊजगी गूजरी, दद्यौ सीप पै लेइ ।
 गोरस के भिसि डोलही, सो रस नैक न देइ ॥
 गाहऽ सो हँसि बिहँसि कै, करत बोल अरु कौल ।
 पहिले आपुन मोल कहि, कहत दही कौ मोल ॥ ६७६ ॥

काछिन

काछिनि कछु न जानई, नैन बीच हित चित्त ।
 जोवन-जल सींचत रहै, काम-कियारी नित्त ॥
 कुच भाटा, गाजर अधर, मूग से भुज भाइ ।
 बैठी लौका बेचई, लेटी खीरा खाइ ॥ ६७७ ॥

कसाइन

हाथ लिपैं हथ्या फिरै, जोवन गरब हुलास ।
 धरै कसाइन रैन-दिन, बिरही रक्त पिपास ॥
 नैन कतरनी साजि कै, पलक सैन जब देइ ।
 बरुनी की टेढ़ी छुरी, लेह छुरी सो टेइ ॥ ६७८ ॥

तबाखिन

हियरा भरै तबाखिनी, हाथ न लावन देत ।
 सुरवा नैक चखाइ कै, हडी भारि सब देत ॥
 अधर सुघर, चख चीकनै, वे भरहै तन गात ।
 वाकौ परसौ खात ही, बिरही नहिँन अघात ॥ ६७९ ॥

तेलिन

बेखन तिली सुवास कै, तेलिन करै फुलैल ।
 बिरही दृष्टि कियौ फिरै, ज्यों तेली कौ बैल ॥
 कबहुँ मुख रूखौ किएँ, कहै जीय की बात ।
 वाकौ करवौ बचनै सुन, मुख मीठौ ह्वै जात ॥ ६८० ॥

पटवाइन

पाटंबर पटइन पहरि, सेंदुर भरे । ललाट ।
 बिरही नैकु न छाँडई, वा पटवा की हाट ॥
 रस रेसम बेचत रहै, नैन सैन की सात ।
 फूँदी पर कौ फौदना, करै कोटि जिय घात ॥६८१॥

भटियारी

भटियारी अरु लच्छमी, दोऊ एकै घाते ।
 आवत बहु आदर, करै, जात न पूछै बात ॥
 भटियारी उर मुः करै, प्रेम पथिक कौ ठौर ।
 छौस दिखावै और कों, गत दिखावै और ॥६८२॥

कमागरी

करै गुमान कमागरी, भौह कमान चढ़ाइ ।
 पिय कर गढ़ि जब खैंचई, फिर कमान सी जाइ ॥
 जो गति है पिय रस परस, रहै रोष जिय टेक ।
 स्धी करत कमान ज्यो, बिरह-अग्नि मे सेक ॥६८३॥

तीरगरनी

हँसि-हँसि मारै नैन सर, बारत जिय बहु पीर ।
 बेम्हा हूँ उर जात हौ, तीरगरन कै तीर ॥
 प्रान सरीकन साल दै, हेरि फेरि कर लेत ।
 दुख सकट पै काढ़िकै, सुख सरेस मे देन ॥६८४॥

छीपिन

छीपिन छापौ अधर कौ, सुरंग पीक भर लेत ।
 हँमि-हँमि काम-कलोल में, पिय-मुख ऊपर देत ॥
 मानों मूरति मैं की, धरै रंग सुर तंग ।
 नैन रंगीले होत हैं, देखत वाकौ रंग ॥६८५॥

सिकलीगरनी

सकल अग सिकलीगरनि, करत प्रेम औसेर ।
 करै बदन दर्पन मनो, नैन मुसकला फेरि ॥
 अंजन चख चंदन बदन, सोभित सेदुर मग ।
 अग्नि रंग सुरंग कै, काढ़ै अग अनंग ॥६८६॥

सक्किन

करै न काहू की सका, सक्किन जोबन रूप ।
सदा सरम जल तें भरी, रहै चिबुक कै कूप ॥
सजल नैन वाके निरखि, चलत प्रेम-सर फूट ।
लोक-लाज उर लागिते, जात मसरु सी छूट ॥६८७॥

गंधिन

सुरंग बसन तन गंधिनी, देखत दगन अघाय ।
कुच माजू कुटली अधर, मोचन चरनन आय ॥
कामेश्वर नैननि धरै, करत प्रेम की केलि ।
नैन मोहिं चोवा नरै, छोरन मोहि फुलेल ॥६८८॥

रजपूतनी

राज करत रजपूतई, देस रूप के दीप ।
कर घूँघट पट आंट क, आवत पियहि समीप ॥
सोभित मुख ऊर धरै, सदा सुरति-मैदान ।
छूटी लटै बँडूकची, भौहे रूप कमान ॥६८९॥

तुरकनी

चतुर चपल कोमल बिमल, पग परसत सतराइ ।
रस ही रस बस कीजिए, तुरकिन तरकि न जाइ ॥
सीस चूंदरी निरखि मन, परत प्रेम के जार ।
पान इजारै लेत है, वाकी लाल इजार ॥६९०॥

जोगिन

जोगिन जोगि न जानई, परै प्रेम रस मोहि ।
बोलत मुख ऊर लिये, प्रेम-जटा की छाँहि ॥
मुख पै बैरागी अलक, कुच सिंगी विष बैन ।
मुदरा धारै अधर के, मृंद ध्यान सो नैन ॥६९१॥

भाटनी

भाटन भटकी प्रेम की, हटकी रहै न गेह ।
जोबन पर लटकी फिरै, जोरत तरक सनेह ॥
मुक्त-माल उर दोहरा, चौपाई मुख लान ।
आपुन जोबन-रूप की, अस्तुति करै न कौन ॥६९२॥

डोमनी

लेत चुगाएँ डोमनी, मोहन रूप सुजान ।
गाइ-गाइ कछु लेत है, बाँकी तिरछी तान ॥
नैकु न सूखे मुख रहै, झुकि हँसि मुरि मुसक्याइ ।
उपपति की सुनि जात है, सरबस लेइ रिझाइ ॥६१३॥

चेरी

चेरी माँती मैंन की, नैन सैन के भाइ ।
संक-भरी जँझुवाइ कै, भुज उठाय अंगराइ ॥
रंग रगराती फिरै, चित्त न लावै गोह ।
सब काहू तें कहि फिरै, आपुन सुरति-सनेह ॥६१४॥

नटिनी

बाँस चढ़ी नट वंदनी, मन बाँधत लै बाँस ।
नैन मैंन की मैंन तें, कटत कटाछन साँस ॥
अलबेली अद्भुत कला, सुध बुध लै बरजोर ।
चोर-चोर मन लेत है, ठौर-ठौर तन तोर ॥
बोलन पै पिय मन विमल, चितवति चित्त समाय ।
निम बामर हिंदू तुरकि, कौतुक देखि लुभाय ॥
लटक लेह कर' दोहगै, गावत अपनी ढाल ।
सेत लाल छवि दीसियतु, ज्यों गुलाब की माल ॥६१५॥

कंचिनी

कचन से तन कंचनी, स्याम कचुकी अग ।
भाना भाँनै भोगही, रहै घटा के संग ॥
नैननि भीतर नृत्य के, सैन देत सतराय ।
छवि ते चित्त छुआवही, नट के भाइ दिखाय ॥६१६॥

अहेरिन

हरि गुन आवज केसवा, हिंसा बाजत काम ।
प्रथम बिभासै गाइकै, करत जीत संग्राम ॥
प्रेम अहेरी साजि कै, बाँध परचौ रस-तान ।
मन मृग बधो रीझै नही, तोहि नैन के बान ॥६१७॥

मँगतिन

मिलत अंग सब मँगना, प्रथम मँग मन लेइ ।
 घेर घेर उर राखही, फेर फेर नहिं देइ ॥
 बहु पतंग जारत रहै, दोपक बारै देह ।
 फिरत, न गेहन आवही, मन जु चैटुआ लेह ॥६६८॥

पातुर

पान-पूतरी पातरी, पातर कला-निधान ।
 सुरति अंग चित चोरई, काय पाँच रस बान ॥
 उपजावै रस में बिगम, बिरस माहि रस नेम ।
 जो कीजै विपरीत रति, अतिहि बढावै प्रेम ॥
 कहै आन की आन कछु, बिरह पीर तन ताप ।
 औरै गाइ सुनावई, औरै कछु अलाप ॥६६९॥

जुकिहारिन

जुकिहारी जोबन लिपैं, हाथ फिरै रस हेत ।
 आपुन मास चखाइ कै, रक्त आन कौ लेत ॥
 विरही के उर में गडै, स्याम अलक की नौक ।
 बिरह पीर पर लावई, रक्त-पियासी जौक ॥७००॥

खटीकिन

बिरह बिथा खटकनि कहै, पलक न लावै रैन ।
 करत कोप बहु भाँति ही, धाड़ मैन की मैन ॥
 बिरह बिथा कोई कहै, समझै कछु न ताहि ।
 वाके जोबन रूप की, अकथ कथा कछु आहि ॥७०१॥

सबनीगरनी

सबै अंग सबनीगरनि, दीसत मन न कलक ।
 सेत बसन कीने मनो, साबुन लाइ मतग ॥
 बिरह बिथा मन की हौ, महा दिमल है जाइ ।
 मन मलीन जो धोवई, वाझौ साबुन लाइ ॥७०२॥

कुंदीगरनी

कुंदन सी कुंदीगरनि, कामिनि कठिन कठोर ।
 और न काहू की सुनै, अपने पिय के सोर ॥
 पगहि मौगरी सी रहै, पैम बज्र बहु खाइ ।
 रँग रँग अंग अनग के, करै बनाइ बनाइ ॥७०३॥

धुनियाइन

धुनियाइन धुनि रैन-दिन, धरै सुरति की भाँति ।
वाकौ राग न बूझही, कहा बजावै तोति ॥
काम पराक्रम जब करै, छुवत नरम होइ जाइ ।
रोम-रोम पिय के बदन, रूई सी लपटाइ ॥७०४॥

कोलिन

कोरनि कूर न जानई, पेम नेम के भाइ ।
विरही वाके भौन मे, ताना तनत भजाइ ॥
बिरह भार पहुँचै नहीं, तानी बहै न पेम ।
जोबन पानी मुख धरै, खैचे पिय के नैन ॥७०५॥

नगारचिन

घेरत नगर नगारचिन, बदन रूप तन साजि ।
घर घर वाके रूप कौ, रछौ नगारौ बाजि ॥
पहनै जो बिछुवा खरी, पिय के सँग अंगरात ।
रतिपति की नौबत मनो, बाजत आधी रात ॥७०६॥

दलालनी

मन दलमलै दलालनी, रूप अंग के भाइ ।
नैन मटकि, मुख की चटकि, गाहक रूप दिखाइ ॥
लोक-लाज कुल-कॉनि ते, नहीं सुनावत बोल ।
नैननि-सैननि मे करे, बिरही जन कौ मोल ॥७०७॥

ठठेरनी

निस दिन रहे ठठेरनी, झाजे माँजे गात ।
मुकता वाके रूप कौ, थारी पै ठहरात ॥
आभूषन बसतर पहिर, चितवत पिय-मुख ओर ।
मानों गढे नितब कुच, गडुवा ढार कठोर ॥७०८॥

कागदिन

कागद से तन कागदिन, रहै प्रेम के पाय ।
रीझी भीजी मैन-जल, कागद सी सिथलाइ ॥
मानों कागद की गुड़ी, चढी सु प्रेम-अकास ।
सुरति दूर चित खैचई, आइ रहै उर पास ॥७०९॥

मसीकरिनि

देखन के मिस मसिकरनि, पुनि भरमसि खिन देत ।
 चख टौना कछु डारई, सूझै स्याम न सेत ॥
 रूप जोति मुख पै धरै, छिनक मलीन न होत ।
 कच मानो काजर परै, मुख दीपक की जोति ॥७१०॥

बाजदारनी

बाजदारनी बाज पिय, करै नही तन साज ।
 बिरह पीर तन यो रहै, जर भंकिनि जिमि बाज ॥
 नैन अहेरौ साजि कै, चित पंछी गहि लेत ।
 बिरही प्रान सँचान को, अधर न चाखन देत ॥७११॥

जिलोदारनी

जिलोदारनी श्रुति जलद, बिरह अग्नि के तेज ।
 नाक न मोरै सेज पर, अति हाजर महि मेज ॥
 औरन कों धर सघन मन, चलै जु घूँघट माँहि ।
 वाके रग सुरंग की, जुलोदार पर छाँहि ॥७१२॥

भंगेरिनि

सोभा अंग भंगेरनी, सोभित माल गुलाल ।
 पना पीसि पानी करै, चखन दिखावै लाल ॥
 काहु अधर सुरंग धरि, प्रेम पियालौ देत ।
 काहु की गति मति सुरत, हरुवैई हरि लेत ॥७१३॥

बाजीगरनी

बाजागरनि बजार में, खेलत बाजी प्रेम ।
 देखत वाकौ रस रसन, तजत नैन ब्रत नेम ॥
 पीवत वाकौ प्रेम रस, जोई सो बस होइ ।
 एक खरे घूमत रहे, एक परे मति खोइ ॥७१४॥

कठिहारिनि

कठिहारी उर की कठिन, काठपूतरी आहि ।
 छिनक न पिय संग तें टरै, बिरह फँदै नहिं ताहि ॥
 करै न काहु कौ कहाँ, रहै किऐं हिय साथ ।
 बिरही कौ कोमल दियौ, क्यों न होइ जिमि काठ ॥७१५॥

डफालिनी

रीझी रहै डफालिनी, अपने पिय के राग ।
ना जानै सजोग रस, ना जानै वैराग ॥
अनमिल बतियां सब करै, नाही मखिन सनेह ।
डफली बाजै बिरह की, निस-दिन वाके गोह ॥७१६॥

गडिबारिन

बिरही के उर मे गढै, गडिबारिन कौ नेह ।
सिव-बाहन सेवा करै, पावै सिद्धि सनेह ॥
पैम पीर वाकी जनौ, कंटक हू न गडाइ ।
गाडी पर बैठै नहीं, नैननि सों गडि जाइ ॥७१७॥

महावतनी

बैठी महत महावतनि, धरै जु आपुन अंग ।
जोबन-मद में गलि चढी, फिरै जु पिय के संग ॥
पीत काँछ कचुकि तियन, बाला गहै कलाव ।
जाहि ताहि मारत फिरै, अपने पिय के ताव ॥७१८॥

धोबिन

धोबन लुब्धी प्रेम की, ना घर रहै, न घाट ।
देत फिरै घर-घर बगर, लुगरा धरै लिलाट ॥
सुरति अंग मुख मोर कै, राखै अधर मरोरि ।
चित्त गदहरा ना हरै, बिन देखें वा ओर ॥७१९॥

चमारिन

चोरत चित्त चमारिनी, रूप रग के साज ।
लेत चलाएँ चाम के, दिन हूँ जोबन-राज ॥
जाइ क्यों न ब्रत नेम सब, होइ लाज-कुल हानि ।
जो वाके मग पौढई. प्रेम अघोरी तानि ॥७२०॥

चूहरी

हरी भरी गुन चूहरी, देखत जीव कलक ।
वाके अधर कपोल कौ, चुबौ परै जिम रग ॥
परमलता सी लहलही, धरै प्रेम-संयोग ।
कर गहि गरै' खगाइये, हरै विरह कौ रोग ॥७२१॥

२-विविध जातीय नायिकाएँ

[देव कृत् 'जाति-विलास' और 'रस-विलास' के अनुसार]

★

ब्राह्मणी

गंग-तरंग बीच बरगन ठाढ़ी करै जप, रूप उदोती ।
'देव' दिवाकर की किरनै, निकसै-बिकसै मनु पकज-जोती ॥
नीर भरी अलकै निचुरै, छुटिकै छलकै मनो माँग के मोती ।
बिज्जुल सी लपटै झलकै, कन कज्जल सी, अंग उज्जल घोती ॥७२२॥

रजपूतनी

भाग भरी, अलुराग भरी, बड भागिन सुद्ध सुहागिन छाजै ।
अंग अनंग-तरंगनि जानि, इकगनि ये सब सगनि साजै ॥
संचित कै रुचि बचि बधूनि, सु 'देव' बिरचि रची सुनि लाजै ।
प्रेम भरी पुर-भूप-सुता, गुन-रूप रची रजपूतनि राजै ॥७२३॥

वैश्यनी

पीरे पीन कुचन पै कसुकी बदन कसी,
निकसी निकाई परै सूहे की सुहाती मे ।
गोरे गरै नरै लरै मोतिन की, तामे-
झमकत धुकधुकी, जैसै दूलहै बराती मे ॥
'देव' चित चुभै, वैसै न छुवै बाजूबंद,
ललकत लाल लगिवे कों रंगराती मे ।
नवजोबनी की जोबनी की जोति जीति रही,
कैसी बनैनी की बनी, नीकी छवि छाती मे ॥ ७२४ ॥

शूद्रा

नेह सो निचौरै, चित चोरै, डीठ जोरै, कौन-
डोरै लागी डोरै डार सुरति अहार की ।
सौने के सरोज से उरोज उमगौहै, गोरे-
अंग मे सुहाई 'देव' सुही जरतार की ॥
कंठ मिरिकंठ, कटि किकिनी, कँगन कर,
ऊजरे पगनि, गूजरी सु झमकार की ।
चंद सौ बदन, मंद हँसनि, गायंद गति,
कौबरी कुरंग-नैनी कुँवरि किरार की ॥ ७२५ ॥

खतरानी

ज्यो बिन ह्री गुन अ क लिखै, धुनि यो करिकै करता करि हार्यौ ।
 'देव' सु बानिक देखि अचानक, आन कहुँन कौ आन-कुमार्यौ ॥
 लाज लचै तिय ओर रचै, बिन काज बिरंचि विचारि विचार्यौ ।
 बारिऐ कोटि मची-रतिरानी, इतौ खतरानी कौ रूप निहार्यौ ॥ ७२६ ॥

जौहरिन

साँची सुधा बुंदन सी, कुंदन की बेलि किधौ-
 साँचे भरि काढी रूप-ओपन भरति है ।
 पोखी पुखरागन बिमुख नख-सिख कर,
 चरन-अधर बिद्रुमन ज्यों धरति है ॥
 हीरा सी हँसनि, मोती-मानिक दसन,
 सेत-स्यामता लसनि दग, हीरा कों हरति है ।
 जोबन जबाहिर सों जगमग होत जात,
 जौहरी की जोड़, जग जौहर करति है ॥ ७२७ ॥

कायस्थिन

रीझै रिझबार इंदु-बदनी उदार सूर,
 रूख की सी डार, डोलै रंक रखियाँ मे ।
 साँबरी, सलौनी, गुनवंत, गजगौनी महा,
 सुदर सुघर लाख-लाख लखियाँ में ॥
 जागी सब रैन, बड़ भागी पिय प्यारे सग,
 प्रेम-रस पागी अनुरागी रखियाँ मे ।
 दारचौ से दसन, मंद हँसनि बिसद भरी,
 सद भरी सोभा, मद भरी अँखियाँ मे ॥ ७२८ ॥

मोदिन

मदन के मोद भरी, जोबन प्रमोद भरी
 मोदी की बहू की दुति देखै तिन दूनी सी ।
 चाब रहै चित में, चितौत दारिद न राखी,
 बोख मोख मीठी खाँड घीड तें न ऊनी सी ॥
 राजबाट बीच, बाट पारति बटोहिन की,
 बाट घाट तौलै, मनु ओखिन मे खूनी सी ।
 चूनरी सुरंग, अंग ईगुर के रंग 'देव',
 बैठी परचूनी की दुकान पर चूनी सी ॥ ७२९ ॥

हलवाइन

मीठी महा मृदु बोल कहै, लघु बोल कहै मुसुकाइ सुभाइनि ।
 'देव' मुलाइ बटोहिन बाट, डुरावत चौर लिऐं चित-चाइनि ॥
 रूप अनूप भरी नख ते सिख, सुच्छ सुधार सही की रसाइनि ।
 हाट के ऊपर हाटक-बेलि सी, बेचत है हलवा हलवाइनि ॥७३०॥

गधिन

अरगजै भीजै मरगजै बागैं बनी-ठनी,
 हाट पर बैठी आन ही सुघरपन सों ।
 इ दु सौ बदन, मृगमद-बिदु बेदी भाल,
 भलकै कपोल गोल दूने दरपन सो ॥
 मैंन-मद छाके नैन, देखि 'देव' मुनि मोहै,
 सोहै सटकारे बार कारे सरपन सों ।
 बधु कीए मधुप, मदंध कीए पुरजन, सु-
 मोह्यौ मन गंधी की, सुगंध भरपन सों ॥ ७३१ ॥

अहीरिन

माखन सौ मन, दूध सौ जोवन, है दधि तें अधिकै उर ईठी ।
 छैल-छबीली की छाछ के आगें, समेत सुधा बसुधा सब सीठी ॥
 नैनन नेह चुवै कवि 'देव', बुझावत चैन बियोग अमीठी ।
 ऐसी रसीली अहीरी अहै, कछु न लगै मनमौहनै मीठी ॥७३२॥

सुनारिन

'देव' दिखावत कंचन सौ तन, औरन कौ मन तावै अगौनी ।
 सुंदर साँचे मे दै भरि काढी सी, आपुने हाथ गढ़ी विधि सौनी ॥
 सोभित चूनरी स्याम किसोरी के, गोरी गुमान भरी गजगौनी ।
 कुंदन-लीक कसौटी मे लेखी सी, देखी सुनारिन नारि सखौनी ॥७३३॥

तमोलिन

रंगत चोली ते ढोली खरी चुनि, चार सौ आछे उधेरि अमेठी ।
 गोरी गुलाब लै-लै छिरकै छवि भाव सो, 'देव' सुभाव सो ऐठी ॥
 सौने से अंग, सुरंगन ओठनि, कौन कॅ जात हिए मे न पैठी ।
 ऊँची दुकान पै बेचत पान, तमोरिन ऐचत सीचत बैठी ॥७३४॥

छीपिन

सौने से सौहत गातन मोहै, सुहागिन की अति सौहैं सुहाई ।
 'देवजू' आवै लगी अँखियाँ न में, देखतई मुख की अरुनाई ॥
 ज्यों-ज्यों रंगे पट रंग निचोरत, त्यों निचुरै अँग-अंग निकाई ।
 'दै छवि-छापै' करै मन छाप, सु छीपिन-बाल छिपै न छिपाई ॥७३५॥

दरजिन

अंतर पैठि दुहूँ पट कै, कवि 'देव' निरंतरता उर आनै ।
 देत मिलाइ घने अपने गुन, सार सुई, किधौ दूती सुजानै ॥
 ताहि लिए कर मे घर मे रहै, जाहि सिऐ भरमै सोई छानै ।
 होत करेजन की दरजै, दरजी की बहू बरजी नहि मानै ॥७३६॥

पटवाइन

रेसम के गुन छीन छरा करि, छोरति ऐचि सनेह रचावै ।
 'देव' दसौ अँगुरी उरझाई कै, डोरी गुहै, रस-रंग लचावै ॥
 मोहित सी, मन मोहत सी, जन जोहत सी, तनी भौह लचावै ।
 चंचल नैनन-सैनन सों, पटवा की बहू नटबा से नँचावै ॥७३७॥

कुम्हारिन

चंदमुखी मुरि मंद हँसै मुख-मोतिन कौ गहि खोल्याँ डबा सौ ।
 'देव' सुधा भरे, ऐंठ उठे कुच, भेटि अघात मही मघबा सौ ॥
 रूप-उभार कुम्हार की जाई के, जोबन कौन तचायौ तबा सौ ।
 काम के चक्र चढ़ायौ न को, घट वाकौ न कीनों अब्रास अब्रा सौ ॥७३८॥

नाइन

घर-घर डोलत सुघर नर मोहिबे को,
 ऊवरी फिरत सब मुख सुखदैनियाँ ।
 जाबक के मिस काम-पाबक जगावै 'देव',
 हिय को हरत यों करत कर-सैनियाँ ।
 प्रेमी अनुरागिन कौ हियरौ रिझावै,
 अरुझावै, सुरझावै, बिरुझावै नैन पैनियाँ ।
 बैनी गुहिबे को पिकबैनी सी तनैनी फिरै,
 पैनी चितवनि की चपलनैनी नैनियाँ ॥७३९॥

मालिन

बीनत फिरत फूल, दारघौ-दल से दुकूल,
 खुले भुज-मूल, लटै घूमै ज्यो अलनियौ ।
 चौसर चमेली चारु पहिरै मिंगारहार,
 लर्चा कुच-भार, जीत लीनी है फलनियौ ॥
 जुही गुही माँग, आँख चपक-पराग जुही,
 'देव' लखै लोचन लजावति नलनियौ ।
 बाग में बिलोकी अनुराग की सी बौहनी सी,
 मौहिनी सुघर जगमौहिनी मलनियौ ॥७४०॥

कहारिन

जगमगे जोबन, जगी है रँगमगी जोति,
 लाल लहँगा पै पीरी ओढ़नी बहार की ।
 भाँक की भँबरिया मे, सफरी फरफरात-
 बेचत फिरत, बोलै बानी मनुहार की ॥
 चाहे हू न चाहै, चहुँ ओर तें गहत बाँ है,
 गावत उमाहै रोकि रहै चितहार की ।
 देखतई मुख, बिष-लहर सी आवै लगी,
 जहर से नैन, करै कहर कहार की ॥७४१॥

काछिन

राखै समाधान समाधान कै दिखैयन को,
 ईगुर से अंगनि, है आँगुरी गँवारि मे ।
 'देव' लही जगमगी जोबन जुन्हाई ऐसी,
 एते पै जुन्हाई पैठी सरोबर-बारि मे ॥
 बारन सुखावत, उघारे सीस गावत,
 भुलावत सी लोगन, फिरत चहुपारि मे ।
 आँचर अँगोछ-झौँछ, ओछ कुच पौछ लिप,
 कौछ मे कमल, डोलै काछिन कछार मे ॥७४२॥

कलारिन

आपु पिपे अरु औरन प्यावति, लाज के तूल ज्यो तूमति डोलै ।
 जोबन जेब जकी सी कलारि, छकी मद सों झुकि कूमति डोलै ॥
 गावत, रीझि-रिझावत त्यो, मतबारन कौ मुख चूमत डोलै ।
 काम के बान हनी हिय में, घर-बाहर घाइल घूमत डोलै ॥७४३॥

३-अनेक प्रदेशों की नृ-गिताएँ

[देव कृत 'जाति-विलास' और 'रस-विलास' के अनुसार*]

*

काश्मीरबधू

जोबन के रंग भरे ईंगुर से अंगन पै,
 एडिन लो छवि छाजै केसन के भीर की ।
 उचके उचौहै कुच-भार भलकति, भीनी-
 भिलमिली ओढनी किनारीदार चीर की ॥
 गुलगुले गोरे-गोरे कोमल कपोल, सुधा-
 बिंव बोल, इंदुमुखी, नासिका ज्यो कीर की ।
 'देव' दुति लहरात, छूटे छहरात केस,
 कोरी जैसी केसर, किसोरी काश्मीर की ॥ ७८९ ॥

मालवबधू

बोलन, चाल, बिलोकन सो, दिनई-दिन दूगुन नेह बढ़ावै ।
 अगई अंग अनंग तरंगनि, आदर सो उठ ओठन प्यावै ॥
 मालव देस की बाल मनोहर, बालम के चित की गति पावै ।
 जोग सबै, उपभोग भलै करि, भाँतिन भोग सुभोग करावै ॥ ७९० ॥

* "देव जी अच्छे गुणज्ञ की खोज में, अथवा तीर्थ-यात्रा के लिए या चाहे और ही किसी वारण से हो, देश भर में बराबर घूमने रहे । यह महागाज जहाँ गये वहाँ के मनुष्यों की चाल-ढाल, रीतियो और अन्यान्य दर्शनीय पदार्थों पर पूरा ध्यान देते रहे । जान पड़ता है इन्होंने काश्मीर, पंजाब, बंगाल, उड़ीसा मद्रास, बंबई, गुजरात, राजपूताना, बरार आदि सब देशों को घूम-घूम कर देखा । इन महाकवि न अपने भ्रमण द्वारा प्राप्त अपूर्व ज्ञान को वृथा नहीं खोया, वरन अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर उसका उपयोग किया है । 'जाति विलास' नामक ग्रंथ रचकर इन्होंने सब देशों की स्त्रियों का बड़ा ही सच्चा वर्णन किया । ... इसमें देवजी ने दिखा दिया है कि कवि की दृष्टि कितनी पैनी होती है और वह एक ही निगाह में कितना देख सकता है । जिस जाति और जिस देश की नायिका का कथन है, उसमें उस जाति के कर्म एवं उस देश के स्वभाव और रीतियों का ऐसा सच्चा वर्णन है कि कुछ कहते नहीं बनता ।"

—'हिंदी-नवरत्न'

कुरुदेशबधू

नख-खिल नेह भरी मदन-तरंगन सो,
 अंग-अंग 'देव' रंग-रंग रीझि रहिए ।
 साचै भरि काढी मानो नाचै दग खंजन, सु-
 देखै बिरहागिन की आँचै नहि सहिए ॥
 मोहै महासुंदरि, बिसोहै मन मुनिन के,
 को है ऐसी दूसरी सखौनी नागि लहिए ।
 गोरी मी किसोरी चितवनि बीच चोरी करै,
 भोरी कुरुदेम की कुरंगनैनी कहिए ॥ ७५१ ॥

सिंधुबधू

बसुधा को सोधिकै सुधारी बसु-धारन सो,
 सरब सुधारिन सुधारन सुबेस की ।
 धरम की धरनी, धरा सी धाम धरनी की,
 धर धरनी की, धन्य धन्यता धनेस की ॥
 सिद्धन की सिद्धी सी, असिद्धि असिद्धन की,
 साधता की साधक, सुधाई सुधावेस की ।
 सुधानिधि दानी, सुधानिधि की सुसुद्ध बिधि,
 सिंधुर-गवनि, गुनसिंधु सिंधुदेस की ॥ ७५२ ॥

मारवाड़बधू

चित्र की सी लिखी, चारु चित्रिनी विचित्र गति,
 रची है बिरचि निज रचना बिचार की ।
 रचकौ बची न रुचि रचनि बिरचि बाच्यौ-
 सचति सुचित सुचि सोभा सुख-सार की ॥
 रूप की सी मुद्रिका, समुद्र गुन-सील की सी,
 आदर उदारताई देवतरु-डार की ।
 काम की निसैनी, कसला सी सुखदैनी, पिय-
 प्यारी, पिक्रवैनी, मृगनैनी मारवार की ॥ ७५३ ॥

मन्यदेशबधू

कोकिल काम-कला सकलारि, कलानिधि सी, गुन-रूप निधान ।
 गीत-संगीत बिनीत सदा, सुभ कर्म पुनीत सबै सुख सानै ॥
 'देव' अचारि बिचारि रची, सुचि सौची सची, रचिकै पहिचानै ।
 अंतरवेद विचच्छन नारि, निरंतर अंतर की गति जानै ॥ ७५४ ॥

पर्वतबधू

पकज मे नैन, बैन मधुर पियूष जैसे
 अधरन धराधर सुधा सरबत की ।
 'देव' कोई वाके जोग भोगवै अखंड सुख,
 भौहन प्रकासी जोति कासो-करबत की ॥
 सील के सुभाइनि कहूँ न काहू कबहूँ,
 कि जबहूँ की तबहूँ करत गरबन की ।
 इदिरा सरूप, इदुबदर्ना, अनूप रूप-
 जोबन-उजारी, पिय 'प्यारी' परबत की ॥७५५॥

भुटंतबधू

चेटक सी चाल, चटकीलो रंग अगन काँ,
 चोट सी चलावै डीठ, गति हैं मतग की ।
 चुबन की हौसै उपजावत मयकमुखी,
 सारी सी पढ़त बैन, दारौ-दुति डत की ॥
 सोहै 'देव' देवतन, मोहै मुनि हूँ कौ मन,
 कत को अखंड धन, मोही रतिकत की ।
 बन बन-भारन मे, सघन पहारन मे,
 दामिनि सी देखियत कामिनी भुटंत की ॥७५६॥

पाटलबधू

चचल दगचल चपल चितवति चोगि,
 चितवति चारु चढ़ी चारुता प्रगटई ।
 हौंस भरी हँसति, लसति हुलसति हिण्डे,
 बिलसति बाल मनो नेह की निकटई ॥
 'देव' हरसत, बरसत मानो मैं-रस,
 सरस बचन रसना सो रचि रटई ।
 मोह की अधियारी में उजारी हूँ रमति रति,
 प्यारी पटना की, पट लपट निपटई ॥७५७॥

कुरमीबधू

नासिका कीर, लकीर सी भौहनि, तीर सी ताकनि, है पिकबैनी ।
 भौर अभीरनि भीतर भीर, सुभाइ भरी सु उभै रसद्वैनी ॥
 धीरज 'देव' अधीरज होत, चितौन चितौति अधीरज पैनी ।
 पीर हरै करबीर की कामिनि, छीरज से मुख, नीरजनैनी ॥७५८॥

बानधू

कंचन मण्डित रूपभरी, पहिरै पः लाल प्रकास बिलासिनि ।
सुंदर स्याम लची अभिराम, धरै सिर दाम गरें मृदु मालिन ॥
संगर मे न छुटै कटि मो, लपटी पिय-प्रानन आनन-पालिन ।
'देव' रहै हियरै लगिकै करवाल किभौ वर बाल बंगालिन ॥ ७१६ ॥

मग तबधू

प्रेम-मद मगन, उछाह-उमगन भरी.
मग न धरत पग, धूमत ज्यो बनिए ।
खोलै उर-बाहै, रति पैरति अथाहै,
उपभोग सिंधु माहै परिरंभ-सुख सनिऐ ॥
सुंदर सरस, रस-बस कीनौ प्यारौ पिय,
न्यारौ हिय तें न होत 'देव' विधि बनिए ।
रहैमि मिरावै काम-पावक-दगध पीर,
मगध की माननि अगाध गुन गनिऐ ॥ ७१७ ॥

उत्कलतबधू

बिरज विराजै रज रजत कियौ है, पोति-
गुज अलि पुजन लै कीनी कुंजगली सी ।
मूंदे मुख बाहर बिनत बिन बात डोलै,
अंतर निरंतर उनीदी भाँति भली सी ॥
रहत अबास ही सुबास सौ बसायौ बन,
'देव' अनुकूली मन फूली तन फली सी ।
खेलत सहेलिन नवल बाल चेलिन मे,
देखी उत्कल-बधू अबुज की कली सी ॥ ७१८ ॥

विन्ध्यवनबधू

ढूँढत फिरत रतिकत के इकत गृह,
पति की सुरति-मति मति भूली मन की ।
डोलति अकेली अकुलानी तिय केली-रस,
बेली सी नबेली तलबेली अति तन की ॥
डौडी को बजाइ, छोडी लाज, उपजाइ नेह,
गौडी नारि टौडि के उरैनि प्रेमपन की ।
झिलिमिली भाँई सी दिखाई पति-भार में-
महौषधि की बँटी सी, बधूटी विन्ध्यवन की ॥ ७१९ ॥

कामरूपधू

तीनिहुँ लोक नचावति फूँक मे, मत्र के सूत अभूर्त गती है ।
 आप महा गुनवंति गुसाँइनि, पाँइन पूजत प्रानपती है ॥
 पैनी चितौनि चलावति चेटक, को न कियौ बस जोगि-जती है ।
 कामरू-कामिनि काम-कला जगमौहिनि भामिनि भानमती है ॥७६३॥

कौशलवध

सील रुचि-रुचि संच रुचिर विरंचि रची,
 रचक सी सर्वारूप-बचित सी दामिनी ।
 बिमल विचित्र-विधि चित्र की सी लिखी चारु,
 रचना चरित्र सो विचित्र गति गामिनी ॥
 भोग-उपभोग अग संग सुख जोग जामै,
 प्रेम सो प्रसन्न लाज सनत बिरामिनी ।
 'देव' पति-देवता दिपति दुति देवता सी,
 देखी जग मे कुसल कौसल-कुल-कामिनी ॥७६४॥

विराटबधू

अरुन बसन सदा सोहत तरुनि-तन,
 कोमल करन चारु मार-सर मार की ।
 पिय के जियन जिम प्यारी हिय बसै प्रेम-
 रस-बस झाकी वाकी थाकी रति-भार की ॥
 तीखे नखियात तन, अघात न अधर-पान,
 मानत सुरति रुचि सुरतरु-डार की ।
 बारनगमनि, बडे बारन की, वर तनु,
 चंपक-वरनि, वरु बनित बिरार की ॥७६५॥

आभीरबधू

विधि की सी असिस असंघ भेष भूपन,
 बिसंघ सिख-नख रची रेख सी सुहावती ।
 कर-पद पदम पदमनैनी पदमिनी की,
 पदम सी सोभा सब देखन मे आवती ॥
 रमा रूप अधम सुरभा कौ प्रभन दै,
 अतुल मनोज-ओज आगिन सिरावती ।
 अंगन अभूति अति आभा अभिरामन को,
 अभिराम-आभरन आभीरिन भावती ॥७६६॥

गुजरातबधू

छित कौं सी छौनी, रूप-रासि सी इकौनी,
 विधि चाइ सो रचौनी गोरी कुंदन से गात की ।
 देव ' दुति दूनी दिन-दिन और हूनी ऐसी,
 अनहोनी कहूँ कोई गोरी दीप सात की ॥
 रति लागै बौनी, जाकी रंभा रुचि बौनी,
 लोचननि ललचौनी, सुख-जोति अबदान की ।
 इंदिरा अगौनी, इदु-इदीबर औनी,
 महा सुंदर, सखौनी, गजगौनी गुजरात की ॥७६७॥

सौबीरबधू

अभो बिधि कासु, तासो अभोजनि परदंभौ,
 भोजन अदंभौ, दित दुति है सरीर की ।
 आरंभित जोबन निदभ करै रंभा रुचि,
 रंभोर सुगभीर गुराई गुन-भीर की ॥
 चंद से बदन, मद हाँसी की अमच्छ विस्व,
 स्याम मकरद बास चंदन के चीर की ।
 काम हय सु दरा सी, 'देव' काम कंदरा सी,
 इंदिरा कौ मंदिर सु, सुंदरि सुबीर की ॥७६८॥

करनाटकबधू

सौंधैभरी, सूधी सी, सुधा निधि सुधारी बिधि,
 सहज सुबासन की रासि लहियत है ।
 जगमगै बसन, सुरंग रँगमगे अग,
 मदन-तरंगन के रंग चहियत है ॥
 बोलन, बिलोकन, चलन चतुराई,
 चारुताई सुधराई नीकी रीझ रहियत है ।
 प्रेम-परिपाटी, रूप-जोबन की पाटी पढ़ि,
 'देव' दुति साटी करनाटी कहियत है ॥७६९॥

तिलंगवधू

सौंभरी सुधर नारि महा सुकुमारी सोहै,
 मोहै मन मौहिन कौ मदन-तरंगिनी ।
 अनगने गुनन के गरब गहीर मति,
 निपुन सँगत-गीत सरस प्रसंगिनी ॥

परम प्रवीन, बीन मधुर बजावे, गावे,
 नेह उपजावे यो रिझावे पति-मगिनी ।
 चातुर सुभाइ, बक भौहन दिखाइ ' देव '
 दिगन अलिगन बनावति तिलगिनी ॥ ७७० ॥

कलिंगवधू

मदन के मद मतबारी नव सूमि झाकै,
 मदन थिरात न, मिराति रति-रग ना ।
 प्रीतम के रूप को मया सी अचवत तन,
 'यामीऐ रहत, जो लहत सुख-संग ना ॥
 प्रेम-रस बस 'यारै 'यार सो अवर-रस,
 लागत नखच्छत रुचिर भूष भग ना ।
 अ ग-अंग उमंगि अनग उपजावति,
 अलिगन अघात न, कलिंग की कुलगना ॥ ७७१ ॥

कुलबधू

गोरी गजराजगति, गुनन गहीर मति,
 भारे भाग ही रमति सुरति सेंकोचनी ।
 अलिगन-चु बन, अधर-पान, नख-दान,
 मान सो, बचन-रचना सो रुचि-रोचनी ॥
 जानै रीति जी कां, पहिचानै प्रीति नीकां,
 सुखदानी सबही की, 'यारी पी की दुखमोचनी ।
 केसर करै न सरि की कनक जाकी दरि,
 कोकनदर्श की नारि कोकनद-लोचनी ॥ ७७२ ॥

द्राविडवधू

देवता दरसियत, देवता सरस ' देव '
 इह विधि और नही देवि, नरी, नागरी ।
 सहज सुभाइ सुचि संचि रुचि सील मति,
 कोमल विमल मन सोभा सुख-सागरी ॥
 सुदर सुबास बास, कोमल कला-निधान,
 जानत तहाँ न ताहि चाहि चित आगरी ।
 देवी देस द्रविड की सुंदरी निबिड नेह,
 गुनन अनूप रूप ओपन उजागरी ॥ ७७३ ॥

४-आधुनिक नायिकाएँ

['हरिऔध' कृत 'रस-कलस' में उत्तमा नायिका के अंतर्गत]

पतिप्रेमिका

बैन कहे करुण पिय क, हरुण तिय बोलि सदा सनमानै ।
दोष अनेकन देत तऊ, कबहुँ अपने मन दोष न आनै ॥
ना करनी ही करै 'हरिऔध', पै बाल न नाकर-नकर ठानै ।
नाह के कीनै गुनाहन हूँ, तिय आपुनौ नेह निवाहन जानै ॥ ७७४ ॥

परिवारप्रेमिका

सुधा सने बैन के विद्यान में अविधि दे न, सहज सनेह की न साधना अधूरी है ।
सबतें सरस रहि सरसति सौगुनी है, भोरे-भोरे भावन ते भूरि भरी-पूरी है ॥
'हरिऔध' सौति के सुहाग ते सुहागिनी है, सास औ समुर की सराहना ते रूरी है ।
पति-पूत-यार-मानसर की मरालिका है, परिवार-पूत-प्रेम-पयद मयूरी है ॥ ७७५ ॥

जातिप्रेमिका

सरसी समाज-सुख-सरसिज पक की है,
सुरुचि सलिल की रुचिर सफरी सी है ।
नाना-कुल-कालिमा कलुष की कलिंदजा है,
कल-करतूत-मजु-मालिका लरी सी है ॥
'हरिऔध' बहु भ्रम-भँसर समूह भरी,
सकल कुरीति-सरि सबल हरी सी है ।
जाति-हित-पादप-जमात नवजीवन है,
जाति-जन-जीवन सँजीवन-जरी सी है ॥ ७७६ ॥

देशप्रेमिका

गौरवित सतत अतीत गौरवो ते होति,
गुरुजन-गुरुता तें कहाती, कबूलती ।
मुदिन बनति अबनीतल में फैलि-फैलि,
कीरति की कलित-लता को देखि फूलती ॥
'हरिऔध' प्रकृति-अलौकिकता अबलोकि,
प्रेम के हिडोले में है पुलकित भूलती ।
भारत की भारती-विभूति तें प्रभावित हैं,
भामिनी भली है, भारतीयता न भूलती ॥ ७७७ ॥

जन्मभूमिप्रेमिका

चकित बनति हेरि उच्चता हिमाचल की, चाहि कनकाचल की धारता-चरमता ।
 मुदित करति निशि-मानता है नीरत्रि की, मानम-मनाहरता मुरपुर की सप्रता ॥
 'हरिऔध' मोहकता हेरि मोहि-मोहिजाति, जन त-अना-प्रता मे है मन रमता ।
 महनीय-महिमा निहारि मर्ता है होति, ममतामई की मानमेदिनी की ममता ॥७७८॥

निजतानुरागिनी

सुंदर सिंदूर-बिंदु ही ते सुंदरी है होति,
 पोडर कों समझि असुंदर डरति है ।
 सौंधे के सुबास तें सुबासित रहित भूरि,
 साबुन के परसैं उसानन भरति है ॥
 'हरिऔध' पर के असन को असनि कहे,
 आपने बसन-ब्रेम कों न बिसरति है ।
 सारी असवारी हू पहिरि पुलकति प्यारी,
 साया परे साया के सबाया सिहरति है ॥ ७७९ ॥

लोकसेविका

रूखी-रूखी बात न ते रूख बदलति नाहिं,
 रूखी ना पति है, रखाई देखि रूखे की ।
 खोवति न साख, सीख देति है सखीन हू कों,
 सुखी ना रहति, सुखी नमैं देखि सुखे की ॥
 'हरिऔध' खूखापन काहि अखरत नोहि,
 खूखी है बनति मूठी बान सुनि खूखे की ।
 दुखित कों करिकै अदूखित सुखित होति,
 भूखित न होति बाल, भूख देखि भूखे की ॥ ७८० ॥

धर्मप्रेमिका

भजनीनीय प्रभु के भजन किए भाव साथ,
 यजनीय जन के यजन-काज तरसै ।
 लोक अवलोकि परलोक-साधना में लगै,
 बचै लोभ-मूल-लोक-लालसा-लहर सै ॥
 'हरिऔध' परम पुनीत अंगना है होति,
 बार-बार नैनन तें प्रेम-बारि बरसै ।
 धरम-धुरीन की सहज धारना के धरे,
 पग-धूरि धरम-धुरंधर की परसै ॥ ७८१ ॥

परिशिष्ट

—२—

संस्कृत साहित्य में नायिकाभेद का क्रम



१-भरतमुनि

[“नाट्यशास्त्र” (प्रायः प्रथम शताब्दी) के अनुसार]

(१) नायिका की = अवस्थाएँ—

१. बासकसज्जा, २. विरहोत्कठिता,
३. स्वाधीनभर्तृका, ४. कलहांतरिता,
५. खडिता, ६. विप्रलब्धा,
७. प्रोषितपतिका, ८. अभिसारिका ।

(२) नायिका के ४ भेद—

१. दिव्या, २. नृपतिनी, ३. कुल स्त्री, ४. गणिका

(३) ३ प्रकार की स्त्रियाँ—

१. वेश्या, २. कुलजा, ३. प्रेम्णा

(४) प्रकृति के विचार से ३ प्रकार की स्त्रियाँ—

१. उत्तमा, २. मध्यमा, ३. अधमा

(५) स्त्रियों का ४ प्रकार का यौवन—

१. नवयौवना, २. द्वितीययौवना, ३. तृतीययौवना, ४. चतुर्थयौवना

(६) ४ प्रकार की नायिकाएँ—

१. धीर, २. ललित, ३. उदात्त, ४ निभृत

(७) राजाओं के आंतरिक गण—

१. महादेवी, २. देवी, ३. स्वामिनी, ४ स्थायनी, ५. भोगिनी,
६. शिल्पकारिणी, ७. नाटकी, ८. नर्तकी, ९. अनुचारिका,
१०. आयुक्ता, ११. परिचारिका, १२. संचारिणी, १३. प्रेषणकारिका
१४. सुमहत्तरा, १५ प्रतिहारी १६. कुमारी, १७ स्थविरा

२-धनंजय

[“दशरूपक” (प्राय १० वीं शताब्दी) के अनुसार]

(१) नायिका के ३ प्रकार—

- १ — स्वकीया (१) मुग्धा १. वयोमुग्धा
 २. काममुग्धा
 ३. रतिवामा
 ४. कोपमृदु

- (२) मध्या १. यौवनवती
 २. कामवती

- (३) प्रगल्भा १. गाढयौवना
 २. भावप्रगल्भा
 ३. रत्नप्रगल्भा

धीरादिभेद—

१. मध्या धीरा २. मध्या अधीरा ३. मध्या धीराधीरा
 ४. प्रगल्भा धीरा ५. प्रगल्भा अधीरा ६. प्रगल्भा धीराधीरा

२—परकीया

३—सामान्या

(२) अष्टनायिकाएँ—

- १—वासकसज्जा
 २—उत्कंठिता
 ३—खंडिता
 ४—विप्रलब्धा
 ५—प्रोषितभर्तृका
 ६—स्वाधीनपत्निका
 ७—कलहांतरिता
 ८—अभिसारिका

३-विश्वनाथ

[“माहृत्य-दर्पण” (प्रायः १४ वीं शताब्दी) के अनुसार]

(१) नायिका के ३ प्रकार—

- १ — स्वस्त्री (१) मुग्धा १. प्रथमावतीर्णयौवना
२. प्रथमावतीर्ण मदनविकारा
३. रतिवामा
४. मानमृदु
५. समधिक लज्जवर्ती

- (२) मध्या १. विचित्रसुरता
२. प्ररुदस्मरा
३. प्ररुदयौवना
४. ईषत्प्रगल्भवचना
५. मध्यमत्राडिता

- (३) प्रगल्भा १. स्मरान्धा
२. गाढतारुण्या
३. समस्तरतकोविदा
४. भावोन्नता
५. दरव्रीडा
६. आक्रान्ता

मध्या-प्रगल्भाभेद

- १-मध्या धीरा, २-मध्या धीराधीरा, ३-मध्या अधीरा
४-प्रगल्भाधीरा, ५-प्रगल्भा धीराधीरा ६-प्रगल्भा अधीरा
२—परकीया १. परोढा (कुलटा), २. कन्यका
३—सामान्या

(२) नायिका के ८ प्रकार—

- १-स्वाधीनपतिका, २-खंडिता, ३-अभिसारिका,
४-कलहांतरिता, ५-विप्रलब्धा, ६-प्रोषितभर्तृका,
७-बासकसज्जा, ८-विरहोत्कण्ठिता

(३) नायिका के ३ प्रकार—

- १-उत्तमा, २-मध्यमा ३-अधमा

४-भानुदत्त

["रसमंजरी" (प्रायः १४ वीं शताब्दी) के अनुसार]

(१) नायिका के ३ प्रकार—

१-स्वीया (१) मुग्धा [१] अंकुरितयौवना (१. ज्ञातयौवना २. अ०यौ०)

[२] नवोढा [३] विश्रब्धनवोढा

(२) मध्या

(३) प्रगल्भा [१] रनिप्रीता, [२] आनंदात्संमोहा

मध्या-प्रगल्भा भेद

१-मध्या धीरा, २-मध्या अधीरा, ३-मध्या धीराधीरा,

४-प्रगल्भाधीरा, ५-प्रगल्भाअधीरा, ६-प्रगल्भाधीराधीरा

प्रति प्रेमानु नाग छै भेद

१-धीरा ज्येष्ठा, २-धीरा कनिष्ठा ३-अधीरा ज्येष्ठा,

४-अधीराकनिष्ठा, ५-धीराधीरा ज्येष्ठा, ६-धीराधीरा कनिष्ठा

२-परकीया [१] परोढा १. गुप्ता (१. भूत, २. भविष्यत्, ३. वर्तमान)

२. विदधा (१. वाग्विदधा, २. क्रिया विदधा)

३. लक्षिता, ४. कुलटा, ५. अनुशयना (१. वर्त.

स्थान विघट्टना २. भावीस्थान अभावशंका

३. संकेतस्थालनष्टा) ६. मुदिता

[२] कन्यका

३-सामान्या

(२) दशानुसार ३ प्रकार—

१-अन्य सभोगदुःखिता, २-वक्रोक्ति ग० [१] प्रेम ग० [२] मौर्द्व्य ग०

३-मानवती [१. लघु मान, २ मध्यम मान, ३. गुरु मान]

(३) अष्ट नायिकाएँ—

१-प्रोषितभर्तृका (मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा) (परकीया) (सामान्या)

२-खडिता (" " ") (") (")

३-कलहांतरिता (" " ") (") (")

४-विप्रलब्धा (" " ") (") (")

५-उक्ता (" " ") (") (")

६-बासकसजा (" " ") (") (")

७-स्वाधीनपतिका (" " ") (") (")

८-अभिसारिका (" " ") (१. ज्यो. अभि. (")

(२. दिवा. अभि. (")

(३. तमो. अभि. (")

(४) पुनः ३ प्रकार—

१-दिव्य, २-अदिव्य, ३-दिव्यादिव्य

(५) तीन प्रकार की नायिकाएँ— १-उत्तमा, २-मध्यमा, ३-अधमा

परिशिष्ट

—३—

व्रजभाषा साहित्य में नायिकाभेद का क्रम



१-उपाराम

[“हितरंगिनी” (सं० १५१८) के अनुसार]

★

(१) लौकिक मर्यादा के अनुसार ३ भेद —

- | | |
|--------------------------------|---|
| १—स्वीया (१) मुग्धा | <div style="display: inline-block; vertical-align: middle;"> <div style="display: inline-block; vertical-align: middle;">[१] अज्ञातयौवना</div>
 <div style="display: inline-block; vertical-align: middle;">[२] ज्ञातयौवना</div>
 <div style="display: inline-block; vertical-align: middle;">[३] नवोद्गा (१. ललिता,
२. वयःसंधि, ३. उदितयौवना</div>
 <div style="display: inline-block; vertical-align: middle;">[४] विश्रब्ध नवोद्गा</div> </div> |
| (२) मध्या | |
| [१] साधारण मध्या | |
| [२] अतिविश्रब्धनवोद्गा मध्या | |
| (३) प्रौढा | [१] रतिप्रिया |
| | [२] आनन्दमत्ता |

उपेष्टा-कनिष्ठा

२—परकीया (१) अनूढा

- (२) ऊद्गा [१] परप्रिया
[२] परविवाहिता

परकीया के भेद—

- (१) ललिता [१. क्रिया ललिता, २. वचन ललिता
३. प्रत्यक्ष ललिता]
(२) विदग्धा [१. वाक्य विदग्धा, २. क्रिया विदग्धा
(३) कुलटा

(४) सुदिता

(५) स्वयदूति

(६) अनुशयना [१. प्रथम, २. द्वितीय, ३. तृतीय]

(७) सुरतिगोपना [१. भूत, २. भविष्यत, ३. मिश्रित]

३—सामान्या [१. सुग्धा (अज्ञात, ज्ञात, नवोढा, विश्रब्ध नवोढा),
२. मध्या, ३. प्रौढा]

(२) प्रकृति के अनुसार ३ भेद —

१—उत्तमा (१—स्वीया, २—परकीया)

२—मध्यमा (स्वीया)

३—अधमा (स्वीया)

मानभेद—(सुग्धा, मध्या, प्रौढा, परकीया और सामान्या में)

१. लघु, २. मध्यम, ३. गुरु

॥ धीरादिभेद—(मध्या, प्रौढा, परकीया और सामान्या में)

१. धीरा, २. अधीरा, ३. धीराधीरा

मानमोचन—(१. भेद, २. उपेक्षा, ३. साम, ४. दान, ५. प्रनति,
६. उद्दीपन, ७. ज्ञान, ८. आलंबन, ९. त्रास)

(३) अन्य भेद—

१—अन्यसंभोगदुःखिता (स्वीया, परकीया, सामान्या)

२—गर्विता (१) वक्रोक्ति [१. रूपगर्विता, २. गुणगर्विता ३. प्रेमगर्विता]
[१. स्वीया, २. परकीया, ३. सामान्या](२) सरल्लोक्ति [१. रूपगर्विता, २. गुणगर्विता, ३. प्रेमगर्विता]
[१. स्वीया, २. परकीया ३. सामान्या]

(४) अन्य भेद —

१. स्वाधीनपत्तिका (१. स्वीया, २. परकीया, ३. सामान्या)

२. वासकसज्जा (, , ,)

३. उक्ता (, , ,)

४. अभिसारिका (, , ,)

५. विप्रलब्धा (, , ,)

६. खंडिता (, , ,)

७. कलहंतरिता (, , ,)

/ ८. प्रवत्स्यपत्तिका (, , ,)

९. प्रोषितभर्तृका (, , ,)

१०. स्वागतपत्तिका (, , ,)

२-केशवदास

[^१ “रसिकप्रिया (सं १६४८) के अनुसार]

★

(१) जाति अनुसार—

१-पद्मिनी, २-चित्रिनी, ३-शंखनी, ४-हस्तिनी

(२) कर्मानुसार—

१—स्वकीया (१) मुग्धा [१. नवलबधू, २. नवजोबना,
३. नवलअनंगा, ४. लज्जाप्रायराते]

(२) मध्या [१. आरूढ़जोबना, २. प्रगल्भावचना,
३. प्रादुर्भूत मनोभवा, ४. सुरतिविचित्रा]
१. धीरा, २. अधीरा, ३. धीरा-अधीरा

(३) प्रौढ़ा [१. समस्तरसकोविदा २. विचित्रविभ्रमा
३. आक्रमित, ४. लुब्धापति]

१. धीरा (सादरा धीरा, धीरा आकृति गुहा)

२. अधीरा, ३. धीरा-अधीरा

२—परकीया (१) ऊढ़ा

(२) अनूढा

(३) अष्ट प्रकार की नायिकाएँ—

१-स्वाधीनपतिका (प्रच्छन्न और प्रकाश)

२-उत्का (, ,)

३-बासकसज्जा (, ,)

४-अभिसंधिता (, ,)

५-खंडिता (, ,)

६-प्रोषितपतिका (, ,)

७-विप्रलब्धा (, ,)

८-अभिसारिका (, ,)

१. स्वकीया अभिसारिका, २. परकीया अभिसारिका,

३. सामान्या अभिसारिका, ४. प्रेमाभिसारिका (प्रच्छन्न, प्रकाश)

५. गर्वाभिसारिका (प्रच्छन्न, प्रकाश) ६. कामाभिसारिका (प्र०, ,)

(४) गुणानुसार—

१-उत्तमा, २-मध्यमा, ३-अधमा ।

३-चितामणि

[“कविकुलकल्पतरु” (स० १७०७) के अनुसार]

(१) नायिका के ३ प्रकार—

१-दिव्य २-अदिव्य ३-दिव्यादिव्य ।

(२) कर्मानुसार—

१—स्वकीया (१) मुग्धा [१. वयःसधि, २. अविदितयौवना,
३. अविदितकामा, ४. विदित मनो०यौव०
५. नबोद्धा ६. विश्रब्ध नबोद्धा](२) मध्या [१. आरूढयौवना, २. आरूढ मदना,
३. विचित्रसुरता, ४. प्रगल्भ वचना](३) प्रौढा [१. प्रौढयौवनाप्रगल्भा, २. मदनमत्ता,
३. रतिप्रीतिमती ४. सुरतिमोदपरवशा]

मध्या-प्रौढा मानभेद

१. मध्या धीरा, २. मध्या अधीरा, ३. मध्या धीराधीरा
४. प्रौढा धीरा, ५. प्रौढा अधीरा, ६. प्रौढा धीराधीरा

ज्येष्ठा-कनिष्ठा

२—परकीया (१) ऊढ़ा (२) अनुद्धा.

१. सुरतिगोपना २. चतुर (१. वचन, २. क्रिया)

३. कुलटा, ४. खंजिता ५. अनुशयना ६. मुदिता

(३) आठ प्रकार की नायिकाएँ—

१-स्वाधीनपत्निका (मुग्धा, मध्या, प्रौढा) (परकीया) (मामान्या)

२-बासकसज्जा (“ ” ”) ,

३-विरह उत्कण्ठिता,

४-विप्रलब्धा

५. खंजिता,

६-कलहांतरिता

७-प्रोषितपत्निका,

८-अभिसारिका (ज्योत्स्नाअभि०, तमोभिसारिका, दिव्याभिसारिका)

(४) गुणानुसार—

१-उत्तमा, २-मध्यमा, ३-अधमा

४-मतिराम

[“रत्नेराज” (म० १७१० के लगभग) के अनुसार]

(१) कर्मानुसार—

१—स्वकीया (१) मुग्धा १. अज्ञातयौवना,
२ ज्ञातयौवना (१-नवोढा २-विश्रब्धानवोढा)

(२) मध्या,

(३) प्रौढा,

मध्या-प्रौढा भेद

१. मध्याधीरा, २. मध्या अधीरा, ३. मध्या धीराधीरा
४. प्रौढा धीरा, ५. प्रौढा अधीरा, ६. प्रौढा धीराधीरा

ज्येष्ठा-कनिष्ठा

२—परकीया (१) ऊढा, (२) अनूढा,

१-गुप्ता, २-विदग्धा (१. वचन २. क्रिया) ३-लक्षिता,

४-कुलटा, ५-मुदिता, ६-अनुशयना (पहली, दूसरी, तीसरी)

✓ ३—गणिका

(२) दशानुसार—

१-अन्यसंभोगदुःखिता, २-गर्विता (१. प्रेम गर्विता,

२. रूप गर्विता) ३-मानवती ।

(३) दश नायिकाएँ—

	मुग्धा, मध्या, प्रौढा	(परकीया)	(सामान्या)
१-प्रोषितपत्निका	(, , ,)	(,)	(,)
२-खंडिता	(, , ,)	(,)	(,)
३-कलहांतरिता	(, , ,)	(,)	(,)
४-विप्रलब्धा	(, , ,)	(,)	(,)
५-उत्कठिता	(, , ,)	(,)	(,)
६-बासकसज्जा	(, , ,)	(,)	(,)
७-स्वाधीनपत्निका	(, , ,)	(,)	(,)
८-अभिसारिका	(, , ,)	(कृ., च. दि.)	(,)
✓ ९-प्रवत्स्यप्रियसी	(, , ,)	(परकीया)	(,)
१०-आगतपत्निका	(, , ,)	(,)	(,)

(४) गुणानुसार—

१-उत्तमा, २-मध्यमा ३-अधमा

५-देव

[“रस-विलास” (सं० १७८० के लगभग) के अनुसार]

(१) नागरी—

(१) देवल—१. देवी, २. पूजनहारो, ३. द्वारपालिका

(२) राबल—१. राजकुमारी, २. धाय, ३. सखी, ४. दूती, ५. दासी

(३) राजनगर—१. जौहरिन, २. झीपिन, ३. पटवाइन, ४. सुनारिन, ५. गधिन, ६. तेलिन, ७. तमोलिन, ८. हलवाइन, ९. मोदिन, १०. कुम्हारिन, ११. दरजिन, १२. चूहरी, १३. गणिका ।

(२) पुरबासिन—१. ब्राह्मणी, २. राजपूतनी, ३. खतरानी, ४. वैश्यानी, ५. कायस्थनी, ६. शूद्रा, ७. नाइन, ८. मालिन, ९. धोबिन

(३) ग्रामीणा—१. अहीरिन, २. काळिन, ३. कलारिन, ४. कहारी, ५. नूनेरी

(४) बनबासिन—मुनितिय, २. ब्याधिनी, ३. भीलनी

(५) सेन्या—१. वृषली, २. वेश्या, ३. मुकेरिनी

(६) पथिकतिय—१. बनजारिन, २. जोगिन, ३. नटनी, ४. कुघेरनी

(१) जाति अनुसार—

१. पद्मिनी, २. चित्रिनी, ३. शंखिनी, ४. हस्तिनी

(२) कर्मानुसार—

१—स्वकीया

(१) अंशभेदानुसार—

१. देवी (७ वर्ष) २. देवगंधर्वी (१४ वर्ष) ३. गवर्धी (२१ वर्ष)

४. गंधर्व मानुषी (२८ वर्ष) ५. मानुषी (३५ वर्ष)

(२) ज्येष्ठा—कनिष्ठा

२—परकीया (१) अनुदा

(२) ऊदा—१. गुसा, २. विदग्धा (वचन वि०, क्रिया वि०)

३. ललिता, ४. कुलटा, ५. मुदिता, ६. अनुशयना

✓ ३—गणिका

* “रस विलास” के अतिरिक्त देव कृत नायिकाभेद के अन्य ग्रंथ ‘भाव विलास’, ‘भवानी विलास’ और ‘सुखसागर तरंग’ आदि हैं, जिनमें नायिकाभेद का और भी विस्तार किया गया है । “रस विलास” में वर्णित अनेक जाति और देश की नायिकाओं का वर्णन तो इन ग्रंथों में नहीं है, किंतु नायिकाभेद की परंपरा के अनुसार प्रचलित नायिकाओं का ही विशेष रूप से वर्णन किया गया है । जैसे पररतिदु खिता, प्रेमगर्विता, रूपगर्विता, गुणगर्विता, कुलगर्विता, मानिनी आदि अनेक नायिकाओं का कथन देव ने “रस विलास” में न कर अन्य ग्रंथों में विस्तार पूर्वक किया है ।

(३) गुणानुसार—१ सत् (उत्तमा), २. रज (मध्यमा) ३. तम (अधमा)

(४) देशानुसार—

१. मध्यदेशबधू, २. मगधबधू, ३. कौशलबधू, ४. पाटलबधू,
५. उत्कलबधू, ६ कलिंगबधू, ७. कामरूपबधू, ८. बंगबधू,
९. विन्ध्यवनबधू, १०. मालवबधू, ११. आभीरबधू, १२. विराटबधू,
१३. कु कलबधू, १४. केरलबधू, १५. द्राविडबधू, १६ तिलंगबधू,
१७. करनाटकबधू, १८. सिंधुबधू, १९. गुजरातबधू, २०. मारवाडबधू,
२१. कुरुदेशबधू, २२. कुरमीबधू, २३. पर्वतबधू, २४. भुटंतबधू,
२५. काश्मीरबधू, २६. सौबीरबधू।

(५) कालानुसार—

१. स्वाधीनपतिका, २. कलहांतरिता, ३. अभिसारिका, ४. विप्रलब्धा,
५. खंडिता, ६. उत्कण्ठिता, ७. बासकसज्जा, ८. प्रोषितपतिका।

(६) वयक्रमानुसार—

१—मुग्धा १. वयसंधि—१२ से १३ वर्ष (अज्ञात यौवना)

२. नवल बधू—१३ वर्ष } (ज्ञात यौवना)

३. नवयौवना—१४ वर्ष }

४. नवलअनंगा—१५ वर्ष (नबोढ़ा)

५. सलज्जरति—१६ वर्ष (विश्रब्ध नबोढ़ा)

२—मध्या १. रूढयौवना—१७ वर्ष

२. प्रगटमनोज—१८ वर्ष (प्रादुर्भूत मनोभवा)

३. प्रगल्भवचना—१९ वर्ष

४. विचित्रसुरता—२० वर्ष

३—प्रौढ़ा १. लब्धापति—२१ वर्ष

२. रतिकोविदा—२२ वर्ष

३. आक्रान्ता—२३ वर्ष

४. सविभ्रमा—२४ वर्ष

मध्या-प्रौढ़ा-मान

१. मध्या धीरा, २. मध्या मध्यमा, ३. मध्या अधीरा

४. प्रौढ़ा धीरा, ५. प्रौढ़ा मध्यमा, ६. प्रौढ़ा अधीरा

(७) प्रकृति अनुसार—

१. कफ प्रकृति, २ पित्त प्रकृति. ३. वात प्रकृति

(८) सत्त्वानुसार—

२. देव, २. मनुष्य, ३ गधर्व, ४ यक्ष, ५. किन्नर, ६. पिशाच,

७ नाग, ८ कपि, ९. काक।

६—रसलीन

[“रस प्रबोध” (सं० १७६६) के अनुसार]

(१) कर्मानुसार—

१—स्वकीया १—मुग्धा (१) अंकुरित यौवना,

(२) शैशव यौवना,

(३) नव यौवना (१-अज्ञात, २-ज्ञात)

(४) नवल अनगा (१-अविदित २-विदित)

(५) नवलबधू (१-नबोढा, २-विश्रब्ध नबोढा,
३-लज्जासक्ता रतिकोविदा)

मुग्धा पतिदुःखिता (१) मूढ पतिदुःखिता,

(२) बाल पतिदुःखिता

(३) वृद्ध पतिदुःखिता,

२—मध्या (१) उन्नत यौवना

(२) उन्नत कामा

(३) प्रलभ वचना

(४) सुरति विचित्रा

इनके अतिरिक्त

‘लघुलज्जा’ नामक

एक और भेद का

भी कथन किया है

३—प्रौढा (१) उन्नत यौवना

(२) मदनमत्ता

(३) लुब्धापति

(४) रतिकोविदा

(१) रतिप्रिया

(२) आनदाति

संमोहा

मध्या-प्रौढा धीरादि भेद

(१) मध्या धीरा, (२) मध्या अधीरा (३) मध्या धीराधीरा

(१. आकृति गोपना, २. सादरा)

(४) प्रौढा धीरा, (५) प्रौढा अधीरा (६) प्रौढा धीराधीरा ।

ज्येष्ठा-कनिष्ठा

२—परकीया (१) अनूढा १. उद्बुद्धा [स्वयंदूती] २. उद्बोधिता

(२) ऊढा [, , , ,]

१. असाध्या [१. समीता, २. गुरुजनसमीता,

३. दूतीवर्जिता, ४. अतिक्रान्ता ५. खलपृष्ठ]

२. सुखसाध्या [१ वृद्धबधू २ बालबधू

३ नपुंसकबधू ४ विधवाबधू ५. गुनीबधू

६. गुनरिक्वती, ७. सेवकबधू ८. निरंकुश

९. परतियासक्त पति की स्त्री, १०. अतिरोगी

की स्त्री]

अवस्था भेद से ६ प्रकार की परकीया—

१. गुप्ता [१. वर्तमान गुप्ता २. भूत गुप्ता ३. भविष्य गुप्ता]
२. विदग्धा (१) वचन विदग्धा [स्वयदूती]
(२) क्रियाविदग्धा [१. पतिवंचिता २. दूतीवंचिता]
३. लक्षिता [१. हेतु लक्षिता २. सुरति ल० ३. प्रकाश ल०]
४. कुलटा [१. मूढ पतिदुःखिता, २. बाल पतिदुःखिता
३. वृद्ध पतिदुःखिता]
५. मुदिता,
६. अनुशयना [१. स्थान विघटना, २. भावी स्थान साधन,
३. संकेत स्थल नष्टा]

स्वकीया और परकीया के ३ भेद—

१. कामवती, २. अनुरागिनी, ३. प्रेमासक्ता ।

(२) ३—सामान्या, १—स्वतन्त्रा, २—जननीश्राद्धीना ३—नेमता, ४—प्रेमदुःखिता
दशानुसार—

१—अन्यसुरतिदुःखिता

२—गर्विता (१. प्रेमगर्विता, २. वक्रोक्ति प्रेमगर्विता)

(१ रूपगर्विता, २. वक्रोक्ति रूपगर्विता)

(१. गुणगर्विता, २. वक्रोक्ति गुणगर्विता)

३—मानिनी,

(३) अष्ट नायिकाएँ—

१—स्वाधीनपत्तिका (सुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा) (परकीया) (सामान्या)

२—वासकसज्जा (" " ") (") (")

३—उत्कठिता (" " ") (") (")

४—अभिसारिका (" " ") (कृ०, शु०, दि०) (")

५—विप्रलब्धा (" " ") (परकीया) (")

६—खंडिता (" " ") (") (")

७—कलहांतरिता (" " ") (") (")

८—प्रोषितपत्तिका (" " ") (") (")

१—गमप्यत्पत्तिका (सुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा) (परकीया) (सामान्या)

२—गच्छत्पत्तिका (" " ") (") (")

३—आगमप्यत्पत्तिका (" " ") (") (")

४—आगतपत्तिका (" " ") (") (")

(संयोग गर्विता)

(४) गुणानुसार—१—उत्तमा, २—मध्यमा, ३—अधमा ।

७—दास

[“शृंगार निर्णय” (स० १८०७) के अनुसार]

(६) आत्म धर्मानुसार—

१—साधारण नायिका

२—स्वकीया १. पतिव्रता, २. उदारिज, ३. माधुर्यं

ज्येष्ठा-कनिष्ठा—१. साधारण ज्येष्ठा,

२. दक्षिण की ज्येष्ठा-कनिष्ठा,

३. शठ की ज्येष्ठा,

४. शठ की कनिष्ठा,

५. छष्ट की ज्येष्ठा,

६. छष्ट की कनिष्ठा

उद्धा-अनूद्धा

३—परकीया १-प्रगल्भा, २-धीरा

(१) अनूद्धा, १. उद्बुद्धा, २. उद्बोधिता

[१. अनुरागिनी, २. प्रेमासक्ता]

(२) उद्धा १. असाध्या, २. दुःखसाध्या, ३. साध्या

१-विदग्धा—१. वचनविदग्धा

२. क्रियाविदग्धा—

गुप्ता (भूत, भविष्य, वर्तमान)

२-लक्षिता (सुरतिलक्षिता, हेतुलक्षिता, धीरा)

३-मुदिता (विदग्धा)

४-अनुशयना १. कलिस्थानविनाशिता,

२. भावीस्थानअभाव,

३. निकेत निःप्राप्य

(विदग्धा)

(२) अवस्थानुसार—

१—मुग्धा

(१) स्वकीया (१ अज्ञातयौवना, २. ज्ञातयौवना)

(२) परकीया (,)

[१ नवोढा, २. विश्रब्धनवोढा, ३ अविश्रब्ध नं०]

२—मध्या (स्वकीया-परकीया)

३—प्रौढा (स्वकीया-परकीया)

(३) अष्ट नायिकाएँ

संयोग शृंगार-१—स्वाधीनपत्तिका (स्वकीया, परकीया)

(रूपगर्विता, प्रेमगर्विता, गुणगर्विता)

२—वासकसज्जा (स्वकीया, परकीया) (आगतपत्तिका)

३—अभिसागिका (,) (शुक्ला, कृष्णा)

वियोग शृंगार-४—उत्कण्ठिता

५—खंडिता (धीरा, अधीरा, धीराधीरा)

मानिनी (लघु, मध्यम, गुरु मान)

६—कलहांतरिता (लघु, मध्यम, गुरु मान-शांति)

७—विप्रलब्धा (अन्यसंभोगदुःखिता)

८—प्रोषितभर्तृका (१ प्रवत्स्यत्प्रेयसी,

२. प्रोषितपत्तिका,

३ आगच्छतपत्तिका

४. आगतपत्तिका)

(४) उत्तमादि भेद—

(१) उत्तमा

(२) मध्यमा

(३) अधमा

८—पद्माकर

[“जगद्विनोद” (सं० १८६७) के अनुसार]

(१) कर्मानुसार—

१—स्वकीया १—मुग्धा (१) अज्ञात यौवना

(२) ज्ञात यौवना [१-नवोद्गा, २-विश्रब्ध न०]

२—मध्या

३—प्रौढा (१) रतिप्रीता (२) आनन्द संमोहिता

मुग्धा और प्रौढा के भेद

१. मध्या धीरा, २. मध्या अधीरा, ३. मध्या धीराधीरा

४. प्रौढा धीरा, ५. प्रौढा अधीरा, ६. प्रौढा धीराधीरा

ज्येष्ठा—कनिष्ठा

२—परकीया १ ऊढा, २. अनूढा

१. गुप्ता [भूत सुरतिसंगोपना, वर्तमान सु० सं०, भविष्य सु०]

२. विदग्धा [१. वचन विदग्धा, २. क्रिया विदग्धा]

३ लक्षिता ४. कुलटा ५. मुदिता ६-अनुशयना [प्रथम, द्वि०, तृ०]

✓ ३—गणिका

(२) दशानुसार नायिकाएँ—

१-अन्यसुरतिदुःखिता, २-मानिनी, ३-गर्विता [१. प्रेमग० २. रूपग०]

(३) दस प्रकार की नायिकाएँ—

१—प्रोषितपत्निका (मुग्धा, मध्या, प्रौढा) (परकीया) (गणिका)

२—खडिता (,, ,, ,,) (,,) (,,)

३—कलहान्तरिता (,, ,, ,,) (,,) (,,)

४—विप्रलब्धा (,, ,, ,,) (,,) (,,)

५—उत्कंठिता (,, ,, ,,) (,,) (,,)

६—बासकसज्जा (,, ,, ,,) (,,) (,,)

७—स्वाधीनपत्निका (,, ,, ,,) (,,) (,,)

८—अभिसारिका (,, ,, ,,) (दि.क.शु.) (,,)

९—प्रवत्स्यप्रेयसी (,, ,, ,,) (परकीया) (,,)

१०—आगतपत्निका (,, ,, ,,) (,,) (,,)

(४) गुणानुसार—१ उत्तमा, २. मध्यमा, ३. अधमा ।

१६-अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

['रस कलस' (म १६८८) के अनुसार]

(१) जाति अनुसार—

१. पद्मिनी, २. चित्रिनी,
३. शशिनी, ४. हस्तिनी,

(२) प्रकृति अनुसार—

- १—उत्तमा १. पतिप्रेमिका
२. परिवारप्रेमिका
३. जातिप्रेमिका
४. देशप्रेमिका
५. जन्मभूमि प्रेमिका
६. निजतानुरागिनी
७. लोकप्रेमिका
८. धर्मप्रेमिका

२—मध्यमा (१ व्यगविदग्धा २. मर्म पीडिता)

३—अधमा

(३) धर्मानुसार—

- १—स्वकीया (१) मुग्धा २-अज्ञात यौवना,
- २-ज्ञात यौवना (नवोढा, विश्रवधनवोढा)

(२) मध्या

(३) प्रौढा १-रतिप्रीता, २-आनन्दसंमोहिता

मध्या-प्रौढा के भेद

- १-धीरा (मध्या, प्रौढा)
- २-धीराधीरा (,, ,,)
- ३-अधीरा (,, ,,)

स्वभावानुसार—

१. अन्यसुरतिदुःखिता,
२. वक्रोक्तिगर्विता (१. रूपगर्विता, २. प्रेमगर्विता)
३. मानवती

ज्येष्ठा-कनिष्ठा

२—परकीया १—ऊढा [१. उद्बुद्धा, २. उद्बोधिता]

२—अनूढा [१. , २. ,]

(१) गुसा (भूत, वर्तमान, भविष्यत्)

(२) विदग्धा [१. पचन वि०, २. क्रिया वि०]

(३) लक्षिता

(४) कुलटा

(५) अनुशयना [१. सकेत विघट्टना,
२. भावी सकेतनष्टा,
३. रमणगमना]

(६) मुदिता

✓३—सामान्या अथवा गणिका

(४) दस प्रकार की नायिकें—

१—प्रोषितपत्तिका (मुग्धा, मध्या, प्रौढा) (परकीया)

२—खंडिता (, , ,) (,)

३—कलहांतृता (, , ,) (,)

४—विप्रलब्धा (, , ,) (,)

५—उत्कृष्टिता (, , ,) (,)

६—वासकसजा (, , ,) (,)

७—स्वाधीनपत्तिका (, , ,) (,)

८—अभिसारिका (, , ,) (शुक्ला, कृष्णा, दिवा)

✓९—प्रवत्स्यपत्तिका (, , ,) (परकीया)

१०—आगतपत्तिका (, , ,) (,)

अनुक्रमणिका

१-प्रथम खंड की पृष्ठ-संख्या सहित व्यक्ति-नामानुक्रमणिका



अ	ख
अकबर—५३, ५८, ७०, १०६	खुसरो—१७
अपय दीक्षित—६७, ७३,	ग
अभिनवगुप्त—६३	गदावर भट्ट—५१
अमरक—३८, ३९	ग्वाल—७५, १२६, १५८, १७८,
आनंदवर्धनाचार्य—३८, ६३, ७३	१८५, १८३, १९६
आलम—५६, १५८	ग्राउस—३१
उ	गुलाबराय—१३३
उड्डट—६३	गोवर्धनाचार्य—३६, ७६,
क	गोविंदस्वामी—४६
कन्हैयालाल पोद्दार—१३३	गंग—५३, ७०,
करनेश—५३, ७०	गंगाप्रसाद—५३, ७०
कालिदास—२६, ३८	घ
कुलपति मिश्र—७४, १५८,	घनानंद—५१, ५६, ६०, ७५, १५८,
कुंतल—६४	१८६, २००, २०४
कुंभनदास—४६, ६२	च
कृष्णदास—४६, ६२, १०२	चतुर्भुजदास—४६
कृपाराम—४२, ५३, ६७, ६१, ६२,	चितामणि—६, ५३, ७३, ७६, ११२,
६८, १०६, १३४, १५८,	१५८, १५६
१५६, १६०	चैतन्य—१५, २६, ३१, ३२, ३५,
केशवदान—५३, ५४, ५५, ६४, ६६,	६४३, ४८, ५१, ६६
७१, ७२, ७७, १०७,	चंडीदास—३३, ३५, ४७, ५२
१०६, ११२, ११३, ११६,	चंद—१७
१३४, १४७, १५३, १५८	छ
१५६	छत्रशाल—५६
	छीतस्वामी—४६

ज

- जगन्नाथप्रसाद 'भानु'—१३१, १३३
 जगन्नाथ पंडितराज—१२, ६५
 जटाशंकर—७३
 जयदेव (अलंकारशास्त्री)—६४, ६६, ७३
 जयदेव—(कवि) २७, २६, ३२, ३३, ३५,
 ३६, ४७, ४८, ५२, ६७
 जसवंतसिंह—७४
 जहाँगीर ५८
 जायसी—६६
 जीव गोस्वामी—३५, ३६

ठ

- ठाकुर—१५८, १८८

त

- तानसेन—४२, ५०, ६७,
 तुलसीदास—२४, ५१, १०७
 तोष—७५, १२०, १५८ २०६

द

- दास—६०, ७५, ११७, १२५, १३५,
 १५३, १५५, १५८, १५९,
 १६०, १६१, १६२, १६३,
 १६५, १६८, १७१, १८८

- द्विज—१३०

- द्विजदेव—१२६, १५८

- द्रुहिण—४

- दूलह—७५

- देव—६०, ७५, १०६, ११०, ११५,
 १३५, १४८, १५२, १५५,
 १५६, १६७, १७४

- दंडी—६३ ६६, ७३ ११०

ध

- धनजय—६४, ६७, ८५, १५६, १६१

न १

- नरसीमेहता—१२
 नरहरिदास—५०
 नवीन—१३०
 नागरीदास—५०, ५१,
 निंबार्काचार्य—२७, २६, ३०, ३५,
 ४३, ५१
 नेवाज—१५८
 नंददास—४६, ६६, ६३, ६४, १००,
 १०४, १०८, १२८, १२९
 नदगम—१३०, १२८

प

- पजनस—१२८
 पद्माकर—४०, ६०, ७५, १२८, १२८
 १५६, १६०, १७५, २०३
 परमानंददास—४६, ६२
 परशुरामजी—५०
 प्रतापनारायणसिंह—१३०, १३३
 प्रतापसाह—७५, ७६, १२६, १२८

व

- वनी-ठनी—५१
 वलभट्ट—५३, ७०
 वलभट्ट—२६, ४३, ४४, ४६, ४८
 ५२, ६२,
 वावूराम विन्ध्यरिया—१३३
 बालकृष्ण—७२
 बिहारीलाल—४०, ५३, ६०, ६१, ७४,
 १२८, २०५, १२८
 बिहारीलाल भट्ट—१३१, १२८, १६३,
 १६५

- वीरबल—५३

वेनी प्रवीन — ७५, १२८, १५८

वैजू बावरा—४२

वोधा—५६, १५८

भ

भगवत रसिक—५०

भरतमुनि—४, ११, १३, ६२, ६७,
८३, ८५, १००, १५६,
१६१ १६२

भवभूति—३८

भानुदत्त—६५, ६६, ८५, ८६, ८८,
१००, १०५, १३४, १५६,
१६१

भामह—६३

भारवि—३८

भास—२३, ३८

भूषण—५६, ७३, ११२

भोज—१४, ७३

म

मतिराम—६०, ७३, ७४, १०८,
११२, ११३ ११४, १३४,
१४३, १५८, १५६, १६०,
१६३, १७४, १६५, २००

मध्वाचार्य—५६, ३५, ५१

मधुसूदन सरस्वती—१२

मनोहर—५३, ७०

मम्मट—६४, ७३, ११०

माघ—३८

माधुरीदास—१५

मीराबाई—५१, ५२, ५६, १४६

मुनिलाल—७०

मुबारक—५३, ७२

मोहनदास—७२

मोहनलाल—५३, ७०

र

रघुनाथ—७५, १२०, १५८

रसखान—२५, ५१, ५६, १५८, १७१

रसलाल—१६, ७५, ११७, १२१,
१३५, १४४, १४८, १५४,
१५८, १५६, १६०, १६१
१६२, १६३, १६८

रसिकगोविंद—५०

रसिकविहारी—५०

रहीम—२५, ५३, ७०, १०६, ११७,
१५८

राजशेखर—६४

रामानुजाचार्य—२६, ४४

रामानंद—२६

रुद्रट—६३, ७३

रुच्यक—६४, ७३, ११०

रूपगोस्वामी—१२, ३१, ३५, ३६, ६६

रूपरसिक—५०

ल

लछिराम—१३०, १५८

ललितकिशोरी (चै०)—५१

ललितकिशोरी (नि०)—५०

ललितमाधुरी—५१

ललितमोहिनी—५०

लक्ष्मणसेन—३६

लीलाधर—७२

लीलाशुक—३५ ३६

व

वात्स्यायन—१३७

वामन—६३

व्यासजी—५१, ६७

व्यास मुनि—५, ११, १४, ८४, ८५

विट्ठलनाथ—४३, ४८, ४९,

विट्ठलविपुल—५०

विद्यापति—३३, ३४, ३५, ४७, ४९, ६७

विश्वनाथ—११, ६५, ६७, ७३, ८५,

८६, ८८, ११०, १५३,

१५६, १६१

वृंदावनजी—५०

श

शाहजहाँ—५८, ६५

शिवाजी—५९, ११२

शीतलदास—५०

श्रीपति—७५, १२०, १५८

श्रीभट्ट—४३, ५०, ६७

श्रीहर्ष—३८

शूद्रक—३८

शेख—१५८

शेखर—१७६

शंकराचार्य—२९

शंभुनृप—७४, १८६

स्

सनातन गोस्वामी—३१, ३५

सरदार—१३०, १५८

सरमदास—५०

सहचरिशरण—५०

मुखदेव मिश्र—७५, १५८

सुरनि मिश्र—७५, १२०, १५८

सुंदर—५३, ७२, ११२, १५८,

सूरदास—४२, ४३, ४४, ४८, ६९

५२, ५६, ६०, ६७, ६८

६३, ६७, १००, १४६,

१५८

सूरदास मनमोहन—५१

सेनापति—५३, ६०, ७२, १५८

सेवक—१३०, १५८, १७८

सोमनाथ—५, १५, १७, ७५, १२१

१५८, १६४

ह

हठी—५१

हनुमान—१८७

हरिऔध (प० अयोध्यामिह उपाध्याय)

१३२, १४८, १५८, १६३

१८६, २०१

हरिदास स्वामी—४३, ४४, ५०, ६७

हरिराम—७२

हरिव्यास—५०

हरिश्चंद्र भारतेन्दु—१७७, १८०, २०१

हरिशंकर शर्मा—१३३

हाल—६७, ६९, ७४, ७६

हिन हरिवंश—४३, ४४, ४९, ६७

२—प्रथम खंड की पृष्ठ-संख्या सहित ग्रंथानुक्रमणिका

अ

- आग्निपुराण—५, १४, ८४
अध्यात्म रामायण—२४
अनगरग—१३८
अमरकोष—६
अलकशतक—७२
अलंकार शेखर—७१
अलंकार सवस्व—६४
आर्यासप्तशता—३६,
अगदर्पण—७५, १२१

उ

- उज्ज्वल नालमणिका—३६, ६६

क

- कर्णाभरण—७०
कविकल्पलतावृत्ति—७१
कविकुलकल्पतरु—७३, ११२
कविकुलकठाभरण—७५
कवित्तरत्नाकर—७२
काव्यकलावर—१२०
काव्यनिर्णय—७५
काव्यप्रकाश—१६, ६४, ६७, ७३
काव्यप्रभाकर—१३१, १३३
काव्यमीमांसा—६४, ७१
काव्यविलास—१२६
काव्यविवेक—७३
काव्यरसायन—७५ ११५
काव्यसरोज—१२०

काव्यसिद्धांत—१२०

काव्यादर्श—६६, ७१

काव्यसंग्रह—१३

कीर्तिपताका—३४

कीर्तिलता—३४

कुमारसंभव—२६

कुवलयानंद—६४, ६६, ७३

कुशलविलास—११५

कृष्णकर्णामृत—३६

कृष्णगातावली—५१

ग

गाथा सत्तसई—३७, ७४

गीतगोविंद—३३

गोपालतापनी उपनिषद्—२४, २७

च

चंद्रालोक—६४, ६६, ६७, ७३

छ

छंदरत्नावली—७२

छंदविचार—७३, ७५

छंदसार—७४

ज

जगद्विनोद—१२८

जातिविलास—१०८, ११७

जुगलमत—५०,

त

तिलशतक—७३

द

दशमस्कन्ध—१०४
दशरूपक—६४, ६७, ८५
दूषणविचार—७०

ध

ध्वन्यालोक—३८, ३९, ६३

न

नखशिख—७०
नगरशोभा—१०८, ११७
नवरस—१३२
नवरसतरंग—१२८
नाट्यशास्त्र—४, ६२, ६७, ८४, ११०

प

प्रबोधसुवामागर—१३०
प्रियप्रवास—१३२
प्रेमतरंग—११५
पचसायक—१३८

ब

बरवा नायिकाभेद—७०, ६१,
१०६, १०६
ब्रह्मपुराण—२४, २६
ब्रह्मवैवर्त पुराण—२७, २८, ३१
बारहमासा—७२
बिहारी सतसई—४०, ६१, ७४ ७६

भ

भवानीविलास—७५, ११५
भक्तिरसामृतसिन्धु—१२, ३६
भक्तिरसायन—१२
भक्तिसूत्र—२४
भागवत—२४, २६, २८, ४६

भावविलास—७५, ११५, ११६
भाषाभूषण—७४
भूपभूषण—७०

म

महाभारत—२४, २६
महावाणी—५०
महेश्वरविलास—१३०

र

रसकलस—१३२, १६३
रसकुसुमाकर—१३१, १३३
रसगगावर—६५
रसचन्द्रिका—७२
रसतरंग—१३०
रसतरंगिणी—६५, ६७, ८६
रसप्रबोध—७५, १२१
रस-रसि-रसिनी—७, ७५, १२१
रसमंजरी (कन्है० पो०)—१३३
रसमंजरी (नंद०)—६६, ६१, ६२,
६३, १०२, १०४,
१०७, १०८, १०६
रसमंजरी (भानु०)—६५, ६७, ८५,
८६, १०५
रसरत्नाकर—१२०
रसरत्नाकर (हरि०)—१३३
रसरहस्य—७४
रसराज—७४, १०८, ११२, ११३
रसरंग—१२६
रसविलास—७५, ११५, ११७
रससरस—१२०
रसार्णव—७५

रसिकप्रिया—७१, १०७, १०६, ११३,
११४, ११६

रावासुवाशतक—५१

रामचंद्रिका—१०६

रामतापनी उपनिषद—२४

रामप्रकाश—७०

रासा—१७

रूपमजरी—६६, ६३, ६५, १०४, १०६

ल

लघु भागवतामृत—३६

ललितललाम—७४

व

वक्तृमेक्षिजीवित—६४

वाग्विलास—१३०

वायु पुराण—२४

विरहमंजरी—१०४

विष्णु पुराण—२४, २६

वृत्त विचार—७५

बृहद् भागवतामृत—३५

वैष्णवतोषिणी—३५

व्यंग्यविलास—१३०

व्यंग्यार्थकौमुदी—१२६

श

शिवराजभूषण—७३

श्रुतिभूषण—७०

शृंगारदर्पण—१३०

शृंगारनिर्णय—७५, १२५

शृंगारप्रकाश—६७, ७१

शृंगारबत्तीसी—१२६

शृंगारलता—७५

शृंगारलतिका—१२६

शृंगारलतिका सौरभ—१३१

शृंगारविलासिनी—११५

शृंगारसरोज—१३०

शृंगारसागर—७०

शृंगारसुवाकर—१३०

शृंगारसग्रह—१३०

ष

षट् संदर्भ—३६

स

सतसई—७४, ११४

साख्य दर्शन—२४, २८

साहित्यदर्पण—१६, ६५, ६७, ७१,

७३, ८५, ८६

साहित्यलहरी—६८, ६९, ६२, ६३,

१००, १०४, १०७,

१०६

साहित्यसागरी—१३०

साहित्यसागर—१३१, १६३

साहित्यसार—७४

साहित्यसिंधु—१३०

साहित्यसुवाकर—१३०

सिंहासनबत्तीसी—७२

सुखसागरतरंग—७५, ११५

नृजानविनोद—११५

सुवानिवि—१२०

सुंदर शृंगार—७१, ११२

सुंदरीसर्वस्व—१३०

सूरसागर—४४, १०३

ह

हरिभक्तिविलास—३५

हरिवश—२४, २६

हितचोरासी—५०

हिततरंगिनी—४२, ६७, ६१, ६२,

६८, १०४, १०७

हिंदी काव्य में नवरस—१३३

३-द्वितीय खंड की पद्य-संख्या सहित कवि-नामानुक्रमणिका

सं०	कवि	पद्य-संख्या	योग	
१	अज्ञात—	१४, ३४, ४६, ५१, ६३, ७५, ७८, ६१, १११, ११३ १३३, १३६, १४१, १५५, १५७, १५८, १६५, १६६, १६१, १६२, २१०, २२३, २४१, २४२, २४५, २५५, २६२, २६६, ३०४, ३२२, ३२४, ३२७, ३२८, ३२६, ३५२, ३५३, ३६०, ३६३, ३६६, ३७१, ३७६, ३८३, ४०५, ४१८, ४१९, ४२८, ४३०, ४५०, ४७३, ४७७, ४८४, ५०६, ५३७, ५४४, ५६६, ५७१, ५८६, ५६७, ६१४, ६१६, ६५६	...	६१
२	आलम—	५८८, ६२३	...	२
३	ईश—	३२५,	...	१
४	कमलापति—	३७८,	...	१
५	कविराज—	२८०,	...	१
६	कविंद— (उदयनाथ)	७१, १४५, १५०, ३७३, ४२५, ४६४, ५२३	७
७	कालिदास—	१२२, १४८	...	२
८	कुमार—	७६,	...	१
९	कृपाराम—	८२, ८८, ३२७, ३५०, ४५६	..	५
१०	केशवदास—	१०, ३६, ५४, ६६, १३८, १७७, ६०६,	७
११	ग्याल—	१०१, १६०, १६३, २६८, २७६, ३०१, ३१५, ३१७ ४०८, ४१२, ४२४, ४३८, ५३४, ५४०, ५८४, ६२७, १६		
१२	गुलाब—	७०, ६६, १५४, २६६, ३१६	..	५
१३	गोकुल—	१४६, ५०४, ५७६,	...	३
१४	गंग—	८५,	...	१
१५	घनश्याम—	३६२,	...	१
१६	घनानंद—	४, ७, २३, २०६, २१६, २२५, ३७६, ५४८, ५७६, ५६४, ६०२, ६०३, ६१३, ६१५, ६१८, ६२०, ६२२, १७		
१७	चिंतामणि—	१३४, १५३, १७६, १८८, २४६, २६५, २८२, ३१०, ३६५, ४०२, ४२७, ५८५,	१२

सं०	कवि	पद्य-संख्या	योग
१८	ठाकुर—	१६६, २१२, २२४, २२७, २३०, २३४, २३६, २४०, २५१, ३१४, ४६७, ६०१, ६०७, ६१२,	१४
१९	तोष—	१०५, ६४२,	२
२०	दयानिधि—	२२, ६२१,	२
२१	दास—	११, ८१, ६०, १३७, १४१, १८७, १६७, १६८, २०३, २६८, ३२०, ३४६, ३६६, ३६८, ४४१, ...	१५
२२	दिनेश—	३६३	१
२३	द्विज—	१०६, ४३१, ४८६, ५५८, .	४
२४	द्विजदेव—	१३, १५, १८, २१, ३३, १००, १४७, १७४, २०४, (महा० २०५, २१६, २२६, २३१, २३३, २४३, ३००, ३६१, मानसिंह) ४४७, ४५१, ४७१, ४६८, ५६०, ५६२, ५६५, ५६७, ५७५, ५८०, ५८१, ५६२, ५६३, ५६५, ५६६, ६१६, ६३६, ६५५,	३५
२५	द्विजराज—	१०८, .	१
२६	देव—	३, १६, २०, २४, २५, २७, २६, ४१, ४२, ४४, ४५, ४६, ५०, ५२, ५५, ५६, ५८, ६१, ८६, ६२, ६६, १२७, १३५, १७०, १७३, २००, २१७, २५०, २५३, २५७, २६६, २७५, ३३३, ३४१, ३४८, ३७०, ३७२, ३७४, ३७५, ३८५, ३८६, ३८०, ३८२, ३८६, ३८७, ४११, ४१३, ४२०, ४२६, ४३५, ४३७, ४६०, ४६२, ४६४, ४६५, ४८१, ४६६, ५१६, ५२०, ५२६, ५२६, ५३८, ५४१, ५४२, ५७०, ५८७, ६२८, ६३२, ६३५, ६३६, ६३७, ६३८, ६५१, ६५३, ..	५४
२७	नरेश—	६००,	१
२८	नाथ—	२६,	१
२९	नीलकण्ठ—	७४,	१
३०	नेवाज—	२३५,	१
३१	नंददास—	४४६,	१
३२	नंददास—	४४६, ५४७, ..	२
	(अष्टछाप)
३३	नंदराम—	२४६, २८६, ५५२, ..	३

सं०	कवि	पद्य-संख्या	योग
३४.	पद्माकर—	८, ३०, ३१, ३२, ३६, ६७, ७७, ११४, १२०, १२६, १२६, १४४, १५२, १६१, १६४, १८१, १८६, २०१, २३२, २७१, २७४, २८८, २९०, २९३, ३०२, ३०५, ३१२, ३१३, ३१६, ३३६, ३४६, ३६१, ३६४, ४००, ४४३, ४४५, ४५७, ४६३, ४६८, ४७६, ४८२, ४८६, ५००, ५०२, ५२५, ५३५, ५४३, ५४६, ५५७, ५५६, ५६१, ५८३, ५८१, ६३३, ६४०, ६४५, ६५७, ...	५७
३५.	प्रतापसाह—	६०, १८०, २७८, २८६, ३३०, ३५१, ३५६, ...	७
३६.	पूखी—	३५८,	१
३७.	प्रेम—	१४६, .	१
३८.	ब्रजचंद—	१३०, ३५७, ...	२
३९.	ब्रह्म—	१०६, .	१
(बीरबल)			
४०.	बालम—	८०, ...	१
४१.	बिहारीलाल—	३७, ३८, १०२, १३६, १८५, २८३, २९४, ३०६, ३३२, ३८४, ४१४, ४३६, ४६७, ४७०, ४७४, ५१२, ५१३, ६३४, ६४३, ६६०, ...	२०
४२.	बीर—	५८२, ६३१, ..	२
४३.	बैनी—	५६, २२२,	२
४४.	बैनीप्रवीन—	६६२, ६७, १४३, १६५, २६३, २८७, ३१८, ३२३, ३८२, ४८८, ४०३, ४३६, ४६६, ५१७,	१५
४५.	बोधा—	२१३, २२१, ...	२
४६.	भानु—	५१०, ११६, १३१, २०२,	४
जगन्नाथप्रसाद			
४७.	भूधर—	१६, ३३६, ...	२
४८.	सुवनेश—	५७४, ..	१
४९.	मौन—	१,	१
५०.	भंजन—	२८१, ..	१
५१.	मतिराम—	५, १२, ३५, ८३, ८६, १०७, ११५, ११७, १२१, १२८, १४०, १५६, १६८, १७२, १७६, १८८, २६०, २६४, २७२, २७७, २८८, २९६, २९७, ३०३, ३०८, ३२६, ३३१, ३३४, ३८१, ३८६, ४१७, ४२३, ४२६,	

सं० कवि	पद्य-सख्या	योग.
७४.सेखर— ४२१, ४५५, ४८७, ६५०, ६५४,	५
(चन्द्रशेखर वाज०)		
७५.सेनापति—३६६, ५८६,	.	२
७६.सेवक— ६८, ३०६. ४७२,	३
७७.सौमनाथ—४०, ४७, ८७, १०३, २५२, २७३, ३५६, ३८७, ४०१, (शशिनाथ) ४०७, ४३३, ४४०, ४४४, ४८०, ४८३. ४६१, ५०३, ५०६, ५१६, ५२२, ५२७, ५३१, ६२६, ६२६, ६४४, ६४७, २६		
७८.संभु— २८, ७३, १२४, ४६१, ५६५,	५
(राजाशंभुनाथ)		
७९.हनुमान— ६३, ६४, १०४, ११२, २३७, ३६५, ५०१, ५२३.	८
८०.हरिऔध—६, ४३, ४८, ५३, ११८, ११६, १२३ १३२, १५६, (अयोध्यासिंह १६६, १७५, १८४, १६०, १६४, २१८, २४८, २५६, उपाध्याय) २६७, ३३५, ३४०, ३५४, ४०४, ४३२, ४४४, ४७६, ५०८, ५१०, ५५१, ५६८, ५७३, ६२५, ६४१, ६५२, ३३		
८१.हरिकेश—७२,	..	१
८२.हरिचंद— ५७, ६६, ६८२, २२६, २३६, ३६८, ४६५, ५४५, ५७२, (भारतेन्दु) ६०८, ६०६, ६१०, ६११, ६२४, .	..	१४
८३.हरिजन—५११,	१
		योग ६६०

परिशिष्ट

१. रहीम — ६६१ से ७२१ तक	६१
२. देव — ७२२ से ७४८ तक	२७
३. देव — ७४६ से ७७३ तक	२५
४. हरिऔध— ७७४ से ७८१ तक	८

संपूर्ण योग ७८१

अष्टछाप-परिचय

(आलोचना सहित जीवनी और काव्य-संग्रह)

इस प्रशंसीय पुस्तक में हिंदी के भक्तिकालीन आठ महाकवियों के प्रामाणिक जीवन-वृत्तों और उनकी रचनाओं का सुसंपादित संकलन दिया गया है। प्रचुर परिश्रम और गंभीर अध्ययन के उपरान्त इस विद्वतापूर्ण पुस्तक की रचना हुई है। इसके संबंध में अपनी ओर से कुछ न कह कर प्रतिष्ठित पत्रों की भूमितियाँ देते हैं—

“इसमें अष्टछाप-कवियों की आलोचना सहित सचित्र जीवनीयों हैं और काव्य-संग्रह भी। बल्लभ संप्रदाय के आचार्यों की सचित्र-चरित चर्चा प्रथम परिच्छेद में है। इसी में शुद्धाद्वैत सिद्धांत और पुष्टिमार्ग का विस्तृत विवेचन भी है। दूसरे परिच्छेद में अष्टछाप के स्थापना-काल, महत्व और क्रम तथा वार्ता-साहित्य पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। तृतीय परिच्छेद में अष्टछाप के आठ कवियों की आलोचनात्मक जीवनीयों और चुनी हुई कविताएँ हैं। चतुर्थ में अष्टछाप के गीति-काव्य और संगीत-पद्धति का समीक्षात्मक प्रदर्शन किया गया है। अंत के पंचम परिच्छेद में अष्टछाप का सिंहावलोकन है। सब के अंत में पुस्तक-गत नामों, ग्रंथों, स्थानों और पदों की अक्षरानुक्रमणिका है।

इस प्रकार यह पुस्तक घोर परिश्रम एवं अनवरत अनुसंधान के परिणाम स्वरूप अतीव सुंदर बन पड़ी है। पुस्तक के प्रत्येक प्रसंग से लेखक की गहरी ज्ञानवीन का पता चलता है। इस पुस्तक से साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हुई है। हम लेखक के इस सप्रयास एवं अथक अध्ययन का हार्दिक अभिनंदन करते हैं।

लगभग २०० पृष्ठ हैं। मज़बूत जिल्द पर चित्रना आवरण है। छपाई सुंदर है।
(*) मूल्य में इतनी अच्छी पुस्तक सस्ती ही है।” —“हिमालय” पटना (जनवरी १९४८)

*

“प्रस्तुत पुस्तक में अष्टछाप के आठों कवियों का जीवन-परिचय, काव्य-रचना का आलोचनात्मक दृष्टि से देने का प्रयत्न किया गया है। लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण वह विवेचन है, जिसमें अष्टछाप की दार्शनिक पृष्ठभूमि और वैष्णव संप्रदायों के विभिन्न सिद्धांतों की सुंदर प्रामाणिक चर्चा की गई है। अष्टछाप का काव्य और संगीत तथा सिंहावलोकन भी अत्यंत महत्वपूर्ण परिच्छेद है। सच्चे में हम कह सकते हैं कि अष्टछाप के कवियों के संबंध में, लेखक ने इस पुस्तक को सर्वांगपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है। लेखक का अध्ययन भी विशाल है और हमें विश्वास है कि हिंदी साहित्य के विद्यार्थी इसे बहुत उपयोगी ग्रंथ के रूप में पावेंगे।”

—“वीर अर्जुन”, दिल्ली (२९ पौष २००४)

“अष्टछाप विषयक एक सर्वांगीण पुस्तक का अभाव हिंदी साहित्य में अभी तक बना हुआ ही था। प्रस्तुत पुस्तक एक विशेष सीमा तक इस अभाव की पूर्ति करती है। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि ‘अष्टछाप-परिचय’ इस विषय के अध्ययन में अहत्वपूर्ण ग्रंथ-प्रदर्शन करने में समर्थ है। आशा है हिंदी जगत् में इसे समुचित सम्मान

‘अष्टछाप-परिचय’ पर प्रतीष्ठित विद्वानों की सम्मतियों

अष्टछाप-परिचय परमोत्कृष्ट ग्रंथ है, जिसे मैंने साधत बहुत ध्यान पूर्वक पढ़ा। अष्टछाप वाले महाकवियों की जीवनियों के विषय में लेखक महोदय ने सामग्री चुनने में बहुत श्लाघ्य प्रयत्न किया है और तत्त्वबद्धी विविध लेखकों, समालोचकों आदि के विचारों पर बहुत श्रेष्ठ सम्मतिपत्र दी है। ऐसे विषयों पर मतभेद के लिए बहुत स्थान रहता है, किंतु मीतल जी ने ऐसी योग्यता पूर्वक निर्णय किये हैं, कि मतभेद का बहुत कम अवकाश रह जाता है। मैं मीतल जी को ऐसे श्रेष्ठ ग्रंथ की रचना पर बधाई देता हूँ।

लखनऊ, २३-१२-४७

—शुक्रदेवविहारी मिश्र

(साहित्य वाचस्पति एवं मित्राचार्यो ने से एक)

पुरतक अच्छी लगी। कई ज्ञातव्य बाने प्राप्त हुई। रचनाओं का संग्रह भी अच्छा है।

—मनमोहन

लखनऊ, १८-१-४८

(शिनामधी, गुरुकुल प्रताप सरकार,)

आपने अष्टछाप-परिचय द्वारा हिंदी साहित्य के भंडार से एक उपादेय वृद्धि कर दी है। मुझे आशा और विश्वास है कि सभी साहित्यकार इसे आदर की दृष्टि से देखेंगे।

—श्रीकृष्णदत्त पालावाल

लखनऊ, २०-१-४८

(राजगुरु एवं मूचना मंत्रा, संयुक्त प्रार्थना संस्कार)

यह पुरानी हिंदी के साहित्य तथा मध्यकालीन भारत की धार्मिक संस्कृति पर प्रकाश डालने वाली विशेष महत्वपूर्ण पुस्तक है। पुराने हिंदी साहित्य की आलोचना में आपकी यह देन प्रथम श्रेणी की है। सहाय, पांडित्य और श्रम से की हुई इस भवेपणा का अपना विशिष्ट स्थान है। इसके लिए मैं न केवल आपको, परंतु हिंदी-प्रेमी समाज को और हिंदी संसार को बधाई देता हूँ।

कलकत्ता,

—सुनीतिकुमार चाटुज्या

ता० २७-१-४८

(अग्रज—तुलनात्मक भाषा विज्ञान विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय)

श्री मीतल जी की अष्टछाप-परिचय पुस्तक ब्रजभाषा के आदिम आठ महाकवियों पर गंभीर कृति है। इसमें कवियों और उनके मरचकों की जीवनियों पर अच्छा प्रकाश डालते हुए, उनकी कविताओं का भी सुंदर संग्रह किया गया है। अपने ढंग का यह एक बहुत अच्छा और गंभीर प्रयत्न है। ऐसी अच्छी पुस्तक लिखने के लिए मीतल जी को बधाई !

—राहुल सांकृत्यायन

ता० ३१-१-४८

(अग्रज—हिंदी साहित्य संमेलन)

आपने संग्रह अच्छा किया है और उसके लिये आवश्यक सामग्री का आलोड़न भी किया है। विवाद शून्य सत्स्वरूप निर्धारणी आपकी यह पुस्तिका बड़े काम की है। इसके लिए आप बधाई के पात्र हैं।

—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

२७-८-२००४

(अग्रज—शोध विभाग, काशी नगरी प्रचारिणी सभा)

अष्टछाप-परिचय खोजपूर्ण प्रशस्त रचना है। हमारे धार्मिक काल के अध्ययन में यह पुस्तक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करेगी। मेरा अभिनंदन स्वीकार कीजिए।

—रामकमार वर्मा

ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद

(परिचिन्तित एवं परिष्कृत द्वितीय संस्करण)

प्रोफेसर लेखक—डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, अन्तर्ज-इतिहास विभाग, प्रयाग वि० वि०

प्रतिष्ठित पत्रों एवं विद्वानों की सम्मति—

“पुस्तक को एक सरसरी दृष्टि में देखने पर भी यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि लेखक ने इसके निर्माण में काफी परिश्रम और ब्रजभाषा-साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया है।” समस्त प्राप्त सामग्री और विचारों का समन्वय कर लेखक ने नायिकाभेद के विभिन्न विषयों के संबंध में एक निश्चित और निर्भ्रंत मत स्थिर करने की चेष्टा की है। उदाहरणों के संग्रह में भी उसने कठिन परिश्रम और सुंदर साहित्यिक रुचि का परिचय दिया है।

—“सरस्वती”, प्रयाग.

विद्वान् लेखक ने रीति-कविता का संक्षिप्त इतिहास और नायिकाभेद पर विस्तृत प्रकाश डाला है। अनेकों आचार्यों ने जो क्रम इस संबंध में उपस्थित किया है, उस पर लेखक ने गंभीरता से अपने विचार व्यक्त किये हैं और अंत में एक वैज्ञानिक क्रम निश्चित करके नायिकाओं के लक्षण और उनके चुटीले उदाहरण उपस्थित किये हैं। यह संतोष की बात है कि उदाहरण अश्लील नहीं हैं और पुस्तक ब्रजभाषा में साहित्य के एक अभाव को पूरा करने में सफल हुई है।

—“हिन्दुस्तान”, दिल्ली.

There is no doubt the author has made a sincere and conscientious effort to give an exhaustive exposition of the subject. We are sure the book will prove entertaining to lovers of Hindi poetry and helpful to students interested in its systematic study.

—“LEADER”, ALLAHABAD

प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान् लेखक ने काव्य सौंदर्य की दृष्टि से ब्रजभाषा साहित्य के उन रत्नों का विवेचनात्मक संग्रह किया है, जिनकी समता अन्य भाषाओं के साहित्य में मिलना कठिन है। पुस्तक को लेखक के गर्भार पांडित्य और खोज-पूर्ण दृष्टि ने काफी महत्वपूर्ण बना दिया है। इस सब प्रयास के लिये लेखक धन्यवाद के पात्र है।—विश्वमित्र क०.

इस पुस्तक की सहायता से संस्कृत और हिंदी के विभिन्न आचार्यों के नायिकाभेद संबंधी कार्य का तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं। ब्रजभाषा और उसके साहित्यिक इतिहास तथा रस-सिद्धांत का जो विवेचन किया गया है, वह साहित्य के विद्यार्थियों के लिए भी उपयोगी और ज्ञानवर्धक होगा।

—“साहित्य संदेश”, आगरा.

आपने पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी है और निस्संदेह इससे साहित्य के विद्यार्थियों का बड़ा उपकार होगा।

—अमरनाथ झा

प्रयाग, १६-१२-४४

(वायस चारलर अलाहाबाद विश्व-विद्यालय)

निस्संदेह इस पुस्तक को प्रस्तुत करने में आपने श्रम, शोध, निष्पक्ष शक्ति और सहृदयता का पूर्ण उपयोग किया है।

—केशवप्रसाद मिश्र

बनारस, २७-१२-४४

(अध्यक्ष-हिंदी विभाग, हिंदू विश्व-विद्यालय)

नायिका-निरूपण पर हिंदी में कोई स्वतंत्र पुस्तक अभी तक नहीं थी। आपने समस्त सामग्री को एक सूत्र में एकत्रित कर विद्यार्थियों तथा अन्तर्जकों का उपकार किया है।

—सीतेश्वर प्रसाद

नायिकाभेद विषयक सामग्रियों का जैसा गवेषणापूर्ण सुसंस्कृत सकलन इस ग्रंथ में आपने किया है, वह अवश्य ही अभूतपूर्व है।

—कन्हैलाल पोद्दार

मथुरा, द्वि० चैत्र शु० ११-२००२

(हिंदी काव्यशास्त्र के सर्वमान्य आचार्य)

आपने जिस सहृदयता और मार्मिकता के साथ पुस्तक की रचना की है, उसकी प्रशंसा मैं मुक्त कंठ से करता हूँ। आपका साहित्यिक ज्ञान, भाषुकतामय गवेषणा और पर्यालोचना शक्ति असाधारण है।

—हरिऔध

आजमगढ़, २३-११-४४

(स्वर्गाय काव्य सम्राट् एवं हिंदी साहित्य के प्रकाश विद्वान)

प्राचीन संस्कृत तथा हिंदी वाले कवियों के इस विषय पर जो विचारों का संग्रह आपने लिखा है, वह बहुत मूल्यवान है। आपका परिश्रम श्लाघ्य है।

—शुक्रदेव बिहारी मिश्र

लखनऊ, २२-१-४५

(साहित्य वाचस्पति, मिश्र बंधुओं में से एक)

इस विषय पर अब तक कोई ऐसी सुंदर पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। आपन इस विषय पर जो सुंदर गवेषणा और विवेचना की है, वह सर्वथा सराहनीय है। इस ग्रंथ से साहित्य के एक विशेष अंग की बहुत-कुछ पूर्ति होगई।

प्रयाग,

—रामशंकर शुक्ल, 'रसाल'

१०-१-४४

(अलाहबाद विश्व-विद्यालय के हिंदी-अध्यापक एवं प्रतिष्ठित विद्वान)

श्री प्रभुदयालजी मीतल ने नायिकाभेद पर ऐसी सर्वांगपूर्ण और उपयोगी पुस्तक लिखी है कि उससे विद्यार्थी ही नहीं साहित्य के विद्वान भी बहुत कुछ सीख सकेंगे।

काशी, २३-६-४६

—राय कृष्णदास.

यह ग्रंथ अपने विषय की अनूठी रचना है। वास्तव में यह रचना मीतलजी की अध्ययनशीलता तथा साहित्य-मर्मज्ञता को पूर्ण रूपेण प्रगट कर रही है और विद्यार्थियों के लिए उपदेश प्रद होते हुए साहित्यिकों के लिए भी मंग्रहणीय है।

काशी, जुलाई १९४४

—ब्रजरत्नदास.

इस ग्रंथ के सकलन करने में आपने अच्छा श्रम किया है। उत्तरार्ध में प्रत्येक नायिका के उदाहरण भी देकर आपने विषय को सुबोध बना दिया है।

काशी, २-११-४४

—विश्वनाथप्रसाद मिश्र

आपकी पुस्तक विद्वत्ता के साथ लिखी गई है। यथावमार उसे सम्मेलन परीक्षा के पाठ्यक्रम में रखने का विचार किया जायगा।

प्रयाग, २६-११-४४

—रामकुमार वर्मा

इसमें ऐसी प्रचुर सामग्री है, जो न केवल विद्यार्थियों के लिए ही, वरन् पंडितों के लिए भी अत्यंत उपयोगी है। इससे हिंदी के विद्यार्थी के एक अभाव की पूर्ति होती है।

दिल्ली, ७-१२-४४

—नगेन्द्र

आपने ऐसी पुस्तक की रचना करके हिंदी के रस और अलंकार काल का एक विकसित स्वरूप प्रगट किया है। मेरी राय में हिंदी में यह अपने ढंग का अकेला और सर्वोत्तम ग्रंथ है।

—ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' ('देशदूत'—संपादक), प्रयाग.